गृहसंसारका रत्न, मनकी औषधि एवं आत्माकी पुष्टि ।

सतीमंडल ।

और

स्त्री पुरुषोंके धर्म ।

भाग १ ला.

द्वितीय-संस्करण.

सतीमण्डल भूखण्डमें, करके सत्यप्रकाश ।
सुबोध देय कुबोधका क्षणमें करता नाश ॥

लेखक व प्रकाशक.

पं. केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी ।

सतीमण्डल भाग १-२, चरित्रचन्द्रिका इत्यादि,
पुस्तकोंके रचयिता ।

मु० अहमदाबाद-गुजरात ।

द्वितीय संस्करण—प्रति १०००.

संवत् १९८१—ई. स. १९२५.

मूल्य रु. ३॥

इस ग्रन्थकर्ताके थोड़े समयमें प्रसिद्ध होनेवाले ग्रन्थ।

नाम		प्रथमसे ग्राहक होनेवालोंको	पीछेसे
१ सतीमण्डल	भाग–२	मूल्य ३)	३॥
२ चरित्रचन्द्रिका	भाग–१	,, ३)	३॥

ऊपरोक्त पुस्तकोंका विस्तृत विज्ञापन इस पुस्तकके अन्तमें पढिये।

इस ग्रन्थ कर्ताकी समस्त पुस्तकें निम्न पतेसे मिल सकती हैं।

अहमदाबाद–पं. केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी–तलीयाकी पोल.

मुंबाई—गांधी हिन्दी पुस्तक भंडार–कालबादेवी रोड.

,, एन. एम. त्रिपाठी एन्ड कुं. ,,

प्रयाग—मैनेजर, "बुक डिपो" इन्डीयन प्रेस लीमीटेड.

लाहौर—मैनेजर, "आर्य्य पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम" अनारकली.

अहमदाबादके उत्कृष्ट मुद्रणालयमें पटेल पुरुषोतम शंकरदासे छापा. ठे० फरनान्डीझ ब्रीज, अहमदाबाद.

सतीका हृदयमन्दिर।

१ शुद्ध प्रेम, स्वामीभक्ति, दया, सन्तोष, विनय, विवेक, सहनशीलता ये सतीके धर्म हैं।

२ पतिकी मतिके अनुसार गति करनेवाली, स्निग्धा व प्रियभाषण करनेवाली स्त्रीको इस संसारमें निरवधि सन्मान मिलता है।

३ गृहिणी यह गृहका अमूल्य रत्न है। प्रकृतिके दृश्य उसके द्वारा आनन्दप्रद प्रतीत होते हैं।

४ सती स्त्री संसारकी शीतल छाया स्वरूप है, उसीके द्वारा संसार सुखमय मालूम होता है।

५ स्त्री यह प्रेमका पात्र है, उसमें एक ऐसी अद्भुत शक्ति है कि वह हर-एक व्यक्तिको अपनी ओर आकर्षण करती है।

पवित्र शिक्षा।

तुम्हारे कार्य पवित्र होने चाहिये। यहो नहीं, किन्तु जिन शब्दोंका तुम उच्चार करो वे भी पवित्र होने चाहिये। उसके साथ तुम्हारे मनके गुप्त विचार जिन्हें कोई जान या सून नहीं सकते वे भी पवित्र होने चाहिये।

अपने श्रेयके लिये यत्न करनेमें संतुष्ट मत होना।
अपनी जातिके श्रेयके लिये सदैव विचार करते रहना॥

इन दोनोंके साथ ही दूसरी जातिके श्रेयकी भी इच्छा करते रहना कौनसा विचार सच्चा व कौनसा मिथ्या है इस विषयपर अपनी शक्ति व बुद्धिसे पूर्ण विचार कर निर्णय करना। जहां तक कोई बात तेरी समझमें न आवे वहां तक धर्म सम्बन्धी किसी बातको स्वीकार नहीं करना।

प्रस्तावना ।

(प्रथमावृत्तिकी)

प्राचीन समयमें भारतवर्षकी स्त्रियां विद्या, स्त्रीधर्मनीति, व तत्त्वज्ञान इत्यादिमें कुशल थीं । पति व कुटुम्बके प्रति कर्तव्य कर्म समझती थीं व योग्य आचरण करती थीं । कईएकोंने तो विद्या, धर्म–नीति, इत्यादिमें अपनी ऐसी अलौकिक शक्ति दिखलायी है कि जिनकी कीर्तिके किरण आज पृथ्वीमें चारों ओर फैल रहे हैं। उन्हीं आर्यमहिलाओंके वंशकी अबलायें आज विद्या व धर्म–नीतिसे विमुख होकर अज्ञानतामें जीवन व्यतित करती हैं। उन्हें धर्मनीतिवाली शिक्षा देकर ज्ञानयुक्त करनेके व उनके पढनेके लिये उपयुक्त हो वैसी पुस्तकें बहुत कम हैं जिसे बढानेकी आवश्यक्ता है । इन समस्त विषयोंपर विचार कर स्त्रियोंको शिक्षा प्राप्त करनेमें सब प्रकारसे उपयोगी हो ऐसे अनेक विषय जिसमें हों वैसी एक पुस्तक तैयार करनेकी मेरी बहुत समयसे इच्छा थी वह आज अनेक अंशोंमें पूर्ण हुयी है।

इस पुस्तकमें प्रथम सतियोंके चरित्र दिये गये हैं; क्योंकि सद्‌गुणी स्त्रियोंके चरित्र स्त्रियोंके जीवन सुधारनेमें बहुत कुछ सहायता करते हैं। इससे मन बहुत पवित्र होता है व महान् दैवभाव प्रकाशित होता है । वर्तमान समयमें स्त्रीशिक्षाकी अभिवृद्धि होती जाती है; किन्तु उसके साथ २ स्त्रियोंके कोमल हृदयमें सद्‌गुणी स्त्रियोंके चरित्रका विशेष रूपसे प्रतिबिम्ब पाड़नेमें उपयोगी हो ऐसी भिन्न २ सद्‌गुण धारणकरनेवाली सतीस्त्रियोंके जीवनचरित्रकी पुस्तकोंका चाहिये वैसा प्रचार नहीं हुआ है। इस लिये इस पुस्तकमें सद्‌गुणी स्त्रियोंके जीवनचरित्रोंका अपूर्व संग्रह दिया गया है ।

इसके पश्चात् स्त्रीपुरुषके धर्म दिये गये हैं। उसमें पति पत्नी एवं कुटुम्बियोंको परस्पर आचरण करनेके धर्म तथा स्त्री उपयोगी अनेक आवश्यक विषय देकर इस पुस्तकको कुटुम्बोंमें अधिक उपयोगी बनानेका यत्न किया गया है । आप जानते हैं कि इस संसारमें कोई सर्वज्ञ नहीं है, हरएक मनुष्यके विचारोंमें भेद है और हर एक मनुष्य भूलका पात्र है इस नियमानुसार इस पुस्तकमें यदि किसी प्रकारका दोष मालूम हो तो उस ओर दृष्टि न देकर हंसरुप हो असारका त्याग कर सारका ग्रहण करनेकी ओर लक्ष देंगे। इस पुस्तकका आकार प्रथम विज्ञापनमें बतानेके उपरांत पीछेसे कई नवीन विषय बढाकर करीब २ डयौढा किया गया है । ऐसा करनेसे व्यय व परिश्रम अधिक हुआ है; फिर भी हमने प्रथमके ग्राहकोंसे अधिक मूल्य नहीं लिया है ।

इस पुस्तकको स्त्री, पुरुष एवं बालक ये सब कोई पढ सुनकर उपयोगी ज्ञान प्राप्त करे और अपना जीवन सुधारकर प्राचीन सुखकर स्थितिको प्राप्त करे ऐसी श्रीपरमात्माके पास मेरी प्रार्थना है।

संवत १९७१
माघ शुक्ल ५ वसंत पञ्चमी
ई. स. १९१५.

कर्ता.
पं. केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी.

प्रस्तावना।

(द्वितीय संस्करणकी.)

इस स्त्री उपयोगी पुस्तकको प्रकाशित कर जनसमुदायमें इसके प्रचारके लिये जो प्रयत्न शुरु किया है, इसमें ग्रन्थकर्ताने कहांतक सफलता प्राप्त की है इस बातको गुजराती भाषामें उसका नवमा संस्करण और हिन्दी भाषामें यह द्वितीय संस्करण बता रहा है। प्राचीन अर्वाचीन सतियोंके चरित व इस संसारमें उपयोगी हो ऐसे विषय पढकर उसकी शिक्षा लेनेपर प्रजाका कितना प्रेम है और उसका सत्कार करनेमें सदैव वह कैसी तत्पर है यह सब इसके इतने संस्करण द्वारा मालूम होगा; साथही इस पुस्तककी लोकप्रियता भी सिद्ध होगी।

इस उपयोगी पुस्तकके प्रकाशित होनेसे तथा चारों ओर इसके प्रचार होनेसे लोगोंमें ऐसी असर हुयी कि इस पुस्तकमें लिखा है तदनुसार स्त्रियोंको धर्मनीतिका उपदेश प्राप्त हो ऐसी उदाहरण रूप पवित्र सतियोंके चारित्र व गृहसंसारमें उपयोगी हो वैसे विषय सिखानेसे वे उत्तम गुणवाली होंगी। प्रजाकी इस इच्छाको देखकर बम्बई ईलाकेका शिक्षाविभागकी नयी सीरीझमें कई एक सतियोंके चरित्रोंको स्थान दिया गया है और कई एक विषय कन्यापाठशालाओंमें सिखानेका प्रारंभ किया है, यह भी इस पुस्तककी एक प्रकारसे विजय है।

इस पुस्तककी उत्तमता सिद्ध होनेसे यह अनेक कुटुम्बोंमें प्रेमसे पढी जातीं हैं। कई एक स्थानोंमें कन्यादानमें व कई एक स्थानोंमें कन्याओंको ससरालमें विदा करनेके समय वस्त्रालंकारके साथ उपहार रुपसे दी जाती है। वनिता-विश्राम, श्राविकाविद्यालय, सनातनधर्मकी कन्यापाठशालाओंमें व सनातनधर्म नीतिकी परिक्षामें टेक्स्टबुक रुपसे चलती है। यही नहीं; किन्तु बम्बई ईलाकेका शिक्षा विभागने ता. ६-११-१९०९ के हु. नं. ८३४७से स्कूलोंमें पारितोषिक एवं

ायब्रेरियोंके लिये स्वीकृतकर इसकी उत्तमता व उपयोगीताका स्वीकार किया है। न सब बातोंसे मालूम होता है कि ग्रन्थकार कई एक अंशोंमें प्रजाकी सेवा करनेके लिये भाग्यशाली हुआ है।

इस पुस्तकका भारतवर्षमें विशेष रुपसे प्रचार हो और हमारे देशवासी उसका लाभ प्राप्त कर सके इस लिये इसको प्रथम हिन्दीभाषामें प्रकाशित करनेका प्रवन्ध किया गया है। सम्वादपत्रोंमें इसका विज्ञापन प्रसिद्ध करनेसे उसकी मांग आ रही है। इसी प्रकार भारतकी अन्यान्य भाषाओंमें भी इसे प्रकाशित करनेका विचार है।

मूल्य बढानेका कारण यह है कि, गत यूरोपीय युद्धके पीछे कागज, छपाई, बंधाई, आदिके भाव दोगुने हो गये हैं जिससे नाइलाजसे हमने मूल्य बढानेकी जरुरत पडी है—यह आपको निवेदन करता हूं।

भारतवर्षकी स्त्रियोंके व पुत्रियोंके कोमलहृदयमें महान् सतियोंके पवित्र गुणोंकी असर दृढरुपसे हो और वे प्राचीन सुखकर स्थितिको प्राप्त हो ऐसी श्री-परमात्मासे हमारी प्रार्थना है।

संवत् १९८१ आषाढ शुक्ल २ द्वितीया ई. स. १९२५	कर्ता **पं. केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी.**

अनुवादकका निवेदन।

यह अत्यन्त प्रसन्नताकी बात है कि इस समय हमारे देशवासियोंका ध्यान स्त्रीशिक्षाके विषयमें भी विशेषरूपसे आकृष्ट हुआ है। "स्त्रियोंको किस लिये पढानी चाहिये? क्या स्त्रियोंको अदालत व कचेरियोंमें वकालात करनेको भेजनी है जो उन्हें पढायी जांय?" पचीस या पचास वर्षके पहिले प्रायः इसी प्रकारके प्रश्न उपस्थित होते थे। इस समय क्या सनातनधर्मी, क्या आर्यसमाजी, क्या प्रार्थना-समाजी, क्या देवसमाजी, क्या हिन्दु, क्या जैन, क्या मुसलमान, क्या ईसाइ ये सब कोई स्त्रियोंको शिक्षा देनेकी बातको स्वीकार करते हैं और साथ ही वे सब भिन्न२ प्रकारसे स्त्री शिक्षाके प्रचारके लिये तन, मन व धनसे उद्योग कर रहे हैं। हमारे अनेक प्रकारके सामाजिक बन्धनोंके कारण व अन्य असुविधाओंके कारण स्त्रियोंको पूर्ण सुशिक्षित बनाना असंभव नहीं तो भी कठिन तो अवश्य है। इस समय हम देखते हैं कि विशेषरूपसे स्त्रियोंको सामान्य पढ लिख सके इतनी ही

शिक्षा मिलती है; किन्तु इसके फलस्वरुप उत्तमज्ञानकी प्राप्ति उन्हें प्राप्त हो ऐसा कोई प्रवन्ध नही हैं। वर्णपरिचयके जितना पढा देनेसे स्त्रीशिक्षाके प्रचारकोंका उद्देश पूर्ण नहीं होता। उन्हें प्रारंभिक शिक्षा स्कूलोंमें प्राप्त होती है। तदनन्तर घरमें उन्हें उत्तम उपदेशकका कार्य करे वैसी पुस्तकें पढनेके लिये देनी चाहिये।

यह भी प्रसन्नताकी वात है कि इस प्रकारकी पुस्तकें तैयार करनेका कार्य भी कुछ सज्जन कर रहे हैं, वास्तविकमें ऐसे देशोपकारी कार्य करनेवाले सज्जन हमारे देशवासियोंके धन्यवादके पात्र है। इस पुस्तकके लेखक श्रीयुत केशवजी भाईने २० वर्षके पूर्व ही एक ऐसी उत्तम पुस्तक गुजराती भाषामें प्रसिद्ध की थी। जिस समय यह पुस्तक निकली थी उस समय गुजरातीभाषामें ऐसी पुस्तकोंका अभाव था। इस पुस्तकके प्रकाशित होनेके पश्चात् अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें भी क्रमशः इस प्रकारकी पुस्तकें निकली; किन्तु अनुकरणकर्ता सत्यनिष्ठा व कृतज्ञताके अभावके कारण अपने कार्यमें सफलता नहीं प्राप्त कर सके। यहां पर हमें इस विषयपर कुछ भी न कहकर केवल इतना ही निवेदन करना है कि इस प्रकारका जो उद्योग हुआ वह भी इस पुस्तककी उत्तमता व लोकप्रियता प्रकट करता है।

इस उपयोगी पुस्तकका हिन्दीभाषा जो कि भारतवर्षकी राष्ट्रभाषा है उसमें अनुवाद करनेका विचार इसके कर्ताने मैर पास छे वर्षपर प्रसिद्ध किया था व मैंने भी इस पुस्तककी उत्तमता व हिन्दीभाषामें ऐसी पुस्तकका अभाव देखकर अनुवाद करना स्वीकार किया था; किन्तु विविध प्रकारके विघ्नोंके कारण इस कार्यको पूर्ण नहीं कर सका था। आज परमात्माकी कृपासे इस पुस्तकका अनुवाद हिन्दीभाषा-भाषियोंकी सेवामें समर्पित करता हूं।

यदि हिन्दीको राष्ट्रभाषा वनानेके लिये उद्योग करनेवाले सज्जन इस पुस्तकका योग्य आदर करेंगे तो शीघ्र ही इस पुस्तकका दूसरा भाग तथा इसके कर्ताकी अन्य पुस्तकें हिन्दीमें अनुवादित होकर हिन्दीसाहित्यकी शोभाको वढावेंगी। अनुवादककी मातृभाषा गुजराती है व गुजरातीभाषामेंसे इसका अनुवाद किया गया है, इस कारण तथा अनुवादका व छपनेका कार्य एक साथ होनेके कारण दूसरीवार कापी पढनेका अवसर नहीं मिला, इन कारणोंसे इसमें कई एक त्रुटियां रह गयीं हैं। इन त्रुटियोंको आगामि संस्करणमें दूर करनेका उद्योग किया जायगा और कोई सज्जन इस विषयमें योग्य सूचना देंगे तो उनकी सूचना भी कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार कीजायगी।

अहमदावाद–गुजरात
माघ–वसंतपंचमी. १९७१
ता. २०–१–१५.

माधव शर्मा।

अनुक्रमणिका ।

प्रथम दर्शन ।

सती चरित्र ।

द्वितीय-दर्शन ।

स्त्रीपुरुषके धर्म ।

सती–गीता।

सतीमण्डल और स्त्रीपुरुषोंके धर्म ।
भा १—२.

इस पुस्तकको बम्बई ईलाकेका सरकारी शिक्षाविभागने व गायकवाड़ सरकारके शिक्षाविभागने पारितोषिक व लायब्रेरिओंके लिये स्वीकारकी है । गुजरात वर्नाक्युलर सोसाईटीने, जूनागढ तथा कच्छ राज्य इत्यादिने इसकी उत्तमताको स्वीकार कर उत्तम आश्रय दिया है । गुर्जर साक्षर मण्डलने उत्तम सो पुस्तकोंमें इसकी गणना की है और इसके भिन्न २ भाषामें अनुवाद करनेकी सूचना मिली है इनसे तथा निम्न दिये हुए सम्मति पत्रोंको पढनेसे इस ग्रन्थकी उत्तमता मालूम होगी ।

सम्मति पत्र

रावसाहेब गणपतराम अनुपराम काठियावाड ट्रेनिंग कोलेजके भूतपूर्व प्रिन्सीपलसाहेब और "जात महेनत" इत्यादि पुस्तकोंके रचयिता लिखते हैं कि:--

"आपकी पुस्तक मिली वह स्त्रियोंको अत्यन्त उपयोगी है । जिससे मैंने अपनी स्त्रीको दी । उसने पढकर इसके सम्बन्धमें बहुत ही सन्तोष प्रकट किया है । मैंने भी आपकी पुस्तक पढी है । आपके पुस्तकका उद्देश बहुत ही उच्च है । देशाभिमान व परमार्थबुद्धि युक्त है । आपने आर्य गृहसंसारको पवित्र तथा प्रेमी करनेका विषय हाथमें लिया है व उससे जनमण्डलके ऊपर आपने वास्तविकमें उपकार किया है ।

अपनी गुर्जरभाषामें अन्य भाषाओंकी अपेक्षा ग्रन्थ भंडार कम है और उसमें भी स्त्री उपयोगी ग्रन्थ तो बहुत ही कम है । ऐसे समयमें आपने इस ग्रन्थ प्रकट कर गुर्जरभाषाकी एक अच्छी सेवा की है और अपने स्त्रीवर्गके हाथमें एक अमूल्य रत्न दिया है । आपने अपने ग्रन्थमें आदिसे अन्ततक ऐसी सादी तथा सरल असरकारक भाषाशैली रक्खी है कि जिससे आपने जिनके लिये पुस्तक लिखी है वे अच्छी तरहसे लाभ ले सकेंगी इसमें सन्देह नहीं ।

आप अपनी पुस्तक अहमदाबादकी बुक कमेटिको अवश्य भेजिये । मुझे आशा है कि वह पारितोषिकके लिये स्वीकार होगी । यही नहीं; किन्तु कन्याशालाओंमें एक वांचनकी पुस्तक रुपसे वह स्वीकृत होगी ऐसी मुझे आशा है ।

प्रथमावृत्ति तुरन्त बीक गयी है यह जानकर मुझे सन्तोष हुआ है। इसमें कुछभी आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि यह पुस्तक तुरन्त बीक जाय ऐसे विषयोंसे पूर्ण है। द्वितियावृत्तिकी मैं फतेह चाहता हूं। पुस्तकके अन्तमें ग्राहकोंकी नामावली देखते उस ग्रन्थकी बीक्री व प्रचार जिस प्रकार होना चाहिये उसी प्रकार हुआ है। "चरित्र चन्द्रिका" के ग्राहकों में मेरा नांव लिख लीजिये।

रावबहादुर गोपालजी सुरभाई देशाई बम्बई युनिवरसिटीके फेलो तथा काठियावाड प्रान्तके माजी आ. एज्युकेशनल इन्सपेक्टर साहेब लिखते हैं कि:—
"सती मण्डल पुस्तक पढनेपर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ है। सतीमण्डल तथा स्त्री पुरुषके धर्म यह जो इस पुस्तकका नांव रक्खा है वह यथार्थ है। यह पुस्तक बालक, वृद्ध, स्त्री तथा पुरुष इन सबको पढने योग्य है। उसे पढनेसे उनके मनके ऊपर बहुत ही अच्छी असर होगी और वह अपने संसार व्यवहारके कार्यमें बहुत कुछ उपयोगी होगी इसमें कुछभी सन्देह नहीं हैं। गुजराती भाषामें ऐसी पुस्तकोंकी अत्यन्त आवश्यकता है। इस पुस्तकमें प्राचीन समयकी देवी सतियोंके साथर अर्वाचीन समयकी भी कई एक सतियोंके चरित्र दिये गये हैं: फिर उसमें स्त्री पुरुषके परस्परके धर्मोंका अच्छा वर्णन किया है। और अन्य व्यवहारमें उपयोगी हो वैसे उत्तम उपयोगी विषयोंका भी समावेश किया गया है। यह सब देखते हुए यह पुस्तक वास्तविकमें मूल्यवान बनी है। ग्रन्थकारने अच्छा परिश्रम किया है। ऐसी पुस्तकें हरएक कुटुम्बमें रहनी चाहिये। पुस्तकका आकार इत्यादि देखते इसका जो मूल्य रक्खा गया है वह अधिक नहीं है।

कवि दलपतराम डाह्याभाई सी. आई. ई. अहमदाबाद लिखते हैं कि:—सतीमण्डल व स्त्री पुरुषके धर्म इस पुस्तकको देखकर अत्यन्त आनन्द हुआ है। आपने इस कार्यमें अत्यन्त श्रम लिया हो ऐसा मालूम होता है। यह पुस्तक स्त्रियोंको अत्यन्त उपयोगी है। सद्गृहस्थोंको यह पुस्तक घरमें पढनेके लिये रखने योग्य है। सतियोंके चरित्र व सतियोंके धर्म इसमें अच्छी तरहसे लिखे गये हैं। इसलिये यह पुस्तक स्त्रियोंको पढने योग्य है। कन्याशालाओंमें पारितोषिक देने योग्य है। पुरुषोंको भी पढने योग्य तथा तदनुसार आचरण करने योग्य है। गुजराती भाषामें ऐसी पुस्तकका अभाव था जिसे आपने पूर्ण किया है।

काठियावाड टाइम्स:—सतीमण्डल तथा स्त्री पुरुषके धर्म—इसमें प्राचीन समयकी भारतभूमिकी सद्गुणी स्त्रियोंके जीवन चरित्र हैं और स्त्रियोंके लिये गृह-

ोपयोगी विषयोंका अपूर्व संग्रह है। अर्वाचीन कालके अनेक लेखक भिन्न २ विष-
पुस्तकें प्रकाशित करते हैं; किन्तु उनमें थोड़े ही लोकोपयोगी विषय मिलते हैं।
विषयोंकी पसंदगी करनेमें ही उनकी शक्तिका पूर्ण अनुमान हो जाता है। जब
ान समयमें स्त्रीशिक्षाका अच्छा प्रचार हुआ है; तब स्त्रियोंके हाथमें उनकी
तथा स्थितिको सुधार सके वैसी पुस्तकें धरने योग्य कम है। ऐसी पुस्तकोंमें
की यह पुस्तक प्रथम स्थान प्राप्त करेगी ऐसा स्वाभाविक रीतिसे अनुमान किया
सकता है। सद्गुणी स्त्री होनेके लिये आवश्यक समस्त तत्वोंका इस पुस्तकमें
स्तके द्वारा अच्छा समावेश किया है। विद्या, स्त्रीधर्म, नीति, आत्मज्ञान, पति व
्वके प्रति कर्तव्य कर्म इत्यादि प्राचीन समयकी सर्वोत्तम मानी हुयी सतियोंके
ूषण, अर्वाचीन समयकी सुशील बालाओंको और स्त्रियोंको वास्तविक रीतिसे
ेश देनेवाली होगी। ग्रन्थकारने हरएक जीवनचरित्र जहांतक हो सके संक्षे-
तथा उचित रीतिसे लिखे हैं। जिससे पाठकोंको अधिक आतुरतामें अधिक
यतक प्रतीक्षा देखनेकी आवश्यक्ता नहीं रहती। भाषा भी सरल तथा शुद्ध है।
पुस्तक हरएक कुटुम्बमें पढनेके लिये योग्य है ऐसी हम सम्मति देते हैं।

गुजरात मित्र-सुरतः—सती मण्डल और स्त्री पुरुषके धर्म इस नांवके ग्रन्थमें
ीन अर्वाचीन अनेक सती स्त्रियोंके पराक्रमोंका वर्णन किया है, जो अत्यन्त उप-
ी है। इस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने केवल हिन्दु सतियोंका ही नहीं; किन्तु उनके
थ २ मुसलमान व इसाई सतियोंका भी वर्णन कर इस ग्रन्थको समस्त जातियोंके
ये उपयोगी बनाया है। पीछेके भागमें स्त्री पुरुषके धर्म लिखे हुए हैं वे भी गृह-
ारके लिये अत्यन्त उपयोगी है। कवि सामळ भट्टकी बनायी हुयी बत्रीस पुत-
यां इत्यादि कल्पित मिथ्या बातोंके पढनेकी अपेक्षा ऐसे ग्रन्थ पढनेसे स्त्री पुरुषोंको
च्छा लाभ हो सके इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। यह ग्रन्थ हरएक जातिके स्त्री
्योंको पढनेके लिये हम शिफारस करते हैं।

हिन्दुस्थान पत्र-अहमदाबादः—सती मण्डल और स्त्री पुरुषके धर्म यह
्थ स्त्रियोंको शिक्षा लेने योग्य है। यह ग्रन्थ निर्भयतासे स्त्रियोंके हाथमें रखने
ग्य है, यही नहीं; किन्तु पढी लिखी हरएक स्त्रियोंको पढनेकी और नहीं पढी
यी स्त्रियोंको सुननेकी हम शिफारस करते हैं। ऐसी पुस्तककी गुजराती भाषामें अपूर्ण-
थी जिसे मी. केशवजीभाईने पूर्ण की है। यह ग्रन्थ अधिक उपयोगी हुआ है
ह जानकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुयी है। यह ग्रन्थ प्रकाशित होते ही बीक गया

है और दूसरी आवृत्तिकी तैयारी हो रही है यह उसकी उपयोगीताका अधिक व प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस ग्रन्थकी आकृति, सुशोभित जील्द, इत्यादिके विचार करनेपर उसका मूल्य अधिक नहीं हैं। समस्त जातिके स्त्री पुरुषोंको इस ग्रन्थसे लाभ उठाना चाहिये ऐसी हमारी खास सूचना है।

सौ. कृष्णागौरी, एच. रावल. हेडमिस्ट्रेस, लेडी रे कन्याशाला--"सद्गुणी हेमन्तकुमारी" ग्रन्थकी रचयिता. लुणावाड़ा—बहुत समयसे आपकी अति उत्तम पुस्तक सती मण्डलके सम्बन्धमें मैंने सुना था, वह पुस्तक इस समय मेरे हाथमें आयी है; जिससे मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ है। गुजराती भाषामें स्त्री जातिको उपयोगी हो ऐसी उत्तम पुस्तकें बहुत ही कम है। ऐसी दशामें आप महान् श्रम लेकर तथा द्रव्यका व्यय कर गुर्जर भामिनियोंके कल्याणके लिये "**सतीमण्डल**" इत्यादि पुस्तकें प्रकट कर देशकी जो सेवा कर रहे हैं जिससे आप धन्यवादार्ह हैं। आपकी भेजी हुई पुस्तकको मैं आरंभसे अन्त तक पढ गयी हूं, उसमें लिखे हुए सद्गुणी तथा सती स्त्रियोंके चरित्र मुझे अत्यन्त रसिक तथा सुबोधक मालूम हुए हैं। आपने इतने कार्यसे संतुष्ट न होकर स्त्री उपयोगी अनेक विषय पुस्तकके अन्तिम भागमें दिये हैं उससे पुस्तककी उपयोगीता और भी बढ गयी है। अपने देशकी बहुतसी स्त्रियां वस्त्रालंकारसे अपने शरीरको सुशोभित करनेकी आतुरता दिखलाती हैं; किन्तु वे "**सती मण्डल**" के समान नीतिका पुस्तकें पढकर अपने अन्तःकरणको सुधारनेके लिये उत्साह रक्खें तो कैसा अच्छा! आपकी यह पुस्तक शिक्षित कन्याओंको और स्त्रियोंको अवश्य पढने योग्य है। वैसेही हरएक कन्यापाठशालाओंकी लायब्रेरियोंमें रखने योग्य तथा पारितोषिकमें देने योग्य है। आशा है कि "बुक कमिटी" इस पुस्तकको स्वीकृत कर कन्याओंको उपदेशप्रद वांचन प्राप्त हो वैसा करेगी। यह पुस्तक स्त्रियोंको अत्यन्त उपयोगी है। मैं इसका अधिक प्रचार हुआ देखना चाहती हूं।

सौ० दिवाली नाथालाल. झणोर—महाशय! स्त्रीशिक्षाके उत्तेजनके लिये अपनी अनुभवि लेखिनीसे लिखे हुए धर्मनीति पूर्ण सतीमण्डल रुप निर्मल जलसे स्त्रीधर्मरुप सूखती हुयी कनकलताको सिंचन कर प्रफुल्लित की है वह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता उत्पन्न होती है। इस ग्रन्थकी एक प्रति इस अल्पज्ञ भागिनीको भी भेज देना।

—इसके सिवाय अनेक उत्तम सम्मतियां प्राप्त हुयी हैं जिन्हें स्थानाभावसे प्रकाशित नहीं कर सकते।

सतीमंडल.

प्रथम-भाग।

प्रथम—दर्शन

दैवीसतीयां

सती सीता।

हार प्रान्तके उत्तर विभागको तीरहुत कहते हैं; वह पूर्वके समयमें मिथिला नामसे प्रसिद्ध था, उसका विस्तार नेपालकी उत्तर सीमा पर्यन्त है। वह प्रदेश अत्यन्त फलद्रुप व रमणीय है। उसमें जनकपुर नामका जो ग्राम इस समय प्रसिद्ध है वही पूर्व समयमें राजनगर था। उस नगरका राजा जनक अत्यन्त धार्मिक, ईश्वरपरायण व दानशील था। उसको कुछ भी सन्तती नहीं थी। किसी एक समय उस राजाने पद्माक्ष नामक विद्वान् ब्राह्मणको कुछ भूमि दानमें दी थी, उस भूमिमें कृषि करते २ उसमेंसे एक पेटी निकली, उसे देखकर उक्त ब्राह्मणने विचार किया कि मुझे राजाने केवल भूमि दानमें दी है, उसमेंसे निकली हुई पेटीपर मेरा कुछ भी अधिकार नही हैं, वह

पेटी राजाको अर्पण करनी चाहिये, ऐसाही विचार कर राजाकी सभामें जाकर उसे अर्पण किया। राजाने सभाके समक्ष ही उक्त पेटीको खोला तो उसमेंसे एक मनोहर कन्या निकली। उसको देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और ब्राह्मणको बहुतसा सुवर्ण देकर विदा किया; पुरोहित शतानन्दने उस कन्याका नाम सीता रखा।

राजा जनकने सीताजी अपनी पटराणी अनसूयाको सोंपा। कन्या दिनप्रतिदिन बढती गई। जब वह सात वर्षकी हुई तब जमदग्नि ऋषिके पुत्र परशुरामजी-कि जिन्होंने इक्कीसवार पृथ्वीको निःक्षत्री बनाया था वे अपने कार्यसे निवृत्त होकर मिथिलापुरिमें आये। ऋषिको आते देख राजाने आसनपरसे उठकर ऋषिका स्वागत कर उन्हें सिंहासन पर बिठाये और विधिपूर्वक पूजन किया। भोजनका समय होनेपर परशुरामजी अपनी परसी, भाथा व बृहद् धनुषको चौकमें धरकर भोजन करने गये; इतनेमें कन्या सीताने खेल ही खेलमें आकर धनुषको उठा लिया और उससे खेलने लगी। परशुराम व जनकराजा भोजन करके बाहर आये उन्हें धनुष्यसे खेलती हुई सीताको देखकर आश्चर्य हुआ। भगवान् परशुरामजीने राजासे कहा कि हे राजन्! यह कोई अद्भुत कन्या है। यह धनुष महादेवजीका दिया हुआ है वह अत्यन्त भारी होनेसे किसीसे उठाया नहीं जा सक्ता, उसे इस कन्याने सहजमें उठा लिया अतएव उसके लिये पति भी वैसाही बलवान् देखना चाहिये। तुम्ह प्रतिज्ञा करो कि इस धनुष्यको चढा सके ऐसा पुरुष स्वयंवरमेंसे मिल जाय उसे इस कन्याका दान करुंगा। इस प्रकार कहकर वे बद्रिकाश्रममें तपश्चर्या करनेको चले गये।

अहा! महात्मा परशुरामके ऐसे वाक्य देशको कितने लाभकारी है? वर्तमान समयके बहुतसे मातापिता अपने बालक बालिकाओंके विवाह करनेके समय जोड़ीकजोड़ीका कुछ भी विचार नहीं करते, विवाह करनेकी अपने ऊपरकी बेगारको किसी प्रकार काट देते हैं और उनकी सम्पूर्ण जिन्दगीको आफतमें डाल बैठते है। उन मातापिताओंको महात्मा परशुरामजीका उपदेश ध्यानमें रखने योग्य है। राजा जनकने परशुरामजीके उपदेशानुसार जब सीता विवाह करने योग्य वयकी हुई, तब देश दशान्तरोंके राजाओंको निमंत्रण पत्र भेजकर स्वयंवरकी सम्पूर्ण तैयारी की।

अयोध्या नगरीके राजा दशरथजीको रामचन्द्रजी नामक ज्येष्ठ पुत्र था वह अत्यन्त तेजस्वी, विद्याकलामें कुशल व शूरवीर था। मारीच व सुबाहु नामक राक्षस ऋषियोंके यज्ञमें विघ्न किया करते थे उनको मार कर यज्ञके रक्षणके लिये विश्वामित्रजी रामचन्द्रजीको ले आये थे। साथमें लक्ष्मणजी भी थे। उस समय उनकी वय १२ वर्षकी थी। ऐसी छोटी वयमें उन्होंने उन दुष्ट विकराल राक्षसोंका संहार कर यज्ञकी उत्तम प्रकारसे रक्षा की थी। उसी समय जनकपुरमें होनेवाले स्वयंवरमें देशदेशान्तरोंके राजा व ऋषि प्रभृति सब कोई जा रहेथे। उसमें विश्वामित्रजी भी अपने शिष्यमंडल व रामलक्ष्मणको संग लेकर गये। ऋषिने नगरके बाहर एक सुन्दर सरोवरयुक्त बगीचेमें अपना मुकाम किया। ऋषिके साथी शिष्य व राजकुमार सरोवरके कीनारेपर वगीचेमें इधर उधर भ्रमण कर रहे थे उतनेमें सीताजी अपनी सखी व दासीयोंको साथमें लेकर भगवति भवानीकी पूजाके लिये वहांसे निकली, उसने राजकुमारोंको देखा। उनकी सुन्दर कान्ति देखकर मोहित हो विचार करने लगी कि मैरे पिताने जो प्रतिज्ञा की है उसे पूर्ण करनेंका सामर्थ्य इनमें हो तो कैसा अच्छा! परमात्मन्! पति दें तो ऐसा ही देना।

राजा जनकको विश्वामित्रजीके आनेके समाचार मिले, वे तुरन्त ही अपने पुरोहित शतानंद व वशिष्ठजी प्रभृतिको साथमें लेकर मिलने गये। विवेक युक्त वचन एवं पूजनसे सत्कारकर कुशल सम्वाद पुछा। पासमें खडे हुए सुन्दर सुकुमार राजकुमारोंको देखकर जनकजीने पुछा कि मुनिराज! ये दो कुमार कौन है? विश्वामित्रने उत्तर दिया कि जिन्होंने सिद्धाश्रममें राक्षसोंका संहार कर हमारा यज्ञ निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण कराया व शैल्याकी अहिल्या बनाकर उसे गौतमको प्राप्त कराया वही अयोध्याधिपति राजा दशरथके पुत्र रामलक्ष्मण है। ये महाधनुषको देखनेंकी अभिलाषासे यहां पर आये हैं। इस बातको सूनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ व रामलक्ष्मणसे मिला; समस्त मण्डलीको गांवमें निवासस्थान दिया। दूसरे दिन रत्नजडीत, सुशोभित मंडपमें एक ओर हिर मानिक जडे हुए सुवर्णके सिंहासनो पर बडे २ राजा लोग बिराजमान है, दूसरी ओर समस्त ऋषिमण्डल श्वेतवस्त्र व भस्मको धारण कर वेदके पुस्तकोंको साथमें लेकर बिराजमान है; मध्यमें महाप्रचण्ड धनुष्य पडा हुआ है; इस प्रकार सम्पूर्ण

सभामंडप भरा हुआ है। उसमें निर्धारित समयपर राजा जनकका भाट उठकर बोला कि हे राजेन्द्रगण! हमारे राजा जनकजीने प्रतिज्ञा की है कि "इस धनुष्यको जो राजा चढावेगा उसीको मैं अपनी कन्याका दान करूंगा. इस लिये हे शूरवीर व पराक्रमी नृपतिगण! आपमेंसे कोई एक व्यक्ति उठकर इस धनुष्यको चढाकर स्वरूपवती कुमारिकाको प्राप्त करो!" भाटके इन वचनोंको सूनकर वहुतसे राजाओंके गात्र ही शिथिल हो गये, किसीने कहा कि मैं तो जनकजी के समीपका सम्बन्धी हूं इसलिये यहां आया हूं, किसीने कहा के मैं तो इस स्वयम्वरको देखनेके लिये आया हूं; इस प्रकार भिन्न २ प्रकारके वहाने बतलाने लगे। उस समय रावण बोला कि हे जनक! आपने कौनसी प्रतिज्ञा की है? जनकजीने कहा कि जो राजा इस धनुष्यको चढावेगा उसीको मैं अपनी कन्या दूंगा ऐसी मैंने प्रतिज्ञा की हैं। यदि किसीसे यह कार्य नहीं हुआ तो मैं अपनी कन्याको आयुष्यभर कुमारिका रखुंगा। इस वचनको सूनकर रावण बोला कि उसमें क्या? लो यह मैंने चढाया, ऐसा कहकर जैसा एक हाथसे धनुष्य व एक हाथसे पणछ खीचनेंको जाता है वैसाही एकदम चक्कर खाकर पृथ्वीपर गीर गया व उसके ऊपर धनुष्य पडा। ऐसा देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हुए और राजा जनक शोकाकुल हुए। उस समय विश्वामित्रजीके पास बैठे हुए रामचन्द्रजी ऋषिकी आज्ञा लेकर उठे। उन्हों ने उठतेही धनुष्यको थोडे श्रमसे ऐसा खींचा कि सहजमें टूकडे २ हो गये। यह देखकर सभामें बैठे हुए मनुष्योंने जय २ ध्वनि की; राजा जनक भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ। सीता भी मनवाञ्छित पतिको पाकर सन्तुष्ट हुई, समस्त सभाजनों के सामने ही सीताजीने जो पुष्पकी माला-वरमाला तैयार की थी उस श्रीरामचन्द्रजीके कण्ठमें अर्पण की। जनकपुरके हरएक घरोंमें आनन्दमङ्गल होने लगा, यह बधामणी अथवा शुभ सम्वाद दशरथजी को पहुंचानेके लिये दूतगण अयोध्याजी पहुँचे। इस आनन्ददायक माङ्गलीक समाचारको सूनकर समस्त अयोध्यावासी प्रसन्न हुए और सर्वत्र आनन्द मनाने लगे।

राजा दशरथजी अयोध्याजीसे बरात लेकर जनकपुरमें आये, बरातके आगमनको जानकर राजा जनकजी स्वागत करने सन्मुख आये और बरातमें आये हुए समस्त सज्जनोंका जनकजीने प्रीतिपूर्वक सत्कार किया। भगवान्

रामचन्द्रकी विवाह विधि वशिष्टजीने विश्वामित्र व शतानन्दजीको अग्रेसर करके शुरु कराई। मण्डपमें विधिवत् वेदी बनाकर उसमें मन्त्र द्वारा अग्निका स्थापन किया, अग्निदेवके समक्ष राम व सीताजी विविध शृंगारोंसे विभूषित कर बिठाये गये। उस समय राजा जनकजीने रामचन्द्रजीसे कहा कि "यह मेरी पुत्री सीता आपकी धर्मपत्नि हुई है इसलिये हे भगवन् उसका आप पाणिग्रहण करें। वह पतिव्रता सौभाग्यवती आपकी छायाके नीचे रहकर आपकी आज्ञानुसार चलेगी" ऐसा कहकर सीताजीका हाथ रामचन्द्रजी के हस्तके साथ मिलाया उस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई, देवोने दुन्दभी बजाये, ऋषि मुनियोंने आशिर्वाद दिये, चारों ओर गीतवाद्यका ध्वनि होने लगा, अप्सरायें नृत्य करने लगी और गान्धर्व मधुररागसे गाने लगे। कुछदिन तक बरात वहांपर ठहरकर फिर अयोध्याजीमें आई, माता कौशल्या, सुमित्रा, और कैकेयी प्रभृतिको वर-वधुने प्रणाम किया, पश्चात् देवपूजन कर अन्यान्य वृद्धजनोंको नमन किया।

सब कोई आनन्दमङ्गलमें दिन व्यतीत करने लगे, उतनेमें रङ्गमें भङ्ग हुआ। बीचारी सीताको दुःखके दिन आये। किसी एक समय सब अयोध्या वासियोंने मिलकर राजा दशरथजीसे प्रार्थना की कि आप रामचन्द्रजीको युवराज पद प्रदान करें जिससे राजकार्यमें आपकी वे सहायता करें और राज्य सम्बन्धी अनुभव आपके पाससे प्राप्त कर सके साथ ही पीछेसे राज्यासनके सम्बन्धमें किसीकी तकरार न रहे। प्रजाकी इस प्रार्थनाको सूनकर राजाने रामको राज्याभिषेक करनेका निश्चय किया, दूसरे दिन अभिषेकका मुहूर्त था इस प्रसङ्गको देखकर राजाकी प्रिय स्त्री कैकेयीने अपनो दासी मन्थराकी सम्मति और उपदेशसे राजाने पूर्वमें दिये हुए वचनको पालन करनेकी इस समय याञ्चा की कि "मेरे पुत्र भरतको राज्य दीजिये और रामको चौदह वर्ष वनमें निकाल दीजिये" रानीके इस कर्णकटु वाक्यको सूनते ही राजा संतप्त हो गया और रानी कैकेयीको बहुत समझाया; किन्तु उसने एक भी नहीं माना; तब राजाने स्वीकार किया। इससे रामकी माता कौशल्या राणीको बहुत बुरा मालूम हुआ, भ्राता लक्ष्मणको अत्यन्त क्रोध चढा और कैकेयीके कथनानुसार नहीं करनेको कहा, सम्पूर्ण नगरमें हाहाकार हो गया, वनमें नहीं जानेके लिये रामचन्द्रजीको सब किसीने समझाया; किन्तु उनको मन नेकभी चलायमान नहीं हुआ; उन्होंने

अपने पिताके वचनको पालन करनेका निश्चय किया था उसका परिवर्तन नहीं किया। राम अपनी प्रियपत्नि सीताके पास विदा लेनेके लिये अन्तपुरमें गये। अहा! यह यथार्थ है कि संसारमें पुरुषोंके सुख दुःखका आधार केवल स्त्रियोंके आधीन है। यदि किसी कुजात स्त्रीके साथ सम्बन्ध हुआ तो पुरुष अत्यन्त चतुर व राजाके समान वैभवशाली हो फिरभी वह हैरान हो जाता है तो फिर कोई गरीब ऐसी स्थितिमें आ पडे तो उसके दुःखका कहना ही क्या? वह अबला उसके दुःखको कारण हो जाती है। और उससे अन्तमें सम्पूर्ण संसार बीगड़ जाता है और वह संसार दुःखमय मालूम होने लगता है; किन्तु वही स्त्री जो सुन्दर, सरल स्वभावकी व सद्गुणी हो तो वह अपने पतिके दुःखमें भाग लेकर पतिके दुःखको कम कर सक्ती है। स्त्रीकी सौजन्यतासे उसके श्रम व औदासीन्य नष्ट हो जाते है। उसका सुस्वभाव पतिके समस्त सन्तापोंको दूर कर आनन्द प्रदान करता है। उसके स्मितललीत मुखदर्शनसे अन्य समस्त चिन्ताओंको दूर कर वह समझने लगता है कि मुझे सुखी बनानेके लिये ही परमात्माने उसे उत्पन्न की है। तब सीताके समान उत्तम स्त्रीसे विदा मांगनेके समय रामचन्द्रजीको ह्रदय कितना कठिन करना पडा होगा, उसे पाठक स्वयं विचार ले।

रामचन्द्रजीने उदासिन मुखसे अन्त:पुरमें आकर समस्त वृत्तान्त सीताजीको समझाकर कहा कि "हे प्रिये! तैरी ओरसे मुझे रजा मिलनी चाहिये" इस वाक्यको सूनते ही सीता अचेत होकर गिर गई, कुछ समयके पश्चात् वह शुद्धिमें आई तब कहने लगी कि "हे स्वामिन्! क्या आप मुझे छोडकर जानेको कहते हैं? रामने कहा "सीते! तुम्हें साथ नहीं ले जाता इस लिये यादि तुम्हारी इच्छा यहांपर रहनेकी हो तो यहां रहो और पियरमें जानेकी इच्छा हो तो वहां जाकर रहना। मुझे वस्तीमें नहीं, किन्तु जङ्गलमें रहना है, साथमें गाडी घोडे नहीं है, दास दासियां नहीं रख सक्ते, उससे कन्दमूल और फलफूल खाकर या उपवास कर दिन व्यतीत करने पडेंगे। जङ्गलमें रहनेको घर नहीं है; किन्तु झोंपडेमें रहना होगा, शयनके लिये शय्या या खटिया नहीं है; किन्तु तृणकी शय्या या भूमि पर पडे रहना होगा, तुम सुकुमारी राजकन्या हो इस लिये तुमसे ये सब कैसे सहे जायेंगे? फिर चैत्र वैशाखकी गरमी, आषाढमें

वृष्टि, बिजलीके चमकार, गर्जनाके गड़गड़ाट बड़े २ पर्वत, गुफायें, जङ्गलकी भयङ्कर झाडियां, उसमें सिंह व्याघ्रादि जङ्गली जानवरोंके भयङ्कर शब्द सूनकर वीर पुरुष भी डर जांय, वहां तुम्हारे जैसी कोमल स्त्रियोंका कलेजा क्या ? फिर वहांपर घातकी राक्षसोंका अत्यन्त भय है इस लिये मैरी सम्मति है कि विवाहके पश्चात् तुम अपने पियरमें नहीं गई हो इसलिये वहां जाओ! उससे मुझे, तुम्हें और तुम्हारे मातापिताओंको सुख होगा, अवधि पूर्ण होनेपर मैं आकर तुम्हें बुला लुंगा। यह सूनकर सीता दीर्घ निःश्वास डालकर बोली हे प्राणेश्वर! आप अलग होनेकी बात कहते हैं वह मुझसे सहन नहीं होती, आप ज्ञाता हैं इस-लिये अधिक क्या कहूं ? ऐसा कहकर साश्रुमुखसे सीताजीने कहा कि प्राणेश्वर! मुझे जङ्गलके दुःख मालूम है; किन्तु आपके साथ रहनेसे वे दुःख दूर होंगे यह मैं जानती हूं। जङ्गलके भयङ्कर जन्तु आपको देखते ही चल देंगे। मुझे साथ रखनेसे आपको कष्ट होता हो तो मैरा अन्त लाकर प्रसन्नतासे पधारें, जिससे मैं सब दुःखोंसे मुक्त हूंगी; क्योंकि पतिके विना एकाकी रहनेवाली स्त्रीपर अनेक आपत्तियें और आलें आती है। इसलिये आपको इस दासीकी यही प्रार्थना है कि मुझे साथ रखनेपर जो आपकी दशा वही मेरी भी ? मुझे आपकी सेवा मिली तो मुझे सब मिला, मुझे आपके सिवाय और कुछ भी नही चाहिये। आप जहां रहेंगे उस झुपडेको महल, जङ्गलको बगीचा और शाक भाजीको उत्तम पकवान समझुंगी। आपके प्रसादी कन्दमूल भी मुझे अमृत समान स्वादिष्ट मालूम होंगे। कदापि वे पदार्थ भी नहीं मिलेंगे तोभी आपके मधुर शब्दोंके श्रवणमात्रसे मुझे तृप्ति होगी। जानवरोंके चमड़े व वृक्षकी छालके वस्त्रोंको पहिननेके लिये मुझे शोक नहीं है; क्योंकि **सतीपार्वती जैसी देवियोंने अपने पति शिवके खातिर वैसे वस्त्र धारण किये थे।** आपके विना मेरा जीवन व्यर्थ है। यदि आप मैरे पास है तो मुझे इन्द्रका भी भय नहीं है। आपके विना यहांके महल, बगीचे, पवन व वस्ती भयंकर स्मशान जैसी मालूम होगी। आपकी उपस्थितिमें जो २ पदार्थ आनन्दकर हो रहे है वेही आपकी अनुपस्थितिमें दुःखकर मालूम होंगे। प्रियप्राणेश्वर! स्त्रीका सबसे प्रधानदेव स्वामी ही है। शास्त्रमें कहा कि-जो स्त्री अपने पतिके साथ छायाके समान रहकर उनकी सेवा करेगी वह दूसरी दुनियां मेंभी उसके साथ रहेगी।

इस लिये हे प्राणाधार ! आप मुझको साथ ले जाकर अपने सुखदुःखोंकी हिस्सेदार बनाइयें ! आपके विना राजमहलके वैभव भोगनेसे आपके साथ भयंकर कहलाते जङ्गलोमें भी मुझे अच्छा मालूम होगा। अतएव कृपाकर मुझे अपने साथ ले जाय या मैरी जीन्दगीका अन्त हो जानेके पश्चात् पधारें; यदि आप यों ही मुझे छोड़कर चले जायगे तो फिर मिलनेकी आशा नहीं हैं।

अहा ! पतिपत्निमें कैसा प्रेम ! अपने सुखोंसे पतिके सुखकी अधिक चिन्ता व अनुराग तथा भक्तिके वचन सूनकर रामचन्द्रजीने सीताजीको साथ आनेकी आज्ञा दी। महलके बाहर निकले, वहांपर लक्ष्मणजी प्रतीक्षा कर रहेथे उन्होंने पांवमें पड़कर प्रार्थना की के मैं भी आपके साथ चलूंगा। रामचन्द्रजीने प्रथम तो मना किया; किन्तु अधिक आग्रह देख कर साथमें ले जाना स्वीकार किया। उसके पश्चात् रामलक्ष्मण व सीता तीनों ही तैयार होकर दशरथजीकी आज्ञा लेने गये। उनके पास गुरु वशिष्ठजी भी बैठे थे। उन दोनोंको तीनोंने मस्तक नमाया, तदनन्तर रामचन्द्रजीने दशरथजीसे आज्ञा मांगी, उतनेमें कैकेयीने उन तीनोंके हाथमें वल्कल (वृक्षकी छालके वस्त्र) दिये। उसे देखकर सीताको विचार हुआ कि इसको कैसे पहरनां? ऐसे विचार करते२ अश्रुओंसे नेत्र भर गये। यह देखकर राजा दशरथ व गुरु वशिष्ठजी को बहुत ही बूरा मालूम हुआ ! राजा दशरथजीने क्रोध करके कहा कि हे कुभारजे ! यह क्या जुल्म कर रही है? कदापि तैरे पापके कारण रामने मैरी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये वनवास स्वीकार किया है; किन्तु लक्ष्मण व सीताने तैरा क्या अपराध किया है? उन्हें क्यों वल्कल वस्त्र दे रही है? वे तो अपनी इच्छासे जङ्गलमें जा रहे हैं; उन्हें क्यों वल्कल दे सकती है? उसके पश्चात् वशिष्ठ ऋषिने कैकेयीको धिःकार देकर कहा कि हे पापिनि ! तैरे राज्यमें तेरा भरत भी नहीं रहेगा। इस राज्यको फिर तुंही भोगकर सुखी होना इत्यादि अनेक कठिन वाक्य कहे।

राम सीता व लक्ष्मण इन तीनोंने अयोध्याको छोड़कर दक्षिण दिशाकी ओर प्रयाण किया। मार्गमें बहती हुई निर्मल नदियां, सुन्दर सरोवर, हरित तृणोंसे सुशोभित पर्वत, विविध पक्षियोंके मनोहर कल्लोलसे ध्वनित वन प्रभृतिको देखते व उल्लंघन करते हुए चित्रकूट पर्वतपर आ पहुंचे; वहांपर राक्षसोंके अधिक-

स्वोंको देखकर उन्होंने पञ्चवटीमें आकर निवास किया। इस आश्रममें किसी
य रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणको उपदेश देते थे, किसी समय संसारो-
गी बातें करते थे, किसी समय दियरके वाक्चातुर्यसे, किसी समय सङ्गीतसे,
ी समय व्याघ्र व बकरीकी क्रिडासे, उस प्रकार विविध रीतिसे सीताजी आनन्द
क दिन व्यतीत कर रही हैं! ईश्वरकी इच्छा अलौकिक है उसकी इच्छाको कोई
नहीं जान सक्ता। वह क्षणमें राजाको रङ्क व रङ्कको राजा बना सक्ता हैं। जहां
वहां स्थल और स्थल वहां जल बना देता है, जहां ग्राम हो वहां अरण्य और
ां अरण्य हो वहां महान् नगर बना देता है, अत्यन्त पुनित स्त्री पुरुषोंको पीडा
अत्यन्त पातकी स्त्री पुरुषोंको विविध प्रकारके वैभव दे दिया करता है; ऐसी ही
की अकलकला है। एक दिन राम लक्ष्मण व सीताजी व्याघ्र व बकरीकी क्रिड़ाको
नन्दपूर्वक देख रहे थे उतनेमें दो मुख व सुवर्णके रंगवाले आश्चर्यकारी मृगको
ाजीने देखा, उस मृगकी सुवर्णरंगी खालको देखकर सीताजीको मोह हुआ जिससे
होंने रामचन्द्रजीसे प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! हमलोग जब अयोध्याजी जांयगे
वनकी नवीन वस्तुओंमें इस मृगकी खाल ले जांयगे, इस लिये उसे ला दीजिये।
सुनकर रामचन्द्रजीने कहा कि वह सत्य मृग नहीं होगा, मुझे उसके विषयमें
रह है; क्योंकि इस वनकी आसपासमें अनेक राक्षस रहते हैं संभव है कि उन्हींका
कपट हो! इस लिये इस बातको तुम छोड दो। इस प्रकार रामचन्द्रजीने सम-
या; किन्तु सीताने एक भी नहीं माना अन्तमें सीताजीके अधिक आग्रहको देखकर
चन्द्रजी हाथमें धनुष बाण लेकर मृगके पीछे गये। रामने एक बाण मारा उतनेमें
कपटरुप मृगने उच्च स्वरसे शब्द किया कि लक्ष्मण!! यह उनका शब्द ल-
ण व सीताजीके सुननेमें आया जिससे सिताजीने कहा कि लक्ष्मण! आप अपने
ताकी सहायताके लिये पधारें। लक्ष्मणजीने कहा कि आप कुछ भी चिन्ता न करें,
ज्येष्ट भ्राता राम कभी भी संकटमें नहीं होंगे व अभी मृगचर्मको लेकर पधारेंगे।
आपको इस जङ्गलमें एकाकी छोडकर कैसे जा सक्त हूं? इस प्रकार लक्ष्मणजीने
नेक बातें कही; किन्तु सीताजीने उसे स्वीकार नहीं किया; अन्तमें उनके अधिक आग्रह
क्रोधको देखकर लक्ष्मणजी हाथमें धनुष धारणकर रामकी शोधके लिये गये।

यह सब प्रपञ्च रावणका ही था उसने पूर्वसे इस प्रपञ्च की रचना की थी वह
नी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये अवसर देखकर ब्रह्मचारीका भेष धारणकर सीता-
के आश्रममें भिक्षांदेहि! बोलकर पर्णकुटीके द्वारपर आकर खड़ा रहा। जैसे

सीताजी भिक्षा देने आई वैसेही उनको उठा विमानमें बीठाकर लंकाकी ओर चल निकला। सीताजी इस अकस्मात् आई हुई आपत्तिको देखकर गभरा गई। सीताजीकी उस समयकी शोकाकुल दशाका वर्णन करनेंकी शक्ति हमारी लेखिनी में नहीं है। शोक सन्तप्त महाराणी सीताको एक विचार सुझा और उसने अपने आभूषणोंको क्रमशः मार्गमें फेंक देने शरु किये! आभूषणोंको इस प्रकार फेंकनेंका यही कारण था कि राम लक्ष्मणको मैरी इस ओर जानेंकी सूचना मिलेगी। पम्पासरोवरके समीपमें आये हुए ऋषिमुक पर्वत पर बैठे हुए वानरोंको एक आभूषण हाथ लगा जिसको उन्होंने यत्नपूर्वक रख लिया, रावणने सीताजीको लंकामें लाकर अपने मन्दिरके एकान्त भागमें रखकर दासियोंको आज्ञा दी कि सीताको जिन २ वस्तुओंकी आवश्यक्ता हो वह उन्हें दिजियेगा मैरे विना अन्य किसीको उसके पास जाने मत दो; जिससे वह मुझे अवश्य स्वीकार करैगी। दो दिनके पश्चात् रावणने आकर सीताजीको समझाना शरु किया। रावणने कहा कि यदि तुम मैरी इच्छाको पूर्ण कर तो मैं तुझे अपनी पटरानी बनाऊं और इस लंकापुरीकी तुंही मालिकन कहावेगी। ये वैभव, ये सुख और मैरे पराक्रमको तुं अच्छी तरहसे जानती है इन सबके सामने तेरी वह जङ्गलकी पर्णकुटी कहां? अतः तुं मुझे स्वीकार कर इस प्रकार सीताजीको रावणने बहुत कुछ प्रलोभन दिया; किन्तु सीताने एक भी शव्द नहीं सुना। सीताने अपने अचल मौनव्रतका परित्याग नहीं किया। अन्तमें उसने कायर होकर अपनी दासियोंको हूक्म दिया कि इसको अपनी अशोक वाटिकामें ले जाकर रक्खो व जिस प्रकार वह मैरे आधीन हो उस प्रकारकी चेष्टा करो उसके पास और कोई भी आने न पावे इस बात पर अधिक दृष्टि रखना।

राम लक्ष्मण मृगचर्म लेकर आश्रममें आये वहां पर सीताको न देखकर व अत्यन्त व्याकुल हुए और उसी समय सीताजीकी शोधके लिये निकले। मार्गमें सीताजीके जो आभुषण पड़े हुए थे उन्हें देखकर निश्चय हुआ कि रावणने ही सीताजीका हरण किया है। सीताजीकी शोध करनेंका भार भक्त हनुमानजीने अपने ऊपर लिया। उन्होंने लंकामें आकर शोध की तो अशोकवनमें अशोकवृक्षके नीचे राक्षसियोंके मध्यमें रामनामका स्मरण करती हुई सीताजीको देखा। रामचन्द्रजीने अपना चिन्ह दिखानेंके लिये अपने नांववाली मुद्रिका हनुमानजीको दी थी। हनुमानजी उस मुद्रिकाको हाथमें रख अब वृक्षके ऊपर बैठकर उनकी चेष्टा देखने लगे। उतनेंमें वहांपर रावण अपनी अनेक दासियोंको लेकर आया। सीताजी उसको देखकर कांपने लगी। रावणने मधुर वचनोंसे सीताजीको कहा कि हे सुन्दरि! अब तुं क्यों

:ख भोग रही है, किस लिये रुदन कर रही है। मुझसे तुं भय मतकर, अब यहां
र तेरा कोई भी आनेवाला नहीं है इसलिये उस जोगीके मिलापकी आशा छोड़कर
रे साथ हास्यके साथ बात कर, ऊपर नेत्र उठाकर देख, ये अमूल्य वस्त्रालंकार
ारण कर और मेरे साथ बैठ और इस मद्यका पानकरके आनन्द कर, तुम जो कुछ
हेगी मैं उसको तन मन धनसे पूर्ण करनेंको तत्पर रहुंगा। रावणके इन वचनोंको
ुनकर सीताजीने क्रोधाविष्ट होकर कहा कि हे लंकेश ! तुं अपनी कीर्तिको परस्त्रीपर
ष्टिकर मलिन मत करे, मैं तुझको यही प्रार्थना करती हूं कि दयाकरके मुझको अपने
वामीके पास पहूँचा दे; जिससे मैं तेरा परम उपकार मानुंगी और इस बातको तुं
अच्छी तरहसे ध्यानमें रख ले कि मैं मरणपर्यन्त अपने सतीत्वका परित्याग नहीं
करुंगी। तुं जो मुझको विविध प्रकारके वैभवोंकी आशा देता है वह सब व्यर्थ है।
ीताके इन वाक्योंको सुनकर रावण अत्यन्त क्रोधित हुआ और अपनी दासियोंको
ुक्म दिया कि यदि यह दो मासमें समझ जाय तो ठीक है नहीं तो उसका शिर
ाटकर उसका मांस मेरे भोजनके लिये लाना। इस भय दिखानेंकी सीताजी पर
ुछ भी असर नहीं हुई; किन्तु यह विचार हुआ कि प्रतिदिन इस प्रकार क्लेश हो
ससे तो मरजाना ही अच्छा है, ऐसा विचार कर वनमेंसे काष्ट एकत्र किये और
लकर मर जानेंका विचार किया; किन्तु पासमें अग्नि नहीं रहनेंसे इधर ऊधर दे-
खकर भगवान्‌की स्तुति करने लगी कि हे दीनदयाल ! भक्तवत्सल ! मेरे पर यह क्या
ुल्म हो रहा है ? मैंने मातापिता किम्वा सासश्वसुर और अतिथि अभ्यागतको कुछ
ी कष्ट नहीं दिया, केवल मेरा यही अपराध है कि अपने स्वामीकी इच्छा नहीं
ोनेपर भी मैंने मृगको मार कर मृगचर्म लानेंका दुराग्रह किया था बस मेरा यही
एकमात्र अपराध है ! जिस कारण मैंने बहुत दुःख भोगे। इस प्रकार दुःख भोगनेके बदले
इस नाशवन्त शरीरका त्यागकर आपका शरणमें रहना उत्तम है। अब मुझसे
प्रतिदिन ये कष्ट सहन नहीं हो सक्ते इसलिये हे कृपानिधे ! आप मुझपर कृपा करके
मेरी सहायता करें चाहे मुझपर यकायक विद्युत् गीरा किम्वा दुष्टबुद्धि रावणको ऐसी
बुद्धि प्रदान कर कि वह मुझे मार डाले। मैं समझती हूं कि आत्महत्या करना महापाप
है; किन्तु इसके सिवाय मेरे उद्धारका कोई उपाय नहीं दिखाई देता, इस शरीरको
जलानेके लिये ये काष्ट एकत्र किये हैं; किन्तु पासमें अग्नि नहीं है जो अपनी आशाको
पूर्ण करूं आप कृपाकर मुझको अग्नि दें; जिससे मैं जलकर शान्ति प्राप्त करुं। इस
प्रकार स्तुति पूर्ण हुई उतनेमें ऊपरसे एक मुद्रिका पड़ी। उसके पड़नेसे सीताजी
अधीर हो उसे अग्नि समझकर लैने दोडी, उसको हाथमें लेकर देखा तो उसमें

"श्रीराम" ऐसे शब्द देखनेमें आये, उसको देखकर विचार करने लगी कि यहां पर प्यारे प्रियपतिकी मुद्रिका कहांसे? क्या उन्हका दुष्टोंने नाश किया? किम्वा रामने मुझपरसे स्नेह कम कर दिया? इस प्रकार शोक करते २ अर्धरात्रि व्यतीत हो गई। पहरेदार भरनिद्रामें सोये हूए है और केवल सीताजी जाग रही हैं यह जानकर हनुमानजीने श्रीरामचरित्र गाना शरु किया, उससे सीताको अधिक आश्चर्य हुआ। वह विचार करने लगी कि ये समस्त राक्षसोंकी माया है। अब मुझको अपना यह शरीर छोड़कर इस कपटी दुनियासे पृथक् होजाना चाहिये। शरीर त्याग करनेके लिये अन्य कुछ भी साधन नहीं पाकर अपने मस्तकके केशोंको गलेमें फांसकर सीताजी मरनेकी तैयारी कर रही हैं उतनेमें हनुमानजी वृक्षपरसे नीचे उतरकर सीताजीके सामने हाथ जोड़कर खडे हुए और प्रणाम करके कहा कि हे माता! श्रीराम व लक्ष्मण दोनो भाई क्षेमकुशल है, वे किष्किन्धामें है, मुझको आपकी शोधके लिये भेजा है! मैं वहांपर जाकर सब सम्वाद कहुंगा। वे एक महान् सैन्य ले यहांपर आकर रावणका सहकुटुम्ब नाशकर आपको अयोध्याजी ले जायंगे, आप कुछ भी चिन्ता न करें। ऐसे हनुमानजीके वाक्योंको सुनकर सीताजीको धैर्य प्राप्त हुआ। व रामके सब समाचार पुछे। हनुमानजी सीताजीकी आज्ञा लेकर जानेको तैयार हुए तब उन्होंने अपने मस्तकमें रहा हुआ मणिका चाक निकालकर दिया और कहा कि यह मेरा चिन्ह श्रीरामचन्द्रजीको देना उसे देखकर उन्हें निश्चय होगा कि आपकी मुझसे भेट हुई है।

तदनन्तर हनुमानजी सीताजीको प्रणाम कर रामचन्द्रजी के पास गये। इधर सीताजीके पास रावणने आकर समझाना व सन्ताप देना शरु किया। बहुत आशायें व भय दिखलाये, किन्तु उससे देवी सीताजी स्वल्प भी चलायमान नहीं हुई। अन्तमें रामलक्ष्मणके जैसे कृत्रिम मस्तक बनाकर उसके सामने धरे और कहा कि देख इन तेरे प्यारोंका मैंने संहार किया अभी भी तुं मेरी आज्ञा नहीं स्वीकार करेगी तो तेरी भी यही दशा होगी। इस दिखावसे सीताजीने अत्यन्त रुदन व क्रन्दन किये; किन्तु रावणके जानेके पश्चात् विभीषणकी स्त्री सर्माने आकर उसके कपटकी बात खोल दी जिससे उसके जीमें शान्ति हुई। फिर सीताजीको समझानेके लिये रावणने दासियां भेजकर कहलाया कि तुं राम व रावणमें भेद मत समझे; क्योंकि जो ईश्वर रामके शरीरमें व्यापक है वही ईश्वर रावणमें भी व्यापक है अतएव व्यर्थ ममत्वको छोड़कर रावणका स्वीकार कर। उसके उत्तरमें सीताजीने कहा कि हे दुष्टे! तुं इस पापी रावणको मेरे प्राणप्रिय रामचन्द्रजीके समान समझती है? यद्यपि सुवर्ण वस्तु एकही हैं; किन्तु उसके जो भिन्न २ अलङ्कार बनते हैं उनमेंसे जो अलंकार जहांपर

ारण करने योग्य होता है वहीं पहिना जाता है उससे यदि विपरित पहिना जाय तो
ागोंमे निन्दा व हांसी होती है। राम यह सत्य वस्तु है उनकी बराबरी संसारमें
ाईभी नहीं कर सक्ते इसलिये रावणसे कहना कि तुं अपनी मिथ्या भ्रान्ति व दुष्ट
ाशाको छोड़कर मुझे श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दमें पहुंचा दे। सीताजीके इन वाक्यों
ो सुनकर दासियोंने निराश हो रावणके पास जाकर कहा कि उसके सामने हमारी
द्धि कुछ भी काम नहीं करती हम उन्हें किसी प्रकार नहीं समझा शक्ती।

अब हनुमानजीने रामचन्द्रजीके पास आकर सब समाचार कहे, जिन्हें सुनकर
मचन्द्रजीने अपना सैन्य लङ्काके समीपमें रखा, तब रावणकी स्त्री मन्दोदरी जो कि
ामपतिव्रता व चतुर थी उसने अपने पतिके दुष्ट कृत्यसे परिचित हो उनसे समझाकर
हने लगी कि "स्वामिन्! रामचन्द्रजी अत्यन्त बलवान् व साक्षात् ईश्वरके अवतार
और आपने जो कार्य किया है वह नीतिशास्त्रसे विरुद्ध है इससे आपके कुटुम्बका
ाश होगा। यदि आप अपना व हम सब लोगोंका कल्याण चाहते हैं तो रामचन्द्रजी
ा उनकी स्त्री सीता वापस दीजिये और पांवमें पड़कर क्षमा मांगिये जिससे वे दयालु
हात्मा आपके समस्त अपराधोंको क्षमा करेंगे और आपको वे अभय दान देंगे। इस
ये कृपाकर मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार करें। उससे सबका श्रेय होगा" मन्दो-
रीके इन वाक्योंका रावणपर कुछ भी प्रभाव नहीं पडा। उसने सामने रामको
िराश करनेके निमित्त सीताजीका कृत्रिम मस्तक बनाकर रामके पास भेजा। जब
ह सम्वाद सीताजीको मिला तब उसने रामचन्द्रको कहलाया कि प्राणेश! यह
ुष्ट रावण अपने बलसे मेरा स्पर्श तक नहीं कर सक्ता; किन्तु जब अन्तिम समय
ावेगा तब मैं अपने प्राणपर्यन्त त्याग करनेमं कुछ भी विचार नहीं करुंगी; किन्तु
ाप उसके अपराधका दंड देनेमें कुछ भी पीछा न करेंगे। सीताजीके इस भेजे हुए
म्वादको सुनकर रामको अत्यन्त आनन्द हुआ। रामने अधिक उत्साहित होकर
वणके साथ घोर संग्राम कर उसका नाश किया। उस समय विभीषणने सीताजी
ा रामचन्द्रके समीपमें पहुंचाया और रामचन्द्रजीने विभीषणको लंकाका राज्यासन
िया। तदनन्तर रामचन्द्रजीने सीताजीको लेकर अयोध्याकी ओर प्रयाण किया।
ार्गमें रामचन्द्रजीको सीताजीने अपने सतीत्वका विश्वास दिलाया, जिसे देख रामच-
द्रजी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। समस्त मंडली अयोध्यामें आई जिससे समस्त प्रजा प्रसन्न
ई और घर २ आनन्द उत्सव होने लगे। कुछ समयके पश्चात् सीताजी सगर्भा हुई
ासे सम्पूर्ण नगरमें विशेष आनन्दमङ्गल होने लगा, उतनेमें एक धोबीने अपनी स्त्रीको
सी कारणसे कहा कि ऐसा तो रामही है जो दूसरेके घरमें रही हुई सीताको अपने

घरमें फिर रहने दे, मैं उनके समान नहीं हुं जो तुझको घरमें रहने दूं। ये वचन रामचन्द्रजीके कानपर आनेसे और उस दुष्ट कैकेयी व कुछ दासियोंने मिलकर एकदिन सीताजीको लङ्काकी बातें पुछते २ प्रश्न किया कि रावणका स्वरुप कैसा था? आप चित्रविद्यामें कुशल है इसलिये चित्र निकाल कर हमें दिखलाईये, तब निष्कपटी सीताने कहा कि "मैंने अपने नेत्रसे रावणके सम्पूर्ण शरीरको नहीं देखा; क्योंकि मैंने उसके मुखके सामने कभी भी नहीं देखा; किन्तु उसके पांवका अंगुठा देखा है उसपरसे उसका चित्र आपको बतला सक्ती हूं ऐसा कहकर उसका चित्र एक कागज पर लिखकर दिखा दिया।

इस चित्रको कैकेयी अपने हाथमें लेकर दूसरे दिवानखानेंमे जहांपर सब कोई बैठे थे वहां जाकर कहने लगी कि "देखो! सीताकी रावणपर कैसी प्रीति है! उसके विना मुख देखे, वहुको चैन नहीं पडता इसलिये उसका मुख देखनेके लिये उसने यह चित्र निकाल रखा है।" इस बातको सुनकर रामचन्द्रजीको वहुत बुरा मालूम हुआ, वे समझते थे कि सीता सर्वथा पवित्र है; किन्तु लोकापवादके भयसे सीताको वनमें पहुंचा देनेंकी लक्ष्मणजीको आज्ञा दी। इस आज्ञाको सुनकर लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्नने बहुत प्रार्थना की और स्पष्ट कहा कि यह कार्य अनुचित है; किन्तु रामने कहा कि मैरा यह विश्वास है कि सीता निर्दोष है; किन्तु लोकनिन्दाके भयसे मुझको ऐसा करनाही चाहिये। पश्चात् ज्येष्ट भ्राताकी आज्ञानुसार लक्ष्मणजीने सीताजीको रथमें बीठाकर चित्रकुट पर्वत पर जहां वाल्मिक ऋषिका आश्रम था उससे कुछ दूरमें सीताजीको रख दिया। इस प्रकार अपने पतिकी ओरसे दुःख आपडने परभी सीताजीने लक्ष्मणजीके साथ रामको कहला भेजा कि "हे प्राणेश्वर! मैं आपकी दासी हूं जैसे आप अन्य लोगोंका रक्षण कर रहे हैं वैसेही इस जङ्गलमें मैरी भी रक्षा आप ही करेंगे। आप ही मैरा सर्वस्व है, मैं आपकी निन्दाके बदले संसारमें स्तुति हो यही सुनकर प्रसन्न होना चाहती हूं।" इत्यादि। अहा! साध्वी सीता! धन्य है आपके प्रेमको! संसारमें आपके समान धैर्यको कौन रख सक्ता है?

इस भयंकर जङ्गलमें सीता सगर्भावस्थामें सख्त धूपमें एकाकी बैठ कर रुदन कर रही हैं उतनेमें वाल्मिक ऋषिके शिष्य दर्भ लेनेंके लिये आये। उनकी द्रष्टि सीताजीके ऊपर पडी, उन्होंने समीपमें जाकर धैर्य दिया और आश्वासन दे शान्तकर वे लोग अपने आश्रममें चले आये। आश्रममें आकर ऋषिको सब समाचार कहे जिन्हें सुनकर ऋषि सीताजीके पास गये और आदरपूर्वक अपने आश्रममें लाकर अपनी पत्निके सुप्रद की। कुछ दिनके पश्चात उन्हें दो पुत्र हुए, ऋषिने उनमेंसे

। नांव लव व दूसरेका नांव कुश रखा । जब वे पांच वर्षके हूए तब उन्हें विद्या
शरु कराया, आठवें वर्ष यज्ञोपवित संस्कार कराया, और तत्पश्चात् अनेक शास्त्र,
। अस्त्रका अभ्यास कराया । सीताजी भी अपने पुत्रोंको योग्य उपदेश दिया
थी । ज्यों २ कुमारोंकी उम्मर बढती गई त्यों २ उनके पराक्रम व बुद्धि बढने
ऋषि भी इन कुमारोंके उपर अत्यन्त अनुराग रखेत थे ।
रामचन्द्रजी महाज्ञानी, एकपत्निवृत्तवाले व तत्ववेत्ता थे, उन्हें केवल लोकाप-
भयसे सीताजीको वनमें भेजनेंकी आवश्यक्ता हुई थी; किन्तु उनको सीताजीके
अत्यन्त अनुराग था वह किसी प्रकार न्यून नहीं हुआ । जो मनुष्य यकायक
से कोई साहसी कार्य कर बैठता है वह कुछ समयके पश्चात् शान्त होता है;
सके मनमें आता है और उस समय अपने विशेष विचार किये विना ही किये
ार्यके लिये पश्चाताप करता है। ठीक उसी प्रकार रामचन्द्रजीको भी सदैव अशान्ति
रती थी जिसको दूर करनेके लिये वशिष्ठ प्रभृति ऋषियोंकी सम्मतिसे रामने
य यज्ञका आरंभ किया । नियमानुसार यज्ञके अश्वको छोड़कर उसके पीछे
करनेके लिये कुछ सैन्य समेत शत्रुघ्नजीको भेजा । वह अश्व भ्रमण करते २
ि ऋषिके आश्रमके समीप आया; लवकुशकी उसके ऊपर द्रष्टि पड़तेही
उस अश्वको बांध लिया । इस समय लवकुशकी वय १५ वर्षकी थी; किन्तु
खुराक, शुद्ध हवा, क्षात्रबिज, एवं ऋषि तथा सीताजीके समान साध्वी माताके
से बडे महारथी हो चूके थे । शत्रुघ्नने अश्वको छोड देनेंके लिये बहुत कुछ
किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया, अन्तमें युद्धकर शत्रुघ्नको पराजीत
यल किये । ये सम्वाद राम लक्ष्मणको मिले वे तुरन्त ही एक महान् सैन्य लेकर
आपहुंचे और दोनों ओरके युद्धकी सम्पूर्ण तैयारी हो गई । किन्तु लवकुशके
देखकर रामचन्द्रजीको पुत्रप्रेमका आविर्भाव हुआ, शोध करनेसे रामको
हुआ कि ये मेरे ही पुत्र है । जब लवकुशने ये बात अपनी माताको कही तब
ने समझ लिया कि ये तो मेरे प्रियपति है । ये सब बातें ऋषिको भी मालूम
षि जाकर रामचन्द्रजीको अपने आश्रममें ले आये । ऋषिने सीताका सब
कहकर उन्हें अयोध्याजी ले जानेंकी प्रार्थना कि, जिन्हें सुनकर रामचन्द्रजी
र्वक अपनी अयोध्या नगरीमें ले आये। रामचन्द्रजी अपनी प्रियपत्नि व बाल-
हित अयोध्याजीमें पधारे जिन्हें जानकर अयोध्या वासियोंको अत्यन्त आ-
आ और सब कोई आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे। धन्य है पतिपत्निके
र्वे प्रेमको ! अहा ! सीताजीका आदर्श पतिप्रेम कैसा है कि जिन्होंने अने

कंवार कष्ट व विपत्तियोंके ऊपरान्त वार २ पतिवियोगोंको सहकरभी अपने पातिव्रत्यकी अचल भावसे रक्षा की, रामचन्द्रजीने विना अपराध त्याग करनेपर भी उन्होंने मनसेभी रामचन्द्रजीके प्रति अभाव नहीं होने दिया ! सति सीते ! धन्य है आपके आदर्श पतिप्रेमको और जिस देशमें ऐसे युगल हो गये हैं उस देशको भी धन्य है ! प्रभो ! इस भारतभूमिपर ऐसे पवित्र अन्तःकरणवाले अनेक युगल पुनः उत्पन्न कर यही प्रार्थना है।

लक्ष्मीजी।

देवी साक्षात् शक्ति स्वरूप थी। उसका जन्म भृगु ऋषिके वहां हुआ था। यह सती बाल्यावस्थासे ही चतुर कार्यदक्ष व बुद्धिमती थी। जैसे वर्तमान समयमें बहुतसे मातापिता अपनी पुत्रिमें उत्तम बुद्धि व सुलक्षण प्रभृति होने पर भी उन्हें शिक्षा देकर सद्गुणी बनानेमें बेदरकार रहते हैं वैसे प्राचीन कालमें नहीं था। प्राचीनकालमें मातापिता अपने बालकोंको धर्मनीति युक्त शिक्षा देकर उत्तम लक्षणवाले बनानेंके लिये यत्न किया करते थे। वैसे नीतिके नियमानुसार ऋषिने लक्ष्मीजीको अनेक धर्मशास्त्रोंका अध्ययन कराकर सद्गुणी बनाया था। जैसे यह सती ज्ञानमें अलौकिक थी वैसेही वह सद्गुणी, स्वरूपसे सुन्दर, तेजस्वी एवं मनोहर थी। इस देवीमें अलौकिक शक्ति व सद्गुणों को देखकर ऋषि मुनि उन्हें साक्षात् देवीका अवतार समझ सत्कार करते थे। भृगु ऋषिक वहां पर ऐसा पुत्रिरत्न उत्पन्न होनेके कारण उन्हके आनन्दकी सीमा नहीं रही। उन्हके आश्रममें लक्ष्मीजीके जन्मके पश्चात् सर्वत्र अलौकिक दृश्य द्रष्टि पर आता था। आश्रममें ऋषि मुनि व पशु पक्षी प्रभृति सब कोई आनन्दमग्न दिखाई देता था। वनकी शोभा भी अधिकाधिक होने लगी। इस सब रचनासे आसपासके योगी व मुनि गण आश्रममें प्रसन्न चित्तसे ध्यान, धारणा एवं योगसाधना करनेंके लिये आने लगे। एक समय इस आश्रमका मनोहर प्रभाव सुनकर महामुनि नारदजी भृगु ऋषि के आश्रममें आये। ऋषिनें मुनिका विविध प्रकारसे आतिथ्य सत्कार किया। इस समय लक्ष्मीजी अपनी सखियों के साथ आश्रम में क्रिडा कर रही थी, उन पर ऋषि की द्रष्टि पड़ी। मुनि लक्ष्मीजीके तेज व लक्षणोंको देखकर प्रसन्न हुए। उन्हों ने विचार किया कि यह पुत्री साक्षात् ईश्वरी स्वरूपा है और उसका विवाह श्रीविष्णु भगवान्के साथ होना उचित है। ऐसा विचार करके नारदजीने अपने मनकी बात भृगु ऋषिको निवेदन कर कहा कि ऋषे ! यह तुम्हारी पुत्रि साक्षात् शक्ति स्व-

ा है यह उसके रुप, तेज व लक्षणसे सिद्ध होता है । इस लिये उसका विवाह
वेष्णुभगवानके साथ होना चाहिये । ऋषिने नारदजीके इस प्रस्तावको स्वीकार
या, तब नारदजी वहांसे चलकर भगवान्के पास पधारे वहां जाकर कहा कि आप
अर्धांगना होने योग्य एक कन्या भृगु ऋषिके वहां उत्पन्न हुई है अत एव शास्त्र
धिके अनुसार उसके साथ विवाह कर उसको अपनी अर्धांगना बनावें ।

श्रीविष्णु भगवान्की सत्ता बहुत थी जैसे उनके हाथमें जगत्का राज्य बल
वैसे ही उनमें प्राणीमात्रके पालन करनेंकी शक्ति भी अधिक थी और समय
ुकता भी कम नहीं थी । प्राचीन समयमें अपने लिये योग्य पत्निकी शोधकर
के साथ विवाह करना ऐसा ही नियम था । उस समय यह नियम नहींथा कि
सी भी नांव मात्रके श्रेष्ट कुलमेंसे कैसी भी स्त्रीको लाकर घरमें बिठा देना ।
। समय तो 'स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि'' अर्थात् दुष्कुलमेंसे भी स्त्रीरत्न लेना ऐसा और
ु महाराजके धर्मशास्त्रके अनुसार एक पत्निव्रतका सर्वोत्तम धर्म मान्य था । उस
तेके अनुसार श्रीविष्णुभगवान्ने भी अपनी स्त्री शोधनेंकी तजवीज नारद मुनिके
ा कराई थी । नारदमुनिने तजवीज करके श्रीविष्णु भगवानके लिये सब प्रकारसे
ाय लक्ष्मीजीको भृगु ऋषिके वहां देखा । नारदजीने श्रीविष्णुके समीप जाकर
्मीजीके विषयमें बात की; जिन्हें सुनकर श्रीविष्णु भगवान् समुद्रके किनारे
आये हुए भृगु ऋषिके आश्रममें पधारे । वहां जाकर लक्ष्मीजीको देखा तो वह
। प्रकारसे अपने योग्य है यह निश्चयकर उसके साथ विवाह करना निश्चित किया ।
षि भी अपनी कन्याका विवाह भगवान्के साथ होगा यह जानकर अत्यन्त प्रसन्न
ए, श्रीविष्णु भगवान् अपने साथ ब्रह्मा महेष प्रभृति देवोंको लेकर भृगुऋषिके
ां विवाह करने गये । ऋषिने शास्त्रविधिके अनुसार कन्यादान दिया । यह जोडी
। प्रकारसे योग्य है ऐसा कहकर सभी देवमंडली आनन्दित हुई । श्रीलक्ष्मीजी व
ष्णुने एक दूसरेके गुणादिसे परिचित हो एक दूसरेमें आसक्त होकर विवाह किया
; जिससें उन दोनोंमें प्रेमकी सुद्रढ ग्रन्थी बंध गई थी—वे एकरुप हो गये थे ।

लक्ष्मीजी विवाहके पश्चात् अपने स्वामीकी सेवामें सदैव रहने लगे । व पतिको
णसे भी अधिक प्रिय हो रहेथे और उन्हको भी अपने पति प्राणोंसे अधिक प्रिय
। श्रीविष्णु भगवान्ने परिश्रम करके लक्ष्मीजीको विशेष ज्ञान देकर आत्मज्ञान
ृतिमें कुशलता प्राप्त कराई थी उससे उनकी बहुत शक्ति बढी हुई थी। श्रीलक्ष्मीजी
विष्णु भगवान्की द्वितीय प्रतिमा थी; क्योंकि उनमें नीति, सत्य, न्याय, ज्ञान,
नवि, समयसूचकता, आत्मबल एवं सम्वाद-प्रश्नोत्तर करनेंके गुण इत्यादि उन्हीके

समान थे। श्रीविष्णु भगवान्ने भी अपनी स्त्रीके साथ कैसा वर्तन रखना, कैसे सहवाससे रहना और वह किस प्रकार उत्तम ज्ञान प्राप्त कर सके, व भिन्नभाव रहित रहे इन विषयोंकी अधिक यत्नपूर्वक रक्षा की थी; जिससे उन्होंने स्त्रियोंके धर्म व नीतिरीतिमें अत्यन्त योग्यता प्राप्त की थी। वे सङ्गीतमें अत्यन्त कुशल थे यह ज्ञान उन्होंने अपने स्वामीसे प्राप्त किया था। यह सती गृह कार्यमेंसे निवृत्त होकर स्त्री-समाजोंमें जाकर सती स्त्रीयोंके चरित्रोंका उपदेश देती थी, उनके धर्मोंका ज्ञान उनके हृदयमें स्थिर करनेकी चेष्टा किया करती थी और उनकी शङ्काओंका समाधान करके सबको सन्तुष्ट करती थी। उसी प्रकार अपने पतिके साथ महात्माओंकी सभामें जाकर शास्त्रचर्चामें सम्मिलित होती थी इस प्रकार वह विद्या, कला, सङ्गीत, धर्मनीति प्रभृतिमें कुशल थी।

श्रीविष्णु भगवान्का लक्ष्मीजीके ऊपर पूर्ण प्रेम था, जिससे कभी भी उनके वचनको भंग नहीं किया करते थे; वह दम्पती किसी एक समय सब देवोंके साथ विमानमें बैठकर जा रहेथे उतनेमे वहां मार्गमें एक रमणीय मनोहर वन लक्ष्मीजीके देखनेमें आया। इस वनकी रमणीयताको देखकर सतीजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने स्वामीसे प्रार्थना की कि प्राणेश्वर! यह वन मनको शान्त करनेवाले है इसलिये कुछ समय पर्यन्त यहांपर विश्राम किया जाय। सतीके कथनसे श्रीविष्णुने साथके देवों समेत वहां विश्राम लिया। इस वनकी भव्यता व सुन्दरताको देखकर लक्ष्मीजीको यहांपर रहकर नगरी बनानेकी इच्छा हुई; जिससे विश्वकर्माके पास भव्य रचनायुक्त नगरी निमार्ण कराई और आसपासके तीर्थक्षेत्रोंसे गौतमऋषि जैसे महान् विद्वान् तपवीर व पवित्र ब्राह्मणोंको बुलाकर वह नगरी अर्पण की। उन ब्राह्मणोंकी आजिविकाके लिये बनिये, सोनी इत्यादी व्यवसाय करनेवाली जातियोंको उत्पन्न कर उनके साथ सब प्रबन्ध कर दिया। उस नगरीका नांव लक्ष्मीजीके नांव परसे "**श्रीमाल-नगर**" पडा; और उसमें रहनेवाले श्रीमाली ब्राह्मण, श्रीमाली बनिये तथा श्रीमाली सोनी कहलाये। इस सब प्रजा पर लक्ष्मीजीकी अत्यन्त कृपा थी। इस समय यह प्रजा कालक्रमसे भिन्न२ देशोंमें फैल रही है; किन्तु उन सबका मूलस्थान वही नगरी है और उनकी इष्टदेवी "श्रीमहालक्ष्मी" है। इस समय भी वे लोग देवी लक्ष्मीजीको मानते व पूजते हैं। वह नगरी इस समय "भिन्नमाल" नांवसे प्रसिद्ध है और मारवाडमें जोधपुरके पास है।

सती लक्ष्मीजी प्रजाके सुखके लिये कार्य किया करती थी और स्वामीको सत्परामर्ष व सहायता दिया करती। स्वामीके पास सत्कार्य कराती थी; दीन व दुःखी

ायोकी सहायता करने करानेमें तत्पर रहती थी; उनमें रुप, गुण एवं दया बहुत थी ासे आज भी दृष्टान्तके लिये कहा जाता है कि "यह स्त्री तो लक्ष्मीजीके समान है" ाश कि उसके समान गुण है। उत्तम गुणोंके कारण आज भी लोग लक्ष्मीजीको ात् देवी समझकर पूजते हैं, आदर करते हैं व स्मरण करते हैं। घरकी समस्त द्धिका मूल जो धन हैं उसे लोग लक्ष्मीरुप मानेत हैं। जिनके घरमें धन अधिक है को लोग श्रीमान् लक्ष्मीवान् कहते हैं अर्थात् वह लक्ष्मीजीका कृपापात्र है ऐसा जाता है। लक्ष्मीजीकी कृपाको सब कोइ चाहते है; किन्तु आर्यलोगोंकी तो पूज्यदेवी है। दिवाळीके बैठते नवीन वर्षमें खूब धूमधाम व आनन्दोत्सव करके ीदेवीका पूजन किया जाता है; उस **आदि महालक्ष्मी** देवीका बडा ही माहात्म्य यह सब कुछ उन्होंने अपने आत्मबलसे प्राप्त किया था। देवि! आपके आत्मबल-मशक्तिको धन्य है। आपका महान् प्रताप आर्यदेशमें सर्वत्र व्यापक हो रहा है!!

सती पार्वतीजी।

यह देवी महासती दक्षप्रजापति जनकराजाकी पुत्री थी। वह साक्षात् शक्ति स्वरुपिणी थी। जनकराजाने उसको बाल्यावस्थामें वेद, न्याय, विज्ञान, योगाभ्यास, नृत्य, गायन प्रभृतिकी शिक्षा दी थी। ऐसी शिक्षाके प्रभावसे वह आगे चलकर अत्यन्त उत्तम बुद्धिवाली हो। उसने बहुत दिन पर्यन्त तपश्चर्या की थी। उसका विवाह श्रीसदाशिवके हुआ था। यह देवी गुणज्ञानादिसे साक्षात् महादेवकी प्रतिमा स्वरुपिणी थी, दोनोंमें परस्पर इतना प्रेम था कि वे एक दूसरेकी आज्ञाका उलंघन नहीं किया े थे। इतनाही नहीं, किन्तु वह प्रेमग्रन्थी इतनी दृढ हो गइ थी कि अपने प्रिय-शिवजीको जो अनुकूल वही सतीको भी अनुकूल व शिवजीको प्रतिकूल वही ा प्रतिकूल था। उस सतीने पतिकी अनुकूलताके लिये अपने प्रियेप्राणीका भी ह नहीं की ऐसा उसका प्रेम सुदृढ था। जब दक्षप्रजापतिने महान् यज्ञ किया उसने समस्त देवोंको निमंत्रण दिया; किन्तु द्वेषके कारण शिवजीको निमंत्रण दिया एवं यज्ञमण्डपमें भी उनकी स्थापना नहीं की। इस प्रकार शिव-प्रति आपने पिता दक्षका द्वेष देखकर सतीको बहुत ही बुरा मालूम हुआ। ं अपमानको नहीं सहन होनेके कारण सतीने अपने पितासे स्पष्ट कहा कि;—

अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः ।
जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥

अर्थात्—तुम शिवजीसें द्वेष करता है इस लिये तै रेसे उत्पन्न होनेवाला यह कलेवर मैरे कुछ कामका नहीं है मैं उसका त्याग करती हूं । खराब अन्न भूलसें खानेमं आ गया हो तो उसको कय करके निकाल देना ऐसी धर्मशास्त्रकी सम्मति है ।

ऐसा कहकर योगाग्निकेद्वारा अपने शरीरका नाशकर अपने परमोत्तम पतिव्रत धर्मके गौरवको दिखला दिया था । उसने बाल्यावस्थामें तत्त्वज्ञान, पुराणादि धर्मशास्त्र, स्त्रीधर्मनीति, गृहकार्य, एवं सदाचारकी शिक्षा प्राप्त की थी; जब वह योग्य वयकी हुई तब कन्याओंको शिक्षा व बडी उम्मरकी स्त्रियोंको सदुपदेश देनेंके लिये तत्पर रहतीथी । वह जब विवाहके योग्य हुई तब उसने शिवजीके साथ विवाह करनेंके लिये १२ वर्ष पर्यन्त तपश्चर्या की थी । अन्तमें तपका फल नहीं मिलनेपर चिता तैयार करवाकर उसमें अपने कोमल शरीरको आहुति देनेंके लिये तैयार हुई उतनेमं शिवजीने वहांपर आकर दर्शन दिये जिससे उसके चित्तको शान्ति हुई । शिवजीके आनेंके पश्चात् **पार्वतीजी** शास्त्रविधिके अनुसार विवाह कर पतिके साथ कैलासमें रहने लगी । इस प्रकार सतीने अपने सतीत्वके बलसे मनोवाञ्छित पतिके साथ रहकर अपने परमोत्तम प्रेमका परिचय दिया है ।

महादेवजीका भी सतीके प्रति कम प्रेम नहीं था। जब उन्हें सतीके शरीर त्यागके सम्वाद मिले तब उन्होंने अपने अनुचरवर्ग समेत वहांपर जाकर दक्षप्रजापतिका मस्तक काट दिया । सतीके शरीर त्याग करनेंसे शिवजीको इतना क्रोध चढा कि चारों ओर त्राहि ! त्राहि ! होने लगा । जब सब देवोंने मिलकर उनकी स्तुति की तब क्रोधाग्नि शान्त हुआ । सतीके शरीरत्यागसे उसको अत्यन्त शोक हुआ । उनके शरीरके अस्थियोंको ले तीर्थोंमें भ्रमण करते हिमालयके शिखरपर आकर बारह वर्षतक कठिन तपश्चर्या की ! इसीका नांव सत्य प्रेम है । ऐसे प्रेमी दम्पतीयोंको धन्य है कि जो सुखदुःखोंमें परस्पर एक दूसरोंका साथ देते हैं ।

शिवजी गाने बजानेमें और नृत्यमें कुशल थे । उन्होंने अपनी प्राणप्रिया पार्वतीजीको भी उस कलाकी शिक्षा दी थी जिससे दोनो प्रसंगोपात एक दूसरोंके मनरञ्जन करते थे । सती पार्वती पतिसेवा स्तुति, जप, तप, दया, दान, और अध्यात्मज्ञान प्रभृतिके प्रभावसे जगज्जननी "महादेवी" के पदको प्राप्तकर त्रैलोकीमं प्रसिद्धिको प्राप्त हो देवीरुपसे पूजित हुए । यह देवा प्रजाकी पीड़ाओंको दूर करनेंके लिये अनेकवार अपने पतिके पास प्रार्थना किया करती थीं । अपने स्वामीके

दुष्टोंके दंड व सज्जनोंको सुख दिलवानेंकी चेष्टा करके अपनी दयालुता व
परायणताका दिग्दर्शन कराते थे। और अपने पतिको प्रत्येक कार्यमें सलाह
प्रता देते थे, वह अपने अनेक उत्तमगुण व शक्तिसे आर्यप्रजामें इतनी प्रतिष्ठाको
ए है कि आर्यप्रजा उनको "आद्याशक्ति" कहकर उनका पूजन व स्मरण
है। वास्तविकमें यह बहुत ही ठीक है आर्यजातिको अपनी उन्नतिके लिये व
गृह संसारको सुखमय बनानेंके लिये शिवपार्वतिके समान आदर्श दम्पतियोंको
आदर्श बनाकर उनके बताये हुए पथपर चलना ही चाहिये। इस दम्पतीके
प्रेमका वर्णन आर्यशास्त्रोंमें अनेक स्थानोंपर किया गया है और आर्यप्रजा
जानती है इसलिये यहांपर विस्तारसे लिखनेंकी कुछ भी आवश्यक्ता नहीं हैं।

सती सावित्रीजी।

ह देवी साध्वी संसारकी आदिमाता और अपने आदिकारण ब्रह्मा-
जीकी परमपुनित पत्नि होती है। वह देवी आध्यात्मिक ज्ञानमें
निपुण थी। उनको विद्यादेवीके समान सरस्वती जैसी परमपुनित
पुत्री और सनक, सनत्कुमार, सनंदन और सनातन ये चार पुत्र
थे। ये पांचो सन्तान अपने पिता ब्रह्मा और साक्षात् देवीरुप सावित्री
हाथ नीचे रहकर बड़े ज्ञानयुक्त हुए थे। ऐसी साध्वी माताके प्रताप बलसे
पांचो सन्तान जगत् विख्यात एवं पूज्य हुए थे। इस परमपुनित पवित्र
पन्न देवीने अपने ज्ञानका लाभ केवल अपने ही नहीं लिया था; किन्तु अन्य
ऋषिपत्नियोंको और अन्य स्त्रियोंको देकर ज्ञानयुक्त बनाई थी। वैसे ही प्रतिदिन
के समयमें स्त्रियोंको एकत्र करके उनको गृहव्यवहार, नीति, धर्म एवं पतिव्रत-
उपदेश देती थी। इतनाही नहीं, किन्तु वह देवी अपने पति ब्रह्माजीके ग्रन्थ
ादि कार्योंमें भी सहायता किया करती थी।

यह देवी निवृत्तिके समयमें अपने पतिके पास बैठकर धर्मचर्चा करती थी और
शङ्काओंका समाधान अपने पतिके द्वारा करती थी। वह अपने पतिसे पति-
धर्मोंको पूछा करती थी और सदैव अपने स्वामीकी सेवामें संलग्न रहती थी।
नहीं, किन्तु प्रतिदिन प्रातःकालमें एकाग्र चित्तसे सामवेदके मंत्रोंसे अपने
ी स्तुति करती थी जिस स्तुतिका सारांश इस प्रकार है। "हे स्वामिन्! आप

मेरे प्रकाशस्वरुप, भरणपोषण करनेवाले, और मस्तकके विषे चन्द्र स्वरुप हैं; ऐसे हे प्राणेश्वर ! मैं आपको प्रणाम करती हूं । पुनः आप शान्त स्वरुप हो दांत अर्थात् समस्त इंन्द्रियोंको वश करनेवाले हो, सर्व देवके स्थानरुप आपको मैं प्रणाम करती हूं । आप साक्षात् पूर्ण ब्रह्म स्वरुप हो, सती स्त्रीको प्राणसे भी प्यारे हो ऐसे आपको मै नमस्कार करती हूं । आप पूजन करने योग्य, हृदय एवं ज्ञानके आधार रूप हो । मेरे लिये आनन्द स्वरुप हो, आप ही शिव हो, आप ही विष्णु हो, और आपही ब्रह्मा भी हो । सर्व संसारका आधार निर्गुण ब्रह्म उसरूप आप ही पति हो । हे नाथ ! मुझसे ज्ञानसे या अज्ञानसे जो दोष या अपराध हो गये हों उन्हें आप कृपा कर क्षमा करें । हे सहायक ! हे दयासिन्धो ! मैं आपकी धर्मपत्नि हूं मुझमें जो कुछ दोष हो उन्हें आप क्षमा करें ।

इस प्रकार प्रतिदिन स्तुति करनेके पश्चात् वे अपने अन्य गृह कार्योंको करती थीं इत्यादि वर्णन धर्मशास्त्रोंमें लिखे हुए हैं। यह देवी आद्याशक्ति स्वरूप मानी गई है । उनके गुणोंकी गणना कहांतक की जाय! वे वास्तविकमें नमन करने योग्य है । उनके चरित्रके ऊपरसे वर्तमान समयकी स्त्रियोंको उपदेश लेना चाहिये कि सावित्रीके समान साक्षात् जगदंबा भी अपने स्त्रीधर्मका पालन किस उत्तम प्रकारसे करती थी ? अपने पतिके प्रति अपना कैसा धर्म है उसको वह जानती थी । उनमें नीति, सत्य, न्याय, विज्ञान, समयसूचकता और सम्वाद–प्रश्नोत्तर करनेके उत्तम गुण ब्रह्माजीके अनुसार थे । इनमेंसे अनेक गुणोंकी प्राप्तिका कारण ब्रह्माजी भी थे। ब्रह्माजी भी उनकी योग्यतानुसार उनके साथ उच्च वर्तन रखते थे और उन्हें अपना द्वितीय स्वरुप समझते थे। वर्तमान समयमें कई पुरुष अपनी स्त्रीको सुधारकर उन्हें शिक्षा देनेके कार्यमें प्रमाद करते हैं । स्त्रियोंको शिक्षा नहीं देते और स्वयं बड़े विद्वान् हो जाते हैं भला इन अपठित स्त्रियोंके साथ पठित पुरुषोंके मन–स्वभाव प्रभृति मिल सके है ? कदापि नहीं । जब पति पत्निके मन–स्वभाव एक नहीं तब संसारके सुख भी कहांसे मिल सके हैं ? इसलिये जो समझदार व ज्ञानी हैं उन्होंने तो अपने आदिमूल ब्रह्माजीका उदाहरण लेकर अपनी स्त्रीको अपने समान बनानेके लिये जहांतक बन सके उद्योग करना ही चाहिये। इस विषयमें जितनी उदासिनता रक्खी जायगी उतना ही हमें कम सुख मिलेगा। इसलिये स्त्री समझदार कैसे बने ? कैसे सुधर सके ? कैसे एकात्मतावाली हो उस सम्बन्धी पूर्ण विचार करके चलना चाहिये। जब ऐसा होगा तभी प्राचीन सतियोंके जैसे गुणोंका प्रकाश होगा और एक दूसरोंका कल्याण होगा साथ ही सती सावित्रीके समान परमभक्तिवाली व स्तुति करनेवाली

स्त्रियां उत्पन्न होगी। हे आर्यमाता सावित्रि ! आप आर्यपुत्रियोंके अन्तःकरणको निर्मल बनानेंके लिये उन्हें सुबुद्धि प्रदान करें ! अस्तु ।

सरस्वती ॥

सरस्वती यह अपने जगत् पिता ब्रह्माजीकी पुत्री थीं। और उसकी माताका नाम सावित्री था । सरस्वतीजी रूपसे व गुणसे अनुपम एवं मनोहर थे। वे अपने समस्त कार्योंको अपने आप करके शरीरको आरोग्य रखते थे । उन्होंने बहुत ही चेष्टा व परिश्रमसे अपने पिता ब्रह्माजी और अपने भ्राता सनकादिकोंके पाससे विद्याध्ययन करना शरू किया। उसने पढते २ विद्यामें इतनी निपुणता प्राप्त की थी कि उन्होंने अपने बुद्धि-बलसे कुछ नविन विद्याओंका आविष्कार या प्रचार किया था। इस समय हम ईश्वरभजन या आनन्द भोगनेमें जिस सङ्गीतशास्त्र या गायनकलाका उपयोग करते हैं उसका पूर्ण विकास व प्रचार इसी देवी सरस्वतीने किया था। संस्कृत वाणीकी उत्पत्ति भी इस देवीके द्वारा हुई है यह बहुतसे लोगोंका सिद्धान्त है। यह देवी समय२ पर देवोंकी सभाओंमें जाकर विद्याज्ञान, व्यवहारज्ञान व धर्मज्ञान सम्बन्धी उपदेश देती थी। कई लोगोंका यह भी कथन है कि अङ्कगणित व वर्णोंका आविर्भाव इस देवीके द्वारा हुआ है कि जिससे हमारे यावत् कार्य व्यवहार हो रहे हैं। अपने योग्य विद्वान् पतिके नहीं मिलनेंसे देवी सरस्वतीने यावज्जिवन ब्रह्मचर्य–कुमारिका व्रतका पालन किया था। प्राचीन समयमें इस देशमें आर्य स्त्रियोंका महत्व पुरुषोंसे किसी प्रकार कम नहीं था। अर्वाचिन समयकी स्त्रियोंके समान वे केवल दासियोंकी (मजुरानियोंकी) द्रष्टिसे नहीं देखी जाती थी यह बात इस पवित्र आर्यभूमिकी भूषणरूप देवी सरस्वतिके चरित्र परसे प्रत्यक्ष होता है। सरस्वतीजी अपनी विद्याके प्रभावसे आर्योंकी उस समयकी प्रथाके अनुसार "देवी" पदवी (उपाधि) को प्राप्त हुई थी। आत्मबल एवं आत्मयोंकी सहायतासे उसने सब कुछ प्राप्त किया था। अर्वाचीन समयमें भी इस देशमें सब कुटुम्बोंके भीतर सरस्वती देवीका पूजन होता है और उसको विद्याकी माताके नांवसे सब कोइ जानते है। इस देशके भीतर प्रत्येक वर्षमें दीवालीके समयपर 'वही पूजन' के नांवसे देवी शारदा–सरस्वतीका पूजन होता है; वैसेही उसमें "शारदायनमः" यह सबसे पहिले लिखकर सरस्वतीका पूजन किया जाता है। तदनन्तर लिखनेंका आरंभ किया जाता है। ग्रन्थकार भी प्रायः अपने ग्रन्थका आरंभ भगवती सरस्वतीको वंदन करके किया

करते हैं। इस देवीके नामकी एक सरस्वती नदी है उस सरस्वतीमें स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र होता है ऐसी प्राचीन समयसे रीति चली आती है ऐसा उस सरस्वती देवीका माहात्म्य है। यह सब कुछ उसने अपने सत्यज्ञानसे ही प्राप्त किया था॥ अहो! उस देवीका कैसा आत्मबल! इस भारतवर्षमें ऐसी देवीयां पुनः कब उत्पन्न होगी? हे देवि! आप ही इस देशपर कृपा करके फिर जन्म धारण करें और प्राचीन समयकी नष्ट होती विद्याओंका जीर्णोद्धार करें! तथैवास्तु।

संज्ञा—रनादेवी।

साध्वी देवी कौन? अपने सूर्यदेवकी स्त्री। उस रनादेवीका अब रांदलमाता नांव हो गया है। वह बहुत ही विदुषी थी। वेदोंकी ऋचाओंके साथ भी उसका नांव देखा जाता है। उसमें धर्मनीतिका अधिक बल था। उसने प्रजामें धर्मनीतिक प्रचारके लिये उपदेश देनेका महान् परिश्रम कियाथा। यह सती सूर्यदेवको अत्यन्त प्रिय थी। उसने विवाहके समयमें अपने स्वामीसे कहाथा कि;—

"हे स्वामिन्! आप मेरे साथ रहकर सुखका उपभोग करें। मैं आपको सुख देनेवाली हूंगी। मेरे अनेक शुभ कर्मोंके कारण देवताओंने मेरा आपके साथ सम्बन्ध कराया है। मैं बाल, यौवन और वृद्धावस्थामें आपके कुटुम्बकी सेवा करुंगी! मैं सदैव आपकी आज्ञानुसार चलुंगी और नित्य निर्मल रहूंगी। सौभाग्यको दर्शानेवाले हाथ, पांव, कान और नासिका प्रभृतिके आभूषणोंको सदैव धारण कर रखुंगी। मन, बचन और शरीरके कर्मोंसे आपकी ही सेवा करुंगी। मैं आपके पास रहकर जो सुख दुःखादि प्राप्त होंगे उन्हें प्रसन्नतासे सहुंगी। मुझको आप सदैव अपने पास रखेंगे। प्राणेश्वर! मेरा पालन करनेवाले आपही है आपही मेरे नमन करने योग्य है।" इत्यादि उसने प्रार्थना की थी। इस सतीके सौभाग्यपनकी आर्योंमें उतनी महत्ता है कि विवाह संस्कारके समय कन्याको सौभाग्य दिय जाते हैं तब **"सूर्य रनादेवीका सौभाग्य"** अर्थात् सूर्य और रनादेवीका जिस प्रकार चिरकाल तक सौभाग्य रहा वैसेही ईश्वर इस कन्याका सौभाग्यपन चिरकाल तक रक्खे ऐसा सौभाग्यवती स्त्रिया आशिर्वाद देती है। लोग अपनी मनोकामना पूर्ण होनेसे रांदल देवीकी स्थापना कर उसका पूजन करते हैं। इस प्रकार उसके अपने सौभाग्यपनसे, नीतिके उपदेशसे और पतिसेवाके प्रतापसे संसारमें अलभ्य कीर्तिको प्राप्त किया है।

स्वाहा ।

ह देवी सती माहिष्मति नगरीके महाराजा नीलध्वजकी पुत्री और अग्निदेवकी स्त्री होती है । "स्त्री एक पतिको पाकर दूसरे पुरुषका स्पर्श करे तो उसका शरीर अपवित्र होता है और वह स्त्री घोर नरकमें पड़ती है" इस प्रकार स्वाहाका सिद्धान्त होनेसे सबमें देवको श्रेष्ट जानकर उसके साथ विवाह किया था ऐसी वह महासती थी । अत्यन्त स्वरुपवती, मनोहर, एवं बुद्धिमती, उत्साही और विदुषी थी । इस तीमें परस्पर अत्यन्त अनुराग था यह अग्निदेवके अपनी पत्निके प्रति कहे हुए से सिद्ध होता है । एक समय अग्निदेवने अपनी पत्निके प्रति जो कुछ कहा सका वर्णन देवीभागवतमें इस प्रकार किया गया है ।

"सति ! तुं मुझको अत्यन्त प्रिय है इस लिये तेरा नांव मेरे साथ सदैव लगा ह मेरे अन्तःकरणकी कामना है । जो कोई मनुष्य तेरा "स्वाहा" नांव उच्चा- करके मुझको बलिदान या आहुति देंगे और "स्वाहा" इस नांवका वारम्वार ा करेंगे वे मुझे अत्यन्त प्रिय होंगे और उनपर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूंगा" अग्निके वचन है। आर्य लोगोमें यज्ञ, याग किम्वा हवन करनेके समय "स्वाहा" उच्चार करके अग्निको बलिदान या आहुति दी जाती है उससे भी विदित होता इस दम्पतीमें परस्पर बहुत प्रेम था । स्वाहाने अपने पतिकी सेवा करके ो प्रीति सम्पादन की थी; इतनाही नहीं, किन्तु उसके साथ २ अपना अखंड रखकर पूजनीया हो गई है । यह सब कुछ उसके आत्मबलका प्रताप था ।

महा-सतियां ।

देवी-अनसूया ।

महा सती अनसूयाजी सती देवहूति और भगवान् कर्दमजीकी पुत्री थी । उनके भ्राताका नांव कपिलदेव था, जिसने अपनी पूज्य माता देवी देवहूती का आत्माका अपने निरंतर उपदेशके बलसे इस अपार संसार-सागरसे उद्धार किया और विश्व-विख्यात सांख्यदर्शन की रचना की । महा- अनसूयाका पाणिग्रहण महात्मा अत्रिऋषिके साथ हुआ था । उनके वहां इश्व-

रावतार महात्मा दत्तात्रेयजीका जन्म हुआ वे महायोगी थे। इनकी माता अनसूयाजी समस्त सतियों में भूषणरुप थी। उन्होंने अपनी समस्त शक्तियोंका उपयोग संसारकी स्त्रियोंके उद्धार सम्बन्धी कार्यमें लगा करके प्रसिद्धि प्राप्त की थी। इतनाही नहीं, किन्तु जब महादेवी पार्वतीजीने शिवजीके पास सतियोंके विषयमें प्रश्न किया तब उन्होंने पतिव्रताओंकी गणनामें सती अनसूयाजीका नांव प्रथम दिया था।

किसी एक समय परमपुनित महात्मा अत्रिजी किसी कारणसे बहार गये थे। उस समय सतीके सतीत्वकी परीक्षा लेनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों-देव भिन्न २ भेष धारणकरके उनके आश्रममें पधारे। सती इस बातको समझ गई और अपने सतीत्वके प्रभावसे, मन, वचन और शरीरसे अपने हृदयेश्वर अत्रि ऋषिमें ईश्वरबुद्धिसे, अपने धर्मसे, और कुलधर्म व सत्यधर्म पालनकरनेकी चतुरतासे उन तीनों देवोंको अपना सतीत्व दिखला दिया उससे उन देवोंने प्रसन्न होकर वहां दत्तात्रेय स्वरुपसे जन्म ग्रहण करके उन्हें मातारुप स्वीकार किया। यह बात अभीतक सतियोंके और कुलवती कन्याओंके चित्तको आकर्षण करती है। फिर दैवेच्छासे किसी एक समय जब भारी दुर्भिक्ष पड़ा, तब समस्त वनस्पतियें सूख गई, जलाशय सूख गये और सूखे पर्णोंके समूहसे व्याप्त हुए सम्पूर्ण जङ्गल शून्य व भयङ्कर दिखाई देने लगा। फल, फुल, कंद, मूल, पर्णों व जल प्रभृति नहीं मिलनेसे वनके भीतर मनुष्य, पशु, पक्षी और कीट इत्यादि प्राणीसमूह आकुलव्याकुल होने लगा। उस समय अत्रि-ऋषि अपने इष्टदेवका स्वरुप हृदयमें धारणकर समाधिमग्न हुए; तब सती अनसूयाजी क्षुधा, पिपासा, रोग, वायु, वृष्टि, ठंडी, गरमी इत्यादिको सहन करती हुई अपने प्राणप्रिय प्राणनाथकी सेवामें मन, वचन व कर्मसे तत्पर हुई। एकाग्र चित्तसे अपने स्वामीके चरणकमलकी सेवाके निमित्त उत्पन्न हुए हर्षसे उसको ९९ वर्षका दुर्भिक्ष भी कठिन नहीं मालूम हुआ। जब दुर्भिक्ष पूर्ण होनेमें एक वर्ष बाकी रहा, तब उनके प्राणप्रिय पति समाधिमेंसे ऊठे और जल लानेके लिये आज्ञा दी। वह पतिकी आज्ञाको सुनकर हाथमें कमण्डलु ले शीघ्रताके साथ जलकी शोध करनेको चली। अभी थोड़े ही दूर गई होगी उतनेमें किसी समय नहीं देखी हुई मनोहर देवीके दर्शन हुए और उस देवीने अनसूयाजीके प्रति कहा कि हे सति! प्राणपतिके चरणकमलकी सेवामें तत्पर ऐसी तुम्ह कहां जाती हो? इस कोमल चरणको इस तपी हुई पृथ्वीमें रखकर क्यों कष्ट दे रही हो? प्रिय सखि! यह प्रबल वायु तुम्हारी गतिको रोक रहा है फिर भी उसकी कुछ परवाह नहीं करके व्याकुलतापूर्वक कहां पर जा रही हो? हे कोमलाङ्गि! इस प्रकारसे तुम्ह आतुर क्यों बन रही हो?

आगन्तुक देवीके इन वचनोंको सुनकर अनसूयाजी अपने पतिको शीघ्र जल पहुंचाना चाहती थी इसलिये उस देवीके सामने भी नहीं देखकर चलतेर कहा कि आप कौन है? कहांसे पधारी हुई हो? और यहां पर पधारनेंका कारण क्या है? मैं आपको पहिचानती नहीं हूं साथ ही आपका परिचय प्राप्त करनेंके लिये रुक भी नहीं शक्ती; क्योंकि मैरे पतिने मुझको जल लानेकी आज्ञा दी है अतएव मुझको इस समय अवकाश नहीं है; जिसके लिये क्षमा करेंगे। मैं अपने पतिको जल पीलाकर आपका आतिथ्य करुंगी। अनसूयाजीके इन वचनोंको सुनकर देवीने कहा कि आपका यह आतिथ्य क्या कम है? क्या आपको मालूम नहीं कि कई वर्षोंके दुर्भिक्षके कारण सो योजनमें कहांपर भी जल नहीं है इस लिये व्यर्थ कष्ट न उठावें। देवीके इन निराशाजनक वचनोंको सुनकर वह व्याकुलचित्तसें कहने लगी कि हे प्रभो! हे दीनानाथ! अब मैं क्या करुं? कहांपर जाउं? और किस प्रकार अपने प्राणनाथको जल लाकर अर्पण करुं? हाय! मैं हतभागिनी हूं! आज कई वर्षोंके पश्चात् स्वामीनाथ समाधिमेंसे जागृत हुए हैं मैं उन्हें जल लाकर सन्तुष्ट नहीं कर सक्ती। हा! मेरे कैसे भाग्य है? हे भगवति भागीरथि! हे मोक्षदात्रि सरस्वति! यह आपकी पुत्रि जल लानेंके लिये जा रही है; किन्तु कहां भी जल नहीं दिखाई देता इस लिये दोनों हाथ जोडकर प्रार्थना करती हूं कि मुझपर कृपा करके मैरे स्वामीके लिये एक कमण्डलु जल दीजिये। अहा! मैर स्वामी तृषाकुल हो रहे हैं और मैं उन्हें जल नहीं दे सक्ती ऐसा महान् कष्ट मैरे पर कहांसे आपडा? हे प्रभो! मैरे पर यह दुःख कहांसे आया? इस प्रकार कहतीर गिर गई और मूर्छागत हो गई।

देवीने यह सब अपने नेत्रोंसे देखा। तुरन्त पासमें आकर कहा कि प्रियपुत्रि अनसूये! शोक क्यों कर रही हो? यहांपर एक खड्डा बनाव! मैं भागीरथी गङ्गा हूं। मैं प्रसन्न होकर तुम्हारे पास प्रत्यक्ष आई हूं। देवीके इन वचनोंको सुनकर अनसूयाजीकी मूर्छा भङ्ग हुई, वह सावधान हुई और एक खड्डा बनाया; वह तुरन्त गङ्गाजलसें भर गया। उसमेंसे अपना कमण्डलु भरके देवीसे प्रार्थना की कि हे देवि! आपके पधारनेंके समाचार मैरे पतिको मिलेगें तो उन्हें भी आपके दर्शनकी इच्छा होगी इसलिये आप मैं फिर आउं वहांतक यहांपर रहे ऐसी मेरी प्रार्थना है। देवीने कहा कि पुत्रि! तुं अपने पतिके ऊपर बहुत प्रेम रखकर उन्हकी सेवा करती है। ऐसे तेरी पतिसेवाके एक वर्षका फल दे तो मैं यहां रहुंगी। अनसूयाजी उसे स्वीकार कर अपने पतिके पास गई और निर्मल गङ्गाजल पान करनेंके लिये दिया। संसारके रोगोंको नाश करनेंवाले गंगाजलका पान करके अत्रिऋषिने अपनी पत्निसे

कहा कि यह जल कहांसे मिला ? अनसूयाजीने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया जिसे सुनकर ऋषिको अत्यन्त आश्चर्य मालूम हुआ और गंगाजीके दर्शनके लिये वहां गये। गंगाजीके दर्शन करनेके पश्चात् उनसे अपने आश्रममें पधारनेकी प्रार्थना की जिन्हें सुनकर देवी भागीरथीजीने कहा कि "यदि अनसूयाजी अपने पातिव्रत्यके एक वर्षका पुण्य मुझे दें और शिवजी आपके उपर प्रसन्न होकर यहां रहना स्वीकार करें तो मुझको अनसूयाके पास रहनेके बराबर कोई भी स्थान प्रिय नहीं है।" ऋषिने तदनुसार किया। शिवजीको प्रसन्न करके उस आश्रममें रक्खा व गङ्गाजीने भी वहांपर रहना स्वीकार किया। (आजभी दक्षिणमें अत्रीश्वर महादेव, और अत्रिगंगाका स्थान प्रसिद्ध है; महान् दुर्भिक्षमें भी उसका जल नहीं सूख सक्ता)।

सती अनसूयाजीको एक समय इन्द्रादि देवोंने प्रार्थना की कि "मातः ! सती-नर्मदाजीने अपने पतिके कार्यके लिये अपने सतीत्वके प्रभावसे सूर्यको रोककर लोगोंको दुःखी कर दिये है उस दुःखको दूर करनेके लिये आप कुछ उपाय करें।" इस प्रकार देवताओंकी प्रार्थनाको सुनकर देवी अनसूयाजीने कहा कि आप लोग धैर्य राखिये। मैं उस पतिव्रताकी इच्छानुसार उन्हें प्रसन्न कर आप लोगोंका कष्ट दूर करुंगी। ऐसा कहकर सती अनसूयाजी प्रतिष्ठानपुरमें रहनेवाले कौशिकके घरपर गई। सती नर्मदाने दूरसे ही सती अनसूयाजीको आती हुई देखकर स्वागत करनेके लिये सन्मुख आई और प्रेमसे मिलकर प्रणामकर घरमें ले आई और आसनपर बिठाकर विधिपूर्वक पूजनादि करके उन्हका आदरसत्कार किया। तदनन्तर सती अनसूयाजीने प्रसन्न मुखसे कहा कि सती नर्मदे ! आप कुशल हो ! आप अपने प्राणपतिके मुखदर्शनसे आनन्दमें हो ! आप अपने प्राणपतिको देवोंसे भी अधिक आदर करती हो ? प्रिय नर्मदे ! अपने पतिके चरणकी सेवा यही सब कुलमें उत्पन्न होनेवाली स्त्रियोंके लिये उत्तम है, जिसके लिये पति ही प्राणरुप है, जिसके लिये सद्गुण ही आभूषण रुप है, जिसके लिये सासश्वसुर ही तीर्थरुप है, जिन्हें ननंदे भगिनीरुप है, जिन्हें दीयर पुत्रके समान है, जिन्हें दीरानी पुत्रीके समान है, जिन्हें जीठानी माताके समान है, जिन्हें शील ही धन है, जिन्हें पतिव्रता स्त्रियां सखियां है। जो मन, वचन, कर्म और शरीरसें अपने पतिको देवके समान समझकर उनका पूजन करती है, अपने प्राण जानेके पर्यंत अपने पतिका हित करती है, जो पतिके सुखोंके साथ सुखी व पतिके दुःखोंके साथ अपनेको दुःखी समझती है, जिन्हें पतिके मुखदर्शनका ही व्यसन है, जिन्हें उनके गुणोंको ही सुननेकी इच्छा रहती है, अपना पति अंगभंग हो, या रोगी हो किम्वा किसी प्रकारकी खोडवाला और दोषवाला हो तो भी उसकी मनवचन

और कर्मसे अवगणना नहीं करती और पतिको ही तनमन व धन समझनेवाली पति-व्रता स्त्री हो उसको देव दानव और त्रिगुणात्मक प्रभु भी प्रसन्न हो उसमें आश्चर्य ही क्या है ? ऐसी जो स्त्री हो वही सती, वही पतिव्रता, वही कुलवंता कन्या और उसीने दोनो कुलोंका उद्धार किया; उसीने इस भूमिको पवित्र किया ऐसा समझना। उसी सबबसे देवोंने भी मृत्युलोककी प्रशंसा की है। प्रियपुत्रि ! आपके स्वाभाविक प्रेमसे, शीलसे, आचरणसे, और शुभवृत्तान्तसे आप ही सतियोंमे श्रेष्ठ हैं। आप किसके लिये वन्दनीय नहीं हैं ? अनसूयाजीने की हुई इस प्रशंसाको सुनकर नर्मदाजीने संकुचित होकर धीरस्वरसे कहा कि त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली मातुश्रि ! भगवति अनसूये ! मैं तो आपके समान सतियोंके चरणरजके समान हूं ! आप मुझ दीन दासीकी इतनी अधिक प्रशंसा क्यों करते हैं ? आप जगज्जननी हैं त्रिलोकीके आ-भूषणरुप आप सतीशिरोमणिके समीपमें मैं क्या वस्तु हूं ? आपने मेरे कौनसे सत्कर्मके कारण प्रसन्न होकर दर्शन देनेकी कृपा की ? आपके दर्शनसे मैं अपनेको पूर्ण भाग्यशालिनी समझती हूं मेरा जन्म व जीवन आज ही सफल हुआ। आपका दर्शन मुझे आज अत्यन्त आनन्द दे रहा है। बृहस्पति, शुक्राचार्य, व्यास और वाल्मिकी प्रभृति मुनियोंने जिनकी स्तुति की है ऐसी आप भगवतीकी मैं क्या स्तुति करुं ? क्या आप मुझको कोई सेवा बताकर उपकृत करेंगे ? इस प्रकार कह कर नर्मदाजी हाथ जोड़कर सामने खड़ी रही। तब भगवती अनसूयाजीने कहा कि पुत्रि ! यदि तुमे मुझे प्रसन्न करना चाहती हो तो अपने पतिके कार्यके लिये जो उपाय किया है उस-से लोग दुःखी होते हैं जिससे उनके सुखके लिये आज ही कुछ उपाय करना चा-हिये। अनसूयाजीके इस वचनको सुनकर नर्मदाजीने कहा कि हे देवि ! मांडव्य मुनिके शापसे मेरे पतिके अमङ्गल होनेकी सम्भावना है उसीसे मुझे वह कार्य करना पड़ा है। अब आपकी यही इच्छा है तो आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं तैयार हूं। तब अनसूयाजीने कहा कि सखि ! तुम ऐसी अपने ऊपर आपत्ति स्वीकारकर त्रिलोकीके दुःखोंको दूर करनेकी चेष्टा करोगे तो तुम्हारा कभी भी अमङ्गल (पति-मरण) नहीं हो सक्ता। वैसेही मैं भी अपने सतीत्वके प्रभावसे तुम्हारी सहायता कर तुम्हारे पतिके प्राणोंका रक्षण करुंगी। अनसूयाजीके इन वचनोंको सुनकर सती नर्मदाने दोनो हाथ जोड़कर ईश्वरकी प्रार्थनाकर लोगोंको सुखी करनेके लिये सूर्यको उदय होने दिया। जिससे देवी अनसूयाजीने अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे उनके पतिकी रक्षा की जिसे देखकर समस्त देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए और सर्वत्र जय जय ध्वनि हुई।

इसके सिवाय जब रामचन्द्रजी वनवासमें थे, तब वे फिरते २ अत्रिऋषिके आ-

श्रममें सीताजीके साथ आये। उस समय अनसूयाजीने सीताजीकी कुशलता पुछकर उन्हें उपदेश देते हुए कहा कि पुत्रि सीते ! "मैं राजकन्या होकर वनमें कैसे जाउं" इस प्रकारके अभिमानको छोड़कर तुम अपने पति रामचन्द्रजीके साथ वनमें भ्रमण करती हो वह बहुत ही उत्तम है। पुत्रि ! तुम धन्य हो, पति तीक्ष्ण स्वभावका हो, निर्धन व रोगी हो या और किसी प्रकारके दोषवाला हो तोभी उस पतिका मनसे भी त्याग नहीं करना चाहिये। इस उपदेशको समझनेवाली स्त्री इस लोकमें परम-सुखको प्राप्त होकर स्वर्गको पाती है। हे प्रियपुत्रि ! स्त्रियोंके लिये अखंड तप पातिव्रत्य ही है। जो स्त्रियां कामी, पतिको हुक्म करनेवाली अपनी इच्छानुसार इधर उधर घुमनेवाली, और पतिके पीछे नहीं गमन करनेवाली अधर्मी हो वे नरकमें जाती है। केवल तुम्हारे समान विवेकी, पातिव्रत्यधर्मको समझनेवाली स्त्रियां ही स्वर्गको प्राप्त होती हैं और सतीत्वके प्रभावसे त्रिलोकीके ज्ञानको प्राप्त होती हैं इसलिये तुम अपने प्राणप्रिय स्वामीकी आज्ञानुसार चलना। जिससे धर्म और कीर्ति दोनोंको प्राप्त कर सकोगी। यह सब उपदेश देकर सीताजीको सती अनसूयाजीने आशिर्वाद दिया। तदनन्तर सीताजी उनकी आज्ञा लेकर चलती हुई। अहा ! यह कैसा उत्तम उपदेश है ! धन्य है सतीके विचार व प्रतापको ! सतीत्वके बलके समान संसारमें अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है। प्रभो ! देवी अनसूयाके समान सतियां इस देशको पवित्र बनानेके लिये फिर उत्पन्न कीजिये !

सावित्री।

भरतखंडके भूषणरुप मद्र नामके देशमें सर्वगुणसंपन्न अश्वपति नामका राजा राज्य करता था। उसको संतानका सुख नही होनेसे गायत्रीकी आराधना करनेसे उसकी राणी माल्वीके उदरमें एक सुंदर स्वरुपवती व तेजस्वी कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम सावित्री रक्खा। उसकी योग्य वय होनेपर किसी योग्य पुरुषके साथ उसका विवाह करनेके विचारसे राजा अश्वपतिने सावित्रिको पति पसन्द करनेके लिये अपने प्रधानके साथ सैन्य समेत विदेशमें भेजी। देशदेशान्तरोंके राजा व राजकुमारोंको देखती २ वह जंगलमें तपोवनकी भीतर जहां पर ऋषिमुनियोंके आश्रम थे वहां पर आई। सावित्री ऋषिमुनियोंके दर्शनोंको करती हुई एक पर्णकुटिके पास आ पहुंची। उसमें दृष्टि करते ही भीतर एक वृद्ध, उसकी स्त्री और एक किशोर वयके मुनि भेषसे, किन्तु राज्यचिन्होंसें युक्त ऐसे तेजस्वी, पराक्रमी, बुद्धिमान् और

मातापितामें भक्ति रखनेवाला पुत्र—इन तीनोंको देखा। उन्हें देखकर समीपमें निवास करनेवाले ऋषिमुनियोंको पूछनेपर मालूम हुआ कि अवन्ति नगरीके द्युमत्सेन राजाको उसके किसी शत्रुने पदभ्रष्ट कर दिया है, जिससे वह अपनी रानी शैब्या और पुत्र सत्यवानके साथ यहां पर आकर निवास कर रहे हैं। सावित्रीको यह बात जानकर दुःख हुआ; किन्तु सत्यवानमें स्वाभाविक स्वरुपसम्पत्ति और ओजस्विता प्रभृतिको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, साथ ही उसके ऊपर वह मोहित हो गई। सत्यवानकी इस दुःखद स्थितिको देखने परभी उसको अपने योग्य समझकर अपने मनसे उनको अपना पति स्वीकार कर लिया। प्रधानने इस गरीब स्थितिवालेको पतिरुपसे नहीं पसन्द करके विदेशमें भ्रमण करके किसी योग्य पुरुषको पतिरुपसे पसन्द करनेके लिये कहा; किन्तु उसने अपने निश्चित सिद्धान्तको बदलना नहीं चाहा; जिससे प्रधान अपनी राजधानीमें आया। सावित्रीके आनेके समाचार सुनकर सब कोइ प्रसन्न हुए। प्रधानने अपने राजा अश्वपतिसे कहा कि सावित्रीने विदेशमें किसी राजा या राजकुमारको पसन्द नहीं कर पदभ्रष्ट होकर राजर्षि—मुनिके भेषमें रहे हुए कुमारको पतिरुपसे पसन्द किया है। सावित्री सुकुमार शरीरकी है, जिसने कभी भी राजमन्दिरके बाहर पृथ्वि पर पांव नहीं धरा है वह जङ्गलकी कङ्कर व कांटोंवाली भूमि पर किस प्रकार पांव धर सकेगी? उससे शीत, धूप व बर्षा कैसे सही जायगी? वह अभी बालकबुद्धिकी ही है। चक्रवर्ति राजाकी कुमारिका विवाह करके तुरन्त ही वनमें निवास करे इससे बढकर दुःखकर बात क्या हो सक्ती है? हमने उसे बहुत कुछ समझाया; किन्तु उसने हमारी एक बात भी नहीं मानी। अन्तमें हम लोग निराश होकर यहां पर आये हैं। और यह राजकुमारके चित्रको ले आए हैं। राजा अश्वपति यह बात सुनकर अत्यन्त दुःखित हुआ और चित्रको विचारपूर्वक देखने लगा, उतनेमें नारद मुनि वहां पर आ पहुंचे। राजाने खडे होकर उनका आतिथ्य किया। कुछ बातें हो रही थी उतनेमें ही वहां पर सावित्री आ पहुंची। उसे मुनिने देखकर राजाके प्रति कहा कि यह तुमारी कन्या सती होगी ऐसे उसके लक्षण मालूम होते हैं। उनका विवाह सम्बन्ध किसके साथ किया गया है?

राजा अश्वपतिने मुनिके वचनोंको सुनकर कहा कि महाराज! आप भले ही पधारे। मुझे आपसे कुछ सलाह लेनी है। सावित्रीने सत्यवानको पतिरुपसे पसंद किया है यह बात कहकर राजाने कहा कि मैं सावित्रीके स्वभावसे परिचित हूं। यह विशेष करके कभी भी विना विचार किये किसी कार्यको नहीं करती, और विचार करनेके पश्चात् स्वीकार किये हुए कार्यको नहीं छोडती। इस लिये उसने

जो सत्यवानके साथ विवाह करनेका निश्चय किया है उसको परिवर्तन करनेमें केवल जङ्गलमें रहनेका साधारण कारण दिखलावेंगे तो वह उसके मनमें कभी भी नहीं आवेगा ऐसा मैं मानता हूं। और उसीसे यदि सत्यवानमें दूसरा कोई दोष न हो तो मैं सावित्रीका उसके साथ विवाह करनेमें कुछ भी सङ्कुचित नहीं हूंगा। क्यों कि राज्य तो मैं उसको अपनी सत्तासे प्राप्त करा सकता हूं। इस लिये उसका जो कुछ शुभाशुभ हो वह मुझे कहें। नारदने कहा "राजन्! कुमार सत्यवान् अत्यन्त स्वरुपवान, शौर्यवान्, और गंभीरता प्रभृति समस्त क्षत्रियोंके गुणोंसे युक्त है; किन्तु उसका आयुष्य बहुत ही कम है; इस लिये वह एक वर्षमें मृत्युको प्राप्त होगा। तथापि सावित्रीका संबंध उसके साथ अवश्य होगा। ऐसा कहकर नारदजी वहांसे चल निकले।"

यह सुनकर राजा और सभासदोंके प्रफुल्लित मुख सूख गये। रानी माल्वी और सावित्री सभामंडपके पासकी बैठकमें ये बातें सुन रहीथी वे भी मूर्च्छित हो गई। सभा विसर्जन हुई। राजा एकाकी बैठे हुए हैं उन्होंने माल्वी और सावित्रीको बुलाकर सावित्रीसे कहा कि "पुत्रि! तुमने जो पति पसंद किया है उसमें बहुत ही बडी हानी है। उस हानीसे बचनेके लिये कोई भी उपाय नहीं है। तुमने साहस किया है; किन्तु उसके अच्छे बुरे परिणामका तुम्हे विचार नहीं है। तुमने जो पति पसन्द किया है उसके ऊपर एक बडी भारी घात है यह जाननेपर भी हम उसके साथ तुम्हारा विवाह करनेमें कैसे सहमत हो सकते हैं? अब तुम किसी अन्य योग्य वरको देखो!" सावित्रीने जवाब दिया कि "पिताजि! ब्रह्माजीके वचन मिथ्या नहीं हो सकते, कहा हुआ वचन पीछा नहीं खेंचा जा सकता, दिया हुआ दान नहीं लिया जा सकता, सत्यवादी लोग वचन–पालन किये विना नहीं रहते, सती सत्यको नहीं छोडती। राजा हरिश्चन्द्रने नीचके घर बीकना स्वीकार किया; किन्तु अपने निश्चित किये हुए वचनमें परिवर्तन नहीं होने दिया। इससे मैंने जिस पतिको पसन्द किया है वह दीर्घायु हो या अल्पायु हो, गुणवान् हो या दुर्गुणी हो, किन्तु मैं मनके द्वारा जिसके साथ विवाह कर चूकी वह दूसरेकी नहीं हो सकती। मैं जिसके साथ मनसे विवाह कर चूकी वही मैरा पति है। मैंने अपना मन सत्यवानको अर्पण किया है वह अन्यथा कैसे हो सके? मैरे लिये भविष्यत्‌में जो कुछ होनेवाला है वह होगा, उसके लिये आप कुछ भी चिन्ता न करे।

राजा अश्वपतिने कहा "पुत्रि! वह कुमार सब प्रकारसे योग्य हैं; किन्तु उसकी आयु बहुत ही कम है। एक ही वर्षमें उसका मरण होगा; तब तुम्हें पतिवि-

योगका कष्ट सहना पडेगा। पति यह नारीका भूषण है, पति विनाका स्त्रीका जीवन वृथा है, वैधव्यपनके संकट कैसे दुःखद और भयंकर है उसका ख्याल विना पतिकी स्त्रियोंके सिवाय अन्य स्त्रियोंके मनमें नहीं आसकता। विना पतिकी स्त्रियां केवल स्वयं ही दुःखित नहीं होती; किन्तु उसके मातापिताओंकी जींदगी भी दुःखकर हो जाती है इस लिये तेरे जैसी समझदार पुत्रीओंने हठ नहीं करना चाहिये। तुम मुझे सम्मति दो जिससे मैं देशदेशान्तरोंके राजाओंको निमन्त्रित कर स्वयंवरकी तैयारी करुं। उनमेंसे तुम अपनी इच्छानुसार पतिको पसन्द करना !" सावित्रीने कहा पिताजि ! अपनी बेटीको क्षमा कीजिये ! मेरे लिये आपको बहुत कुछ चिन्ता है जिसके लिये मैं आपका उपकार मानती हूं; किन्तु आपसे मेरी प्रार्थना है कि मेरे भलेके लिये भी आप मेरे लिये विवाह सम्बन्धी चिन्ता न करे। मैं सत्यवानके साथ तनमनसे विवाह कर चूकी हूं; इस लिये वही मेरा पति है, उनके सिवाय मुझे किसीके साथ विवाह करनेकी इच्छा नहीं है। भविष्यमें मेरे लिये वैधव्यका दुःख लिखा ही होगा तो उसे कोई भी मिथ्या नहीं कर सकते। इस अनित्य संसारमें कुछ भी नित्य नहीं है। जिसने जन्म धारण किया है उसका नाश भी अवश्य होगा। आगेपीछे सब किसीको मरना है उसको कोइ भी नहीं रोक सकता है। श्रीकृष्णके समान साक्षात् भगवान्के शरीरको भी कालने नहीं छोडा; फिर दूसरोंकी बात ही क्या ? मृत्युकी उत्पत्ति शरीरकी उत्पत्तिके साथ ही है। मृत्यु यह प्राणीकी स्वाभाविकी प्रकृति ही है, इस लिये उससे क्यों भय करना ?" राजा और रानीने जान लिया कि सावित्री अपने किये हुए निश्चयको कभी भी नहीं बदलेगी इससे दैव ही प्रबल है; ऐसा विचार कर नारदजीके अंतिम वचनको स्मरण करके सत्यवानके साथ उसका विवाह करनेका निश्चय किया। राजाने विवाहकी तैयारी करनेका आरम्भ किया। उसने प्रधान, राजगुरु और रानी प्रभृतिके साथ सावित्रीको वनमें ले जाकर सत्यवानके साथ विधिपूर्वक विवाह कराके सत्यवानको विविध प्रकारके दानमानादि द्वारा संतुष्ट कर अपनी राज्यधानीकी ओर आनेकी तैयारी की। माता माल्वी सावित्रीको अपनी छातीके साथ दबाकर और नेत्रोमें अश्रु लाकर कहने लगी कि "पुत्रि ! समझदार होकर अपने सासश्वसुर और पतिकी सेवा करना। तेरे मातापिताओंकी खानदानीका आधार तेरे आचरण पर रहा हुआ है, उसको अच्छी तरहसे याद रखना। अब तुम इस वनको सुंदर भवनके समान समझकर अपने सासश्वसुर और पतिकी आज्ञा

अनुसार चलकर उनको सदैव पसन्न रखना। उनकी आज्ञासे कुछ भी विरूद्ध नहीं चलना। अच्छी संगति कर सदाचरण रखकर कीर्तिको बढाना! अब हम जाते हैं। तुम शोक मत करना। महाराणी शैव्या! यह सावित्री अब हमारी पुत्रि नहीं है; किन्तु आपहीकी पुत्रि है। क्योंकी पुत्रवधू पुत्रिके समान स्नेहपात्र है। यदि उनकी कोइ भूल हो तो उस सुधारना यह आपका कार्य है" इत्यादि कहकर और रानी शैव्याकी औरसे मिले हुए योग्य उत्तरको सुनकर वे सब स्नेहपूर्वक उनसे विदा लेकर राज्यधानीमें आये।

सावित्री इच्छित पतिको पाकर प्रसन्न हुई। वनवासके- योग्य वल्कल वस्त्रोंको धारणकर सासश्वसुर और पतिकी मन वचन और कर्मसे सेवा करने लगी। सावित्रीकी पवित्र सहानुभूति और निर्मल मनकी सेवाको देखकर राणी शैव्या किसी एक समय प्रसन्न होकर कहने लगी कि "अहो! ईश्वरकी लीला अलौकिक है। कहां वह सत्यवानका विवाहकर पुत्रवधूको राजमहिषी बनानेकी अभिलाषा!. कहां वह राजभुवनमें रत्नभूषित सिंहासन पर बैठकर पुत्रवधूके सुखोंको देखनेकी आशा और क्या यह उससे विपरीत तृणशय्यामें पडी हुई पुत्रवधूको देखनेका अवसर! कैसा शोकका विषय है कि यह पुत्रवधू भी हमारे दुःखोंकी हिस्सेदारिन हुई! अहो दैव! तेरी गहनगति है!!" इस प्रकार अपनी सासको शोक करती हुई देखकर सावित्री कहने लगी कि "आप राज्यसिंहासनको छोडकर जङ्गलमें रहती हो उससे आपको बहुत ही दुःख होता होगा; किन्तु सुखदुःखका दाता ईश्वर ही है। उसने जिसके भाग्यमें जो कुछ लिख रक्खा है उसे कोई भी अन्यथा नहीं कर सकते। उसमें किसी तरहसे कायर होना यह ईश्वरकी निन्दा करनेके समान है। इतना ही नहीं; किन्तु ऐसे शोकमें पडनेसे सामने दुःख बढता है और अपने कर्तव्योंसे विमुख होनेका अवसर आता है। यदि सूक्ष्मदृष्टिसे विचार किया जाय तो राज्यासन और तृणशय्यामें कुछ भी भेद नहीं है। मैं इस बातका सत्य हृदयसे कह रही हूं कि इस जङ्गलमें आपकी व अपने पतिकी यथार्थ चरणसेवा मुझसे हो सकेगी तो मैं बहुत ही अपनेको सुखी समझुंगी।" सावित्रीके इन वचनोंको सुनकर आश्रमकी ऋषिबालायें उसकी बहुत ही प्रशंसा करने लगी और सत्यवानको ऐसी पवित्र पत्निके मीलनेसे उसे भाग्यशाली समझकर अभिनन्दन देने लगी। सत्यवान और उसके मातापिता सावित्रीसे अत्यन्त सुखी हुए। सत्यवानकी आयुष्यका अवधि समीप आने लगा जिससे सावित्रीकी मानसिक चिन्तायें बढने लगी। यह बात सावित्रीके सिवाय और कोइ भी नहीं जानते थे। सावित्री सौभाग्य बढानेवाले अनेक व्रतोंको करनेसे

शरीरसे सूख रही थी। पतिकी आयुष्यकी अवधिमें चार दिन बाकी रहे; तब उसने सौभाग्यवर्धक व्रतका आरम्भ किया। तीन दिन तक उपवास कर चौथे दिन शास्त्र-क्रिया कर वृद्ध तपस्वी और सासश्वसुरको भोजन कराया और प्रणाम करके सबसे सौभाग्यवृद्धि सम्बन्धी आशीर्वाद प्राप्त किया। सत्यवान उसी दिन सायंकालको कुहाडी लेकर अग्निहोत्रके लिये काष्ठ और फलफूल लेनेके लिये जानेको तैयार हुआ। सावित्रीने जान लिया कि आज अपने पतिके मृत्युका दिन है उसीसे आज वे विलम्बसे जानेको तैयार हुए हैं। अब मैं उन्हें एकाकी जाने न दूंगी; क्योंकि कदापि आज कुछ अनर्थ हो जाय इस लिये मुझको उनके साथ ही रहना चाहिये। ऐसा निश्चय करके उसने अपने पतिसे कहा कि;—यहांपर आनेके पश्चात् मैं किसी दिन आश्रमके बाहर नहीं निकली हूं इसलिये मुझको आज पुष्पित वन देखनेकी इच्छा हुई है और आपको आज प्रतिदिनके समयसे कुछ विलम्ब भी हो गया है इस लिये मैं आपको फलफूलादि लेनेके कार्यमें सहायता भी करुंगी। यदि आप मेरे पर प्रेम रखते हैं तो मुझको आज आप अपने साथ आनेके लिये निषेध न करेंगे ऐसी मुझे आशा है। सत्यवानने कहा कि यदि आनेकी इच्छा हो तो मेरे मातापिताकी आज्ञा ले लीजिये। पीछे सावित्रीने अपने सासश्वसुरसे अपनी इच्छा प्रदर्शित कर आज्ञा ली। और पतिके साथ वनको देखती हुई उनके पीछे चलने लगी। दोनों फलपुष्पोंको लेते हुए बहुत दूर निकल गये। सत्यवान फलफूलकी टोकरी सावित्रीको सौंपकर एक वटवृक्ष पर काष्ट काटनेके लिये कुहाडी लेकर चढा। कुछ समयके पश्चात् वृक्षके उपरसे नीचे उतरकर अपनी पत्निसे कहने लगा कि 'सावित्रि! मेरे मस्तकमें बहुत ही पीडा हो रही है'। सावित्रीने मनमें समझ लिया कि काल आ पहुंचा। वह मनमें बहुत कुछ व्याकुल हुई; किन्तु वह सत्यवानको जाहिर नहीं कर वस्त्रका एक टुकडा बिछाकर उनका मस्तक अपनी गोदमें रखकर उसको जिस प्रकार आराम हो उस प्रकार उनकी सेवा शुश्रूषा करने लगी। स्वयं अत्यन्त दुःखित रहनेपर भी अपने पतिको धैर्य देने लगी। थोडी देरमें सत्यवान बेहोश हो गया, जिन्हें देखकर सावित्री आँखें मुँदकर विचार करने लगी। उन विचारोंसे उसका हृदय भेदित होने लगा; किन्तु धैर्यका अवलम्बनकर प्रिय-पतिकी सेवा करने लगी। सत्यवानके प्राण जानेकी तैयारी थी उतनेमें सत्यवानके समीपमें सूर्यके समान परम तेजस्वी श्यामकान्तियुक्त किसी दैवी पुरुषको खडा हुआ देखा। अपने पर कृपा करके आये हुए देवको देखकर अपने पतिके मस्तकको धीरेसे नीचे धरकर दोनों हाथ जोडकर कम्पित हृदयसे कहने लगी "हे देव! आप कौन

है ?" उसने कहा कि "तुम सती हो उससे तुम्हारे साथ बोलता हूं। मैं यमराजा हूं। तुम्हारे पतिका आयुष्य पूर्ण होने आया है इस लिये मैं यहांपर आया हूं"। यह सुनकर सावित्री अत्यन्त दुःखित हो रुदन करती हुई कहने लगी कि "यह संसार मायामय है, जगत्में कोई भी अचल नहीं है, मुझे संसारकी वासना नहीं है, आप धर्मके द्वारा प्रजाको राजी रखनेवाले हैं, इस लिये आप धर्मराजा कहलाते हैं। मनुष्योंको जितना अपना विश्वास नहीं होता उतना सत्पुरुषका रहता है। संकटके समयमें भी सत्पुरुष ही एक गति है। वे कुछ भी बदलेकी आशा नहीं कर दूसरोंका भला करनेको तैयार रहते हैं। सत्पुरुषोंके दर्शन कल्याणकारी है वे कभी भी निष्फल नहीं जा सक्ते। आपके साथ बातचित करनेसे मेरा दुःख कम होता है, इससे मालूम होता है कि आप साक्षात् प्रभुरुप है। संसार मायामय है, मनुष्य मायासे मोहित होकर संसाररुप महाविपदसागरमें मग्न होकर नश्वर वस्तुओंको अपनी कह रहा है। इस संसारमें धर्म यह अत्यन्त प्यारकी वस्तु है, उनके सिवाय सब कोइ स्वार्थके संबंधी हैं। मायाके संबंधसे वे अधर्मका आश्रय लेते हैं। जैसे एक प्रकारका रेशमका कीडा अपने ही तन्तुसे स्वयं बंधनमें आ जाता है और फिर निकलने नहीं पाता वैसे ही मनुष्य भी नेत्र होने परभी अपना भला नहीं देख सकता, और विषयरुपी जालमें फँस जाता है जिससे परिणाममें बहुत कुछ उसे दुःख भोगना पडता है, इस लिये मैंने संसारकी वासनाका सर्वथा त्याग किया है। विना पतिके पत्निका जीवन मृत्युके समान है। मैं पतिके विना सुख, पति के विना स्वर्ग, किसी भी पदार्थको या अपने जीवनको भी नहीं चाहती। विना पतिके स्त्रीका जीवन विना प्राणके शरीरके समान व्यर्थ है। स्त्रीके लिये पति ही जीवन और भूषणरुप है। मैं अपने पतिके प्राणोंकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंको भी देनेको तैयार हूं।" ऐसे धर्मयुक्त गंभीर व कोमल सावित्रीके वचनोंको सुनकर यमराजा उसके सतीत्व व ज्ञानको देखकर उसके ऊपर प्रसन्न हुए, जिससे उन्होंने सावित्रीकी याचनानुसार सत्यवानको दीर्घायु दी और उसका गया हुआ राज्य फिर प्राप्त हो सके और उसके मातापिताका अन्धत्व दूर हो उसका भी उपाय दिखलाया। इस प्रकार सतीको प्रसन्नकर उसके सतीत्वकी प्रशंसा करके यमराजा वहांसे चले गये। कुछ समयके पश्चात् सत्यवान व्याधिसे मुक्त हो निद्रामेंसे जागा हुआ मनुष्य जैसे आलस्यको छोडकर खडा होता है वैसे ही सचेत होकर कहने लगा कि "अहो! मुझे कैसी निद्रा आ गई, इतना समय हो जाने पर भी मुझको क्यों नहीं जगाया? चलो, अब हम लोग आश्रममें जाँय। अहो! हमे बहुत ही विलम्ब हो गया, जिससे मातापिता दुःखित हुए होंगे।

अब हमें शीघ्र ही जाना चाहिये; अन्यथा वे प्राणत्याग करेंगे, ऐसा कहकर अपनी
ात्नि समेत आश्रमकी ओर आनेके लिये प्रस्थान किया। सत्यवानके मातापिता अ-
ने पुत्र और पुत्रवधूके यथासमय नहीं लोटनेसे व्याकुल होकर रूदन करते हुए
ानमें शोध करते हुए श्रमित हो गये थे और ऋषिपत्नियां उन्हें धैर्य दे रहीं थी
ातनमें सत्यवान और सावित्री आ पहुंचे। उन्हें देखकर आश्रमनिवासी ऋषिगण
ुवं उनकी पत्नियां प्रसन्न हुए और विलम्ब होनेका कारण पूछा। सावित्रीने जो
कुछ हुआ था वह सब कुछ निवेदन किया, जिन्हें सुनकर सब कोई प्रसन्न हुए और
उनकी प्रशंसा करने लगे। देवोंने पुष्पवृष्टि कर आशीर्वाद दिया। यमराजाके कथ-
नानुसार करनेसे उन्हें राज्यप्रभृति समस्त सुखोंकी प्राप्ति हुई और चारों ओर सावि-
त्रीकी कीर्ति फैल गई। यह शुभदिन ज्येष्ट शुदि पूर्णिमाका है कि जिसको आ-
स्तिक लोग स्त्रीयोंका सौभाग्य बढानेवाला मानते हैं। उस व्रतको लोग सावित्रीका
व्रत कहते हैं और सौभाग्यवती स्त्रियां आज भी उस व्रतको प्रेमसे कर अपने पति
प्रेमका परिचय देती हैं। सती सावित्रि! आपके सतीत्वको, आपके धैर्यको और दृढ
निश्चयको अनेकवार धन्यवाद है।

तारामती-शैब्या.।

यह महा सती जगत्प्रसिद्ध सत्यवादी महाराजा हरिश्चंद्रको धर्मपत्नी थी। वह पतिप्राणा और साध्वी रमणी थी। उसने अपने पति हरिश्चंद्रके सत्य वचनको पालन करनेके लिये जो असह्य दुःख सहे हैं उनकी अवधि नहीं है! उसके समान कष्ट सह कर अपने पतिका महत्त्व उज्वल करनेवाली सतियां इस भूमंडलमें बहुत कम हुई है ऐसा कहना किसी प्रकार अनुचित नहीं है। शैब्याको लोग तारामतीके नामसे अधिक पहिचानते हैं। तारामती अत्यन्त स्वरूपवती व असाधारण गुणवती रमणी थी। उसका अंतःकरण सब प्रकारकी पवित्रता और मधुरतासे उस सौंदर्यको अधिक प्रफु-ल्लित कर रहा था। संक्षेपमें उसने चरित्रकी सुंदरतामें और हृदयकी सब प्रकारकी निर्मलतामें एक अनुपम शोभा धारण की थी। उसकी वह पवित्रताकी भुवनमोहिनी ज्योतिर्मयी मूर्ति पतिने हृदयके सिंहासनपर स्थापन की थी। जैसे हरिश्चंद्रकी ऊपर तारामतीकी अविचल भक्ति थी, वैसे ही तारामतीके ऊपर हरिश्चंद्रका भी अपूर्व प्रेम

था। जो पत्नि पतिको आत्मसमर्पण कर काया और मनोवाक्यसे उसकी सेवामें तत्पर रहती है और बदला प्राप्त करनेकी आशा नहीं रखती वही सच्ची सती पतिव्रता है। सतीके लिये स्वामिका सहवास ही उसके सुख व सौभायका सूर्य है। सती इसके सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं चाहती। सती अपने पतिको उन्नतिकी ओर ले जाकर अपने नारी जन्मको सार्थक समझती है। सती समझती है कि स्वामी धनवान हो या निर्धन हो, अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, चाहे कैसा भी क्यों न हो किन्तु वही मेरी गति और मेरा आश्रय है; सुखमें या दुःखमें, संपत्तिमें या विपत्तिमें और सर्व समयमें सती स्त्री छायाके समान पतिकी अनुगामिनी व प्रियकारिणी रहती है। तारामती भी उसी प्रकार सुखके समयमें जिस प्रकार पति सेवामें तत्पर रहती थी, उसी प्रकार दुःखके समयमें भी पतिके महायज्ञमें अपनी आहुति दे दिया करती थी। अवश्य सती तारामती पतिको मित्रके समान सत्कार्यमें उत्साह देती थी एवं माताके समान और दासीके समान सेवा और श्रद्धापूर्वक भक्ति करती थी। पति ही एक मात्र उसकी गति थी, पति ही उसका एक मात्र सुख था और पति ही परम आराध्य देवता था। पतिके सिवाय वह दूसरा कुछ भी नहीं जानती थी और पतिके सिवाय कुछ भी विचार नहीं करती थी, पतिका ध्यान यही एक मात्र उसका विचारका विषय था ऐसा उसका पतिके प्रति अपूर्व प्रेम था।

तारामती स्त्रियोंमें रत्नरुपा थी। वह जैसे प्रतिप्राणा सती थी वैसे ही चरित्र गौरवमें भी अत्यन्त सन्मान योग्य थी, वह हृदयांशमें भी राजेश्वरी थी। क्षमा, विनय सौजन्य और कर्तव्यनिष्ठा ये उसके मनोहर चरित्रके सुंदर अलंङ्कार थे, वह अतुल ऐश्वर्यवान महाराजाकी महाराणी थी, फिर भी अन्य साधारण स्त्रियोंके समान विलास सुखकी भीखारिन नहीं थी। अंतःकरणकी सब प्रकारकी पवित्रता यही उसके विलासका विषय था, उसका प्रफुल्लित पुष्पके समान कोमल हृदय धार्मिकताके दृढ कवचमें आच्छादित रहता था। वह एक महातपस्विनी के समान तेजस्विनी थी। अधर्मकी छाया देखकर नारीनामधारिणी तारा भूखी सिंहनके समान किंवा पांउसे दबी हुई रक्त नेत्रवाली नागिनके समान अभिमानसे तर्जन गर्जन करती थी। महा प्रतापी सत्यवादी महाराजा हरिश्चंद्र इस साध्वी देवीके सहवाससे स्वर्गीय सुख प्राप्त करनेको भाग्यशाली हुआ था, जो सुख और शांति पृथ्विकी एकाधिपत्यतासे भी वह प्राप्त नहीं कर सका था। यह सत्य है कि संसारमें मनुष्य दो कारणोंसे सुखी हो सकता है। एक निष्कपट भावसे धर्मकी सेवा करनेसे और दूसरा सुशीला प्रेममयी भार्याके संसर्गसे। हरिश्चंद्र केवल सौभाग्यके समयमें ही देवीके सहवाससे सुखी नहीं हुआ

किन्तु भारी विपत्तिके समयमें भी देवीके पवित्र हृदयके सुखका अधिकारी हुआ
। ससारमें उस सुखकी तुलना करना कठिन है। पतिप्राणा तारामती अनुकूल
मीके सहवासमें परम सुखसे समय निर्गमन करती थी; किन्तु संसारमें सर्वदा सुखसे
ा कभी भी सम्भव नहीं। सुखके पीछे दुःख और सम्पत्तिके पीछे विपत्ति आ-
मनुष्यकी आशाओंका नाश करती है। राजराणी तारामतीके भाग्यमें भी इस
त्वकी जगत्पद्धतिमें कुछ भी भेद नहीं पडा। उदयास्त यह संसारका अविचल
म है; किन्तु तारामतीके अनुसार अति शोकजनक उदयास्त संसारमें बहुत कम
ा है। सत्यवादी हरिश्चंद्रने विश्वामित्रके पास सत्यपाशमें बंधकर राज्य ऐश्वर्य
तिका दान कर दिया था। जब हरिश्चंद्रके पास कुछ भी नहीं रहा तब अतःपुरमें
। और विश्वामित्रको दान देनेकी बात तारामतीसे कही। तारामतीने दैवी इच्छा
आयी हुई विपत्तिकी बात स्वामीके मुखसे सुनी। एक पलके पहिले जो राजराजे-
। थी, वही दूसरी पलमें भीखारिन हो गई। इस प्रकारकी अकस्मात् विपत्ति आने-
भी तारामती स्वल्प भी अधीर न हुई। सामने उत्साह पूर्वक प्रफुल्ल हृदयसे पतिकी
त—प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये तत्पर हुई। उसने विपत्तिको विपत्ति नहीं समझा क्योंकि
जानती थी कि इस संसारमें सुखसम्पत्ति मनुष्यके लिये सदैवके लिये नहीं है।
ामतीके हृदयमें सामान्य स्त्रियोंके समान दरिद्रता नहीं थी, जो उसके हृदय
अत्यन्त महत्ता नहीं होती तो संकीर्ण हृदयकी स्त्रियोंके समान उसकी भी दु-
ा होती। कदापि वह चित्तकी दुर्बलतासे शोक व मोहमें पडकर रुदन करती,
ापि वायुके वेगसे जैसे वृक्ष भूमिमें गिर जाते हैं वैसे ही वह भी भूमिपर गिरकर
ो आवाजसे क्रंदन करती, कदापि वह मस्तक पर हाथ मारकर विश्वविधाताको
। देती, कदापि वह स्वामीको ऐसी दानशीलताके लिये उन्हें कठोर शब्द कहती,
तु तारा पतिप्राणा व परम धार्मिक थी। वह प्राण जानेपर भी ऐहिक सुखके
ये धर्मविरुद्ध कार्य करनेको उद्यत नहीं हुई। सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र अपने
नन्दपूर्ण सुखमय गृहमेंसे बाहर नीकला, उसके साथ सती तारामती भी अपने बाल-
रोहिताश्वको लेकर निकली। जैसे विद्युत् मेघका और कौमुदी चंद्रका अनुगमन
ती है वैसे ही पतिप्राणा तारामती भी सुखसम्पत्तिसे आशा छोडकर पतिकी अनु-
मिनी हुई। इसमें कुछभी सन्देह नहीं कि सती स्त्रियोंका यही परम धर्म है।

सती तारामती राजा हरिश्चंद्रकी रुपवती गुणवती और प्रेमवती पत्नि थी।
सका हृदय महान् व मधुर था। उसकी कर्तव्यबुद्धि अचल थी और निरवधि पति-
केनी थी। वह सामान्य स्त्रीके समान अपने सुखोंमें निमग्न नहीं थी। स्वामी कैसे

सुखी हो? स्वामीका कैसे इस लोक और परलोकमें कल्याण हो वह उसी बातका विचार किया करती थी। उस विचारसे उसे जो सुख होता था वह अन्य किसी प्रकार नहीं होता था। आज इस विपत्तिके आपड़नेसे उसका समस्त स्वरुप मट्टीमें मिला हुआ है। आज वह अत्यन्त दुःखसे दुःखित हो रही है। फिर भी अपने पतिके हितका विचार कर रही है। हरिश्चंद्रके ऊपर उसकी अपूर्व भक्ति थी, जो भक्ति दुर्बलको बल, निराश्रितको आश्रय, असहायको सहाय और मृतकको जीवन देनेवाली है। भक्ति यह असमर्थको समर्थ बनाती है, अगतिवालोंको गति देती है और जन्मांधको दिव्य चक्षु देती है। वास्तविकमें वैसी उत्तम भक्ति एक प्रकारकी शक्ति है। उस शक्तिके बलसे ही आजन्म सुखोंको भोगनेवाली राज्यवैभवमें लालित पालित हुई कोमल शरीरकी महाराणी तारामती स्वामिके भयंकर दुःखकी भागिनी हुई।

हरिश्चंद्र पत्नि और पुत्रको लेकर वाराणसी—काशी गया। उसने एक मासमें विश्वामित्रको दान पर दक्षिणा देनेका वचन दिया था, वह मास पूर्ण हुआ; किन्तु हरिश्चंद्र दक्षिणा नहीं दे सका। विश्वामित्र उसके पास जाकर दक्षिणा मांगने लगा; किन्तु हरिश्चंद्रके पास दक्षिणा देने योग्य धन नहीं था। जिससे हरिश्चंद्र दक्षिणाका ऋण चूकानेके विचारसे अग्निमें जलनेको तैयार हुआ। यह देखकर सती तारामती अपने पतिको गद्गद् कंठसे कहने लगी कि "महाराज! चिंता छोडकर सत्यका पालन करें। जो मनुष्य सत्यका पालन नहीं करता उसके ऊपर परमात्मा कभी भी प्रसन्न नहीं होते। मनुष्यने अपने वचनका पालन करना उसके समान एक भी धर्मकार्य नहीं है। जिसका एक भी वचन मिथ्या जाता है उसके समस्त धर्मकर्म निष्फल होते हैं। धर्मशास्त्रमें लिखा हुआ है कि सत्यवचन ज्ञानियोंकी पहिचानका एक मात्र साधन है। हे राजन्! सहस्रों अश्वमेघ और राजसूय यज्ञ करके सफलता मिलानेवाला मनुष्य यदि मन वचन किम्वा बुद्धिसे एकवार भी मिथ्या आचरण करता है वह धर्मभ्रष्ट होता है। इतना कहकर तारामती रुदन करने लगी। वह स्वामिके धर्मनाशका समय समीपमें आया हुआ देखकर अपनेको मन ही मन धिक्कारने लगी। उसने विचार किया कि मेरे समान इस जगत्में भाग्यहीन कोई भी स्त्री नहीं है। बहुत समय पर्यंत स्वामीके सांत्वन वाक्य सुनके रुदन बंध करके वह गम्भीर भावसे कहने लगी "हे नाथ! साधु पुरुष पुत्रकी अभिलाषासे विवाह करते है। मुझे पुत्र हुआ है इस लिये मुझे बेचकर ब्राह्मणको वचनसे दान किया हुआ दक्षिणाका द्रव्य दें। अहा! धन्य तारामती! आपके नारी जन्मको भी धन्य है! और आपकी निःस्वार्थ पतिभक्तिको धन्य है! आपने सहधर्मिणीके नामको सुफल किया है। अवश्य आप रमणीओंकी शिरो-

मणि हो। आपकी यह मधुर वाणी रमणीओंके हृदयमें सुवर्णाक्षरसे अङ्कित रहनी चाहिये। वास्तविकमें आपने सत्यका महिमा जान लिया था। विपत्तिसे भरी हुई और अरण्यके वल्कल वस्त्रोंको धारण करनेवाली पतिप्राणा सती सीताको हमने देखा है, मृत पतिको गोदमें लेकर वनवासिनी अश्रुपूर्णनयना सती सावित्रीको देखा है, पतिविरह दुःखिता अलौकिक शक्तिधारिणी सती दमयन्तीको महा अरण्यमें दुष्ट शिकारीके सामने देखा है और सहस्रों हिंदु स्त्रियोंको पतिकी जलती हुई चितामें आत्माहुति देते देखा है; किन्तु आपके समान आत्मविक्रय करके पतिको ऋणके बन्धनमेंसे छुडानेवाली स्त्रीको संसारमें हमने नहीं देखा।

हरिश्चंद्र पत्निके मुखमेंसे उसके बेचनेकी बातको सुनकर बहुत ही दुःखित हुआ। महति मर्मवेदनासे उसका हृदय छिन्न होने लगा; अपनी विपत्तिका आश्रय, संपत्तिकी श्री, संसारकी लक्ष्मी और हृदयकी देवीको तुच्छ धनके लिये विक्रय करनी पडेगी! इस महान् दुःखसे उसका हृदय दग्ध होने लगा यह देखकर सती तारामती कहने लगी कि "प्राणनाथ! मैं जो कह रही हूं उसे शिघ्र करो"। सतीका ऐसा आग्रह देखकर हरिश्चंद्र कातरस्वरसे कहने लगा कि हे भद्रे! मैं बहुत ही नराधम हूं। मैं तुम्हें विक्रय करुं ऐसा यदि मुखसे वाक्य भी उच्चारण करुं तो वह नरघातकोंके समान अपनेको घोर कर्म करनेवाला सिद्ध करूंगा" इतना कहकर बहुत ही दुःखित हुआ; किन्तु तारामतीके आग्रहसे हरिश्चंद्र लाचार होकर अपनी पत्निको बेचनेके लिये नगरमें गया। और कौशिक नामके ब्राह्मणके घर पर सती तारामतीको और पुत्र रोहिताश्वको बेचा। तारामती अपने पतिको ऋणमुक्त करनेके लिये अपने पुत्र समेत बीकी! इस प्रकार सतीने स्वामीके लिये आत्मसुख त्याग करनेका निश्चय किया। अहा! यह कैसी अद्भुत पतिभक्ति! कैसा अगाध पतिप्रेम! पतिके लिये पत्निके आत्मसुख त्यागका सुन्दर दृष्टांत इससे अन्य कहांपर है? अवश्य ससारमें कोई भी स्त्री स्वामीकी इस प्रकार सेवा नहीं कर सक्ती! संसारमें कोईभी स्त्री स्वामीको ऐसे मन वचन और बुद्धिसे चाहनेको समर्थ नहीं हुई और किसी भी स्त्रीने स्वामीके लिये ऐसा निःस्वार्थ आत्मसुखका त्याग नहीं किया है। स्वामीभक्तिका ऐसा आश्चर्यजनक दृष्टांत बहुत ही दुर्लभ है! सतीके सिवाय ऐसी तेजस्विता दिखानेकी अन्य कीसीको भी हिम्मत नहीं हो सक्ती। तारामतीका हृदय कितना महद् व गम्भीर होना चाहिये। वह उस गम्भीर हृदयका प्रेम-भक्ति और विश्वास कितना गहरा होना चाहिये। हम लोग उस गहराईका अनुभव ही नहीं कर सक्ते। यथार्थ रीतिसे देखा जाय तो ता-

रामतीका हृदय एक आश्चर्यमय पदार्थ होना चाहिये। तारामती सती है! देवी है! और जगत्की लक्ष्मी है! तारामती पतिपरायणताकी गवाही है! और वास्तविकमें रमणीकुलका भूषण है। तारामती और राजपुत्र रोहिताश्वको मूल्यसे लेकर कौशिक ब्राह्मण अपने घरकी ओर चला। तारामती ब्राह्मणके वहां जानेके समय अपने प्राणपति हरिश्चंद्रको प्रदक्षिणा कर जानुसे नामकर अश्रुसे व्याकुल और दीन होकर कहने लगी कि "यदि मैं ने कुछ दान किया हो, यदि मैं ने हवन किया हो और यदि ब्राह्मणोंको तृप्त किये हो तो उन पुण्योंके द्वारा हरिश्चंद्र फिर मेरा पति हो।" हा! अयोध्याकी महाराणी और राजकुमार थोडे ही पैसेमें बीक गये! हा! भाग्य! क्या यही तेरा गौरव है? तुझे हझारवार धिक्कार है। वह नहीं जानता है कि सौभाग्यके समय भी सुखका गृह जलकर खाख हो जाता है। और आनन्दका बाजार टूट जाता है। ये अंध मनुष्य उसका कुछ भी मर्म नहीं समझते! जब तारामती ब्राह्मणके घरपे जानेके लिये स्वामीसे अलग हुई उस समय वह धैर्य नहीं रख सकी। वह अयोध्याकी रानी होकर भिखारिन हुई थी, फिरभी उसको एक दिनके लिये भी धैर्यहीन नहीं देखी थी; किन्तु अब उसका धैर्य नहीं रहा, उसकी छाती फटने लगी और चित्त अत्यन्त व्याकुल होने लगा; वह वस्त्रके आंचलको मुखपर रखकर रुदन करने लगी। सती तारामती सब प्रकारके दुःखोंको सहन कर सकती थी, जागरण करके क्षुधाको सहकर पतिको ऋणमुक्त करनेमें कुछ भी क्लेश नहीं मानती थी। इतनाही नहीं, किन्तु पतिके लिये प्राण अर्पण करनेमें भी आनन्द मानती थी, वही इस समय रुदन करने लगी। वह क्यों रो रही है? वह सब प्रकारके दुःखोंको सहन कर सकी थी; किन्तु पतिविरहका दुःख उसे सहन नहीं हो सका। यही कारण है कि आज महारानी, नहीं नहीं भिखारिन, तारा अधीर होकर क्रंदन करने लगी। वह इतने दिन तक केवल पतिके लिये ही जीवन धारण कर रही थी और पतिजीवनमें ही जीवित रहकर उसकी सेवा और भक्ति करके आनन्द मान रही थी, वही आज पतिसे पृथक् होकर दुःखसे रुदन करने लगी। मानो अभी ही उसकी मृत्यु आई है ऐसा उसको मालुम होने लगा। यह मृत्युका दुःख उसके अंतरात्माको जलावे ऐसा दुःख किसीने कभी भी सहन नहीं किया होगा। ऐसी विपत्तिमें कोई भी मनुष्य स्थिर नहीं रह सकता, ऐसे तीव्र विषसे जर्जरित होकर कोई भी रमणी जीवित रहनेकी आकांक्षा नहीं कर सक्ती ऐसा मरण क्या भयानक मृत्यु है? जी, हा! इस मृत्युसे हड्डी चूर हो जाती है, हृदयकी ग्रंथियां टूट जाती है और विश्व—ब्रह्मांड जलकर खाख हो जाता है। जिस रमणीका प्राण कण्ठ पर आया हो वह रमणी ऐसे

भयंकर मृत्युके सामने खडी नहीं रह सकती। हाय! सतीके लिये पतिवियोगरूप मृत्यु कैसा भयंकर है!

प्रिय भगिनोगण! इस शोचनीय दृश्यको एकवार देखिये! देखिये! सामने वह एक वृद्ध ब्राह्मण अयोध्याकी महाराणीको एक दासीके समान मोल लेकर अपने घरपर ले जा रहा है! वह साध्वी देवी तारामती अपने पतिको ऋणमुक्त करके स्वयं दासीपनेकी शृंखलामें बंधकर दासीपन करनेको जा रही है। उस आश्चर्यमय दृश्यको आप आपने हृदयमें एकवार अंकित कीजिये! और फिर देखिये कि सती-हृदयका पवित्र माधुर्य, सती-चरित्रका अनुपम सौन्दर्य संसारमें कैसा पवित्र, कैसा महिमान्वित व कैसा श्रेष्ठ है? सती तारामतीने अपने चरित्रके अनुपम सौन्दर्यमें भूवनमोहिनीका भेष धारण किया है! प्रिय भगिनीगण! आप एकबार इस पति-प्राणा भूवनमोहिनो और धर्मानुरागिणी ताराका लक्षपूर्वक अवलोकन करें! तारामती सुखशय्यामें और ऐश्वर्यकी छायामें लालितपालित हुई थी और राजराणी होकर भी उसी ऐश्वर्य सुखकी भोक्ता हुई थी। उसने आज पातिव्रत्य धर्मकी रक्षाके लिये महान् दुःखमें प्रवेश किया! कितनीक स्त्रियां अपने सुखके लिये पतिको ऋणजालमें बांधनेमें भी विचार नहीं करती; तब यह धर्मप्राणा पतिहितैषिणी तारामती स्वयं बीककर पतिको ऋणके बन्धनमेंसे मुक्त करनेमें समर्थ हुई। कैसा गहरा धर्मभाव! तारामति आपको धन्य है! आपके समान पतिव्रता और धार्मिक स्त्रीका संसारमें होना अत्यन्त दुर्लभ है!!

उस ओर सत्यवादी हरिश्चन्द्र अपने प्राणाधिक पत्नि पुत्रके वियोगसे अत्यन्त शोकातुर होकर अपने भाग्यको अत्यन्त धीःकार देने लगा और अत्यन्त सन्तापसे हाहाकार करता हुआ विलाप करने लगा कि "वृक्षकी छाया कभीभी वृक्षको नहीं छोडती, फिर यह सत्यशील गुणवाली मुझे छोड़कर कैसे जा रही है? पश्चात् पुत्रसे कहताहै कि-"पुत्र! मुझे छोड़कर तू भी चला जायगा? फिर राजा उस ब्राह्मणके प्रति कहता है कि हे महाराज! मुझे जैसा दुःख स्त्री पुत्रके वियोगसे हो रहा है वैसा राज्य त्यागसे और वनवाससे भी नहीं होता था।" इस प्रकार विलाप करते हुए राजाको छोड़कर ब्राह्मण तारामती और उसके बालकको साथमें लेकर चलता हुआ। अहो! दैवकी विपरीत गती! पीछे हरिश्चन्द्रने स्त्री पुत्रको बेचकर प्राप्त किये हुए पैसे भेषधारी विश्वामित्रको दिये; किन्तु कैसे दुर्भाग्यकी बात है कि उतने पैसेसे ऋण पूर्ण नहीं हुआ; जिससे ऋषि क्रोधायमान होकर राजाके प्रति भय व तीरस्कार प्रदर्शीत करने लगा। हरिश्चन्द्रने अन्य कोई उपाय नहीं देखकर प्रवर नांवके एक चाण्डाल (भंगी) के घरपर स्वयं बीक कर ब्राह्मणका ऋण पूर्ण किया। उस भंगीने उसको

काशीजीके श्मशानमें मुरदे जलानेके करको वसुल करनेके कार्यमें नियत किया। हरिश्चन्द्र सत्यके निमित्त भंगीकी गुलामगीरी स्वीकार कर ऋणके बन्धनसें मुक्त हुआ।

सती तारामती ब्राह्मणके घरमें जाकर अपने पातिव्रत्यकी रक्षा समेत दासीका कार्य करने लगी। वह अपने मनकी वेदनाको मनमें छुपाकर प्राणाधिक कुमार रोहिताश्वका मुख देखकर अतिकष्टसे दिन व्यतीत करने लगी; किन्तु पतिवियोगसे उसका अन्तर सदैव जलने लगा। उसने पतिविरहके दुःखसे जीवनकी आशा छोड दी। आज तारामतीको विश्व–ब्रह्मांड महाश्मशान जैसा मालूम होने लगा। आज उसका हृदय अत्यन्त दुःखानलसे दग्ध होने लगा। वह आज कुछभी नहीं देख सकती, मुखकी बात पर्यन्त कहनेकी हीम्मत नहीं रही। उसे यह संसार भय दिखा रहा है। और हाथमें तलवार लेकर मारनेको उद्यत हुआ हो ऐसा मालूम होने लगा! पतिविरहमें शोकातुर विचारी तारामती आज भूमिमें गीरकर भूमिके साथ मिलजाना चाहती है। उसे संसार घनघोर अन्धकार जैसा मालूम होता है, उसका हृदय विदीर्ण हुआ जाता है, और उसका प्राण निकला जा रहा है। तारामती रमणी है, रमणीको अपना प्रेमपात्र प्राणके समान है, स्नेह–प्रेमकी वस्तुको छाती पर रखकर प्रेम किया जाता है। जैसे जलमें जल मिलता है, वैसे वे भी प्रेमकी वस्तुमें स्वाभाविक रीतिसे मिल जाते है। जिससे प्रेमी, अपने पात्रको अपने नेत्रसे बाहर नहीं रख सक्ता यही कारण है कि पतिविरह रमणीके हृदयमें जहर जैसा कार्य कर जाता है। विरह रमणीके लिये असह्य है। रमणी विरहसे सुखकर मर जाती है। तारामतीने अपने जीवनमें कभी भी पतिवियोगका दुःख नहीं भोगा। आज वह भयंकर दुःखसागरमें डूब रही थी। तारा विपत्तिके ऊपर विपत्तिको देखकर भयभीत हो विचार कर रही थी कि उसके जैसी भाग्यहीन अन्य एक भी स्त्री नहीं होगी। सौभाग्यके समय उसने जो जीवनधन स्वामीकी सेवामें अर्पण किया था, वही आज दुःख और विपत्तिके समय स्वामीकी सेवा करनेमें उपयोगी नहीं हुआ। इसी दुःखसे उसका हृदय शोकातुर हो ऊठा। तारामती जिस ब्राह्मणके घरपर बीकी थी, वे ब्राह्मण और ब्राह्मणी वास्तविकमें निर्दय व घातकी स्वभावके थे। वे उसे दिन रात कठिन कार्य कराते थे एक पल भी उसे आराम नहीं लेने देते; फिर भी उसकी कोई साधारण कसुर निकालकर उसको गालियोंकी वर्षा करते थे और तिरस्कार करते थे। वे उसे पेटपूर्ण भोजन भी नहीं देते थे, इस प्रकार उसे बहुत दुःख देते थे। तारामतीको पतिविरहकी महती वेदना पर यह वेदना और भी असह्य थी।

तारामतीके दुःखोंकी परिसीमा इतनेसे ही पूर्ण नहीं हुइ। जिसके मुखके सामने

देखकर उसका चित्त शान्त होता था, जिसको छातीके साथ दबाकर अपने दग्ध हृदयको व शान्त करती थी वही उसके स्नेहधन रोहिताश्वने उसके दग्धहृदयमें ओर भी आग लगा दी ! उससे तारामतीको संसार अन्धकारमय दिखाइ देने लगा ! कुमार रोहिताश्व बगीचेमें पुष्प तुलसी प्रभृति लेनेके लिये गया था वहांपर उसको एक जहरी सांप काटनेसे उसी स्थानपर वह शव समान हो गया । दुःखिनीका एक मात्र आधार अमूल्य धन नष्ट हुआ ! देखतेर निर्दयकालने एक कोमल पुष्पका प्राण हरणकर लिया ! देखतेर में शरद् पूर्णिमाके प्रकाशित तेजस्वी चन्द्रको काले मेघोंने आच्छादित कर दिया ! हा ! यह संसार बहुत ही विचित्र है !

तारामती पुत्र रोहिताश्वके मरणके दुःखकर सम्वादको सुनते ही शुद्धिहीन होकर भूमिपर गीर पडी । जब कुछ समयके पश्चात् शुद्धि आई, तब अत्यन्त रुदन करने लगी । पीछे पुत्रके शवके समीप जानेकी आज्ञा मांगनेपर दयाहीन कौशिकने उसे आज्ञा नही दिया । जब तारामतीने बहुत कुछ आजीजी की तब आधीरातपर सब कार्य कर लेनेपर उसे जानेकी आज्ञा दी। तारामती दौडती हुई तपोवनमें गई । वहांपर पुत्रके शवको देखकर उसके शिरमें चक्कर आने लगे और हृदय विदीर्ण होने लगा । उसने देखा कि अभागिनीका फूटा हुआ भाग्य सर्वथा फूट गया हैं । तारामती दुःखकी उपद्रवी हवामें केलकी नांई फिर बशुद्ध हो भूमिपर गिर गई। बहुत समयके पश्चात् वह शुद्धि पाकर विलाप करने लगी । उसके करुणामय महारुदनसे तपोवन प्रतिध्वनित हो गया; जिसे सुनकर वनपक्षी भी चिल्लाने लगे । हा! आज महाराणी नहीं नहीं भिखारिन तारामतीका सर्वस्व नष्ट हो गया! सब कुछ जाने पर भी वह प्राणधन पुत्रको समीपमें देखकर वनचारिणीकी माफिक आज पर्यन्त जीवन धारण कर रही थी । हा भाग्य ! आज दुःखिनीके धन, एक मात्र पुत्ररत्नको भी उसके हाथसे छीन लिया । अभागिनि तैरे सुखका बाजार आज एक साथ उठ गया ! बिचारी तारामती अपने पुत्रका मुख देखकर आशासे दिन व्यतीत कर रही थी वह आशा भी निष्फल गई । शिरपर दुःखके पर्वत आपडे । इस आये हुए दुःखसे पुत्रको गोदमें लेकर अत्यन्त हृदयविदारक क्रन्दनकर रुदन करने लगी ! हा ! यह क्या जूल्म हो गया! हाय ! हाय! अब मैं निराधर हो गई ! मैरा सर्वस्व नष्ट हो गया! हाय! अब मैं क्या करुंगी ? मैं अब कहां जाउंगी । ओ दुष्ट सांप ! तेने ऐसे सुकुमार निरपराधी बालकका जीव क्यों लिया ? इससे तुझको क्या फल मिलेगा ? क्या विनापराधी प्राणियोंको भी कष्ट देना यह क्रूर प्राणियोंका स्वभाव है ? सर्पराज ! तू कहां है यहां आकर मुझे भी डंस ले ! जिससे हमें माता पुत्रमें आधिक

अन्तराय न पडे ! प्रियपुत्र ! एकवार तो बोल ! मुझे निराधार छोडकर कहां जाता है ? तैरे विना अन्य किसका सुन्दर मुख देखकर तैरे पिताके वियोग दुःखको भूलुंगी ! पुत्र ! उठ ! एकवार मुझे माता ! माता ! कहकर प्रत्युत्तर दे । अन्यथा मैं भी तैरे पीछे आती हूं। इस प्रकार विलाप करती हुई उसे श्मशानमें उठा लाई और फिर वैसेही वार २ क्रन्दन करने लगी। उसी श्मशानमें हरिश्चन्द्र भी था; किन्तु बहुत समय और दोंनोकी विचित्र स्थिति हो जानेके कारण एक दूसरेको पहिचान नहीं सके। विलाप करती हुई स्त्रीको देखकर वहां हरिश्चन्द्रने आकर पुछा कि "तू कौन है ? इस अर्धरात्रिके समय कहांसे आई है ? क्या मैरे मालिकका कर दिये विना ही तू अपने पुत्रके शबको जलाना चाहती है ? मैं अपने मालिकका कर वसुल करनेके लिये ही यह तलवार लेकर यहांपर पहेरा दे रहाहूं। इसलिये प्रथम कर देकर पीछे अपने पुत्रको जलानेका विचार करना ! तारामती इन वचनोंको सुनकर निःश्वास डालकर बोली कि मैरे पास कर देनके लिये कुछ भी नहीं है इस लिये दया करके मुझको अपने पुत्रको जलानेकी आज्ञा दो ! हाय ! समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ ऐसे सत्यवादी हरिश्चन्द्र राजाकी स्त्री कहां ? और यह भयंकर दशा कहां ? हा ! इस समय मुझे अपने पुत्रको जलानेके लिये श्मशानमें कर देनेकी भी शक्ति नहीं है ! अहा ! दैवकी गति ही विचित्र है ! हे देव ! जो कुछ आप चाहे सो करें !

ऐसे हृदयविदारक वचनोंको सुनते ही राजा मूर्छित हो भूमी पर गिर गया ! बहुत समयके पश्चात् शुद्धि आई तब स्त्रीके सामने देखकर फिर मुर्छांगत हुआ, कुछ समयके पश्चात् जब फिर चैतन्य आया तब हरिश्चन्द्र दुःखित हो शोक करने लगा। पुत्र ! तुं कहांपर अन्तर्ध्यान हुआ ? दयाहीन होकर अपनी माताको क्यों नहीं देखता ? प्रियपुत्र ! एकवार मनोहर आनन्द देनेवाली मधुरी कोमल वाणी बोल ! तैरी इस माताको धन्य है कि उसे आज दिन तक तैरे वचन सुननेका सुख प्राप्त था; किन्तु मैंने प्रथम तेरे वचन सुने थे उन्हें ही स्मरण कर इतने दिन निकाले ! इस समय तैरा मिलाप हुआ; किन्तु एक भी वचन नहीं बोलता। जीवन आधार ! अपने पिताकी सामने एकवार दृष्टि कर ! अन्यथा थोड़ी ही देरमें स्वर्गमें मिलुंगा। इस प्रकार बहुत कुछ विलापकर निश्वास डालती हुई अपनी स्त्रीके प्रति कहा कि "प्रिये ! तू अपने जिस प्राणनाथको स्मरण कर रही है वही वज्र हृदयका यह मैं हरिश्चन्द्र हूं ! हे प्रभो ! मैरा राज्य कहां ! और यह चाण्डालकी नौकरी कहां ? मैरे समान कोई भी पृथ्वीपर दुःखी नहीं होगा। प्रिये ! तू मुझे प्राणसे भी प्रिय है और यह मैरा पुत्र भी मुझे प्राणसे अधिक प्रिय हैं; किन्तु मैं अपने मालिकका कर छोड नहीं

सक्ता हूं" जो मनुष्य अपने शरीर व स्त्री पुत्रादि आत्मियोंके निमित्त अपने मालिकका अहित करता है वह महाअधममें अधम है "अत एव तू जाकर ब्राह्मण या अन्य किसीके पाससे याचना कर मैरे पोषण करनेवाले चाण्डालका कर दे कि जिससे मैरे धर्मकी रक्षा हो।

तारामती अपने स्वामीके कथनानुसार धैर्यका त्याग नहीं करके काशी नगरीमें चली। रास्तेमें किसी मरेहुए बालकको देखा उसने उसे दयासे उठा लिया और देखने लगी। उतनेमें पीछेसे सिपाही लोग दौड़ते आये उन्होंने उसे पकड़ लिया। वे कहने लगे के यही स्त्री राजाके पुत्रको मारनेवाली है इसलिये उसे पकड़कर राजाके पास ले चलना चाहिये। इस प्रकार कहकर ताराको राजाके पास लाये; राजाने समझ लिया कि इसी स्त्रीने मैरे बालकको मारा है इसलिये उसे फांसीकी सजा दो! उसे फांसी चढाने के लिये कालसेन चाण्डालको हूक्म हुआ उसने अपने नौकर हरिश्चन्द्रको आज्ञादी। हरिश्चन्द्र जानता था कि यह मैरी स्त्री निरपराधी है; फिरभी अपने मालिककी आज्ञाका भंग कैसे हो? ऐसा विचार कर तारामतीको मारनेके लिये तलवार खोला उस समय स्त्रीने कहा कि "प्राणेश्वर! आपके हाथसे डाली हुई तलवार मुझको गलेपर मोतिकी मालाके समान मालूम होगा। इसलिये विचार छोड़कर तुरन्त घाव कीजिये! हरिश्चन्द्रने कहा कि मैने निष्कपट होकर अपने मालिककी आज्ञाका पालन किया है जिससे परमेश्वर अपना कल्याण करेंगे। हम लोग शीघ्र ही स्वर्गमें जाकर मिलेंगे। यह तलवार अपने वियोगको अधिक समय तक सहन न कर सकेगी" इस प्रकार कहकर हरिश्चन्द्र जैसे तलवार के घा करनेको जाता है, वैसेही साक्षात् सर्व देवोंने विश्वामित्र समेत वहां आकर राजाका हाथ धर लिया और कहा कि राजन्! तुमने प्राण जाने पर्यन्त धर्मका त्याग नहीं किया जिससे तुम्हे धन्यवाद है! ऐसा कहकर उन्होंने उसे उसका राज्य और कई प्रकारके वरप्रदान दिये। पुत्रको भी सांपके विषसे मुक्त किया। रोहित स्वस्थ हो खडा हुआ; जिससे सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र और सती तारामती अत्यन्त प्रसन्न हुए, देवताओंको नमन कर अपनी राज्यधानीकी और गये और आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे। अहा! इस दम्पतीकी सत्यताके लिये कैसी टेक! सतीशिरोमणि तारामति! आपको और आपके निर्मल पतिप्रेमको धन्य है! आपने अपने पतिके सत्यधर्मकी रक्षाके लिये अपने प्रियपुत्र समेत बीकना स्वीकार किया, अपने पतिके निमित्त ही खानेपीनेकी और वस्त्र प्रभृतिके अभावकी वेदनाको स्वीकार किया, पुत्र वियोगको सहन किया, अन्तमें पतिके हाथसे मरनेको तैयार हुई, इतने२ कष्टोंको सहन करनेपर भी उसका पतिके प्रति प्रेम कम नहीं

हुआ। यह साध्वी स्त्री परघर बीककर दासी बनी थी फिरभी उसने अपने पातिव्रत्यका भंग नहीं होने दिया। वैसेही पतिके प्रति उसे मनसे भी अभाव नहीं आया। प्रेम व पातिव्रत्यमें वह दृढ रही थी। अहा! साध्वि! तेरे जन्मको धन्य है। तैंने अपने धर्मकी यथार्थ रक्षा की पतिके वचन-पतिकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करानेके कार्यमें सहायता करना आपने अपना कर्तव्य समझा ऐसी पवित्र स्त्रीको धन्य है!!

कौशल्या।

यह सतीशिरोमणी अत्यन्त स्वरुपवती एवं दयावती थी। उसका विवाह अयोध्याधिपति राजा दशरथके साथ होने में केवल सात दिनका विलम्ब था उस समय एक दिन रावणने ब्रह्माजीने पुछा कि मैरा मरण किसके हाथ होगा। उसके जबावमें ब्रह्माजीने कहा कि तैरा मरण दशरथजीके पुत्र रामचन्द्रसे होगा। यह सुनकर वह अत्यन्त चिन्तातुर हुआ और कौशल्याको दशरथके साथ विवाह पहिले ही मार देनेका निश्चय किया। यह सम्वाद नारदमुनिने अयोध्याजी जाकर दशरथके पिताको कहे। जिससे वे अत्यन्त चिन्तातुर हुए। कौशल्या और दशरथको प्रधानके साथ एक नावमें बिठाकर समुद्रके मध्यमें कोई न जाने उस प्रकार रखनेका प्रबन्ध किया; किन्तु उस बातको रावणने जान लिया। समुद्रमें जाकर उसने नावमेंसे कौशल्याजीको उठा लिया और नावका नाश किया। कौशल्याको एक बेटमें संदुकमें बंदकर माछीको सौंपी। रावण शत्रुके क्षयको समझकर बहुत ही प्रसन्न हुआ; किन्तु ईश्वरेच्छा बलियसी है उसकी गतिको कोई नहीं जान सक्ता "जिसकी ईश्वर रक्षा करना चाहे उसका कोई भी अनिष्ट नहीं कर सक्ता"। नौकाका नाश हुआ, अन्य सब कोई डूब गये; किन्तु दशरथजीको नौकाकी एक पटडी हाथ लगी; उसके सहारे जिस बेटमें कौशल्याजीकी पेटी थी उसी बेटपर पहुंच गया। एक समय उस बेटमें माछीमार खुराककी खोजमें घुम रहा था; उसकी द्रष्टी उस पेटीके ऊपर पड़ी उसने उसे खोला तो भीतरसे कौशल्याजी निकली। उस समय दशरथ भी वहांही मौजुद था दोनों उसे देख प्रसन्न हुए और आश्चर्यको प्राप्त हुए। उतनेमें वहां पर नारदजी आ पहुंचे उन्होंने दशरथ व कौशल्याजीको गान्धर्व विवाह कराकर आशीर्वाद दिया कि—"तुम मङ्गलमय दम्पतीके घरपर त्रिभुवनपति रमारमण राम रुपसे उत्पन्न होंगे" अब तुम्हें किसी

कारका भय नहीं है थोड़े ही समयमें तुम लोग अयोध्याजी जाओगे। इस प्रकार
र्य दे दोनोंको पेटीमें विठाकर जैसे पेटी थी वैसेही बंदकर चलते हुए।

अहा! ईश्वरकी इच्छाके आगे किसीका कुछ नही चलता। यह दम्पती जिस
ग्नमें विवाह करनेवाले थे उसी लग्नमें विवाहित हो चुके। रावण मनमें समझ रहा
कि दशरथका नाश हुआ है और कौशल्या पेटीमें बंद है; किन्तु उसे मालूम नहीं
ईश्वरकी जैसी इच्छा हो वैसाही होता है। उसमें कोई भी बाधा देनेके लिये समर्थ
हीं है। पीछे एक दिन रावणने सभा समक्ष ब्रह्माजीके पासमें हंसकर कहा कि "मैंने
पका वचन व्यर्थ किया। त्रिलोकीमें मेरे समान कौन बलवान है? मैंने दशरथको
रकर कौशल्याको कबजेमें करके विवाहका भङ्ग किया। अब मैं निर्भय हूं।
ाजीने रावणके इस गर्वयुक्त वाक्यको सुनकर कहा कि रावण! मैरा वचन व्यर्थ
हीं जा सक्ता। लिखे हुए लेख कभीभी अन्यथा नहीं हो सक्ते। उन वरवधूका
वाह हो गया है। रावणने कहा कि "यह कार्य मैंने खुद अपने हाथसे किया है
सलिये मैं नहीं मान सक्ता। यदि उन दोनोंका विवाह हुआ हो तो जो कुछ आप
गेगे वही दूंगा।" ऐसा वचन देकर रावणने उस पेटीको मंगवाया और सभा स-
त् खोलनेपर उसमेंसे दशरथ और कौशल्या निकले यह देखकर लङ्केश्वर विस्मित
आ और क्रोध करके बोला कि "जिनसे शत्रु उत्पन्न होनेवाला है उसे मैं कैसे जीवित
ने दूं?" ऐसा कहकर मारनेके लिये तलवार उठाया। जिससे ब्रह्माजीने कहा कि
तुम्हने मुझे वचन दिया है इसलिये मैं मांगता हूं कि इब दोनोकी रक्षा करो!"
ावणने कहा कि "तुम्हें और जो कुछ चाहिये सो मांग लीजिये इन दोनोंके शिर तो
वश्य काट लुंगा।" यह सुनकर कौशल्याजी कांपने लगी उन्हें दशरथने कहा कि
तुम क्यों चिन्ता करती हो? मैं शुद्ध सूर्यवंशी क्षत्री हूं। यदि वह मारनेको आ-
ा तो उसका नाश करुंगा इस प्रकार कहकर धैर्य दिया। ब्रह्माजीने वचन पा-
ा करनेके लिये आग्रह किया इतनेमें सती मन्दोदरीन आकर अपने पतिसे कहा कि
ामिन्! उसको मारनेसे क्या होगा? काल बिश्वमें सब किसीको भक्षण करता है।
कोई अपनी आयुष्यके अन्तमें मरते हैं उसमें बीचारे ये क्या कर शक्ते है?
में वड़े२ चक्रवर्ती राजा हो गये, उन्हको भी काल स्वाहा कर गया कोई भी अमर
ीं है" इत्यादि वाक्य कहे और ब्रह्माजीने अपने दिये हुए वचनको पालन कर-
े लिये अधिक आग्रह किया; जिससे रावणका क्रोध शान्त हुआ और उस दम्प-
को रावणने ब्रह्माजीको सौंपा। ब्रह्माजीने कौशल्या व दशरथको देवोंके साथ
योध्याजी भेज दिया। पुत्र और पुत्रवधूको आये हुए देखकर दशरथका पिता अ-

र्यन्त प्रसन्न हुआ। कौशल्या पतिपरायणा थी; समस्त कामनाओंका पर्यवसन अपने पतिमें करके और पतिमें प्रेमयुक्त हो आत्मालाभके लिये साधना करती थी। वह प्रियवादिनी सती पतिकी सेवाके समय दासीके समान, रहस्यालापमें सखीके समान, धर्माचरणमें भार्याके समान और भोजनके समय जननीके समान व्यवहार करती थी। इस प्रकार चलनेसे उसके उदरसे कितनेक समयपर परमपवित्र करुणामय श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए। उन्हें इस परम साध्वी देवीने यथोचित लालनपालनके साथ शिक्षा देकर सुचरित्रवान बनाये। जिस समय दशरथजीकी द्वितीय पत्नी कैकेयीके क्लेशसे अपने प्रियपुत्र श्रीरामचन्द्रने अपने पिताके वचनको पालन करनेके लिये सीताके साथ १४ वर्षकी अवधिसे वनवासके लिये जानेकी तैयारी की उस समय राजमाता कौशल्याने जो विलाप किया था उसे सुनकर कठिन हृदयके धैर्यवान् पुरुष भी रुदन करने लगे थे; किन्तु रामचन्द्रजीकी नम्र प्रार्थनासे इस धैर्यशालिनी माता कौशल्याने मातृभाव दर्शाकर रामचन्द्रको हृदयसे मिलाये और मस्तकपर हाथ रखकर आशिष दे जाने की आज्ञा दी। उस समय कौशल्याजी गद्गद् स्वरसे कहने लगी कि "पुत्र! मैं तुम्हारे निश्चयको रोक नहीं सक्ती इससे कालकी बातको प्रबल मानती हूं। तुम अपने पिताके ऋणमेंसे मुक्त होकर फिर शीघ्र लौट आना। जब तुम्हें फिर देखुंगी तभी मुझे सुखसे निद्रा आवेगी। जिस धर्मके ऊपर तुम इतना प्रेम करते हो वही तुम्हारी रक्षा करेगा" इत्यादि आशीर्वाद दे "प्रसन्नतासे जाओ! अपनी इच्छाको पूर्णकर फिर शीघ्र लौट आना" ऐसा कहकर पुत्रको आलिंगन कर विदा किया। वैसेही सीताजीको दो हाथसे आलिंगनकर कहा कि "अपने पतिकी ओरसे सदैव सत्कार मिलनेपर भी जो स्त्रियां पतिकी कष्ट दशामें उनकी सेवा करनेको तैयार न हो वे स्त्रियां इस लोक और परलोकमें असती समझी जाती है। पतिके दिय हुए अनेक सुखोंको भोगे हो, फिरभी जब पतिके ऊपर विपत्ति आती है तब असती स्त्रियां उनके दोषोंको कहा करती है और पतिका त्याग पर्यन्त करनेको ऊतारु हो जाती है। जो स्त्रियां मिथ्या भाषण करनेवाली, नेत्र प्रभृतिसे दुष्ट इंगीत करनेवाली, जारपुरुषकी सङ्गत करनेवाली, पतिके पास उदासी व क्रोधी रहनेवाली, साधारण निमित्त मिलने पर स्नेहको छोड़नेवाली या दुष्ट सङ्कल्प करनेवाली है वे असती है। कुलसे, उपकार करनेसे, विद्याध्ययन करनेसे, आभूषण प्रभृति देनेसे, अपराधोंको क्षमा करनेसे किम्वा कैद रखनेस भी असती स्त्रियां अन्यावस्थित चित्तयुक्त होनेके कारण कुलिनता प्रभृतिका विचार नहीं करके निन्द्य कार्यमें प्रवृत्त होती है। जो पतिव्रता स्त्रियां रहती है वे तो सदाचरण, सत्य, गुरुजनका उपदेश, और कुलकी मर्यादाको दृढ-

तासे पालन करके अपने पतिकी सेवाको सर्वोत्तम मानती है। स्त्रियोंके लिये धर्मके अन्य अनेक साधनोंसे पतिसेवा प्रधान व उत्तम साधन है। इसलिये मैं तुम्हें उपदेश देती हूं कि मेरे पुत्रको वनवास मिलनेपर भी तुम उसका कभीभी अपमान नहीं करना। राम धनवान हो या निर्धन; किन्तु तुम्हारे लिये तो वह इष्टदेवके समान है" प्रभृति उपदेश दिया था। कौशल्याजी पुत्रवियोगसे शोकातुर थी उतनेमें पति दशरथजीके स्वर्गवाससे और एक विपत्ति आ पड़ी इस प्रकार दुःखसागरमें कौशल्याजी पड़ी रही थी उतनेमें फिर सुखके दिन आये। परमपवित्र श्रीरामचन्द्रजी वनवासकी अवधि पूर्ण होते ही अपनी वधू समेत आकर माता कौशल्याके चरणोंमें नमे। माताने प्रेमसे आलिंगनकर आशीर्वाद दिया। उसके पश्चात् वह सुखमें दिन निर्गमनकर अपना सुचरित्र जगत्में प्रसिद्ध कर गई है। धन्य है माता कौशल्याको! उनका कितना धैर्य और कैसी पतिभक्ति। केवल स्वामीके वचनका पालन हो उसी लिये उसने रामचन्द्रके समान प्रियपुत्रको वनमें जाते नहीं रोका और पुत्र वियोगका दुःख धैर्य रखकर सहन किया। धन्य है! ऐसी स्वामिभक्ता, पुत्रवत्सला और धैर्यशालिनी सतीको कि जिसने अपना उत्तमचरित्र संसारके लोगोंको दिखाकर परम उपदेश दिया है!

कुन्ताजी-पृथा।

यह सती सुरसेन यादवकी पुत्री, वसुदेवजीकी बहिन, व श्रीकृष्णकी भूवा थी। उसका नाम पृथा था; किन्तु राजा सुरसेनने अपने मित्र कुन्तिभोज राजाको कुछ सन्तति नहीं होनेसे उसको कन्यारुपसे रखनेके लिये दी थी। उस परसे उसका नाम कुन्ती हुआ। वह बाल्यावस्थामें कुन्तिभोजकी आज्ञानुसार महर्षि, साधुसन्त प्रभृति अतिथियोंका आतिथ्य करती थी। एक समय महामुनि दुर्वासा पधारे उनकी कुन्तीजीने उत्तमतासे सेवा की। उसे देखकर दुर्वासा ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए और जानेके समयमें उस बालाको बुलाकर उन्होंने कहा कि हे कन्यके! तूने मेरी अत्यन्त सेवा की है जिससे मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं। इसलिये तेरा क्या प्रिय करुं? ऐसा कहकर उन्होंने कहा कि हे पुत्रि! तुझे महापराक्रमी, बलवान, तेजस्वी और महा धुरन्धर पांच पुत्र उत्पन्न होंगे; जिससे तू महाभाग्यशालिनी समझी जायगी। ऐसा आशीर्वाद देकर दुर्वासा चले गये।

जब कुन्ती योग्य वयकी हुई तब उसका हस्तिनापुर (दिल्ली)के राजा पाण्डुके साथ विवाह कराया। पतिके घर जानेके पश्चात् पतिव्रताके धर्मानुसार चलने लगी। पति और सासश्वसुर प्रभृतिकी अत्यन्त प्रीति सम्पादन की। मुनि दुर्वासाके वचनानुसार उसको युधिष्टिर, अर्जुन, और भीम ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए और सहदेव नकुल ये अपनी सपत्निकके। इस प्रकार सब मीलाकर पांच पुत्र हुए। ये पांचो सज्जन पाण्डवोंके नांवसे परिचित है। ये पांचो पाण्डव बाल्यावस्थासे राज्य करनेवाले हुए वहां पर्यन्त कुन्तीमाताकी आज्ञानुसार चलते थे। उन पांचोंमें किसी दिन वैर न उत्पन्न हो और उनकी परस्पर प्रीति बढे इस प्रकारका व्यावहारिक उपदेश देती थी। उसीसे इन पांचों भ्राताओंका अन्योन्य अपूर्व प्रेम था। उनके अन्योन्य प्रेममें कभीभी न्यूनता नहीं हुई थी। फिर उनके अन्तःकरणमें माता कुन्तीने धर्म–नीतिके ऐसे उत्तम संस्कार डाल दिये थे कि उन्हें दैव इच्छासे अनेक दुःखोंका सामना करना पड़ा फिरभी उन्होंने कभीभी अधर्मकी राह नहीं ली। बाल्यवयमें निराश्रित रहनेपर भी बड़े२ अवसरोंपर धैर्यसे धर्ममार्गमें निश्चल रहते थे जिससे अन्तमें उन्हें स्वर्गके समान राज्यसुख प्राप्त हुआ था। यह सब कुछ कुन्तीके समान धर्मवीर समझदार माताकी सुशिक्षाका ही प्रताप था। इसपरसे कुन्तीजीके मनका उच्चभाव प्रत्यक्ष होता है।

पुत्रवधू–द्रौपदी जब पतिके साथ वनमें जानेके लिये तैयार हुई तब माता कुन्तीने उपदेश दिया था कि प्रियपुत्रवधु ! दुःख आया है उससे शोक मत करना। तुम स्त्रीधर्मको जाननेवाली, सुशीला, साध्वी और सदाचारिणी है। तुम्हारे सद्गुणोंसे दोनों कुल अलंकृत हुए हैं इसलिये स्वामिके प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिये उस विषयका तुम्हें उपदेश देनेकी आवश्यक्ता नहीं है।

सति ! कौरव परमभाग्यवान है; क्योंकि तेरे कोपानलसे वे दग्ध नहीं हुए है ! वत्से ! मैं सदैव तेरे भलेके लिये विचार किया करती हूं। तू प्रसन्नतासे वनमें जा ! अहा ! कैसा उपदेश !

एक समय कुन्तीजीने श्रीकृष्णसे कहा कि "जिस प्रकार सत्स्वभावसे मनुष्य माननीय हो सक्ता है वैसे धन व विद्यासे नहीं। हे केशव ! आप वृकोदर (भीम) और धनंजय (अर्जुन)को कहना कि क्षत्रीकन्या जिसके लिये गर्भ धारण करती है वह समय समीपमें आया हुआ है, यदि इस समय विपरीताचरण करोगे तो मैं सदैवके लिये तुम्हारा त्याग करुंगी। प्राण त्याग करनेकी आवश्यक्ता हो तोभी भय मत करना" इस प्रकार

उसने वीरभाव दिखाया है। वीरमाता तुम्हें धन्य है! जिस माताका मनोभाव वीरत्वसे भरा हुआ है उसके पुत्र भी वीर हो उसमें आश्चर्य ही क्या है?

फिर एकवार उसने कहा कि "मैं पुत्रोंका निर्वासन, अज्ञानवास और राज्यभ्रष्टत्व इत्यादि दुःखोंको भोग रही हूं, दुर्योधनने मेरा और अपने पुत्रोंका १४ वर्ष तकके लिये अपमान किया है इससे बढकर दुःखका कौनसा विषय हो सक्ता हैं; किन्तु शास्त्र व महापुरुष कहते है कि दुःखके भोगनसे प्रथम पापका क्षय होता है, पीछे पुण्यका फल सुख मिलता है इसलिये हम लोग इस समय दुःखोंको भोगकर पापका क्षय करते हैं तदनन्तर सुख भी भोगेंगे इसमें सन्देह नहीं। अहा! कैसा उच्च विचार है!

कुन्ताजी एक विलक्षण बुद्धिकी स्त्री थी, जिस समय पाण्डव वनवासमें थे उस समय वह बारह वर्ष तक विदूरजीके घर रही थी। पाण्डवोंके वनमेंसे आते ही उसने "युद्ध करो किम्वा मृत्युको प्राप्त करो" ऐसा समाचार कहलाया। वास्तविकमें एक क्षत्रीय स्त्रीके और वीरपत्निके लिये यही उचित था। हमें राज्यसुख मिले इस आशासे उसने अपने पुत्रोंको उपदेश नहीं दिया था; क्योंकि पाण्डवोंके राज्यासनपर आरूढ होनेके पश्चात् वह धृतराष्ट्रकी सेवाके लिये वनमें गई थी। पाण्डवोंको राज्य मिलनेके पश्चात् कुन्ताजी धृतराष्ट्रके साथ वनमें जाने लगी; तब भीमने विनयसे कहा कि; "मातः! आपके उपदेशसे प्राप्त हुए राज्यके सुखोंका आप भी उपभोग करें और वनमें न पधारें। इसके उत्तरमें उसने कहा कि "मुझे पुत्रका राज्य सुख नहीं चाहिये। पतिके समयमें मैने राज्यसुख भोगा है। मैंने युद्धके लिये जो तुम्हें उपदेश दिया था वह अपने सुख दुःखके लिये नहीं केवल तुम क्षत्रियोंको भिक्षावृत्ति करनेका अवसर न आवे उसीके लिये मैंने युद्ध करनेका उपदेश दिया था।

"सत्यनिष्ठा रखकर मनको उदार बनाओ" यह उसने अन्तिम किये हुए उपदेशमें महाभारतका सम्पूर्ण सार आ जाता है। साध्वी माताकी भविष्यकी वाणी आखीर सत्य ठहरी। पुत्र राज्यपदपर आये और विजय पताका फहराकर उस मङ्गलमूर्ति माताके आशीर्वादसे सब कुछ मङ्गल हुआ। सती कुन्ताजी आध्यात्मिक ज्ञानरुप जलसे अन्तःकरणको पवित्र बनाकर हिमालयकी तलेटीमें परब्रह्मकी आराधना करके सद्गतिको प्राप्त हुई और संसारमें अखण्ड कीर्ति स्थापित कर गइ है। धन्य है उस वीरमाताको!

मन्दोदरी ।

यह साध्वी स्त्री मयदेव राजाकी पुत्री और लंकापति राजा रावणकी पत्नी थी। वह महास्वरुपवती, तेजस्वी, विवेकी, नितिपरायण, धार्मिक, विचारशील, ज्ञानी व पतिव्रता थी। उसको इन्द्रजीत नांवका महा बलवान पुत्र था। रावण मन्दोदरीको बहुत चाहता था और वह भी, प्रीति रखती थी। रावण स्वभावसे क्रुर, अहंकारी और महा बलवान था। वह रामकी पत्नी सीताका हरण कर लाया है इस बातको जानते ही मन्दोदरीने अपने पतिके प्रति कहा कि "प्राणेश! आप सती सीताका हरण कर लाये यह बहुत ही अनुचित किया है। अब आप उसे रामचन्द्रजीके सुपर्द करें। अन्यथा अपना सर्वस्व जाकर कुलका नाश होगा। आपने सबको जीता है; किन्तु श्रीरामको जीत नहीं सक्के। जो पुरुष परस्त्रीका अभिलाषी है वह कदापि सुखी नहीं हो सक्ता। छाती पर पथ्थर बांधकर समुद्रको तेरनेमें कौन समर्थ है? जो विषपान करता है वह कभीभी अमर नहीं हो सक्ता। क्या सांपके मुखमें हाथ डालनेसे वह काटे विना रहेगा? इस लिये हे स्वामिन्! आप रामके साथ वैर करनेसे कैसे सुखी रहोगे? यदि आप आज्ञा दें तो मैं रामके पास जा स्तुति कर सबको बचावुं। वे बहुत ही दयालु हैं; इसलिये दया किये विना नहीं रहेंगे। रावणने हंसकर कहा कि सति! तुम किस लिये चिन्ता कर रही हो? नीच, उच्च, राय और रंक किसीको भी मरण नहीं छोड़ता। पूर्वजन्ममें जैसे कर्म किये होंगे उसके अनुसार संसारमें सुखदुःख भोगे विना छूटकारा नहीं हैं। जो होनेवाला होगा वही होगा; किन्तु मैं सीताको वापिस नहीं दूंगा। इस प्रकार बातचितके होनेके पश्चात् मन्दोदरी सीताके पास आई, उनके चरणमें पड़कर प्रणाम किया। इससे जैसे भागीरथीको गौतमी मिले, उमियाको सावित्री मिले वैसे मन्दोदरी और सीताजी दोनो मिलनेसे परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हुए। मन्दोदरीने कहा कि हे देवि! मेरे अहोभाग्य है कि आज मुझे आपके दर्शन मिले! आप जगज्जननी हैं और रामचन्द्रजी जगत्पिता है इत्यादि कहकर अध्यात्मज्ञानके कई पश्न पूछे; जिससे सीताजीने उसको अध्यात्मज्ञानका उपदेश दिया। उससे मन्दोदरी ब्रह्मानन्दमें मग्न हो गई और ब्रह्मस्वरूपमें उसका चित्त लग गया। उसकी स्थिति ब्रह्मस्वरुपमें लगी हुई देखकर सीताजीने उपदेश देना बंद किया। वह अन्तरमें अत्यन्त आनन्दित हुई और सावधान होकर सीताजीके चरणारविंदमें पड़कर गद्गद् कंठ हो कहने लगी कि जगज्जननि! कल्याणि! आपने मुझको ब्रह्मानन्दका

ानन्द दे मैरे संशयोंको निवृत्त किये हैं ! मैरा आजका दिन धन्य है कि आपका
ामागम हुआ ! जिसको सारासारका विवेक हुआ है उसका सम्पूर्ण अज्ञान नष्ट
ा जाता है । इसके समान अन्य एक भी उत्तम लाभ नहीं है। मन्दोदरीने ऐसे
त्तम ज्ञानको सीताजीसे प्राप्त किया । जिससे उसने उसे गुरुरुप मानकर प्रदक्षिणा
ी, और आज्ञा लेकर अपने मन्दिरमें आई एवं पतिके पांवपर पड़कर कहा कि
'स्वामिन् ! सती सीता साक्षात् विश्वजननी है । यदि आप उनपर कुदृष्टि करेंगे
ो कभीभी कुशल नहीं रहेंगे । जैसे अग्निका स्पर्श करनेसे जलकर भस्म हो जा
ाक्ते हैं, वैसे ही आपने सती सीताकी अभिलाषा रखकर अपने कुलका नाश करना
ाहा है । वह सती परमज्ञानी है । वह कदापि आपके वश नहीं हो सक्ती इस
लेये हे राजन् ! उस हठका परित्यागकर दूराचरणसे दूर रहिये । परस्त्री और पर-
ानका स्पर्श करनेसे अनिष्ट हुए विना नहीं रह सक्ता ।

रावणने कहा;—सति ! तुम जो वचन कह रही हो वे सत्य हैं; किन्तु मैंने
रामके साथ वैर किया है इस बातको त्रिलोकीमें सब कोई जानते हैं । यदि अब मैं
अपने अभिमानको छोड़कर उन्हें नमुं तो मैरा जीवन वृथा हो। कायर होनेसे जीवन
निरर्थक है । पृथ्वीमें कोई भी अमर नहीं है; कल्पपर्यन्त कोई कदापि जीवित रह
जाय और उसने कुछ भी पुरुषार्थ नहीं किया तो उसका जीवन वृथा समझना ।
संसारमें सब किसीको एकवार जब तब मरना है; किन्तु जिसने पराक्रम नहीं किया
उसके जीवनको धिक्कार है । जिसने संसारमें जन्म धारणकर यश, पराक्रम और
नाम पैदा किया उसकी इस लोकमें शुभ कीर्ति फैलती है और परलोकमें उत्तम
स्थान मिलता है । ईश्वरावतार रामचन्द्रजी पृथ्वीका भार उतारनेके लिये प्रकट हुए
हैं यह मैं जानता हूं इसलिये अब पुरुषार्थ कर अमरनाम करना चाहिये; किन्तु
उनके शरण जाना उचित नहीं है । हे सुन्दरि ! मैं युद्ध ही करुंगा । मन्दोदरीने
जान लिया कि यह मैरा कहा नहीं मानेंगे ऐसा समझकर अपने मन्दिरमें गई । कुछ
समय तक युद्ध चला उतनेमें इन्द्रजीत् कुम्भकरण और मंत्री मारे गये । जिससे
नगरमें हाहाकार मच गया ! उस समय फिर मन्दोदरी आकर शोककर कहने लगी
कि;—स्वामिन् ! आप रामके साथ वैर करके किस लिये कुलका नाश कर रहे हैं?
और किस लिये विना मौतके मरनेको तैयार हुए हैं? भगवान्के साथ वैर करके किसने
जय पाया है । वे आपसे पराजित नहीं हो सक्ते आप व्यर्थ ही यत्न कर रहे हैं ।
स्वामिन् ! आपने त्रिलोकीको जीत लिया है; किन्तु जहां पर्यन्त कामको नहीं जीता है
वहां पर्यन्त सभी व्यर्थ हैं। उस कामने योगी, मुनि, तपस्वी और अनेक राजकुमा-

रोंको जीतकर फजैत किये हैं। इस कामने बड़े २ महापुरुषोंके मानभङ्ग किये हैं। काम अत्यन्त दुर्जय व बलवान है इसलिये इस विपरीत कामको छोड़ दीजिये। महाराज! क्षमा कीजिये! सीता पतिव्रता है, उसे रामके शरणमें जाकर सौंप दीजिये। ऐसा करनेपर आपका वे अवश्य कल्याण करेंगे। वे शरण आनेवालोंको अभयदान देते हैं। वे आपके एक भी अवगुणको स्मरण नहीं करेंगे! फिर आप निर्भय होकर सुखसे राज्य भोगिये! जो मनुष्य परनिन्दा, परधन, और परस्त्रीका त्याग करते हैं उसके संसारको धन्य है! जो हिंसा व अभिमानका त्याग करते हैं उसका ज्ञान शोभा पाता है। जो सत्य आचरण बनाता है उसका शरीर धारण सफल है। आपको किस बातकी न्यूनता है। अणिमादि सिद्धियां पांवमें गिर रही है। कल्पवृक्ष और कामधेनु स्वाधीन है। देवगण किंकर बन रहे हैं। जिन्हें देखकर ब्रह्माजी भी मोहित हो जा सके ऐसी पद्मिनियां आपकी छायामें अनेक है। फिर भी आप सीताजीको किस लिये यहांपर ले आये! "**विनाशकाले विपरीत बुद्धिः**" उसके अनुसार आपकी बुद्धि अन्तमें फिर गई है। जब अवसानका समय आता है, तब विवेक और ज्ञान चले जाते हैं। आपके ऐसे कर्मसे अवश्य कुलका नाश होगा ऐसा मालूम होता है! आप कहते हैं कि मैं रामको जीत लुंगा; किन्तु इस मिथ्याभिमानको छोड़ दीजिये! प्राणेश! आपके पांवमें पड़कर प्रार्थना करती हूं कि आप सीताजीको श्रीरामचन्द्रजीके समीप पहुंचा दीजिये।

यह सुनकर रावणने कहा कि "मैं रामको नहीं नमुंगा और सीताको भी नहीं सौंपुगा पीछे जो होनेवाला होगा वही होगा।" मन्दोदरीने जान लिया कि जैसी व्यभिचारिणी स्त्रीकी भक्ति, जैसा दाम्भिकका वैराग्य, जैसा परद्रोहीका ज्ञान, जैसी कपटीकी प्रीति, जैसा भ्रष्टका आचार, जैसा लोभीका दान, ऐसा रावणका ज्ञान है। वह प्राण पर्यन्त नहीं मानेगा ऐसा विचारकर निराश हो चली गई। कुछ समयके पश्चात् रावणने सीताजीके पास जाकर कहा कि "यदि दो मासके भीतर तुम मेरी आज्ञाका पालन न करोगी तो मैं तुम्हारे पतिको मार डालुंगा और यदि आज्ञाका पालन करोगी तो तुम्हारे पतिको जीते रखकर उन्हें छोड दूंगा और तुम्हें अपनी पट्टरानी बनाकर अत्यन्त सुख दूंगा।" सीताजी रावणके इन वचनोंको सुनकर बोली "रावण! तू विना विचार बकवाद मत कर! दो मास तो क्या; किन्तु दो हजार वर्षकी अवधि देनेपर भी मैं तेरी आज्ञाका पालन नहीं कर सकती? तू बल, सम्पत्ति प्रभृतिसे जगत्में प्रसिद्ध है इसलिये अनुचित कर्म करके अपनी कीर्तिको कलंकित करना तुम्हें अच्छा नहीं है। जिस दृष्टिसे तू अपनी माता "निकषा" को देखता है उसी दृष्टिसे परस्त्री

त्रको देखना चाहिये। मेरे पतिके समान संसारमें कौनसा मूल्यवान् पदार्थ है जो
मुझे दे सक्ता है? मुझको मेरे प्राणपतिके पास पहुंचा दे वे तुझे अवश्य क्षमा
दान करेंगे।"

सीताजीके इन कठोर वचनोंको सुनकर रावणने उन्हें मारनेके लिये तलवार
ाथमें ली; किन्तु मन्दोदरीने आकर रावणके हाथकी तलवारको पकड़ समझाकर
से शान्त किया। इस समय मन्दोदरीने सीताजीकी बहुत ही सहायता की थी और
वणको बहुत ही समझाया था। एक समय रावण मौनव्रत धारणकर हवन कर रहा
ा उसे भंग करानेके लिये अंगदने मन्दोदरीकी चोटी पकड़ उसके सामने खड़ी
रखी। मन्दोदरीने रावणके प्रति कहा कि आप मुझे छुडाईये! देखिये राम अपनी
ीको छुड़ानेके लिये कितनी चेष्टा कर रहे हैं। पतिने स्त्रीको दुःखमेंसे मुक्त कराना
ाहिये; यह उसका परम धर्म है। जो पति अपनी स्त्रीकी सर्व प्रकार रक्षा नहीं
रता वह नरकमें जाता है। पतिके लिये स्त्री यही सुखका धाम है और स्त्री यही
ंसारका सर्वस्व है और स्त्री इह लोक व परलोकमें साथ देनेवाली है।" इत्यादि कहकर
न्दोदरीने अत्यन्त कल्पान्त किया। तब रावण क्रियाको भंगकर उठा और मन्दोद-
ीको छुड़ाया। इसके पश्चात् रावण क्रोधातुर बन रामचन्द्रजीके साथ युद्ध करने
ाया, उसमें उसका मरण हुआ। मन्दोदरी जहांपर पतिका मस्तक पड़ा था वहां
कितनीक स्त्रियों समेत आ खड़ी हुई और बड़ेर मुनि व योगियोंका भी धैर्य नष्ट
ो जाय ऐसे शोकके विलाप करने लगी।

"हे स्वामिन्! मैंने बहुत ही समझाया था; किन्तु आपने उसे माना नहीं।
और सम्पति व सन्ततिको नाशकर आपने अपने शरीरको भी गुमाया! नाथ! आ-
पने रामके साथ अच्छा वैर किया? अब आपकी कीर्ति त्रिलोकीमें घर २ गाई
जायगी। अब संसारमें आपके समान पुरुष उत्पन्न होनेवाला नहीं है। प्राणेश!
आपके लिये भगवान् रामचन्द्रने अवतार धारण किया था। अहो दैवकी गति
कैसी विपरीत है कि जिसको बड़े २ लोकपति प्रणाम करते थे, वही पुरुष आज रण-
संग्राममें पड़ा हुआ है।" मन्दोदरीके इस हृदयविदारक विलापको सुनकर रामने
समीप में आकर कहा कि हे पूज्यपावनि! सतीशिरोमणि! तुम ज्ञानवती होकर इस
नाशवन्त शरीरके लिये क्यों शोक कर रही हो? तुम ज्ञानदृष्टिसे विचार करके
देखो कि उसमें सत्व क्या है? यह सम्पूर्ण संसार स्वप्नके समान मायाका चित्र
है। यह पञ्चमहाभूतका शरीर नाशवन्त एवं विकारी अशाश्वत रुप है। इसलिये तुम
आत्माका विचार करो। वह आत्मा अविनाशी, अखंड एवं अनुपम है। इस लिये

हे सति ! मोहका त्यागकर धैर्य धारण कीजिये। मन्दोदरी रामचन्द्रजीके इन उपदेशमय वाक्योंको सुनकर शान्त हुई और पतिकी दाहक्रिया की। इत्यादि अनेक प्रकारसे मन्दोदरीने अपने पातिव्रत्यको बता दिया है। उनके चरित्रमेंसे भी उसका उपदेश मिल शक्ता है।

दमयन्ती।

विदर्भ देशमें कुन्दननगरीमें भीमक राजा राज्य करता था। वह अत्यन्त शूरवीर, पराक्रमी, धार्मिक व प्रजाप्रिय था। उसको दमन ऋषिके आशीर्वादसे दमन, दान्त और दम ये तीन रुपवान् पुत्र हुए थे और दमयन्ती नांवकी सुन्दर अंगवाली, चित्तको प्रसन्न करनेवाली और रुपगुणसे मनोहर कन्या हुई। उसके समान देव, यक्ष किम्वा मनुष्योंमें कोई भी कन्या स्वरुपवती नहीं थी। जिससे उसकी देशदेशान्तरोंमें प्रशंसा होने लगी। नैषधदेशके राजा वीरसेनको नल नांवका अश्विनीकुमारके समान परम गुणवान व स्वरुपवान पुत्र हुआ। उसके रुपगुणकी प्रसिद्धि देश देशान्तरोमें फैल गई। दमयन्तीने नलकी प्रसिद्धि सुनकर और नलने दमयन्तीकी सुनकर दोनोंने परस्पर विवाह करनेका निश्चय किया। दमयन्ती नलका स्मरण करते ही व्याकुल बन जाती थी। यह बात दासीके द्वारा उसके मातापिताको मालूम होते ही उन्होंने दमयन्तीका स्वयंवर करनेका निश्चय किया। देशदेशान्तरोंके राजाओंको आमन्त्रण पत्र भेजे गये। इस आमन्त्रणको पाकर स्थान२ के राजा लोग अपनी२ सेना समेत आपहुंचे। नारदमुनि व पर्वत ऋषिके द्वारा इन्द्रको समाचार मिला, वह भी देवताओं समेत स्वयंवरमें जानेके लिये तैयार हुआ। उनको विदर्भ देशकी ओर जाते हुए मार्गमें नल राजाका समागम हुआ। नल राजाको परम तेजस्वी देखकर देवलोग आश्चर्यान्वित हुए और उन्होंने विचार किया कि यदि दमयन्ती इस नलको देख लेगी तो हमारे साथ विवाह नहीं कर उसे ही पसंद करेगी। ऐसा विचार कर उन्होंने नलसे कहा कि "हे नल ! तू सत्यवान है इसलिये हमारा दूत बनकर हमारी सहायता कर।" इन्द्रके इस वचनको उसने स्वीकार किया और पूछा कि "आप लोग कहां जा रहे हैं और आपका मुझे क्या कार्य करना पड़ेगा वह कहिये !" इन्द्रने कहा कि "हम दमयन्तीके स्वयंवरमें जा रहे हैं इसलिये तू दमयन्तीके पास जाकर

कह दे कि तैरे साथ इन्द्रादि देवता विवाह करना चाहते हैं उनमेंसे किसी एकके साथ विवाह कर" । नलने इन्द्रके इन वचनोंको सुनकर कहा कि "जिस लिये आप लोग जा रहे हैं उसी लिये मैं भी जाता हूं अतएव मुझको उसके पास भेजना उचित नहीं है; क्योंकि मैंने जिस स्त्रीके साथ विवाह करना चाहा है मैं उसका त्यागकर दूसरेके साथ विवाह करनेके लिये उसे कैसे कह सक्ता हूं ?" इन्द्रने कहा कि "पहिले तूने स्वीकार किया है कि 'मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करुंगा'; क्या इस वचनको मिथ्या करता है ? इसलिये दमयन्तीके पास जा । हमारी आज्ञासे जानेके कारण तुझे उसके पास जाते हुए कोई भी नहीं देख सकेगा ।" इस प्रकार इन्द्रके अत्याग्रहसे नल दमयन्तीके पास गया । दमयन्ती अपनी सखियोंके साथ बैठी हुई है उतनेमें नलको पासमें खड़े हुए देखकर वह विस्मय पूर्वक बोली;—आप कौन है ? और कहांसे आये हैं ? नलने कहा कि "मैं नल हूं और देवोंका दूत बनकर तुम्हारे पास आया हूं । इन्द्र प्रभृति देवता तुम्हारे साथ विवाह करना चाहते हैं इस लिये तुम उनमेंसे किसी एकके साथ विवाह करो !" दमयन्तीने इन वचनोंको सुनकर कहा कि हे राजन् ! मैं तो आगे कई दिनसे आपके साथ विवाह कर चूकी हूं । यदि आप मेरा त्याग करेंगे तो मैं अपना प्राण निकाल दूंगी। नलने कहा कि लोकपाल जैसे देवता तुम्हारे साथ विवाह करनेके लिये तैयार है फिर मनुष्यके साथ विवाह करना क्यों चाहती हो ? दमयन्तीने कहा कि मैं सभी देवताओंको नमस्कार करती हूं । मैं तो अपने मनसे आपके ही साथ विवाह कर चूकी हूं । तब नलने कहा "मैं देवोंके बीचमें पड़कर धर्मके नियमानुसार तुम्हारे साथ कैसे विवाह कर सक्ता हूं ?" दमयन्तीने कहा कि "मैं स्वयंवरमें समस्त देवोंके समक्ष आपको वरमाला पहनाउंगी" । पीछे नलने इन्द्रके पास आकर कहा कि मैंने दमयन्तीको आपके साथ विवाह करनेके लिये बहुत कुछ कहा; किन्तु वह तो मेरे ही साथ विवाह करना चाहती है । ये जो मैं कह रहा हूं वे सत्य वचन है ।

भीमक राजाने स्वयंवरमें आये हुए सभी देव और राजाओंको मण्डपमें उत्तम आसनोंपर एक ओर बीठाया और दूसरी ओर दमयन्ती अपनी सखियां व आसिनोंके साथ बैठी । सभा मण्डप भर गया है और क्रमशः समस्त राजाओंका परिचय दिया जाने लगा । उस समय दमयन्तीने उठकर नल राजाके गलेमें पुष्पका हार पहिनाया । यह देखकर समस्त सभ्यगण प्रसन्न हुए । उस समय नलने दमयन्तीके प्रति कहा कि "हे सुन्दरि ! तैंने समस्त देवोंके समक्ष मेरे साथ विवाह किया है इस लिये जहां पर्यन्त मेरे शरीरमें प्राण रहेंगे, वहां पर्यन्त मै तेरेमें प्रेम रक्खुंगा".

इस प्रकार वचन दे दोनों अग्नि व देवोंके समीप गये। वहांपर विधि अनुसार विवाह किया। उस समय देवोंने प्रसन्न हो नलको निम्न आशीर्वाद दिये। १ जहां यज्ञ होगा वहां इन्द्र प्रत्यक्ष दर्शन देंगे, २ तुम्हारे हाथसे अन्न मधुर होगा, ३ तुम्हारी धर्ममें प्रीति रहेगी ४ और जल व सुगन्धी पुष्पकी माला इच्छानुसार प्राप्त होंगे। इस प्रकार आशीर्वाद दे सब कोई अपने २ स्थानपर गये। नल व दमयन्ती भी अपने स्थानपर गये। उन्हें थोड़े ही समयमें एक कन्या व एक पुत्र हुआ जिनके क्रमशः इन्द्रसेना व इन्द्रसेन नांव रक्खे गये। और नल दमयन्ती आनन्दपूर्वक दिनरात व्यतीत कर रहे हैं। दैवकी इच्छा बलवान है उसकी गतिको कोई नही जान सक्ते। धर्मात्मा नलमें कलियुगने प्रवेश किया, जिससे वे द्युत खेलने लगे। दमयन्तीने बहुत कुछ समझाया; किन्तु वह व्यर्थ गया। अन्तमें नल समस्त राज्यसम्पत्ति प्रभृतिको हार गया। पत्नीके साथ एक वस्त्र पहिनकर गांव बहार वनमें जानेका निश्चय हुआ। जिसने राज्य प्राप्त किया था उस राजा पुष्करने आज्ञा निकाली कि "इन दोनोंका किसीने आदर नहीं करना" जिससे प्रजाने भी उनका सत्कार नहीं किया। दमयन्तीने अपने बालकोंको रथमें बिठाकर अपने पिताके पास भेज दिये और उनका सारथी वार्ष्णेय लौटती समय अयोध्याके राजा रुतुपर्णके पास नोकर रहा। नल दमयन्ती तीन दिन पर्यन्त भूखे प्यासे गांवके बाहर पड़े रहे; किन्तु किसीने खबर नहीं ली। अन्तमें वनमें फलफूलकी शोधकर अपना निर्वाह करनेके विचारसे चल निकले। आगे नल व पीछे दमयन्ती इस प्रकार चलकर बहुत ही दूर गये। दोनोंको बहुत ही भूख प्यास लगी। उतनेमें उसने सुवर्ण समान सुन्दर पांखवाले पक्षियोंको देखा। उन्हे पकड़कर खानेका विचार किया। अपने पास पहिननेके लिये एक ही वस्त्र था उसको निकालकर उसके ऊपर डाला उतनेमें वे पक्षी वस्त्रको लेकर उड गये। यह देखकर नलने कहा;—सति! अब क्या किया जाय? यह एक ही वस्त्र था वह भी गया। भूखके मारे प्राण जा रहे हैं। हे प्राणेश्वरि! अब मैं दुःखी दशामें आ पड़ा हूं। चैतन्यहीन वन रहा हूं अब प्राणका निर्वाह किस प्रकार करना चाहिये। मुझे कुछ भी सुझ नहीं पड़ता। इसलिये तू अपने पिताके पास विदर्भदेशमें जा यह रास्ता वहांही जाता है। वहां जानेपर तुम्हें सुख होगा।" पतिके इन वचनोंको सुनकर दमयन्तीने व्याकुल चित्तसे नेत्रमें अश्रु लाकर कहा कि;—प्राणेश्वर! आपके इन वचनोंको सुनकर मुझे दुःख होता है। आपने राज्य व सब सम्पत्ति छोड़ दिया, वस्त्रहीन बने हुए हैं, भूखके दुःखसे पीड़ित हो रहे हैं, उस समय आपकी सेवामें हाजिर रहकर दुःखमें धैर्य देनेके बदले इस मनुष्यरहित भयं-

र वनमें आपको छोड़कर मैं अपने पिताके घर कैसे जा सक्ती हूं ? नहीं मैं क-
ापि नहीं जाउंगी । मैं आपकी सेवा करनेके लिये सदैव संग रहुंगी । पुरुषको
:खके समय धैर्य देनेवाली, दुःखरूपी रोग मिटानेवाली और धैर्य देनेवाली स्त्री ही
, स्त्रीके लिये पति प्राण व जीवनहार है । फिर मैं अपने पतिरुप प्राणका इस
कार त्याग कैसे कर सक्तीं हूं ? मैं आपको छोड़कर एक पांव भी दूर कैसे जा
क्ती हूं ? इसलिये स्वामिन् ! मैं आपको यहां छोडकर कभी भी नहीं जाउंगी ।
लने कहा "हे साध्वि ! तू कहती है वैसाही होगा तू किसलिये चिन्ता करती है ?
अपनी आत्माको त्याग करुंगा; किन्तु तैरा त्याग नहीं करुंगा" । पीछे दोनों एक ही
स्त्र पहिनकर वनमें भूख व प्याससे पीड़ित होकर एक स्थानमें बैठे हुए है। श्रमके
ारण दमयन्तीको निद्रा आ गई; किन्तु अधिक चिन्ताके कारण नलको निद्रा
हीं आई । उसको विचारपर विचार आने लगे । चिन्तायुक्त होकर उसने मनके
ाथ विचार किया कि मैरा भला कैसे हो ! मैरी प्रियपत्नी मैरे लिये दुःख भोग रही
उसका यदि मैं त्याग करुं तो वह अवश्य अपने पिताके पास जायगी । यदि
ह मैरे साथ रहेगी तो बहुत ही उसे दुःख भोगने पड़ेंगे । इसलिये उसको सुखी
ानानेके निमित्त उसका त्याग ही करना चाहिये । ऐसा विचारकर दमयन्तीका त्याग
रनेका उसे कलियुगके प्रवेशके कारण सुझा। उसने अपना विचार दृढ किया और
वेचार किया कि दमयन्तीको मैरेमें पूर्ण प्रेम है । वह भाग्यवती, यशस्विनी और
ाहासती है । इस लिये उसे कोई भी ठग नहीं सक्ता । ऐसा विचारकर दोनोंने एक
स्त्र धारण किया था; जिसमेंसे अपनी तलवारसे आधा काटकर चल निकला ।
कुछ दूर जाकर फिर पीछा वापस आकर दमयन्तीको सोई हुई देखकर विचार करने
लगा । अहा ! मैरी प्रियाने धूप ठंडी सहन नहीं किये हैं उसने अभीतक वायुके
झापटे सहन नहीं किये हैं, जिसने पृथ्वीपर पांव भी नहीं रक्खा था; वह आज भूखी
प्यासी वस्त्रहीन होकर पृथ्वीपर पड़ी हुई है ! अहा ! जब कटे हुए आधे वस्त्रको
धारण की हुई सती जागृत होगी तब कैसी गभडायेगी ? हाय ! वह मैरे विना ए-
काकी इस भयंकर जङ्गलमें कैसी व्याकुल होकर भ्रमण करेगी ? और मुझको नहीं
देखकर कितनी दुःखी होगी ? हाय ! हाय ! उसकी क्या दशा होगी ? इस प्रकार
संकल्प करता हुआ साश्रुवदनसे रुदन करता हुआ बोलने लगा; "इस सोई हुई
मैरी प्रियपत्नीकी देवगण रक्षा करना" ऐसा कहकर उस भयंकर वनमें उसे सोती
हुई छोड़कर वियोगके दुःखसे दुःखित अपने नेत्रके आंसुओंको पौंछता हुआ
नल वहांसे चल निकला ।

दमयन्ती जागृत होकर देखती है तो अपना पति समीपमें नहीं हैं। जिससे परमदुःखी होकर पुकारने लगी। "हे प्राणेश्वर ! हे स्वामिन् ! आप कहां गये हैं ! आपने मेरा किसलिये त्याग किया ? हे स्वामिन् ! मैं इस भयंकर वनमें डर रही हूं ! क्या आप मेरी परीक्षा देखनेके लिये छुपकर बैठे हो ? नहीं २ मुझ निरपराधी अबलाका त्याग करनेका विचार न करें! हे प्राणेश्वर ! हे राजन् आप धर्मके जानने-वाले और सत्यवादी हैं। आपने मेरे स्वयंवरमें "मैं तेरा त्याग नहीं करुंगा" ऐसा कहा था, फिर भी मेरा इस समय क्यों त्याग कर रहे हैं ? स्वयंवरमें सभाके मध्यमें जो कुछ आपने कहा था उसे सत्य कीजिये। क्या आप वृक्षोंमें छीप गये हैं ? मुझे क्यों नहीं दर्शन देते ? मेरी संभाल क्यों नहीं लेते !" इस प्रकार बोलती—क्रन्दन करती इधर उधर दौड़ने देखने लगी। जिह्वासे एकमात्र अपने पतिका नांव उच्चारण कर रही है और चित्त भी नलमें ही रहा हुआ है; जिससे मार्गमें सिंह व्याघ्रादि भयंकर प्राणी मिलते हैं उनका भी भय नहीं रहा और उनसे पूछती है कि तुमने नलको देखा ? वे किस दिशामें गये हैं ? वृक्षोंको भी इसी प्रकार व्याकुल चित्तसे पूछती है। शरीरमें वृक्षादि लगते हैं जिससे शरीरमेंसे रुधिरकी धारायें बह रही है। केश कांटोंमें लगते हैं, और पैरमें कांटे लगते हैं; किन्तु उसका एकमात्र नलमें चित्त लगा है जिससे शरीरकी कुछ भी शुद्धि नहीं है। व्याकुल चित्तसे स्वामीकी शोध करती हुई, पागल जैसी बनी हुई, शोकमें डूबी हुई इधर उधर फिर रही थी उतनेमें एक अजगर मौं खोलकर पड़ा था उसके मुखमें उसका पांव पड़ा, उसने जंघातक गला और शरीरमें विष चढने लगा। वह जैसा अपने पतिके लिये शौच कर रही है वैसा अपने प्राणके लिये शोक नहीं करती। वह तो ऐसी स्थितिमें भी हे नाथ ! हे नल-राज ! क्यों नहीं बोलते ? प्राणेश्वर ! आप कहां है ? ऐसा पुकार कर रही है। इन शब्दोंको एक पारधीने सुना और पासमें आकर देखता है तो एक स्वरुपवती सुन्दरीको अजगर—सांप जंघातक गल गया है। यह देखकर उसने कुहाड़ीके घावसे अजगरको मारके उसे छुड़ाया। उसको विशेष धैर्य देकर उसका वृत्तात पूछा। दमयन्तीने सभी कहा। दमयन्तीने अर्धवस्त्र पहिना था जिससे पाराधीकी दृष्टि मलिन हुई, जिससे दमयन्तीने क्रोधित हो अग्निसमान तेजस्वी हो उसे शाप दिया कि "यदि मैं अपने प्राणनाथ नल राजाके सिवाय मनसे भी दूसरेका चिन्तन न करती हों तो यह तुच्छ पारधी प्राणरहित हो जाय !!" पारधी तुरन्त भयभीत हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। दमयन्ती वहांसे आगे चलने लगी। पर्वतें, गुफायें, नदियां, और जंगलोंको उल्लंघन करके एक बडी शिलापर बैठकर भयंकर वनमें कठोर पुरुषके भी हृदयको

विद्रावित करे वैसा रुदन करने लगी। जिससे सम्पूर्ण वन शोकमय दिखाई देने लगा। वहांके पशु, पक्षी व हिंसक जन्तु भी जहांके तहां स्थिर हो गये। और इसको वनदेवी समझने लगे। दमयन्ती वहांसे उठकर फिरती२ वशिष्ठादि ऋषि-योंके आश्रममें आई। उन्होंने उसका सत्कार कर धैर्य दिया। दमयन्तीने उनसे कहा कि "महानुभावगण! यदि मुझे मैरा जीवनाधार नलराजा नहीं मिलेगा तो मैं अपने शरीरका त्याग करुंगी; क्योंकि स्त्री जातिको पतिके विना जीवित रहनेकी क्या आवश्यक्ता है?" ऋषियोंने कहा कि "सति! तू थोड़े समयमें अपने पतिको मिलेगी।" इतना सुनकर ऋषिकी आज्ञा ले चलती हुई। चेदी देशके राजा सुबाहुके प्रदेशमें कोई संघ जाता था उस संघकी साथ चली। एक वनमें बड़ा तलाव था, वहां संघने विश्राम किया। रातको हाथियोंका एक समुदाय वहां पानी पीनेके लिये आया उसने यकायक बड़ी गर्जना की; जिससे सम्पूर्ण संघ गभड़ा गया। संघके मनुष्य कहने लगे कि अपने संघके साथ एक विचित्र प्रकारकी स्त्री आई है, वह कोई राक्षसी मालूम होती है, उसीने यह माया रची होगी। इसलिये चलो उसकी शोध करके उसे मार डाले। यह जानकर दमयन्ती भय पाकर वनमें चली गई। और पीछे रुदन करती हुई चेदी देशके राजा सुबाहुके नगरमें आपहुंची। राजाके महेलके सामने आ खड़ी हुई जिससे राणीने उसे विदेशी व दुःखित जानकर दासीके द्वारा अपने पास बुलवाई। और उसके समाचार पूछे। दमयन्तीने अपना समस्त वृतान्त यथार्थ कहा जिन्हें सुनकर राणीको दया आई और कहा कि हमारे पास रहो। मैं तुम्हारे पतिकी शोध करावुंगी। यहां रहनेसे तुम्हें अपना पति मिलेगा। तब दमयन्तीने कहा कि मैं जो चाहती हूं उसके अनुसार हो तो मैं रह सक्ती हूं "मैं किसीका उच्छीष्ट नहीं खाउंगी, पांवसे चलकर कहांपर नहीं जाउंगी, कोई पुरुष मैरे प्रति पापबुद्धि करेगा उसका नाश करुंगी; क्योंकि पापी व अधर्मी पुरुषके सामने नहीं देखना ऐसा मैरा व्रत है। मैं किसी पुरुषके साथ नहीं बोलुंगी। केवल मैरे पतिकी शोध करनेवाले ब्राह्मणको ही नेत्रसे देखुंगी। यदि यह सब आपसे मैरे लिये प्रबन्ध हो सके तो मैं रह सक्ती हूं अन्यथा मैरी रहनेकी इच्छा नहीं है।" राणीने कहा कि "यह तुम्हारा व्रत उत्तम है। तुम्हारी इच्छानुसार सब प्रबन्ध हो जायगा। तुम निर्भयतासे रहो।" राणीने दमयन्तीको अपनी सुनंदा नांवकी पुत्रीके साथ रक्खी।

नल राजा दमयन्तीका त्यागकर वनमें गया। वहांपर जलते हुए दावानलमें पड़े हुए एक कर्कोटकने नमनकर उनसे कहा कि राजन्! मैंने नारदजीके साथ कपट किया था जिससे उन्होंने क्रोध करके शाप दिया है कि नलराजाके आने पर्यन्त तू

यहां स्थिर होकर रहना । जब तुझे नल यहांसे उठाकर दूसरे स्थानपर धरेंगे तब तू शापसे मुक्त होगा। राजन्! मैं एक भी पांव नहीं चल सक्ता इसलिये इस दावानलसे मेरी रक्षा करो। मैं आपका सखा होकर आपका हित करुंगा । जब नलने उसको अग्निसे निकाला तब उसने कहा कि—आप किसी प्राणीसे भय नहीं पावेंगे। आप अयोध्यानगरीके राजा रुतुपर्णके पास जाकर कहना कि मैं बाहुक नांवका सारथी हूं । आप उन्हें अश्वविद्या सिखाना । जिससे वह आपका मित्र बनेगा। तभी आप दुःखमेंसे मुक्त होंगे । आपको स्त्रीपुत्र राज्य प्रभृति मिलेंगे और अपने पूर्व स्वरुपको प्राप्त करोगे। इतना कहकर वह चला गया । नलराजा अयोध्यामें गया। राजा रुतुपर्णने उसका सत्कार किया व उसे सारथीकी पदवी दी । उसके हाथ नीचे वार्ष्णेय व जीवल नांवके सारथीको रक्खा । वह प्रतिदिन संध्याको एक श्लोक बोलता था उसका यह मतलब था कि "हाय! क्षुधातृषासे पीड़ित स्त्री थककर अपने मंद बुद्धिके पतिको स्मरण करके कहां शयन करती होगी?" इस श्लोकको सुनकर जीवल नांवके सारथीने उसे पूछा कि तुम जिसका शोक करते हो वह कौन है? और किसकी स्त्री है? बाहुक (नल) ने जवाब दिया कि वह किसी मंदबुद्धिवाले पुरुषकी बहुत ही प्यारी स्त्री है । उसका उसने किसी कारणसे त्याग किया है; वह दुःखी होकर अपनी इच्छानुसार भ्रमण करती है । वह पुरुष प्रथम बड़ा राजा था। इस समय खराब स्थितिमें रहकर अपनी स्त्रीको स्मरणकर दुःख पा रहा है । ऐसा कहकर पहिचान न हो सके उस प्रकार वहांपर रहा । नल अयोध्याके राजाके पास और दमयन्ती चैदी राजाकी राणीके पास ऐसे दोनों आश्रय मिलनेसे रहे हुए हैं।

राजा भीमकने नल दमयन्तीकी शोधके लिये चारों ओर ब्राह्मण भेजे दिये। एक सुदेव नामका ब्राह्मण शोध करता हुआ चेदी देशके राजा सुबाहुके नगरमें आपहुंचा और पता लगनेसे राजमहेलमें गया । वहां सुनन्दाके समीपमें सुखाई हुई दमयन्तीको देखा । उसे राजा भीमकके समाचार कहे । दमयन्ती अपने मातापिता अत्यन्त चिन्तातुर हैं यह समाचार सुनकर रुदन करने लगी । जिसे देखकर सुनंदा भी बहुत दुःखित हुई और वे समाचार अपनी माताको भेजा । वह तुरन्त आई और ब्राह्मणको समाचार पूछने लगी । महाराज! यह देवी किसकी पुत्री है? और किसकी राणी है? वह अपने प्रिय पति व मातापिता प्रभृतिसे कैसे अलग पड़ी? आपने उसे पहिचान लिया? यह सब कहिये। ब्राह्मणने समस्त वृत्तान्त कहा उसे सुनकर सुनंदा व उसकी माता रुदन करते हुए स्तब्ध बन गये! कुछ समयके पश्चात् शान्त होकर राणीने दमयन्तीसे कहा कि "तू मेरी बहिनकी पुत्री है? मैंने भी तेरे

क्या दमयन्तीने दुःखके कारण फिर स्वयंवर करना चाहा होगा ! या मेरे लिये
यह उपाय किया होगा ! अस्तु—जो कुछ हो वहां जानेपर मालुम हो जायग
ऐसा मनके साथ विचार करके अपने राजासे कहा कि "मैं आपकी इच्छानुसार
चा दुंगा।" पीछे उत्तम वायु समान वेगवाले घोडोंको रथमें जोड़कर ऐसी चत
दिखलाई कि जिसे देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। रथ बहुत ही वेगसे चला
रहा है; वहां मार्गमें एक बहेड़ेका वृक्ष आया। राजाने कहा कि इस वृक्षपर जो
व पते हैं और नीचे जो फल व पते पड़े हैं उसकी गणना मैं कहता हूं जिस सुनि
नीचे पड़े हुए पते एकसो एक है और फल एक ही है। वृक्षकी इन दो शाखा
पांच करोड़ पान व दो हजार पच्यानवें फल है। इसलिये तुझे निर्णय करना
तो कर ले। बाहुकने रथको खड़ा रक्खा और वृक्षको काटकर फल व पते
गणना की तो राजाके कथनानुसार हुए, यह देखकर बाहुक आश्चर्यान्वित हु
और राजासे कहा कि आप यह विद्या मुझे सिखावें और मैं आपको अश्व चला
विद्या सिखाउंगा। पीछे रुतुपर्णने गणितविद्या व पासे डालनेकी विद्या सिख
जिससे शरीरमेंसे कलियुग दूर हुआ और सुबुद्धि उत्पन्न हो आई। राजा रुतुपर
कहा कि अश्वविद्या मैं अपनी इच्छा होगी तब सिखुंगा। पीछे बाहुकने रथको
तासे चलाया जिससे तुरन्त भीमक राजाके कुन्दनपुरमें आपहुंचे।

दमयन्तीने रथके पैयोंका मेघकी गर्जना के समान शब्द सुनकर जान लिया
ऐसी आवाज नलके चलानेके सिवाय नहीं हो सक्ती। इस विचारसे महलकी छत
जाकर देखा तो वार्ष्णेय और सारथीके साथ राजा रूतुपर्ण आ रहा है। नलने
ही प्रकारका भेष धारण कर रक्खा है जिससे उन्हें कोई पहिचान नहीं सते
रूतुपर्ण आकर तुरन्त भीमक राजाके पास गया। भीमक राजाने सत्कारपूर्वक प्
कि आपका कैसा पधारना हुआ ? स्वयंवर सम्बन्धी कुछ तैयारी नहीं देखकर
भीमक राजा इस विषयमें कुछ नहीं जानते ऐसा देखकर रूतुपर्णने कहा कि
आपको मिलनेके लिये आया हूं;" किन्तु भीमकने जान लिया कि इतने दूरसे
नेका कोई कारण होना चाहिये ? जो कारण होगा वह स्वयं मालुम हो जायगा।
दमयन्तीने अपनी केशी नांवकी दासीको बुलाकर कहा कि "तू जाकर तपास कर
छोटे हाथवाला वह रथ हांकनेवाला कौन है ? और पूछना कि यहां किसलिये आ
है ? मुझे तो वे नलराजा मालुम होते हैं। फिर जो समाचार हो वह आकर
कहे।" केशीनीने उसे जाकर पूछा कि "आपका यहां कैसे पधारना हुआ ?" बाहु
कहा कि सुदेव ब्राह्मणके कहनेके अनुसार दमयन्तीका दूसरा स्वयम्वर होता

उसके लिये हम आये हैं। केशीनीने पूछा कि यह तीसरा मनुष्य कौन है? और आप कौन है? बाहुकने कहा कि जब नलराजा वनमें गये तब उनका सारथी नलके बालकोंको यहांपर रखकर राजा रुतुपर्णके वहां सारथी होकर रहा है। मुझे भी राजाने अश्वविद्यामें कुशल समझकर अपना सारथी बनाया है। केशीनीने कहा कि "वार्ष्णेय! नलराजा कहां है?" बाहुकने कहा "नलराजाका पता नहीं हैं; क्योंकि वे अलगर भेषसे फिरते हैं; जिससे उसे कोई पहिचान नहीं सक्ते।" केशीनीने कहा कि "अयोध्यामें कोई ब्राह्मण आया था? उसने किसी स्त्रीके कहे हुए वाक्य कहे थे? और उसे आपने कुछ उत्तर दिया था?" यह सुनकर दुःखित हो बाहुकने कहा कि "राज्यभ्रष्ट हुए पतिने किसी कारणसे कुलिन स्त्रीका त्याग किया हो; फिर भी उसको अपने पतिपर क्रोध नहीं करना चाहिये। अपने प्राणके निर्वाह करनेकी इच्छासे पत्नीपर डाले हुआ वस्त्रको पत्नीके हरण करनेसे वस्त्र रहित हुए पतिपर सती स्त्रीने क्रोधदृष्टिसे नहीं देखना चाहिये" इस प्रकार कहते ही बाहुकके नेत्रमेंसे अश्रुओंकी धारा बहने लगी। यह सब देखकर दासीने दमयन्तीको कहा। दमयन्तीने जान लिया कि वही नल हैं; किन्तु उसके स्वरुपमें परिवर्तन हो जानेके कारण पहिचाने नहीं जाते हैं इसलिये फिर परीक्षा करनेके लिये दासीको भेजा। दासीने उसके देव और मनुष्य समान सभी चिन्ह देखकर दमयन्तीसे कहा। यह सुनकर दमयन्ती रुदन करने लगी। फिर दासीने कहा कि "उसके पाकगृहमेंसे खाना ले आव" दासी ले आई। उसे दमयन्तीने खाया। उस परसे निश्चय किया कि वही नल हैं। ऐसा पूर्ण निश्चय होते ही वह अधिक दुःखित हो रुदन करने लगी। अपने दोनों बालकोंको केशीनीके साथ बाहुकके पास भेजा। नलने तुरन्त पहिचानकर पासमें बीठा लिया और सामने देखकर रुदन करने लगा। अपने स्वरुपकी पहिचान न हो जाय इसलिये उन बालकोंको दासीके हाथमें सौंपकर कहा कि "मुझे मेरे बालक समान इन दोनों बालकोंको देखकर दुःख होता है और रुदन आता है। केशीनि! तू मेरे पास बारर आती है इससे लोग दोष धरेंगे। हम परदेशी हैं इसलिये मेरे पास आना यह लोक विरुद्ध है।

बाहुकके ऐसे वचन सुनकर केशीनीने दमयन्तीसे कहे। उस परसे दमयन्तीने केशीनीको अपनी माताके पास भेजकर कहलाया कि "यह बाहुक ही नल होगा" ऐसी शंकासे उसकी अनेक प्रकार परीक्षा कराई गई यह यथार्थ मिलती है; किन्तु उसके स्वरुपके विषयमें मुझे शंका होती है। इसलिये मैं स्वयं उसकी परीक्षा करना चाहती हूं। जिससे बाहुक मेरे महलमें आवे किम्वा मैं उसके पास जा सकुं ऐसी

आज्ञा दीजिये। दमयन्तीकी माताने उसके पितासे कहा, जिससे पिताने इस बातकी सम्मति दी। दमयन्तीने अपनी दासीको भेजकर नलको अपने महलमें बुलाया। जैसे एक दूसरोंके नेत्र मिले वैसेही तुरन्त दुःखसे दोनोंके नेत्रोंमें आंसु आ गये। पतिव्रता दमयन्तीने बाहुकसे कहा;—"धर्मको जाननेवाले नलराजा वनमें अपनी स्त्रीका त्याग करके गये हैं उन्हें आपने किसी दिन नेत्रसे देखे हैं? विना अपराधी, निद्रा-वश हुई अपनी प्रियपत्नीको भयंकर जङ्गलमें छोड़कर नलराजाके सिवाय और कौन पुरुष चला जाय? मैंने अपने स्वयंवरमें आये हुए देवताओंका त्यागकरके नल राजाके साथ विवाह किया है। इसलिये मैं उन्हींकी छायामें रहनेवाली, सन्तानवाली हूं फिर भी मेरा उन्होंने क्यों त्याग किया होगा? उन्होंने अग्नि व देवताओंके समक्ष मेरा कर ग्रहण करके "मैं तेरे साथ सदैव प्रीतिसे रहुंगा" ऐसी प्रतिज्ञा ली थी वह कहां गई?" इस प्रकार कहते२ दमयन्ती अत्यन्त रोने लगी। तब बाहुकने कहा कि "हे पतिव्रते! मेरा राज्य नष्ट हुआ, तेरा मैंने त्याग किया। यह सब मैंने नहीं किया; किन्तु मेर भीतर कलियुगके प्रवेश करनेसे मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई उ-ससे हुआ है। वह कलिसे उत्पन्न हुई कुबुद्धिके नष्ट होनेसे तेरी शोध करता हुआ मैं यहां आया हूं। भीमक राजाकी आज्ञासे देशदेशान्तरोंमे दूत भ्रमण कर रहे हैं वे कहते है कि दमयन्ती दूसरे पतिके साथ फिर विवाह करेगी। क्या नीच स्त्रीके समान यह कार्य तेरे लिये उचित है? तेरे स्वयंवरकी बातको सुनकर यह ऋतुपर्ण राजा यहां आया है।" दमयन्ती पतिके इन वचनोंको सुनकर भय पाकर कम्पायमान हो हाथ जोड़कर बोली कि "प्रिय स्वामिन्! आप मेरे विषयमें कुछ भी शंका न करें; क्योंकि देवोंको छोड़कर मैने आपके साथ विवाह किया है। मेरे पिताने मेरे कह-नेसे ही ब्राह्मणोंको आपकी शोधके लिये भेजे हैं। वे मेरे कहे हुए वचन कहा करते हैं। उनमेंसे पर्णाद ब्राह्मणने आपकी शोध की है। वह जानते ही आप तुरन्त यहां पधारें इसलिये मेरा फिर स्वयंवर होगा ऐसा निमित्त किया गया है। प्राणेश्वर! मैंने शोचा कि यदि आपही होंगे तो चाहे वैसे करके भी आप शीघ्र यहां आपहुं-चेगे। आपके सिवाय थोड़े समयमें कौन यहां आ सक्ता है? प्राणप्रिय! मैं कभी मनसे भी अधर्मके मार्गमें प्रवृत्त नही हुई हूं। जिसकी सत्यताके लिये मैं आपके चरणोंका स्पर्श करती हूं। यदि मैंने किसी दिन मनसे भी पापकर्मका आचरण किया हो तो सम्पूर्ण जगत्के प्रकाशमान वायु, सूर्य, चन्द्र और देव मेर प्राणका तुरन्त नाश करो। या तो जैसी मेरी सत्यता है वैसी जाहिर करो।" सती दमयन्तीकी इस प्रार्थनाको सुनकर देवोंने पवित्र वाणीका उच्चारकर गवाही दी कि "हमने दमय-

न्तीकी रक्षा की है, उसने स्वधर्मका पालन किया है। उसने केवल अपने पतिकी प्राप्तिके लिये ही यह फिर स्वयंवरका निमित्त किया है। उसमें थोड़े समयमें आनेकी बात थी सो उसमें तैरे सिवाय और कोन आ सक्ता था! इस लिये हे राजन्! तुझे तैरी धर्मपत्नी मिली है, अब संदेह रहित हो अपने कुटुम्ब समेत अपने देशमें जा और राज्य कर!" ऐसा आशीर्वाद दिया। नलका जैसा प्रथम स्वरुप था वैसा हो गया यह देखकर दमयन्ती हर्षित हुई और सजल नेत्रसे आलिंगन किया। राजा नल भी प्रसन्न हुआ। यह बाहुक सारथी ही नल है यह जानकर दमयन्तीके माता-पिता प्रसन्न हुए। नल अपनी प्यारी पत्नी दमयन्तीको लेकर स्वदेश गया। पुष्करके पाससे राज्य लेकर सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा। इस चरित्रसे स्पष्ट होता है कि दमयन्तीका नल राजाने वनमें त्याग किया जिससे उसे अनेक प्रकारके दुःख पडे फिर भी उसका पतिके प्रति प्रेम ज्योंका त्यों बना रहा। और अपने पातिव्रत्य धर्मका उत्तमतासे पालनकर सतीत्वका आदर्श संसारको दिखला दिया। यही कारण है कि उनकी संसारमें अखंड कीर्ति फैल रही है। धन्य है इस साध्वी सतीको!

सुलोचना।

सुलोचना शेष कन्या और लंकापति रावणके पुत्र इन्द्रजित्की पत्नी थी। यह साध्वी रुपसे, गुणसे और विद्यासे अनुपम थी। उसके रुपके समीपमें रती व इन्द्रानी भी कुछ नहीं। वह अपने पतिकी आज्ञाका पालनकर उनकी सेवामें तत्पर रहती थी। वैसेही सास-श्वसुर और ननंद प्रभृति आत्मियोंके ऊपर स्नेह रखकर उनके साथ नम्रता व प्रेमसे वर्तन करती थी। उसके ऐसे शुभ आचरणोंसे उसके कुटुम्बी भी उसपर स्नेह रखते थे। जब उसका श्वसुर लंकापति रावण सीताको हरण करके उसे ले आया तब सुलोचनाने अपने प्राणपति इन्द्रजित्से कहा कि प्राणेश! सीताके जैसी सतीका आपके पिता हरणकर आये है यह उन्होंने महान् अपराध किया है। राजा जनकजीकी पुत्री और भगवान रामचन्द्रजीकी राणी जो लक्ष्मी स्वरुप है उसके ऊपर कुदृष्टि करनेके पापसे राज्य जायगा। इतनाही नहीं; किन्तु जीनेकी भी आशा नहीं है। परस्त्रीकी अभिलाषा रखनेसे कुलका भी नाश होता है। जो मनुष्य साधुओंके ऊपर द्वेष रक्खे, ब्राह्मणके ब्रह्मत्वका नाश करे, जीवको हिंसा करे, ईश्वरके चरित्रोंकी निन्दा करे और सद्ग्रंथोंका नाश करे वह पापीजन इस पृथ्वीमें अपयशको प्राप्त

हो शीघ्र ही मरणके शरण होता है। अतएव हे प्राणेश्वर! आपके पिताको यह बहुतही अनीष्ट सूझा है वह अवश्य नाशका चिन्ह है।

इन्द्रजित्‌ने सुलोचनाके इन वचनोंको सुनकर कहा कि "प्रियसुन्दरि! तुम सत्य कहती हो। मैं क्या करुं? वह मेरा पिता है इसलिये वह खराब कार्य करे तो भी मैं उन्हें कुछ भी नहीं कह सक्ता। मैं सब कुछ समझता हूं; किन्तु वह सब कुछ मनमें समझकर बैठ रहा हूं। मेरा इस समय कुछ भी उपाय नहीं हैं। यदि दूसरा कोई होता तो मैं उसे अवश्य ऐसे अनुचित कार्यके लिये दंड देता। अतएव हे प्रिये! तू कुछ भी शोक मत कर। जो भावी होगा वही होगा। जिस जीवने जैसा कर्म किया होगा उसे वैसाही सुझेगा और वैसेही उसको सुख-दुःख शत्रु-मित्र प्रभृति होंगे।"

इस प्रकार सुलोचना और इन्द्रजित्‌के बीचमें बातचीत हुई। सीताको वापस देनेके लिये रावणके पास अंगद समझानेको आया; किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। आखीर महान् युद्ध हुआ। उसमें कुभकरण और बहुतसा सैन्य नष्ट हो गया! अन्तमें इन्द्रजित् जैसे वीरपुरुषकी भी मृत्यु हुई! इस समय सती सुलोचना अपने रंग महलमें चांदीकी खाटपर बैठी थी। गन्धर्व कीन्नरकी कन्याएं दासीयं थी, वे उसकी सेवामें उपस्थित थी। कोई चामर लेकर खड़ी है, कोई पंखा लेकर खड़ी है, कोई पुष्पकी माला लाकर पहिनाती है, कोई माला बना रही है, कोई भोजनके लिये तैयारी कर रही है और कोई खमा! खमा! कर रही है; ऐसे आनन्दमें सुलोचना अपने पतिका स्मरण करती हुई बैठी है उतनेमें एक दूत आया, उसने दासीको पत्र दिया जिसमें इन्द्रजित्‌के रणमें पडनेके समाचार थे जिससे रंगमें भंग हुआ। जैसे अमृतमें जहरका बिन्दु आ पडे वैसे इस समय हो गया। दासीने उदास मुखसे आकर कहा कि बाईसाहेब! आज आपका भाग्य फूट गया! ऐसा सुनते ही हाय! क्या हुआ! कहकर बाहर आई और पत्रको पढती है तो वह अपने पतिके हाथसे लिखा हुआ था। सुलोचना उसे पढते ही मूर्छागत हो पृथ्वीमें गिर पडी! कुछ समयके पश्चात् मूर्छा नष्ट हुई तब विलाप करती शीर कूटने लगी! पृथ्वीपर वार२ गिरने लगी और हाय! हाय! के पुकारसे शोक करने लगी। जैसे लोभीका समस्त धन जाय, जैसे मत्स्यको जलका वियोग होनेसे वह दुःखी होता है, वैसेही पतिवियोगसे शेषकन्या सुलोचना रुदन करने लगी। सखियोंके समझानेपर वह कुछ सावधान हुई। पतिके पत्रको हृदयके साथ दबाया। नेत्रमेंसे आंसु चले जा रहे हैं और रुदन करती हुई बोल ऊठी। हाय! हाय! स्वामिनाथ! यह क्या किया? पूर्ण ब्रह्मस्वरुप रामको जीतनेकी तुम्हारी इच्छा थी उसी रामचन्द्रको अपना प्राण

अर्पणकर आपने अपना श्रेय चाहा ! प्राणाधार ! आपने वैसा क्यों किया ? अब मैं किसके शरण रहुंगी ? ऐसा विलाप करती हुई सुलोचना पत्र पढती है उसमें लिखा था कि "हे प्रिये ! सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी जो महातपस्वी, पवित्र, निद्राजीत, मिताहारी, शुद्ध सत्यवादी, और ब्रह्मचारी है वे मेरा शिर लेकर रामचन्द्रजीके पास गये हैं। मेरे शरीरका बाकीका भाग रणभूमिमें पड़ा है। मैं इस संसाररुपी माया नदीका उल्लंघन कर चुका हूं और तेरी प्रतीक्षा देख रहा हूं। मैने श्रीजगदीश्वरको अपना मित्र बनाया है। मैने कृपणताका परित्यागकर मस्तक अर्पण किया है। इसलिये हे साध्वि ! मैं इस दुःखरुप संसारको छोड़कर श्रीभगवान्के शरणमें गया हूं। श्रीजगदीश्वरके चरणमें रहनेसे समस्त दुःख नष्ट हुए हैं और मैं अब ब्रह्मानंदको प्राप्त हुआ हूं।"

इस पत्रको पढकर सती सुलोचना अश्रुपात करने लगी। उस समय पशु, पक्षी, सभी गर्वका त्यागकरके रोने लगे। वह समीपकी सखियोंके समझानेसे शान्त हुई, स्वामीके साथ सहगमन करनेको तैयार हुई। पतिका मस्तक लेनेके लिये कितनीक सखियोंको और विद्वानोंको साथ लेकर चली। प्रथम श्वसुर—रावणके पास गई उसे प्रणाम करके अपने स्वामीका वृतान्त कहा और पत्र दिखाया। यह देखकर रावण मूर्छागत हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। मन्दोदरी प्रभृति राणियां रुदन करने लगी। चारों ओर हाहाकार हो गया ! सम्पूर्ण नगरी शोकातुर हुई और सब कोई विचार करने लगे कि अभी कौन जाने क्या होगा ? रावण रुदनके साथ शोक करने लगा। हे दैव ! तैने क्या किया ? हाय ! मेरा इन्द्राजित् जैसा प्रधानकुमार चला गया ! हाय मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया ! हाय ! अब मैं क्या करुंगा ! इस प्रकार वह अफसोस करने लगा !

मन्दोदरीने सुलोचनासे कहा कि;—पुत्रि ! तू रामके पास जाकर अपने पतिका मस्तक मांग ले ! वे अत्यन्त दयालु, धर्म धुरन्धर है। जिन्हें सीता ही एक पत्नी है ऐसे एक पत्नीव्रतवाले हैं, जिन्हें दूसरी स्त्री माता व भगिनीके समान है। जिसका एक बाण है, एक वचन है ऐसे श्रीरामचन्द्रजी तुझे अपने पतिका मस्तक अवश्य दे देंगे। उनके पास जानेमें किसी प्रकारका भय नहीं हैं। पीछे रावणके प्रति सुलोचनाने कहा कि जो मनुष्य परस्त्रीकी अभिलाषा रखता है उसका कभी भी भला नहीं हो सक्ता। इस प्रकारके वचन कहकर साथमें विद्वान् व दासियोंको लेकर वह श्रीरामचन्द्रजीके पास गई। जैसे साधुपुरुषोंके स्थानपर शान्ति मिलती है; वैसेही सुलोचनाको श्रीरामचन्द्रजीके स्थानपर पहुंचनेपर शान्ति मिली।

सुलोचनाने रामचन्द्रजीके पास जाकर उन्हको प्रणाम किया और रुदन करने लगी। श्रीरामचन्द्रजीने करुणामय वचनसे कहा कि पुत्रि! तुझे क्या चाहिये? मैं तू मांगे वही देनेको तैयार हूं। सुलोचनाने हाथ जोड़ स्तुतिकर कहा कि हे महाराज! मुझको अपने स्वामीका मस्तक चाहिये। मैं सहगमन करना चाहती हूं। मैंने अपने पतिका मरण बहुत समयसे सुना हैं अब मुझे विलम्ब होता है। मेरे पंचप्राण तो पहिलेसे ही चले गये; किन्तु शरीरके लिये पतिका मस्तक मांगनेको आई हूं। वह कृपाकर दीजिये। रामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर कहा कि " "हे शेषकन्ये! तुझे धन्य है। जैसे सभी नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ है वैसेही तू साध्वी स्त्रियोंमें रत्नरुप हैं। पतिव्रता स्त्रीकी महिमा अत्यन्त प्रसिद्ध है।" पीछे रामचन्द्रजीकी आज्ञासे सुग्रीवने उसके पतिका मस्तक दिया, उसे सुलोचनाने लेकर हृदयके साथ दबाकर अपार रुदन किया और वस्त्रका एक भाग फैला उसमें मस्तकको रखकर दो हाथ जौड़कर प्रार्थना की कि हे प्राणेश्वर! प्राणवल्लभ! स्नेह लाकर दासीपर दया कीजिये। स्वामिन्! क्या करुं? यदि मैंने प्रथमसे ही अपने पिताको बुलाया होता तो वे आपकी रक्षा करते! आपकी इस प्रकार मृत्यु नहीं होती! हाय! हाय! मैंने बहुतही भूल की! यह सुनकर सब कोई आश्चर्यचकित हुए। रामचन्द्रजीसे सुग्रीवने पूछा कि भगवन्! इस सतीने अभी क्या कहा? रामचन्द्रजीने जवाब दिया कि सतीके बोलनेका यह मतलब है कि यदि इस युद्धमें उसके पिताको बुलाती तो अपने पतिकी वे सहायता करते; किन्तु जो शेष (लक्ष्मण) पिता है उसीने तो इन्द्रजित्को मारकर विपरीत किया है। लक्ष्मणजी शेषके अवतार है। रामचन्द्रजीके इन वचनोंको सुनकर लक्ष्मणजीने सुलोचनाकी ओर देखकर रोना शरु किया! रामचन्द्रजीने उन्हें उपदेश दे शान्त किया।

सुलोचना मस्तक लेकर चली, जहां इन्द्रजित्का धड़ पड़ा था वहांपर आ समुद्रके किनारे पर चन्दन काष्टकी चिता बनवाकर समुद्र स्नान किया। पीछे पतिको चितामें पधराकर शास्त्र विधिसे क्रिया व प्रदक्षिणा कर स्वयं भीतर बैठी और अग्नि प्रकट होनेसे दम्पती जलकर भस्म हो इस जगत्में अमर कीर्ति रख गये।

"**विनाशकाले विपरीत बुद्धिः**" इस प्रकार दुष्ट दुर्मति महाबलवान् रावणने परस्त्रीकी इच्छा की जिसके पापसे कुंभकरणके समान भ्राता, इन्द्रजित्के समान महा बलवान् पुत्र और सुलोचनाके समान सती स्त्रियां प्रभृति कुटुम्बका नाश हुआ, लंका लूट गई और अन्तमें अपना प्राण गया। अवश्य अनीति व पापका फल मिले विना नहीं रहता।

सुलोचनाके समान साध्वी स्त्रीका इन्द्रजित्के समान राक्षसके साथ समागम हुआ था; किन्तु सतीने उसे अनेक प्रकार समझा बुझाकर सुधार दिया था और वह सब प्रकार योग्य बन गयाथा; किन्तु अपने दुर्मति पिता रावणकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सक्ता था, उस दुर्मतिके पापसे सभीका नाश हुआ। उसके पापका फल सम्पूर्ण कुटुम्बको भोगना पड़ा। प्रभो! ऐसे दुष्टमति संसारमें उत्पन्न नहीं करके सुलोचनाके समान सतियां घरर में उत्पन्न कीजिये।

द्रौपदी।

महा सती पांचल देशके काम्पिल नगरके राजा द्रुपदकी पुत्री थी। वह स्वरुपसे सुन्दर, तेजस्वी और सहज श्यामवर्णी थी। बाल्यावस्थामें पिताके वहां आचार्यके पास उपदेश ग्रहण किया था। चित्र रचना, शिल्पकार्य, धर्मशास्त्र और आध्यात्मिक ज्ञान प्रभृति सभी विषयोंकी उसने शिक्षा पाई थी। वह राजपुत्री थी फिर भी अपने जहरी व हठी स्वभावको दबा रखती थी। वह दुःखमें रुदन नहीं कर अपनी स्थितिके अनुसार सदैव प्रसन्न रहती थी। वह शान्त परिपक्व बुद्धिवाली और सावधान थी। संकटके समयमें नहीं गभड़ाकर हो सके उतना उससे मुक्त होनेका उपाय करनेमें वह कुशल थी। उसमें पुरुषके समान शौर्य था; हरएक कठिन समयमें भी निर्भयतासे जवाब देती थी। उसका स्वभाव कुछ क्रोधयुक्त था; किन्तु प्रसंग व्यतीत होनेके पश्चात् उसे वह भूल जाती थी। दूसरे मनुष्यके मनकी परीक्षा करनेमें वह बहुत ही चतुर थी। भारत भूमिमें पांच *प्रधान महासतियां समझी जाती हैं उनमें वह प्रधान थी।

राजा द्रुपदने द्रौपदीका स्वयंवरसे विवाह करनेका विचार किया। देश देशान्तरोंके राजाओंको बुलानेके लिये निमंत्रण भेजे, जिससे कौरव—दुर्योधन तथा कर्ण प्रभृति, कृष्ण, बलदेव, सिन्धु देशका जयद्रथ, पौंड्रका वासुदेव, चेदिका शिशुपाल, विराटका राजा, मद्रका शल्य, इत्यादि राजा राणा आकर एकत्र हुए। उस समय पाण्डव वनवासमें थे वे भी इस समाचारको सुनकर ऋषियोंके साथ ऋषि भेषसे

* आयावर्तकी पांचे महा सतियोंके नांव:—सीता, दमयन्ती, द्रौपदी, अहिल्या और तारा।

आये। स्वयंवर मण्डपकी शोभा अवर्णनीय थी। उसके एक भागमें राजा लोग बैठे थे, एक भागमें ऋषिगण बैठे थे और एक भागमें द्रौपदी अपनी दासियों समेत शृंगार सजकर बैठी थी। मध्यमें स्थंभ पर सुवर्ण मत्स्य लगाया गया था उसकी चारों ओर घुमनेवाले चक्र लग रहे थे। नीचे एक धनुष्य पडा था वाजित्र मधुर स्वरसे सभ्योंके मनको आनन्दित कर रहे थे। स्त्रियां शृंगार सजकर मङ्गल गीत गा रही थी। इस प्रसंगमें द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न स्वयंवर मण्डपमें खडा होकर कहने लगा कि;— "वीर पुरुषो! इस दण्डके ऊपर सुवर्णमय मत्स्य है, उसके नेत्रका इस धनुष्यसे जो वेध करेगा, उसीका द्रौपदीके साथ विवाह होगा, किसीने एकसे दूसरी वार बाण नहीं मारना। जिनमें शक्ति हो वह ऊठे" यह सुनकर कई राजा ऊठे; किन्तु धनुष्यको चढा नहीं सके, कई अपमान होनेके भयसे उठे भी नहीं। पीछे कर्णने ऊठ कर धनुष्य चढाया और बाण उसमें लगानेको तैयार हुआ उतनेमें द्रौपदी बोल ऊठी कि "मैं सूतपुत्रके साथ विवाह नहीं करुंगी" कर्ण का मुख ढीला हो गया फिर भी हसता हुआ मुख रखकर मंडपके बाहर जा कर बैठा। जब सभी राजा थक कर बैठ गये तब ऋषि मंण्डलमें बैठ हुए पाण्डवोंमेंसे अर्जुनने खड़े होकर धनुष्य चढाया। ब्राह्मणको धनुष्य चढाता हुआ देखकर सब कोई आश्चर्यान्वित हुए; किन्तु अर्जुनने द्रोणगुरुका स्मरण कर बाण ऐसा मारा कि मत्स्यका नेत्र विंध गया। धन्य! धन्य! और वाह! वाह! होने लगी; दौपदीने अर्जुनको प्रेमसे हार पहिनाया। पाण्डव द्रौपदीको लेकर अपने उतारेपर लाये और द्रुपद राजाने द्रौपदीका शास्त्रविधिके अनुसार विवाह कराया।

द्रौपदीने पाण्डवोंके साथ इन्द्रप्रस्थमें रहकर राजकार्यमें बहुत ही सलाह दी थी। वैसे ही संसार व्यवहारके कार्य करती थी। अभ्यागत, अतिथि, और दास-दासियोंके भोजन और पोषाक विषयकी व्यवस्था करती थी। गौशाला और मेष-शाला स्वयं देखती थी और कोष उसके हाथमें था। आयव्ययका सभी कार्य वही करती थी। जिस कार्यका वह अपने पर भार लेती थी उसे पूर्ण करती थी वह कहती थी कि "जीव निष्काम नहीं होने पर मुक्ति नहीं प्राप्त कर सक्ता।" जब वह वनवासमें थी तब काम, क्रोध और अहंकारको छोड़कर सदैव पाण्डव और उनकी दूसरी स्त्रियोंकी सेवा करती थी। प्रातःकालमें शीघ्र ऊठ स्नान कर ईश्वरोपासना प्रभृति नित्यकर्म करती थी। पीछे ध्यानपूर्वक एकाग्रचित्तसे पतिके कथानुसार कार्य पर लगती थी। धरकी सभी वस्तुयें स्वच्छ रखती, घर लिंपती, और समयपर रसोई बनाकर भोजन कराती थी। सावधानीसे धान्यकी रक्षा करती थी और दुष्ट स्त्रियोंका समागम नहीं करती

थी। तिरस्कार भरे हुए वाक्य कभी भी नहीं बोलती थी। सर्वदा आलस्य रहित कार्योंमें लगी रहती थी, बहुत ही आवश्यक आनन्दोत्सवमें जाती तो मर्यादासे रहती थी, बहुत ही आश्चर्यजनक कार्यमें मन्द हास्य करती थी, व्यर्थ कभी हंसती नहीं। किसी दुर्गन्धीवाले स्थानपर खड़ी नहीं रहती थी। वह सत्यमें निमग्न खड़ी रहकर सदैव पतिसेवा किया करती थी। स्वामी किसी संकटमें आ जाय तब उसकी निवृत्तिके लिये देवाराधन करती थी। ईर्षा—असूयाको छोड़ मनको वशमें कर पतिको प्रसन्न रखती थी। दूरसे बुलाने पर या संकेत करने पर स्वामीके पास उपस्थित होती थी और उनकी इच्छानुसार चलती थी। पतिको बुरा मालुम हो ऐसा कभी भी नहीं करती। खराब पदार्थको देखती नहीं। स्वामिके सिवाय देव, मनुष्य गन्धर्वादि सब किसीको तुच्छ समझती थी। अपने पतिको सूर्य, अग्नि और चन्द्र स्वरुप मानती थी। पति विनाकी स्त्रीका संसार शोकका कारण है। संसारमें पति यही सुख मात्रका हेतु है और पति ही इस संसारमें उद्धार करनेवाला है ऐसा समझकर तन, मन, कर्म और कायासे पतिके ऊपर ही भाव-प्रेम रखकर, सुन्दर वस्त्रालंकार सजकर पुष्प व चन्दन लगाकर पतिसेवामें उपस्थित होती थी। पतिके परदेश गमनके प्रसंग पर उत्तम वस्त्राभूषणका त्याग कर, व्रत, नियम करती रहती थी कुटुम्बके धर्म पालन करनेमें सासु कुन्ताजी की आज्ञाका पालन करती थी। बड़ोंको मान देती थी और ब्राह्मण, तथा गरीबोंको अन्नवस्त्रादिका दानकर संतुष्ट करती थी। राज्यके हाथी, घोड़े, रथ, पालखी प्रभृति वाहन कैसी स्थितिमें है उसकी संभाल रखती थी और कुटुम्बका सभी भार अपने ऊपर ले पतिको निश्चित बनाती थी। इस प्रकार सदैव वर्तनकर उसने अपने पतिकी प्रीति सम्पादन की थी। पति भी उसे अत्यन्त चाहते थे और सन्मान दे प्रसन्न रखते थे। ऐसा परस्पर अत्यन्त स्नेह था। द्रौपदी पतिकी अन्यान्य स्त्रियोंके साथ भी भगिनीभाव रखकर उनसे मिलकर रहती थी। सुभद्राको अभिमन्यु हुआ उसके पश्चात् द्रौपदीको पांच पुत्र हुए।

राजा युधिष्ठिर दुर्योधनके साथ द्युतक्रिड़ा करते हुए समस्त सम्पत्ति हार गये; पांचो भाई और द्रौपदी दास बने। द्रौपदीको सभामें ले आने के लिये दुर्योधनने आग्रह किया। उसे विदुरने बहुत कुछ समझाया; किन्तु उसने नहीं स्वीकार किया और एक सेवकसे द्रौपदीको ले आने की आज्ञा दी। सेवकने द्रौपदीको सभामें चलनेके लिये कहा; तब उसने कहा कि तू पूछकर आ कि युधिष्ठिरने दास होनेके पीछे मुझको दावपर धरी थी या पहिले? सेवकने सभामें आकर सभी समाचार कहे। उसे सुनकर दुर्योधनने कहा कि यह मिथ्या शब्दवाद सुननेकी क्या जरुरत है? जा

तुरन्त उसे यहां ले आव। सेवक जानेको तैयार हुआ उतनेमें भीमकी क्रोधभरी दृष्टिको देखकर डर गया। पीछे दुर्योधनने दुःशासनको भेजा। उसने द्रौपदीसे कहा कि आपको जो कुछ कहना हो सभामें आकर कहिये। द्रौपदी बोली कि कौरवोंका अन्त समीपमें आया है इसीसे वे लोग ऐसा कर्म करते हैं। पीछे वह काम्पती हुई दुःशासनके साथ चली। मार्ग के लोगोंको इस बातकी खबर मिलते ही वह बात सम्पूर्ण नगरमें फैल गई। सज्जन लोग अन्तःकरणसे खेद करने लगे। नगरकी स्त्रियां आवेशमें आ, दुष्ट दुर्योधन व दुःशासनको धिःकार व गालियें देने लगी। राज्यमहलमें आते ही रानीवासकी ओर चली; किन्तु दुःशानिने अपने काले कर्म करनेवाले हाथसे उसके केश पकड़ लिये और बोला कि "दासि द्रौपदि! चल दुर्योधनकी सेवामें हाजिर हो" ऐसे वज्रके समान वचनसे भय पाती हुई द्रौपदी बोली कि "दुःशासन! मुझे सभामें मत घीचले जा। मेरे बाल बीखेर हुए हैं। आधा वस्त्र नीचे गिर गया है। इतने बड़ोंसे भरी हुई सभामें तू मेरे पर जूल्म मत करे।" दुःशासनने कहा "तू हमारी दासी हुई है। तुझे एक भी वस्त्र पहिनने देना या नहीं वह हमारी इच्छाके आधीन है।" ऐसा कहकर वस्त्र खिंचने लगा। द्रौपदी दीन जैसी बनकर पुकार करती हुई कहने लगी कि "हाय! हाय! इस भरी सभामें कोई भी सुज्ञ पुरुष नहीं हैं! क्या सभी मरे हुए हैं? धिःक्कार है इससभाको! और धिःक्कार है इन सभ्योंको! भरतवंशी राजाओंके भाग्य फूटे हुए मालुम होते हैं! हस्तिनापुरके राज्यासनमें महान् परिवर्तन हुआ चाहता है। यही कारण है कि ऐसा महान् अधर्म हो रहा है फिरभी भीष्म, द्रौण, विदुर प्रभृति वृद्ध लोग निर्लज्जतासे कुछ भी नहीं बोलकर चुप रहे हैं!!!

सभामें द्रौपदीको देखकर और उनके वचनोंको सुनकर सभ्योंने लज्जित हो नीचा मुख कर लिया। द्रौपदीने भीष्म व द्रोणसे पूछा कि युधिष्ठिरने दास होनेके पश्चाद् मुझे दावमें रक्खा था? और भी कई प्रश्न क्रोधावेश होकर उसने पूछे; किन्तु उन्होंने दुष्ट दुर्योधनसे दबकर उत्तर नहीं दिया। उस समय कोई भी दुर्योधनसे विरुद्ध नहीं बोल सके। केवल धृतराष्ट्रका बालक पुत्र विकर्ण जोशसे खड़ा हो न्यायके तत्त्वोंका अनुसरणकर निष्पक्षपात रीतिसे कहने लगा कि;—यह बहुत ही अधर्म होता है। युधिष्ठिर अपना शरीर हारनेके पश्चात् द्रौपदीको दावमें नहीं रख सक्ता। यदि युधिष्ठिर के शरीरके साथ ही द्रौपदीको हारी हुई समझकर यहां लाये हो तो बहुत बड़ी भूल है। युधिष्ठिरके हार जाने के पश्चात् शकुनीने द्रौपदीको अलग समझकर दावमें रखनेके लिये कहा था। इस लिये द्रौपदी किसी प्रकार दासी होने योग्य

नहीं हैं। पितामह भीष्म भी दुर्योधनसे क्यों दबते हैं? गुरु महाराज द्रोण और कृपा-
चार्य भी क्यों मौन धारण कर रहे हैं?"

विकर्णको ऐसे वचन बोलता हुआ देखकर उसे बोलना बंद कराके नीचे बीठा
दिया। विकर्णके कथनको बकवाद समझकर उस पर कुछ भी ध्यान नहीं देते हुए
कर्णने दुःशासनसे कहा कि महाराजा दुर्योधनकी आज्ञा होने पर भी तू क्यों डर
रहा है? पाण्डव और द्रौपदीके वस्त्र खेंच ले। कर्णके इन कठोर वचनोंको सुन
कर प्रथमसे ही अपने वस्त्रोंको दूर फैंक कर बैठे हुए पाण्डवोंके सामने देखकर
शकुनी हंसने लगा। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और विदुर प्रभृति नीचे मुखकरके चुप
बैठे रहे, कितने तो इस भयंकर जूल्म और पाण्डवोंको पींजरमें पूरे हुए सिंहके
समान शान्त बैठे हुए देखकर अश्रुपात करने लगे। दुर्योधन अत्यन्त गर्विष्ट वाणीसे
बोला कि "दुःशासन! इस द्रौपदीके वस्त्र खेंच ले।" द्रौपदीने पाण्डवोंकी सामने
देखा; किन्तु उन्होंने नीचा मुख करलिया। भीम उसे छुड़ानेके लिये खड़ा होना
चाहता था; किन्तु युधिष्टिरने उसे ऊठने नहीं दिया। द्रौपदीने फिर पाण्डवोंकी सा-
मने दृष्टि की। दुःशासन उसे दूसरी ओर घींचकर बोला कि हे दासि! तू इधर
ऊधर क्या देखती है? उस समय शकुनी और कर्ण बोल ऊठे, ठीकर कहा! यह
देखकर द्रौपदी आक्रन्दन करती हुई कहने लगी कि "तुम सभीको स्त्री बालक है;
फिर भी मेरा दुःख क्यों तुम्हें मालुम नहीं होता? मैं एक बात पूछना चाहती हूं उ-
सका उत्तर दीजिये।" अधिक बोलना चाहती थी; किन्तु दुःशासनने कठोरवचन कह
कर उसके वस्त्रोंको खेंचना शरु किया। उसे देखकर भीमसे नहीं रहा गया। उसने
युधिष्टिरके ऊपर क्रोध किया; किन्तु अर्जुनने उसको रोका।

दुःशासन द्रौपदीके वस्त्र निकालने लगा। द्रौपदी दीनतासे प्रार्थना करने लगी;
हे शरणागत वत्सल! हे परमेश्वर! हे योगीश्वर! हे जगदीश्वर। भगवन् श्रीकृष्ण!
मेरी रक्षा करो! मेरी लज्जाकी रक्षा करो! द्रौपदीके इस प्रकारके पुकारसे सभा गुंज
ऊठी। ऐसे करुणाजनक शब्दोंने श्रीकृष्णका ध्यान आकर्षित किया! जिससे वे
सर्व व्यापी परमात्माने आकर गुप्त रुपसे रहकर अबलाकी लज्जा रक्खी। दुःशासन
जैसे२ वस्त्र निकालता गया वैसे२ नवीन वस्त्र पहिने हुए दिखाई देने लगा। यह
देखकर सभ्य लोग आश्चर्यचकित हुए। वे सब कोई सती द्रौपदीकी प्रशंसा क-
रने लगे और दुःशासनको धिःक्कारने लगे। अन्तमें द्रौपदीने दुःशासनको शाप दिया
कि "जिसने मेरे वस्त्रों को अपने बाहुसे खेंचकर मेरा शरीर खुल्ला करना चाहा है
उसके बाहुको मूलमेंसे निकाल देकर उसकी छाती को चीरकर कोई पराक्रमी पा-

समय उसने प्रतिज्ञा की कि;—भीम दुःशासनको मारकर उसका खुन पीवेगा और उस खुनसे भरे हुए हाथ मेरे शिरपर रक्खेगा वहांतक मैं केश योंही छूटे रहने दूंगी। पाण्डव द्रौपदीके साथ वनमें फिर, अनेक ऋषिमुनियोंके दर्शन किये, आशीर्वाद प्राप्त किये, अनेक पराक्रम कर अधर्मी दुष्टोंका नाश किया और सज्जनोंको सुखी किया। एक समय पाण्डव मृगया करने गये थे। द्रौपदी आश्रममें एकाकी थी। उस समय दुर्योधनका बनोई जयद्रथ उस मार्गसे जा रहा था। वह द्रौपदीको देखकर मोहित हुआ, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हुई, वह द्रौपदीको कपटसे अपने रथमें बीठाकर भगने लगा; परन्तु पाण्डवोंको मालुम होते ही उन्होंने पीछा किया और उसके सैन्यका नाश-कर उसको बांधकर धर्मराजाके पास लाये। धर्मराज युधिष्ठिरने उसे उपदेश दे छोड़ दिया। पाण्डवोंको वनमें बारह वर्ष पुरे हुए, तेरहवें वर्ष गुप्त रहने का था। इससे पाण्डव भेष बदलकर भिन्न व्यवसायीक नांव धारणकर विराट राजाकी नौकरीमें रहे।

द्रौपदी सैरंध्री नांव धारणकर नगरमें राजमहलकी ओर चली आरही थी। राणीकी उसके ऊपर दृष्टि पड़ी। उसने बुलाकर कहा कि "तुम कौन है?" द्रौ-पदीने कहा "मैं प्रथम रुक्मणीजी की दासी थी, पीछे द्रौपदीकी दासी हुई थी; किन्तु वह पाण्डवोंके साथ वनमें गई तबसे म नौकरीके लिये फिर रही हूं।" राणीने कहा कि तू किसी राजाकी राणी जैसी मालुम होती हैं। तू मेरे से अधिक स्वरुपवती है। यदि राजा तुझे देखेगा तो मैरा अनीष्ट हो सक्ता है इस लिये मैं तुझे नहीं रख सक्ती। द्रौपदीने कहा तुम्हें इस बातकी चिन्ता नहीं करनी होगी। पांच गंधर्व मेरी अहोनिश रक्षा करते हैं। मेरे पर यदि कोई कुदृष्टि करेगा तो वे उसे मार डालेंगे। मैं सभी कार्य करुंगी केवल किसीका पांव धोना या झुठा खाना ये दो कार्य मुझसे नहीं हो सकेंगे। राणीने कहा कि यदि ऐसाही है तो मेरे पास रह सक्ती है। पीछे सती द्रौपदी जिसे अपना पातिव्रत्य धर्म अत्यन्त प्यारा है उसकी रक्षाकर विराट राणी सुधेक्षणाकी पासमें दासी होकर रही।

विराट राणी सुधेक्षणाको एकसो भ्राता थे जो कीचक नांवसे प्रसिद्ध थे। उ-नका राजदरबारमें भारी मान था। राजा भी उससे दबाता था। उन कीचकोंमें जो बडा था वह राजाका सेनापति था। राजा अपने शालोंकी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी कार्य नहीं कर सक्ता था। बडे कीचकने द्रौपदीको भ्रष्ट करनेका प्रयत्न शरू किया; किन्तु सतीने क्रोधमें आकर उसको ऐसा धक्का मारा कि वह नीचे गिर गया। ऐसा उस सतीमें बल था। सतीने एकान्तमें जाकर भीमसे संपूर्ण वृत्तान्त कहा, अत्यन्त रु-

दन किया और कहा कि आप कीचकको मारिये अन्यथा मैं अपना प्राणत्याग करुंगी। यह सुनकर भीम अत्यन्त दुःखित हुआ और द्रौपदीको शान्तकर कीचकके ऊपर क्रोधकर कहा कि मैं किसीको न मालुम हो इस प्रकार कीचकका कल नाश करुंगा। उसके मरणके पश्चात् कहना कि उसे मेरे गन्धर्वने मारा है। पीछे भीमने दूसरे दीन उस पापी कीचकको एकाकी अन्धेरी जगहमें--चित्रशालामें पकड लिया। कीचक महान् शुरवीर था जिससे दोनोंके बीच थोड़ी देर मल्लयुद्ध हुआ; किन्तु आखीर भीमने उसे नीचे गिराया और उसकी छाती पर चढकर ऐसा दबाया कि उसका प्राण तुरन्त निकल गया। भीमने द्रौपदीको बुलाकर उस मरे हुए कीचकको दिखाया और कहा कि तुम्हें जो कोई सतावेगा उसकी मैं यह दशा करुंगा। पीछे द्रौपदीने जाहिर किया कि कीचकको मेरे गन्धर्वने मारा है। कीचकके मरनेसे गांवमें हाहाकार हो गया। कीचकके भाई उसके शबको जलानेके लिये चले। द्रौपदी–दासीके सबबसे कीचकका मरण हुआ है इस कारण उसे भी कीचकके साथ जलानेके लिये ले गये। पीछेसे भीम दूसरे मार्गसे श्मसानमें गया। मार्गमेंसे एक बड़े वृक्षको मूल सहित उखाड़कर साथमें लेता गया। शिरके बाल मुखपर डालकर जिससे कोई पहिचान न सके कीचकोंको ओर दौड़ा। वे गन्धर्व आया ऐसा जानकर भगे; किन्तु भीमने उन्हें पकड़कर मार डाले। द्रौपदीको नगरकी ओर विदाकर स्वयं चुपचाप आकर अपने स्थानमें रहा।

फिर नगरमें हाहाकार हो गया। कारभारी लोगोंने राजाके पास जाकर कहा कि;-"इस दासी–(द्रौपदी) से नगरमें अत्यन्त उपद्रव हो रहे है इस लिये उसे विदा कीजिये! राजा स्वयं गन्धर्वके भयसे कुछ भी नहीं बोला; किन्तु अपनी राणीसे कहा कि उस दासीको विदा करो! राणीने द्रौपदीसे कहा कि अब तुम्हारी इच्छा हो वहां चले जाओ! यदि तुम्हारे गन्धर्व मेरे पतिको भी मार डालेंगे तो मैं क्या करुंगी ? द्रौपदीने कहा कि अब मुझे १३ दिन और यहां रहने दीजिये। पश्चात् मेरे गंधर्व तुम्हारा भला करके मुझे अन्य स्थानपर ले जांयगे। यह सुनकर राणीने कुछ भी नहीं कहा।

कीचकके मरणके समाचार सुनकर कौरवने जान लिया कि उसे पाण्डवके सिवाय और कोई नहीं मार सक्ते अतएव कदापि वे वहां होंगे इसलिये चलो हम लोग विराट राजाके ऊपर चढाई लेकर जांय। यदि वे वहां होंगे तो उसकी सहायता किये विना नहीं रहेंगे। और ऐसा करनेपर वे प्रासिद्ध होंगे और फिर बार वर्ष उन्हें वनमें जाना पडेगा। ऐसा विचार कर वे लोग सैन्य समेत विराट नगरी आये। उसे घेरा डाला यह देखकर विराट राजा भयको प्राप्त हुआ; किन्तु गुप्त रहकर पा-

ण्डावोंने उसे सहायता दी। कौरव परास्त होकर भग गये और उसके सैन्यमेंसे माल मीलकत ले ली। इस प्रकार होनेसे पाण्डव प्रसिद्ध हुए। किन्तु तपास करने पर मालूम हुआ कि उस समय १३ वर्ष पूर्ण हो गये थे। जिससे दुर्योधन निराश हुआ। अपने यहां रहे हुए ये पाण्डव है और यह दासी द्रौपदी है ऐसा जानकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और पाण्डवोंके पास क्षमा मांग कर उनका उपकार माना। वहांसे पाण्डव द्रौपदी समेत इन्द्रप्रस्थ आये। पीछे महाभारतकी लड़ाई हुई। उसमें कौरवोंको पराजित कर उनका नाश किया। द्रौपदीके दिये हुए शापके अनुसार भीमने दुःशासनका हाथ तोड़ डाला और उसकी छातीको चीरकर अपनी तृप्ति पर्यन्त खून पीया और दुर्योधनकी जंघाओंको गदाके द्वारा तोड़ कर उसको मार डाला। धन्य है सति द्रौपदि! कि जिसके क्रोधसे कौरव मृत्युके मुखमें पड़कर नष्ट हुए और जिनकी कृपासे पाण्डव संकट समुद्रसे पार उतर गये।

द्रौपदीके पांच पुत्रोंको अश्वत्थामाने मार डाले, इससे द्रौपदीने रुदनकरके पाण्डवोंसे कहा कि "आप इतने समर्थ होने परभी अश्वत्थामाको शिक्षा नहीं करोगे? भीम! आप उसका मस्तक मेरे पास लाईये!" यह सुनकर धर्मराजाने कहा कि "अश्वत्थामा ब्राह्मण है, द्रोण गुरुका पुत्र है। यदि उसने अपराध किया है तो उसे विष्णु दण्ड देंगे।" ऐसा कहकर उनको शान्त किया। तब उसने फिर कहा कि उसके शिरपर मणि है वह मेरे लिये ले आईये। पीछे अर्जुनने अश्वत्थामाको गंगा तीरपर पकड़ लिया। उसके पाससे मणि ले भीमको दिया, भीमने द्रौपदीको दिया और उसने युधिष्ठिरको दे दिया। द्रौपदी पुत्रका शोक कर रही थी उसका सान्त्वन करनेके लिये गान्धारी आई और कहने लगी कि "द्रौपदि! मैं और तू दोनों समान दुःखी हैं। जहांपर शिवका क्रोध हुआ वहांपर किसका चल सक्ता है? बेटा! तू रुदन मत करे! मेरे दुःखके सामने तेरा दुःख कुछ भी नहीं हैं। देवने क्या चाहा है यह हम लोग नहीं जान सक्ते। ईश्वरका उपकार मानना चाहिये कि युद्ध पूर्ण हुआ। जो मर गये हैं उसका शोक करनेसे क्या हो सक्ता है? इत्यादि शान्ति देनेवाले वचन कहे जिससे द्रौपदीका शोकाग्नि शान्त हुआ। वह पतिके साथ कुछ वर्ष तक हस्तिनापुरके राज्य वैभवको भोगकर सुखसे रही और यज्ञ प्रभृति शुभ कार्य किये। अन्तमें पाण्डव हिमालय गये वहांपर भी वह साथमें सेवा करनेको गई थी। वहांपर तपश्चर्या कर सद्गतिको प्राप्त हुई। इस प्रकार उसने अपने पातिव्रत्यधर्मकी रक्षा की थी। वह अपने सुचारित्रसे संसारमें अखंड कीर्ति स्थापित कर गई है। धन्य है सति द्रौपदि!

रेवती ।

सती रेवती यह रैवतक देशके राजा रैवत–इन्द्रद्युम्नकी पुत्री थी । यह पुत्री रुपसे, गुणसे और ज्ञानसे अनुपम थी । वह जब योग्य उम्मरकी हुई तब उसके पिताने ऋषियोंको बुलाकर पूछा कि मेरी इस पुत्रीका विवाह किसके साथ करना चाहिये ? कोई योग्य व्यक्ति बतलाईये । इस परसे सभी सभ्योंने पूर्ण विचार करके कहा कि राजन् ! तेरी पुत्रीके लिये सभी प्रकारसे योग्य ऐसा कोई भी पति नहीं हैं; किन्तु द्वारकामें वसुदेवजी रहते हैं उनके श्रीकृष्ण और बलदेव नामके दो पुत्र ईश्वरावतार हैं उनमें बड़े बलभद्रजी हैं वे अतुल पराक्रमी, नीतिनिपुण, रुप और गुण प्रभृति में श्रेष्ट हैं वे तुम्हारी पुत्रीके लिये सब प्रकार योग्य है इसलिये उसे दान कीजिये। इस परसे रैवत राजाने रेवतीका विवाह बलरामजी के साथ शास्त्रविधिसे किया । यह युगल सब प्रकार एकरुप था । उन दोनोंके अन्तःकरण एक थे, केवल शरीर भिन्न२ थे । सतीने अपने पतिव्रताके धर्मका पालनकर पतिकी अत्यन्त प्रीति सम्पादन की थी । वह अपने सतीत्वके प्रभावसे इतनी प्रसिद्ध व माननीय हो गई है कि आज लोग उनके नांवसे बने हुए रेवती कुंड जो गिरनार पर्वत और द्वारकाजी प्रभृति तीर्थोंमें है उसमें स्नान करनेसे अपनेको पवित्र हुए मानते हैं। और उसे देवी समझकर लोग उनकी प्रतिमाकी पूजा करते हैं । संसारमें इस सतीके पवित्र नामका स्मरण चिरकाल तक रखनेके लिये आकाशके २७ नक्षत्रोंमेंसे एक नक्षत्रका नांव "रेवती नक्षत्र" रक्खा गया है। धन्य है ऐसी सतीको ! ! !

रुक्मिणीजी ।

यह साध्वी स्त्री वैदर्भ देशके भिष्मक राजाकी कन्या थी । वह रुप एवं गुणसे अत्यन्त मनोहर अथच अनुपम थी। उसका विवाह मगध देशके चेदी राजाके साथ करनेका उसके भ्राताने निश्चय किया था; किन्तु रुक्मिणीजी की उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा नहीं थी। उसने तो प्रथमसे ही श्रीकृष्णको अपना पति बनानेका निश्चय कर लिया था । उस निश्चय-

को उसने अन्त तक स्थायी रक्खा था। उसके भ्राताकी सम्मति व आग्रहके अनुसार उसके पिताने विवाहका दिन निश्चित किया। मगधदेशसे चेदी राजा सैन्य समेत विवाह करनेके लिये निकला। तब रुक्मिणीजीने विचार किया कि यदि श्रीकृष्ण स्वयं पधारकर मेरे साथ विवाह कर न ले जायंगे तो मैं अपने प्राणोंका त्याग करुंगी; किन्तु उनके सिवाय अन्यके साथ विवाह नहीं करुंगी। अब एक ओरसे विवाहकी तैयारियें हुई और दूसरी ओरसे रुक्मिणीजीने श्रीकृष्णको पत्र लिखा कि;— "हे नरश्रेष्ट! आप कुल, शील, रुप, विद्या, वय, धन सम्पत्ति और प्रभावसे उपमा रहित और नरलोकके मनोभिराम हैं। कौनसी कुलवती, गुणवती व बुद्धिशाली कन्या आपके साथ विवाह करनेकी अभिलाषा न करे? आप यहां पर पधारकर मुझे पत्नी रुपसे स्वीकार करें। हे अम्बुजाक्ष! आप वीर हैं, मैं आपकी वस्तु हूं। चेदीराज आकर मेरा स्पर्श न करे उसके पहिले ही शीघ्र पधारकर उससे छुड़ाईये। यदि मैंने पूर्वजन्ममें पूर्तकर्म, अग्निहोत्रादि यज्ञ, पर्वणादि दान, तीर्थ, नियम, व्रत्तादि किम्वा देव, विप्र, गुरु इत्यादि की अर्चना द्वारा सदैव परमात्माकी आराधना की हो तो श्रीकृष्ण! आप पधारकर मेरा पाणीग्रहण करें! दमघोषपुत्र इत्यादि कोई भी मेरा पाणीग्रहण न करे! हे अजित! कल विवाहका दिन है। इसलिये आप पधारकर चेदिराज और मगधराजाके सैन्यके बलको नष्ट करें। आप अपने प्रभावसे ब्राह्मविधिसे मेरे साथ विवाह करे! यदि आप कहेंगे कि तू अन्तःपुरमें है इसलिये तेरे साथ कैसा विवाह किया जाय? तो उसका यह उत्तर है कि विवाहके प्रथम बड़ी कुलदेवीकी यात्रा होती है। उस यात्रामें कन्याओंको नगरके बाहर अम्बिकाजीके मन्दिरमें जाना पड़ता है। वहांपर मैं उस प्रसंगपर पूजन करनेको आवुंगी। वहांसे मेरा हरण करना आपको ठीक पड़ेगा।" रुक्मिणीजीने इस प्रकारका एक पत्र ब्राह्मणके द्वारा श्रीकृष्णके पास पहुंचाया। उसे पढकर श्रीकृष्णने जान लिया कि जो स्त्री मुझे अपने मनके द्वारा अपना पति बना चुकी उसको दूसरेके हाथमें जाने देना महा पाप है। इसलिये वहांपर जा उसका हरणकर उसकी इच्छाको पूर्ण करना यह मेरा धर्म है। ऐसा विचारकर स्वयं विदर्भ देशमें जानेके लिये विदा हुए। भगवान्‌के पधारनेमें विलम्ब हुआ यह देखकर रुक्मिणीने प्राणत्याग करना निश्चित किया। उतनेमें एकदम श्रीकृष्णने पधार उसको देवी मन्दिरमेंसे हरणकर अपनी राजधानीमें ले जाकरके शास्त्रविधिसे उसके साथ विवाह किया और अपनी अर्धांगिनी बनाकर रक्खी। दिन प्रतिदिन परस्परका प्रेम बढ़ता गया। अनेक प्रकारसे सुखानुभव करने लगे। रुक्मिणीने अपने प्राणनाथकी अनेक प्रकार सेवाकर उनका मन अपनी ओर आकर्षित

किया । अहा ! रुक्मिणीजी का अपने योग्य पतिकी शोध कर उसके साथ विवाह करनेका दृढ विचार कैसा था !

रेणुका ।

यह सती त्रेतायुगमें हो गई है । उसके पिता रेणुक राजाने उसका विवाह जमदग्नि ऋषिके साथ किया था । और अन्य पुत्रियोंका विवाह सहस्रार्जुनके साथ किया था । रेणुका परमपवित्र एवं साधु वृत्तिवाली थी । उसने शास्त्राभ्यास किया था । वह पतिके पाससे, तत्वज्ञान प्राप्त कर योगसाधनामें निपूण हुई थी । इस पवित्र मनकी सतीके उदरसे ईश्वरावतार महात्मा परशुरामजीका जन्म हुआ था । उसको सतीने बाल्यावस्थामें उत्तम शिक्षा दे धीर, वीर और परमज्ञानी बनाया था । वे आगे चलकर बहुत ही प्रसिद्ध हो गये हैं यह सब रेणुकाके समान पवित्र मनकी माताका ही प्रभाव था । उत्तम माताके उदरसे उत्तम प्रजा होती है यह बात इस उदाहरणसे सिद्ध होती है ।

सती रेणुकाजी एक समयपर पतिकी आज्ञासे गंगाजल भरने गई थी, वहांपर गन्धर्वोंका राजा अपनी स्त्रियां अप्सराओंके साथ क्रिड़ा कर रहा था । उसके राजसी वैभवको देखकर दैवेच्छासे सती अपनी पति सेवाकी स्मृतिको भूल गई । उसके मनमें रजोगुणी कल्पनायें आने लगी; जिससे उसका सतीत्व नष्ट हुआ । यह देखकर सती अत्यन्त भयभीत हो पश्चात्ताप करने लगी । अहो ! दैव ! तैंने यह क्या किया ! मैरे मनमें रजोगुणी कल्पनाकी प्रेरणा कैसे हुई ? रजोगुणीकी समृद्धिसे महान् समृद्धि जो पतिभक्ति उसकी तैंने क्यों विस्मृति कराई ? हाय ! मैंरे किस अपराधसे यह हुआ । अहो दैव ! मैंने राज्यसमृद्धिका त्यागकर इस परम दैवतरुप ऋषिके साथ विवाह किया । राज्य समृद्धिसे तपसमृद्धिको मैंने प्रारंभसे ही अच्छा समझी । मुझे पतिसेवा अत्यन्त प्रिय है । इसीलिये मैंने महलके बदलेमें झोंपड़ीको अधिक पसंद किया । इसी लिये मैंने मिष्टानोंको छोड़कर फल फुलादिकको पसंद किया, उत्तम वस्त्रालंकारका त्यागकर वल्कल वस्त्र धारण किये, फिरभी मुझे रजोगुणी कल्पना कैसे आई ? हाय ! क्या मेरे पर दैवका कोप हुआ है ? अहो ! दैव तेरी गति विचित्र है ! तुझे जो सुझा सो सही ! इस प्रकार खेद करती व भय प्राप्त करती हुई आश्रममें आई, काल कर्मके संयोगसे अपनी वृत्ति भ्रमित हुई जिससे पतिके सामने दो हाथ जोड़कर खड़ी रही।

ऋषि सतीके निस्तेज मुखको देखकर आश्चर्यान्वित हुए, उन्होंने योग बलसे जान लिया कि सतीकी कल्पना रजोगुणी होनेसे उसका सतीत्व नष्ट हुआ है। यह देखकर उन्हें क्रोध आया और नेत्र रक्त बन गये। अपने वसु परशु प्रभृति पांच पुत्र थे। उनकी परीक्षा लेनेका समय आया। प्रथम वसुसे कहा कि इस तुम्हारी माताके शिरको काट डालो, वसुने काम्पते हुए कहा कि पिताजि! ऐसा दुष्ट कर्म करने में मेरा हृदय प्रवृत्त नहीं होता। पीछे ऋषि ने परशुरामजी जो गंगा तटपर तप करते थे, उन्हें बुलाकर आज्ञा दी कि पुत्र! इन तेरे भ्राताओंका और इस तेरी माताका शिर काट दे। परशुरामजीने पिताकी आज्ञाका पालन करना स्वीकार किया. उस प्रकार करनेके लिये तैयार हो हाथ जोड़कर खड़े रहे। ऋषि अपने ऐसे आज्ञापालक पुत्रको देखकर प्रसन्न हुए और कहा कि पुत्र! मांग! मांग! मैं तेरे पवित्र मनपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं तू जो कुछ मांगेगा मैं वही दूंगा। तेरे समान आज्ञापालक पुत्रको धन्य है! और तेरी माताको भी धन्य है कि जिसने तुझे जन्म दिया है! पुत्र तू मेरा आज्ञापालक पुत्र है इससे मैं अपना अहोभाग्य समझता हूं।

पिताजीके इन वचनोंको सुनकर परशुरामजीने कहा कि पिताजि! मेरी माता व भ्राताओंके अपराधोंको क्षमा कीजिये यही मैं मांगता हूं। परशुरामजीके कहनेसे ऋषिने उन सबके अपराधोंको क्षमा किया। परशुरामने माताके चरणमें मस्तक नमाके हाथ जोड़कर क्षमा मांगी। "माताजि! आप तो साक्षात् शक्तिस्वरुप अथच सती हैं। मैं आपका अपराधी बालक हूं। मैं यह कार्य पिताजीकी आज्ञाको भंग न करना इस विचारसे करनेको तैयार हुआ था. उस अपराधको कृपाकर क्षमा करें और अब मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं तीर्थ क्षेत्रमें जाकर तप करुं। जिससे दैव मेरे लिये फिर ऐसा समय न दे"। रेणुकाजीने कहा कि प्रियपुत्र! उसमें तेरा कुछ भी अपराध नहीं हैं दैव जैसा खेल दिखलाना चाहता है वैसाही होता है। उसमें किसीकी भी बुद्धिमानी नहीं चल सक्ती। तैने अपने पिताकी आज्ञाको माना यह बहुत ही उत्तम कार्य किया। मातापिताकी आज्ञा मानना यह पुत्रका परम धर्म है। तू इसके लिये कुछ भी चिन्ता न करे। तेरे समान आज्ञापालक मेरा पुत्र है यह जानकर मैं अत्यन्त प्रसन्न होती हूं और मैं अपने अहोभाग्य समझती हूं। पुत्र! तू दीर्घायु हो! और तेरा सर्वत्र जय हो! इस प्रकारके माताके आशीर्वादको ग्रहणकर परशुरामजी तीर्थक्षेत्रमें तप करनेके लिये चल निकले।

अहा! धन्य है. परस्परके धर्म जानने वाली पवित्र मनकी ऐसी माताको! कि पुत्रके ऊपर क्रोध न कर उसके पितृ आज्ञाके पालन करनेके कारण अत्यन्त प्रसन्न

हुई ! धन्य है ! धीर, वीर, धार्मिक व बड़े मनकी माता तुम्हारे उत्तम विचारको ! तुमने पति या पुत्र पर सहज भी अभाव नहीं लाया। इस प्रकार आज हुआ हो तो बड़ा उपद्रव मचजाय और ऐसा होना ही चाहिये; क्योंकि आज ऐसे पवित्र मनके तपोबली स्त्री पुरुष नहीं हैं कि अपराधोंको सहन कर सके । उस समयके सात्विक तपोबलकी शक्ति अलौकिक थी । वे जो चाहते थे वही कर सक्ते थे । उनमेंसे आज एक अंशमात्र भी कोई कुछ नहीं कर सक्ते, किन्तु इस परसे बहुत ही उपदेश मिल सक्ता है कि पुत्रने मातापिताकी आज्ञाका पालन करना यह उसका परम धर्म है। यदि कोई पुत्र अपने मातापिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता या उनकी आदर-पूर्वक सेवा नहीं करता वे कुपुत्र कहलाकर पाप फलको भोगते हैं। मातापिताकी यो-ग्य आज्ञाको मानकर सेवा करना ऐसा संसारके सर्व धर्मोका उपदेश है । इस संसार-में मातापिता ये परमेश्वरसे दूसरे दरजेपर पूज्य है इसलिये उनकी सेवा करना यह सुपुत्रका धर्म है ।

जमदग्नि ऋषिका आश्रम गंगाके किनारेपर था वहांपर एक समय सहस्रार्जुन कि-तनाक सैन्य लेकर मृगया करनेको आया । साथमें रेणुकाजीकी भगिनी भी थी । रेणुकाजी अपनी भगिनीको मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुई; क्योंकि वह अनेक वर्षके पश्चात् मिली थी । सतीने उनका उत्तम प्रकारसे आतीथ्य करना चाहा । सतीके इस विचारको जानकर ऋषिने सहस्रार्जुनको भोजनका निमन्त्रण दिया । सम्पूर्ण सै-न्यको मनवाञ्छित भोजन कराया । यह देखकर सहस्रार्जुनको आश्चर्य हुआ कि ऋषिकी समृद्धिमें केवल यह छोटीसी पर्णकुटी है उसमें से उसने इन सहस्रों मनुष्यों-को भोजन कराया । इससे इस पर्णकुटिमें कुछ चमत्कार होना चाहिये । ऐसा वि-चारकर गुप्त तलास करनेपर भीतर कामदुधा गौ है यह जानकर उसकी चित्तवृत्ति बदल गई । उस गौके देनेके लिये उसने ऋषिको बहुत कुछ समझाया; किन्तु उन्होंने उसे देना स्वीकार नहीं किया और कहा कि इसके विना तुम्हें जो कुछ चाहिये हम दे सक्ते हैं; किन्तु राजाने माना नहीं और अपने बलसे गौको लेनेके लिये सैन्य भेजा; किन्तु ऋषिकी शक्ति कम न थी जो उससे पराजित होते । उन्होंने सहस्रार्जुनके साथ युद्धकर अपना पराक्रम बतलाया । लड़ते२ जमदग्नि मूर्च्छित हुए, रेणुकाजीने हे परशुराम ! हे परशुराम ! ऐसे इक्कीसवार पुकारा और खेद पाकर उसका स्मरण किया । जिससे परशुरामने आकर सहस्रार्जुन एवं उसके सम्पूर्ण सैन्यको काट दिया। अपनी माता इक्कीसवार खेदको प्राप्त हुई थी जिससे ऐसे प्रजापीड़क दुष्टबुद्धिके क्ष-त्रियोंका इक्कीसवार नाशकर, पृथ्वीको निःक्षत्री की। दुष्टोंसे पृथ्वीका भार उतारा। इस

प्रकार परशुरामने दूसरीवार मातापिताका कार्य किया । धन्य है ! ऐसे सुपुत्रको कि जिसने सदैव मातापिताको सुख दिया और पृथ्वीकी प्रजाको भी दुष्टोंके दुःखमेंसे मुक्त कर सुखी बनाया । एक कविने ठीक कहा है कि,——

जननी जण तो भक्त जण, कां दाता कां शूर;
नहिं तो रहेजे वांझणी, मत गुमावे नूर ।

इस प्रकार सती रेणुकाजीने परशुरामके समान ईश्वरावतार पराक्रमी पुत्रको जन्म देकर अपना नूर बता दिया। यह सती धार्मिक एवं योगेश्वरी थी । उसका पतिने त्याग—तीरस्कार किया था; फिर भी उसने उनका मनसे भी अभाव नहीं लिया था। सदैव पतिके प्रति प्रीतिभाव रखकर रहे थे । धन्य है ! माता रेणुकाजी आपके पवित्र मनको ! कि सदैव आप एक ही मनसे रहकर संसारको अपनी दृढता व पातिव्रत्य धर्मको बताकर संसारमें अमर नांव बना गई हो !

सत्यरुपा ।

यह महा सती अपने आदि पुरुष स्वयंभू मनुकी प्रिय पत्नी थी । उसे श्रीभगवानने अपनी इच्छासे प्रजाकी वृद्धिके लिये उत्पन्न की थी, ऐसा पुराणोंमें लिखा है । सत्यरुपा धैर्यवाली धार्मिक और पवित्र मनवाली स्त्री थी । उसका मुख चन्द्रके समान तेजस्वी था । वर्तमान समयकी स्त्रियोंके समान खाली बैठकर परनिन्दा करना उसे पसंद नहीं था। वह गृहकार्यके ऊपरान्त अवकाश मिलनेपर आत्मज्ञानका विचार करती थी । निन्दाखोर और चुगलपन करके दूसरोंको क्लेश पहुंचानेवाले स्त्री पुरुषोंको अपने यहां नहीं आने देती थी । जब स्वयंभू मनुने नैमिषारण्यमें महा तपश्चर्या शरु की तब वह भी संगमें थी। उस समय उसने अपने पतिकी अनेक प्रकारसे सेवा कर अपने पातिव्रत्य धर्मका पालन किया था । उसने पतिके साथ कई वर्ष तक फल, फूल, कंदमूल, और पत्तियोंका आहारकर, कई वर्षतक जलपान कर और कई वर्षतक केवल वायुका भक्षण करके उग्र तपश्चर्या की थी । उस तपके प्रभावसे परमात्माके अनुग्रहसे उसके पवित्र उदरसे प्रियव्रत और उत्तानपाद जैसे महान् प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुए और आकूति, प्रसूति और देवहूतिके समान देवीरुप पुत्रियें उत्पन्न हुई। जो आगे चलकर महान् सतियां हो गई हैं । जिनकी कीर्तिकी कीर्णें संसारमें चारों ओर फैल रही है । ऐसे पवित्र

सन्तान उत्पन्न करनेके कारण माता सत्यरुपाजी संसारमें परम कीर्तिवाले और अजय हो गये हैं। इन पांचों बालकोंको आदर्शमाताने उत्तम शिक्षा दे सदाचारी बनाये थे। जिससे वे आगे चलकर सुप्रसिद्ध हुए। उनकी प्रसिद्धिका कारण उनकी माता सत्यरुपा ही थी। ऐसी माताको सहस्रोंवार धन्यवाद हैं कि जिनके सन्तान संसारमें सुप्रसिद्ध होकर माताकी कीर्तिका प्रचार करे।

देवहूति।

यह साध्वी स्त्री ब्रह्मावर्त प्रदेशके महाराजा स्वयंभू–मनुकी पुत्री थी। देवहूतिकी माताका नांव सत्यरुपा था। देवहूतिकी बुद्धि बाल्यावस्थासे ही तीव्र थी। उसकी ऐसी बुद्धिको देखकर उसके पिताने उसे अधिक विकसित करनेके लिये धर्मशास्त्र, न्याय, विज्ञान प्रभृति विद्याओंका अध्ययन कराया था। जिससे उसकी बुद्धिमें और अभिवृद्धि हुई थी। यह सती जिस प्रकार ज्ञानगुणमें श्रेष्ठ थी उसी प्रकार स्वरुपमें भी विद्युत्के समान तेजस्वी थी। उसके ऊपर उसका मातापिताका अत्यन्त अनुराग था। वे उसे अत्यन्त चाहते थे और वह जिस प्रकार सुखी हो उस प्रकार करते थे। जैसे वर्तमान समयके मातापिता अपनी पुत्रीके उत्तम रुप, गुण व ज्ञानको देखकर भी उसके योग्य उसके लिये पतिको देखनेमें प्रमाद करते हैं; वैसे देवहूतिके मातापिता नहीं थे। उन्होंने अपनी पुत्रीके ज्ञान, गुण, रुप और स्वभावके अनुसार ज्ञान, गुण व स्वभाव वाले महानुभाव श्रीकर्दम मुनिके साथ विवाह किया था। जिससे वे दम्पती अत्यन्त सुखी हुए थे। जहांपर एक समान गुण, स्वभावके स्त्री पुरुष हो वहांपर सुखसम्पत्तिकी अवधि रहती है? वहांपर प्रेमग्रन्थि कैसे न बन्धे? अवश्य बन्ध सक्ती है।

समागम का भी महान् प्रभाव है। पति पत्नीमें कुछ गुण या ज्ञानकी न्यूनाधिकता रहती है तो परस्परके सहवाससे एक दूसरेके गुण स्वभावकी असर हुए विना नहीं रहती। देवहूतिको कर्दममुनिके समान महात्मा स्वामीके कई सद्गुण प्राप्त हुए थे। वह सदैव पतिसेवामें, गृहकार्यमें और ईश्वरकी आराधनामें तत्पर रहती थी। नित्यकर्म कर लेनेके पश्चात् अवकाशके समयमें पतिके पाससे तत्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करती थी। उसे ब्रह्मज्ञान अत्यन्त प्रिय था, जिससे समय२ पर पतिको उस सम्बन्धी प्रश्न पूछकर ज्ञान प्राप्त करती थी। कालक्रमसे देवहूतिको एकके पीछे

एक इस प्रकार नव कन्यायें उत्पन्न हुई थीं§ । तदनन्तर कर्दम मुनिने वनमें तपश्चर्या करनेके लिये जानेका विचार किया । तब देवहूतिने उनसे प्रार्थना की कि " आप संसाराश्रमको छोड़कर वनमें जाते हैं तो आपकी अनुपस्थितिमें मुझे ज्ञानका उपदेश कौन देगा ? मुझे तत्त्वज्ञानके उपदेशक नहीं रहनेसे मुझे अत्यन्त दुःख होगा। यह बात सुनकर मुनिके मनमें करुणाका उदय हुआ । मुनिने अपने योग बलसे जान लिया कि सतीको पुत्रकी इच्छा हुई है सो भी ज्ञानोपदेशक पुत्रकी । इस बातको जानकर उन्होंने देवहूतिको ईश्वर भक्तिमें चित्तको लगानेका उपदेश दे कुछ दिनके लिये वनमें जानेका विचार बंद किया ।

जहांपर सदैव प्रेमका प्रकाश रहता है, जहांपर पवित्र मन प्रेमसे मिला हुआ है वहांपर स्वर्ग सुख भी कोई पदार्थ नही हैं । वहां पर एक दूसरोंकी इच्छाओंका पूर्ण होना क्या कठिन है ? फिर जहांपर दम्पती—स्त्री पुरुष पवित्र मनके और ईश्वरकी ओर भक्तिभाववाले हो उनके मनोरथ सफल होनेमें विलम्ब नहीं होता है; क्योंकि प्रभु सदैव भक्ताधीन है उस नीतिके नियमानुसार उस पवित्र मनकी देवहूतिके उदरसे एक परम सुन्दर और तेजस्वी पुत्रका जन्म हुआ । उसका नांव कपिलदेव रक्खा गया । देवहूतिको पुत्र होनेके पश्चात् कर्दममुनि वनमें तपश्चर्या करनेके लिये गये । जैसे२ दिन जाते गये, वैसे कापिल देवजीकी उमर बढने लगा और वे विशेष विशालबुद्धिशाली हुए । उसने माताके विचारको समझकर, अनेक शास्त्रका अभ्यास किया और सांख्यशास्त्रकी रचना की । जिसका उपदेश है कि "निरहंकार अर्थात् देहादिमें अहंबुद्धिशून्य अखंड भक्तिके द्वारा परब्रह्मको प्राप्त कर सक्ते हैं । ब्रह्मविद्या, यह आत्मनिष्ठ योगी पुरुषके श्रेयका कारण है । उसीसे सुखदुःखकी निवृत्ति होती है । चित्त ही जीवके लिये बंधनका हेतु है और परमात्मामें संलग्न होनेसे मुक्ति मिलती है । " भगवान् कपिल देवजीका यह उपदेश अत्युत्तम है ।

सती देवहूतिने अपने पुत्र कपिलदेवजीको ऐसे ज्ञानी देखकर उनके साथ तत्त्वज्ञान सम्बन्धी जो सम्वाद किया था वह इस प्रकार था;—

कपिल—मेरे विचारके अनुसार योग यही मुक्ति प्राप्त करनेका सबसे श्रेष्ठ उ-

§ १ कलाका मैत्रेय ऋषिके साथ, २ अनसूयाका अत्रिमुनिके साथ, ३ श्रद्धाका अंगिरा ऋषिके साथ, ४ हविर्भूका पुलस्त्यके साथ, ५ गतिका पुलहके साथ, ६ क्रियाका केतुके साथ, ७ ख्यातिका भृगु ऋषिके साथ, ८ अरुंधतिका वशिष्ठके साथ और शान्तिका अथर्वके साथ विवाह किया था ।

पाय है। वह योग साधन मनको वशमें किये विना अर्थात् अन्तःकरणकी एकाग्रताके विना कभी भी नहीं हो सक्ता। मनको जिस ओर चलाया जाय उसी ओर वह दौड़ता है। भोगकी वस्तुओंकी ओर चित्तवृत्तिके जानेसे जीवको निवृत्ति मिलनेकी संभावना नहीं हैं; किन्तु ईश्वरमें लीन होनेके पश्चात् अज्ञानता, पाप, प्रलोभन प्रभृतिसे उसका छूटकारा हो सक्ता है। तदनन्तर आत्मसमर्पणके विना योगियोंको ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेका अन्य कोई भी मार्ग नहीं हैं। साधुसमागम ही इन सभोंका मूल है।

देवहूति—वत्स! भगवान् की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिये यह मैं नहीं जानती। मैं स्त्री हूं इसलिये मुझे किस प्रकार ईश्वर भक्ति करनी चाहिये? उस-विषयमें मुझे कहे। संक्षेपमें यह कि—भक्तियोगसे ईश्वरीपदकी प्राप्ति करुं तो मेरा जन्म सफल हो ऐसे तत्वको मैं समझ सकुं उस प्रकार कहो!

कपिल—वेदोक्त कर्मोंके करनेसे भगवद्भक्तिकी उत्पत्ति होती है। इस भक्तिके बलसे मुक्तिका मार्ग सहजमें प्राप्त होता है; किन्तु माता! अनेक मनुष्य इस प्रकार सन्तोष नहीं मानते हैं। वे मुक्तिकी अपेक्षा भक्ति योगसे परमेश्वरका अनुभव लेना अधिक पसंद करते है और अत एव सदैव वे उसी में लगे रहते हैं।

महर्षिने अपनी माताको जो उपदेश दिया था वह उपदेश सेश्वर सांख्य दर्शनके भीतर रहा हुआ है। इस दर्शनका अध्ययनकर उस पर शान्तिपूर्वक विचार करनेसे उसका महत्त्व समझमें आसक्ता है।

कपिलमुनि फिर अपनी मातासे कहने लगे कि;—देवि! योगसे जिसके हृदयकी ग्रन्थियां छूटजाती है और परमात्माके दर्शन होते हैं, मोक्षकी प्राप्तिके लिये विद्वान् लोग जिस विषयका उपदेश करते हैं उस ज्ञानके सम्बन्धमें कुछ कहता हूं उसे सुनिये;—जो आत्मस्वरुप, आदिरहित, स्वयं प्रकाशित और गुण एवं प्रकृतिसंग रहित अथच अखिल ब्रह्मांड जिसके प्रभावसे प्रकाशित होते हैं वही परमपुरुष है। प्रकृति, विष्णु, शक्ति, द्युति, रुप और अव्यक्त गुणसे शोभायमान है। उस लीला क्रमसे विष्णुके पास जानेसे विष्णु उसे ग्रहण करते हैं। जो क्रिया प्रकृतिके गुणका कारण होती है अर्थात् जिसको प्रकृतिके साथ बहुत ही निकट का सम्बन्ध है, जिससे वे सभी उसके कर्तव्यसे साध्य है ऐसा समझना। जननि! पुरुष स्वयं साक्षीमात्र सुखस्वरुप हैं। किसी कार्य में उसका प्रभुत्व नही हैं। प्रकृति कारण व कर्ताका मूलकारण है। पुरुष तो केवल सुख दुःखका उपभोक्ता है।

देवहूति—यह सामने जो विश्वका सूक्ष्म व स्थूल कार्य देखनेमें आता है वह

प्रकृति एवं पुरुषसे उत्पन्न हुआ है यह समझमें आगया; किन्तु हे प्रियदर्शन ! अब उसके लक्षण भी कृपाकर मुझे समझाईये ।

कपिल—माता ! सनातन, सत्त्व, रज और तमोगुणसे युक्त निर्भेध कार्यकारण स्वरुप एवं सबके आश्रयभूत जो वस्तु है वही प्रकृति है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पञ्चमहाभूत हैं; और रुप, रस, गन्ध, स्पर्श, व शब्द ये पञ्चतन्मात्रायें हैं; कर्ण, जिह्वा, त्यक्, नासिका, नेत्र, हाथ, और पांव इत्यादि दश बाह्येन्द्रिय है। अहंकार, चित्त, मन और बुद्धि ये चार अन्तरकी इन्द्रीयां है । ऐसे सब मिलाकर २४ तत्त्व हैं । वे सगुण ब्रह्ममें है। काल समेत २५ तत्त्व हैं । कितनेक मनुष्य कालको पृथक् पदार्थ नहीं मानते । वे कहते हैं कि वह विश्वपतिके प्रभावके सिवाय और कुछ भी नहीं हैं। फिर पुरुष सूर्यके समान निर्गुण, निर्विकार व कर्मसे भिन्न है। "मैं करनेवाला हूं" ऐसा अभिमान जो पुरुष जिस पलमें करता है उसी पलमें वह प्रकृतिमें आसक्त हो जाता है । और उससे शोक उत्पन्न होनेका महान् कारण उत्पन्न होता है । अर्थके सिवाय संसारका चलना कठिन है । दूसरी ओर विषय व्यापार प्रभृतिके विचारमें लगे रहनेसे पुरुषकी अनेक प्रकारसे खराबियां होती है । इसीलिये कहता हूं कि चित्तवृत्ति असन्मार्गकी ओर जाय तो द्रढ भक्ति व वैराग्यसे उसे वश कर लेना चाहिये ।

दूसरा यम नियमादि योगसे चित्तको वशमें करके आस्थापूर्वक ईश्वरमें आत्मसमर्पण, मौनका अवलम्बन, स्वधर्मका अनुष्ठान, विषयवासनामें निस्पृहता, एकान्त वास, ब्रह्मचर्य और प्रकृति पुरुषको जाननेके लिये ज्ञानसंग्रह । इन सभोंके प्राप्त कर लेनेसे ब्रह्मका साक्षात्कार होता है।

हे भगवति ! जलमें रहे हुए सूर्यके प्रतिबिम्ब पृथ्वीमें आते हैं और जल तथा सूर्यके प्रतिबिम्बके मिलापसे गगनमें रहा हुआ चन्द्र देखनेमें आता है। इन्द्रिय, भूत और मनोमय आत्माके प्रतिबिम्बसे और त्रिगुणवाला अहंकार, ब्रह्मके प्रतिबिम्ब रुपसे देखनेपर उस अहंकारसे परमार्थ परिज्ञानरुप आत्माका साक्षात्कार होता है ।

देवहूति—वत्स ! प्रकृति व पुरुष दोनों नित्य व दोनों आश्रय स्वरुप है यह मेरी समझमें आगया । पृथ्वी व गन्ध जैसे एक दूसरेसे पृथक् नहीं हो सक्ते, जल व रसमें जैसा अभेद्य सम्बन्ध है, अर्थात् एक दूसरे से पृथक् हो वे स्वतंत्रतासे नहीं रहते वैसेही प्रकृति व पुरुष पृथक् नहीं हो सक्ते ।

कपिल—अब सावलम्बन योगका वर्णन करता हूं। उससे मन मलराहित व सन्मार्गमें जानेवाला होता है । यथाशक्ति अपने धर्मानुष्ठान, धार्मिकोको वंदन, निर्वाह

प्राप्तिके कारणके ऊपर प्रीति दर्शाना, अपवित्र वस्तुको नहीं खाना, थोड़ा खुराक लेना, एकान्तमें निवास करना, अहिंसा प्रभृति उत्तमव्रत लेना, सत्य बोलना, तपश्चर्या, ब्रह्मचर्य, शुद्धाचार, ईश्वरकी आराधना व प्राणायाम प्रभृतिकी सहायतासे अन्तः-करणको योगकी ओर आकर्षित करना। जिस प्रकार अग्नि व वायुसे सुवर्ण शुद्ध होता है उसी प्रकार श्वासोच्छ्वासके रुंधनसे योगीका अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्राणायामसे वायु, पित्त, और श्लेष्मका दोष, धारणासे मनकी चंचलता व ध्यानसे नास्तिकता दूर होती है। तदनन्तर योगके माहात्म्यसे चित्तवृत्तिके शुद्ध होनेक पश्चात् नासिकाके अग्र भागपर द्रष्टिको स्थापितकर श्रीपरब्रह्मके विचारमें मनको रोकना चाहिये। भक्तोंका हृदय—मनही उसके उपदेशका तापयुक्त एकमात्र आसन है।

देवहूति—आपने प्रथम सांख्यमतमें प्रकृति, पुरुष इत्यादिका वृत्तान्त जिस प्रकार कहा है उसी प्रकार उसका वर्णन किया है। अब उसके मूलस्वरुप भक्तियोग के विषयका वर्णन करो। जिसके श्रवणसे जीव संसारके व्यवहारोंसे निस्पृह होजाता है। आपने मुझे जो तत्त्वका उपदेश दिया है उसके ऊपरसे मुझे मालूम होता है कि आप साक्षात् योग प्रकाशक सूर्य हैं।

कपिल—देवि! भक्तियोग भिन्न २ प्रकारका है, भेददर्शीय योग, तामस अर्थात् निकृष्ट योग, धन मान किम्बा प्रसिद्धि प्राप्त करनेकी आशासे जो योग किया जाता है उसको राजस योग कहते हैं। जिससे वह भी उत्तम योग नहीं है वह मध्यम प्रकारका योग है। पापका नाश करना चाहिये, श्री जगदीश्वरके प्रति प्रीति नहीं दिखानेसे जीवकी सद्गति नहीं होती ऐसा समझना वह सात्विक योग कहलाता है वही सबसे उत्तम प्रकारका योग है। उसका दूसरा नाम निर्गुण भक्तियोग है। जैसे नदीका जल समुद्रमें पडनेसे सागरके जलका गुण स्वीकार करता है; वैसेही निष्काम मनोगति अर्थात् ईश्वरके पास सांसारिक कार्य रहित प्रार्थना वह भावको धारण करती है जिससे वह अत्यन्त प्रसंशनीय पदार्थ है।

इस प्रकार महात्मा कपिल मुनिने अपनी प्रिय माता देवहूतिको सत्यतत्त्वका परिचय दिया था। माता पुत्रके बीचमें बहुत उच्च विषयकी बातचित हुई थी। प्रथम भारतवर्षकी रमणियां देवहूतिके समान तत्त्वज्ञानके जैसे गहन विषयमें विचार-कर अपनी आत्मोन्नतिके लिये प्रयत्न करती थी। वह कितना आनन्दका विषय है! भारतकी वर्तमान समयकी रमणियोंको यह उत्तम भाव अनुकरण करने योग्य है।

मंगलमय भगवत्स्वरुप कपिल मुनिने अपनी माता श्रीदेवहूतिजीको मुक्ति प्रदान करने के लिये पुत्र प्रेमसे योगेश्वर जहांपर भक्तिसे सिद्धिको प्राप्त हो ऐसा गुजरात

में आया हुआ सिद्धपूर क्षेत्र, जहां ज्ञानस्वरुप सरस्वतीजी प्रवाहरुपसे बहती है वहांपर उन्होंने ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया। जिससे देवहूतिजीने ज्ञानमें निमग्न होकर मुक्ति को प्राप्त किया। धन्य है कपिलदेवजीको ! कि जिन्होंने मनुष्यके उद्धार करनेवाले सांख्यशास्त्रकी रचनाकर माताको मुक्ति प्रदान की और अन्य मुमुक्षुओंको भी मार्ग बताया। वास्तविकमें सुपुत्र तो ऐसाही होने चाहिये। जहांपर देवहूतिजीको मुक्ति हुई उस स्थानपर बिन्दुसरोवर नामक तीर्थ है। जिसमें स्नान करनेपर हिन्दु लोग अपनेको पवित्र हुए समझते हैं। इसी तीर्थ क्षेत्रको मातृगया-माताको मुक्ति प्राप्त करानेका स्थान कहते हैं। वहांपर कपिलदेव और देवहूतिजीका आश्रम है।

मदालसा

यह साध्वी स्त्री गांधर्व लोकके राजा विश्वावसु गांधर्वकी कन्या थी। उसका विवाह अयोध्याके राजा शत्रुजित्के कुमार ऋतुध्वजके साथ हुआ था। यह कन्या रुपसे रंभाकी अपेक्षा अधिक स्वरुपवती थी। उसके पिताने उसको बाल्यावस्थासे ही विद्वान् पुरुषोंके साथ रखकर अनेक शास्त्रसे धर्म, नीति, संगीत, काव्य, चित्र, नृत्य प्रभृति विद्याओंका ज्ञान दिलाकर प्रवीण की थी। वह एक दिन अपनी सखियों व दासियोंके साथ अशोक वनमें क्रीडा कर रही थी। वहांपर अकस्मात् पातालकेतु नामका राक्षस आ चढा। वह मदालसाके रुप व चातुर्यको देखकर मोहित हो गया। वह युक्ति के द्वारा उस खेलती हुई बालाको उठाकर ले चला। जो वहांपर अनेक दासदासियां मौजुद थे उनको आश्चर्य हुआ कि यह क्या जूल्म हो गया! उन लोगोने वहुत कुछ शोध की; किन्तु पता नहीं लगा। ये समाचार उनके पिताको मिले। उसने उसकी मातासे कहा और वे दोनों विलाप करने लगे। शोधके लिये देशदेशान्तरोंमें मनुष्य भेजे गये; किन्तु कुछ भी पता नहीं लगा। आखीर शोक करते हुए शान्त हुए।

अब मदालसाने मार्गमें विचार किया कि भावि बलवान है इसमें किसीका कुछ भी दोष नहीं। दोष केवल मेरे भाग्यके हैं। अस्तु–जैसी परमात्माकी इच्छा। फिर भी इसके हाथसे छूटनेके लिये कुछ उपाय जरुर करना चाहिये। ऐसा विचार करती हुई शोक व रुदन करने लगी। उतनेमें उस मार्गसे कैलासपति शिवजी व पार्वतीजी विमानमें बैठकर कैलासकी ओर जा रहे थे। उन्होंने इस बालाके रुदनको सुना और

दयामूर्ति पार्वतीजीने शिवजीसे कहा कि प्राणेश्वर ! कोई बालिका महा संकटमें हो ऐसा मालूम होता है। शिवजीने हंसकर कहा कि सति ! स्त्रियोंका रक्षण स्त्रियोंको करना चाहिये। वह मदालसा है। उसके ऊपर दयाकर उसकी रक्षाका उपाय बताईये या उस दैत्यका नाशकर उसकी रक्षा कीजिये। पार्वतीजीने अपने पतिके इन वचनोंको सुनकर कहा कि;—मदालसे ! तू रुदन मत करे। तैरा भावी पति ही तैरे हरण करनेवालेको मारकर तैरे साथ विवाह करेगा। ये वचन राक्षस व मदालसा दोनोंने श्रवण किये। राक्षस यह सुनकर मदालसाको दूरके प्रदेशमें अपने घर पर ले गया। उसका घर अनेक मणियोंके द्वारा सजाया हुआ व तेजस्वी था। समीपमें एक सुन्दर सरोवर था। उसके किनारेके ऊपर एक सुशोभित सुगन्धमय वाटिका थी। जिसमें अनेक प्रकारके वृक्ष लगे हुए थे। भीतर अनेक प्रकारके पक्षीगण कोलाहल कर रहे थे; किन्तु इस भव्य मकानमें चारों ओर शून्यकार था। उसमें केवल ये दोनों और एक दासीके सिवाय और कोई नहीं थे। मदालसा इस प्रकार देखकर रुदन करने लगी। राक्षस उसे विविध प्रकारसे समझानेकी चेष्टा करने लगा; विविध प्रकारके सुख वैभवकी आशायें देकर उसको शान्त करने लगा; किन्तु उसका कुछ भी फल नहीं हुआ। मदालसाने निश्चय कर लिया कि प्राण जानेपर भी मैं अपने शीलको नष्ट नहीं होने दूंगी। फिर उसके मनमें एक विचार आया कि यदि मैं विवाह करनेका प्रपञ्च कर विलम्ब करुं तो पार्वतीजीका वचन आगे पीछे सिद्ध होगा। उसका भ्राता गालव ऋषिके यज्ञका भंग करनेके लिये जानेसे ऋतुध्वजके हाथसे मारा गया है उसका वैर ऋतुध्वजके ऊपर है। इसलिये मैं इस समय युक्तिकरके उसको स्मरण कराउं कि उसको अपना भाई याद आजाय और यह उसके भाईके मारनेवालेके पास बदला लेने के लिये जाय जिससे मुझको समय मिलेगा और उतने समयमें पार्वतीजीका वचन अवश्य सिद्ध हो जायगा। ऐसा विचारकर उसने अपना मुख आनन्दित बनाया। मदालसाको हंसती हुई देखकर राक्षस मायाके फंदेमें फंस गया। तब मदालसाने कहा कि विवाह करना यह कोई शीघ्रताका कार्य नहीं है। आपके कुटुम्बियों ने मुझे देखा भी नहीं हैं इसलिये आप उनको बुलाईये और आनन्दपूर्वक विधिसह विवाह क्रिया सम्पन्न हो।

इस प्रकार पातालकेतुको कुटुम्बके नांव श्रवण करते ही भ्राताके वध करनेवाले ऋतुध्वजका बदला लेनेकी बात याद आगई। तुरन्त क्रोधके मारे आंखमें अश्रु आगये और ऋतुध्वजको मारनेके लिये जानेको तैयार हुआ। मदालसाको विकुन्डला नांवकी दासीके पास रखकर जहांपर गालव ऋषिक यज्ञकी रक्षाके लिये ऋतुध्वज मौजुद था

वहां पर जा पहुंचा। वहांपर जाकर अनेक प्रकारके राक्षसी कृत्य करके हाहाकार मचाया। उसमें आखीर लड़ाई करके ऋतुध्वजने उसको पराजित किया। जिससे वह हथियार छोड़कर भगा। उसके पीछे २ ऋतुध्वज गया। पातालकेतु अपने देशमें पलायन कर गया और गुप्त स्थानपर छूप गया। ऋतुध्वज भी वहांपर जा पहुंचा और उसकी शोध करने लगा। शोध करते२ जिस स्थानपर मदालसा थी उस स्थानपर जा पहुंचा। उस सुन्दर स्थानको देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। राजकुमारको आते हुए देखकर विकुन्डला दासीने मदालसासे कहा कि कोई राजकुमार यहांपर आताहै! यह सुनकर मदालसाने जान लिया कि माता पार्वतीजीके वचन सत्य हुए। अब वह उस पापीको अवश्य मारेंगे और पार्वतीके कथनानुसार वेही मेरे पति होंगे। ऐसा जानकर दासीको जलपात्र लेकर सामने भेजी। दासीने जाकर कहा कि राजन्! शंकाको छोड़कर आप यहांपर पधारे। आपको मेरी मालकिन बुलाती हैं। राजा ऋतुध्वज यह सुनकर आश्चर्यान्वित हुआ कि जिसकी दासीका ऐसा मनोहर स्वरुप है उसकी राणी कैसी स्वरुपवती होगी? ऐसा विचारकर दासीके साथ मकानके भीतर गया। दासीने आसन देकर विधिपूर्वक पूजन किया। ऋतुध्वज घरकी रचनाको देखकर आश्चर्यसे चकित हो गया और दासीसे पूछा कि यह घर किसका है? किसका बनाया हुआहै? इस स्त्रीके पतिका क्या नाम है? इतने बड़े मकानमें तुम दोनों ही क्यों हो? और यह घर शून्य जैसा क्यों दिखता है? दासीने कहा कि महाराज! इस घरको विश्वकर्माने बनया है। इसमें प्रथम देवगण निवास करते थे; किन्तु इन्द्रने यह घर कंठलधार दैत्यको दिया तबसे विश्वदेव विदा हो गये और कंठलधार यहांपर रहे उस राजाकी मैं कुंवरी हूं। मेरे पिताको तालकेतु और पातालकेतुने मार डाला। वे दोनों वृत्रकेतुके पुत्र महान् विकराल है। उन्हों ने हमारे घरकी सम्पत्तिको छीनकर मुझको अपनी दासी बनायी है। उस दुष्ट दैत्यने अनेक देशोंको लुंटकर सर्वस्व यहांपर जमा किया हैं। मुझको यहांपर रक्खी है। मेरी पीड़ाको कौन जानता है? गालव ऋषिके यज्ञको भंग करनेके लिये जानेपर ऋतुध्वजने तालकेतुको मार डाला और पातालकेतु उनसे परास्त होकर छीप गया है। यह मदालसा नांवकी कुमारिका विश्वावसु गांधर्वकी पुत्री है। इसको पातालकेतु हरण कर आया है। उसका अभी तक विवाह नहीं हुआ है। मुझको घरकी रक्षाके लिये रक्खी है। यह कन्या आपके योग्य है॰इसलिये आप उसके साथ विवाह कीजिये।

ऋतुध्वजने कहा कि—मैं ही ऋतुध्वज हूं और मैने ही तालकेतुको मारा है। यहां पातालकेतुके पीछे आया हूं वह पापी कहां है? उसे मुझे दिखाईये! मदालसाने जान

लिया कि यह कोई महाबलवान् हैं। दोनोंके नेत्र एक होनेसे एक दूसरोंके दुःख दूर हुए। मदालसाने कहाकि आप मैरे पति होंगे ऐसी महासती पार्वतीजीकी आज्ञा है। ऋतुध्वजने कहा कि तू चिन्ता मत करे मैं तेरे हरण करनेवाले पापीको मारुंगा। इतनेमें नारदजी पधारे। उनका विधिपूर्वक पूजन किया गया। नारदजीने कहा कि मैं आप लोगोंका विवाह करानेके लिये आया हूं इसलिये शीघ्रता कीजिये। आप दोनों विवाह कर अश्वपर बैठकर यहांसे विदा हो जाओ! ऐसा कहकर ब्रह्मकुमार नारदजीने उन दोनोंका शास्त्रविधिसे गांधर्व विवाह कराया। नारदऋषि वहां से चलते हुए और राजा राणी भी गालव ऋषिके आश्रममें आये। उन्हें देखकर ऋषिगण अत्यन्त प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया। ये समाचार ऋषिने अयोध्याजीमें पहुंचाये और शत्रुजित्‌ने मदालसाके पिता विश्वावसुको कहलाये। जिसे सुनकर सब कोई प्रसन्न हुए। मदालसाके पिताने अयोध्याजी आकर उसका विधिपूर्वक विवाह कराकर कन्यादान दिया। मदालसाने अपने हाथका मणि ऋतुध्वजके हाथ पर बांधा और कहा कि—"स्वामिन्! इस मणिको जब मै आपसे अलग देखुंगी तब प्राण त्याग करुंगी। इसलिये आप उसे किसीको मत देना" और अपना वैरी पातालकेतु अन्नजल छोड़कर मैरी शोध कर रहा है वह झुठा प्रपञ्च रचेगा इसलिये आप सावधान रहना।"

इसके पश्चात् एक दिन राजा मृगयाके लिये वनमें गया। वहांपर एक सरोवरके किनारे पर ठहरकर भीतर जल पीनेके लिये गया। उसके हाथमें बंधे हुए मणिका तेज जलमें गिरा उसे देखकर अरजक कुमार उनके पास आये। उनको शत्रु समझकर ऋतुध्वज तीर मारनेको तैयार होता है उतनेमें वह बोले कि,—महाराज! हम आपके मणिके तेजको देख हर्षित होकर यहांपर आये हैं आप सब मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं इसलिये हम आपसे मित्रता करना चाहते हैं। आप हमारे साथ मित्रता कीजिये ऐसा कहकर उन्होंने शपथ ली। ऋतुध्वजने पूछा कि आप किसके पुत्र हैं? उन्होंने कहा कि हम अरजक नागके पुत्र हैं। चन्द्र चुड़ामणि मति हमारा नांव है। हमलोग बड़े पुरुषोंसे नम्रता का व्यवहार रखते हैं। हम आजसे आपके मित्र हुए हैं। राजन्! आप प्रतिदिन यहांपर पधारना, हम आपको स्वर्गके समान सुख दिखलावेंगे। आपने गालव ऋषिके यज्ञकी रक्षा की है जिससे आपका पृथ्वीमें नांव हो गया है। आप देवोंको भी प्रिय हैं। इसलिये हे मित्र! आप सब प्रकारसे सत्कार योग्य है। हम आपका वियोग एक दिनके लिये भी सहन नहीं कर सकेंगे। आप जिस दिन यहांपर नहीं पधारेंगे उस दिन हमें उपवास होगा। इतना कहकर वे दोनों कुमार अपने स्थानपर गये। पीछे प्रतिदिन निश्चित समयपर तीनों

इकट्ठे होते थे और नवीन२ मेवा मिठाई प्रभृति अलौकिक स्वादिष्ट वस्तुओंको खाकर आनन्द करते थे। एक दिन मदालसाने ऋतुध्वजसे पूछा कि प्राणेश्वर! आप प्रतिदिन कहांपर पधारते हैं? इस प्रश्नका राजाने यथोचित उत्तर नहीं दिया।

अब पातालकेतुको ऋतुध्वजके साथ मदालसाके विवाह होनेके समाचार मिले। वह शोकातुर हुआ और उसने निश्चय किया कि इन दोनोंके वियोग करानेके पश्चात् ही अन्नजल लुंगा। प्रतिज्ञा लेकर योगीके भेषसे पृथ्वीमें भ्रमण करने लगा। उतनेमें मार्ग में जाते हुए नारदजी मिले, उन्होंने पूछा कि तू कहां जाता है? राक्षसने कहा कि मदालसाकी शोधके लिये जाता हूं। वह इस समय कहां है? नारदजीने कहा कि तू मुझे अत्यन्त प्रिय है इसलिये मैं तुझे बतलाता हूं कि वह अयोध्यामें शत्रुजित्के घरपर है। इसप्रकार कहकर वे चलते हुए। पातालकेतु भिक्षुकके भेषसे मदालसाके मन्दिरमें आया और विचार किया कि यदि मैं उसे ले जाउंगा तोभी वह सती अपने सत्यको नहीं छोड़ेगी। वह मुझे कभीभी नहीं स्वीकार करेगी। और यदि जबरदस्ती करुंगा तो मुझको शाप दे जलाकर भस्म कर देगी। अब मैं भी न भोगुं और ऋतुध्वज भी न भोग सके ऐसी युक्ति करनी चाहिये। ऐसा करनेसे ही मेरा वैराग्नि शान्त होगा। यह विचारकर ऋतुध्वजके हाथपर बंधे हुए मणिको कपटसे लेनेका विचार किया। जिस सरोवर पर उक्त तीनों मित्र एकत्र होकर बैठते थे उससे कुछ दूरपर कोई दुःखित और ऋषिके भेषमें शिरपर हाथ धरकर वह बैठ गया। कुछ देर पीछे ऋतुध्वज वहांपर स्नान करनेके लिये आया। उसकी द्रष्टि उक्त ऋषिके ऊपर गई और उसने पूछा कि महाराज! आपको क्या दुःख है? उसने कहा कि मैं वरुण लोकमें रहता हूं। मेरा नांव अतितेज है; एक ब्राह्मणके धरपर एक स्वरुपवती तरुण कन्या है उसके साथ मेरे पुत्रका विवाह करना है; किन्तु उस कन्याने पन लिया है कि "मैं मदालसाके मणिको देखनेके पश्चात् विवाह करुंगी" उस मदालसाका विवाह अयोध्यामें हुआ है। उसके पतिका नांव ऋतुध्वज है। मैं उस मणिको लेनेके लिये यहां पर आया हूं इसलिये आप मुझे उस नगरीका मार्ग बताईये। राजा शत्रुजित् अत्यन्त सत्यवादी है और उसका पुत्र भी उसके समान है; क्या वह मेरा इतना कार्य नहीं करेगा? ऐसे उसके वचन सुनकर ऋतुध्वजने कहा कि जिसके पास आप जाना चाहते हैं वही मैं हूं और मणि भी मेरे पास है; किन्तु वह किसीको दिया नहीं जासक्ता। यदि मदालसाको उसके देनेके समाचार मालूम हो जाय तो बहुत अनीष्ट हो सक्ता है। फिर वह दुष्ट दो दिन पीछे अलग भेषसे राजाको मिला और दूसरी युक्ति रचकर कहा कि राजन्! आज मुझे अरजकके कुमार मिले

थे उन्होंने कहलाया है कि आज हम अनुपमपदार्थ लावेंगे इसलिये आप संध्या समय तक ठहरना। वापस चले नहीं जाना। यह सुनकर राजाने कहा कि अच्छा मैं यहां ही ठहरता हूं। इससे उस दुष्टने समझ लिया कि अब मेरा इच्छित कार्य हो जायगा और इसी विचारसे वह हर्षित हो राजाके मित्र अरजकके कुमारोंके पास गया; उनके पास जाकर कहा कि आपको ऋतुध्वजने मेरे द्वारा कहलाया है कि आज मुझे आवश्यकीय कार्य है इसलिये मृगया करनेको नहीं आसकुंगा। इस प्रकार दोनों स्थानपर झूठे समाचार कहे। अरजक कुमारोंने मान लिया कि राजाने कहलाया है इसलिये वे आज नहीं आवेंगे इसलिये हमें भी नहीं जाना चाहिये। वे निश्चित स्थानपर आये नहीं और ऋतुध्वजने समझा था कि आज अवश्य आवेंगे और मुझको कहलाया है इसलिये ठहरना चाहिय इसलिये वह संध्यातक वहांपर ठहरे।

इस दुष्ट दैत्यने इस प्रकार प्रपञ्च रचा। वह तुरन्त ब्राह्मणका भेष धारणकर अयोध्याजी पहुंचा। वहांपर जाकर माया प्रपञ्च रचकर मदालसा व ऋतुध्वजको वियोग करानेवाला कपट किया। उस दुष्टने माया प्रपञ्चसे मदालसाको गुम कर दिया। ये समाचार मिलने पर राजाने अनेक उपाय किये; किन्तु कुछ भी फल नहीं हुआ। जिससे सब कोई निराश हो गये। सर्वत्र शोक छा गया। ऋतुध्वजको शरीरकी दशाका ज्ञान नहीं रहा। वह मुखसे एक मदालासाका ही रटन कर रहा है। वार२ व्याकुल हो बोलने लगा कि हा ! मदालसा तू कहां है ? तू क्यों नहीं बोलती ? ऐसा दगा नहीं देना चाहिये ! हाय ! क्या तू मुझसे नहीं बोलेगी ? नहीं ! प्रियाको ऐसा नहीं करना चाहिये ! हे प्यारि ! क्यों नहीं जवाब देती है ? हे साध्वि ! हे पतिव्रते। प्रत्युत्तर दे ! इस प्रकार वार२ प्रलाप करता हुआ, पत्नीके प्रेममें मस्त होकर योगी भेषसे देश२ पर्वत२ नदी२ वन२ तीर्थ२ गुफा२ और समुद्र२ में अपनी प्रियाकी शोध करता और अश्रुपात करता हुआ घुमने लगा। उसके माता पिता व अन्य आत्मियोंने बहुत कुछ समझाया; मदालसाके समान सहस्रों स्त्रियोंके साथ विवाह करानेकी आशा दी और अपने राज्यमें रहनेके लिये समझाया; किन्तु उसने कहा कि मैं मदालसाके विना नहीं रह सक्ता। मुझे वही चाहिये। आखिर किसीका कहा नहीं माना और सब कोई दुःखी हो शान्त हुए। ऋतुध्वजने सर्वत्र भ्रमणकर अन्तमें एक वनमें आसन जमाया। मदालसाका स्मरण करता हुआ वहांपर बैठ गया। इधर अरजक कुमार दूसरे दिन मित्रके नहीं मिलनेसे अयोध्याजीमें आये। वहांपर ये समाचार सुनकर मूर्छागत हो नीचे गिर गये। मूर्छा उतरने पर रुदन करते हुए मित्रकी शोधके लिये चल निकले। चलते२ बहुत दिनोंके पश्चात् मिलाप

हुआ । ऋतुध्वजने उनसे पूछा कि क्या आप मदालसाको ले आये हैं ? उन्होंने कहा कि प्रियमित्र ! आपने मातापिता व राज्यका त्यागकर यह क्या किया ? मित्र । कहो तो मदालसाके समान स्वरूपवती हजार स्त्रियां ला देगें; किन्तु आप यहांसे चलिये। ऋतुध्वजने कहा कि;--नहीं२ मदालसाकी समानता कोई नहीं कर सक्ती। मुझे मदालसाके सिवाय और कोई नहीं चाहिये। आप प्रसन्नतासे अपने स्थानपर जाईये। मुझे जब स्वयं मदालसा आकर कहेगी कि प्राणनाथ ! पधारिये तभी ही मैं अपना भेष उतारुंगा । इतना कह फिर आसन लगाकर बैठ गया और बोलने लगा, प्रिये मदालसे ! क्यों नहीं बोलती ? क्या निर्दय हो गई ? इस प्रकार वार२ प्रलाप करने लगा । अरजक पुत्रोंने समझानेके लिये अनेक उपाय किये; किन्तु उसका कुछ भी फल नहीं हुआ । आखिर उन्होंने भी अन्नजलका त्यागकर उसके साथ रहनेका विचार किया। प्रथम उसने जाकर अपने पितासे कहा कि पिताजि ! हमारा मित्र मदालसाके वियोगसे योगी हो गया है। इसलिये हमें भी योगी ही समझिये । हम भी उसी योगमें अपने प्राण छोड़ेंगे । उनके पिताने कहा कि उसमें क्या है ? तुमने इतने दिन तक क्यों नहीं कहा ! इसके सिवाय और तो कुछ कार्य नहीं है ! तुम लोग कुछ भी चिन्ता मत करो । मैं मदालसाको ला दूंगा। मेरे साथ चलो हम लोग महादेवजीको प्रसन्न करें। वेही मदालसाको--जहां होगी वहांसे लादेंगे।

यह सुनकर अरजक पुत्र खुशी हुए। अरजकने जाकर महादेवजीको प्रसन्न किया। महादेवजीने प्रसन्न होकर कहा कि हे अरजक ! तुझे क्या चाहिये ? जो इच्छा हो वही मांग, मैं दूंगा। उसने कहा कि प्रभो ! मदालसा गुम हो गई है वह मिले वैसा कीजिये । महादेवजी उपाय बताकर कैलासके प्रति पधारे । अरजकने अपने कुमारोंको ऋतुध्वजको ले आनेके लिये भेजा । और स्वयं यमुना तटपर जाकर महादेवजीके कथनानुसार किया कि मदालसा पतिका स्मरण करती हुई बाहर निकली । उसकी जिह्वाके उपर भी एक ऋतुध्वजके नांवका जप हो रहा था । वह बाहर आकर बोली कि मैं कहां हूं ? मेरे प्राणनाथ कहां गये ? स्वामिनाथ ! क्यों नहीं बोलते ? क्या आप मेरी परीक्षा कर रहे हैं ? इस प्रकार प्रलाप करती हुई इधर उधर देखने लगी । अरजकने कहा कि सति ! धैर्य रखिये सब कुछ ठीक हो जायगा । ऐसा कहकर जो कुछ वृत्तान्त बना था वह सब निवेदन किया । तब मदालसाने उन्हें प्रणाम किया और नम्रतासे निवेदन किया कि जिस जङ्गलमें मेरा पति है उसका मार्ग बताईये । मेरे पति योग लेकर कहां पर बैठे हुए हैं ? अरजकने कहा कि आप मेरे साथ चलिये वहांपर आपको आपका पति मिलेगा ! पीछे

अरजकने मदालसाको अपने स्थानपर लाकर अपनी स्त्रियोंके साथ एकान्तमें रक्खी जहांपर सब कोई मदालसाका अच्छी तरहसे सत्कार करते थे।

अरजक कुमार ऋतुध्वजको बहुत कुछ समझाकर अपने पिताके पास लाये; किन्तु वह तो सदैव मदालसाके स्मरण सिवाय अन्य कुछ भी बात नहीं करता था। इस प्रकार उसे विदेही बना हुआ देखकर अरजक अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुआ। ऋतुध्वजने वहांसे आज्ञा मांग चलनेकी तैयारी की; तब अरजकने कहा कि आप मनसे संकोचको छोड़कर अपनी अभीष्ट वस्तु मांगीये। ऋतुध्वजने कहा कि मैं जो मांगुगा वह कीसीसे देने योग्य नहीं है। फिर व्यर्थ क्यों मांगु? अरजकने कहा अच्छा आपको जिससे सुख हो वही मांगिये मैं अवश्य दूंगा। इस परसे उसने मदालसाको मांगा। अरजकने कहा कि राजन्! उस कमरेके पास जाकर मदालसाको आवाज दीजिये वह उसमें होगा तो बोलेगी। ऋतुध्वजके आवाज देते ही कमरेके कंवाड़ तुरन्त खूल गये और भीतरसे मदालसा हाथ जोड़ कर निकली एवं ऋतुध्व-जके गले पर लग गई। कुछ समय तक दोनों मौन हो स्तब्धके समान बन गये। दोनोंको आनन्दके अश्रु आ गये। यह देखकर अरजक कुमार भी अत्यन्त प्रसन्न हुए। ऋतुध्वजने मित्रोंका और उनके पिताका अत्यन्त उपकार माना। पीछे वे दोनों पति पत्नी वहांसे विदा हो अयोध्याजी आये। वहांपर मातापिता और सम्पूर्ण नगरी उन्हें देखकर प्रसन्न हुई। नगरमें घरघर आनन्दोत्सव होने लगे।

पातालकेतु दूसरीवार गुसांईका भेष लेकर आया। उसकी मायाको—प्रपञ्चको अरजकुमार व ऋतुध्वजने जान लिया। किन्तु उसको नहीं मारकर छोड़ दिया। फिर एकवार गुसांईयोंको भोजनके लिये कहा था उसमें भी गुसांईके भेषसे आया और सम्पूर्ण—भोजनके पदार्थोंको माया रचकर खागया। यह ऋतुध्वजके जाननेमें आया और तुरन्त ही उसके केश पकडकर उसको पृथ्वीके ऊपर फैंका और मस्तक छेदन कर दिया। वह चिल्लाकर मर गया। सर्वत्र जयजयकार हुआ और सब कोई प्रसन्न हुए। पीछे राजा शत्रुजित् अपने कुमार ऋतुध्वजको राज्यासन देकर वनमें तप करनेके लिये गया। राजा ऋतुध्वजने प्रजाका पुत्रके समान पालनकर उनकी प्रीति सम्पादन की और प्रजा उसे अत्यन्त आदर व प्रेमकी द्रष्टिसे देखने लगी। मदालसा सदैव अपने पातिव्रत्य धर्मका पालनकर पतिप्रेममें मस्त रहती थी। ऋतुध्वजका भी उसके प्रति सदैव ऐसा प्रेम रहा। यह दम्पती फिर कभी पृथक् नहीं हुए। अहा! पति पत्नीमें कैसा मनोरम प्रेम! धन्य है! दम्पति आपके प्रेमको! हे भारतभूमिके दम्पतीगण! आपके अंदर ऐसा प्रेम फिर कब प्रकट होगा? हे प्रभो! आप उन्हें ऐसे प्रेमकी प्रेरणा कीजिये। जिससे उनका संसार सुखमय हो जाय।

सती नर्मदा।

प्रतिष्ठानपुरमें रहनेवाले सोमशर्मा नांवके विद्वान् ब्राह्मणको केवल नर्मदा नांवकी पुत्री थी। उस पुत्रीके जन्म होतेही उसकी माता मरण-के शरण हुई थी; जिससे उसके पिताने उसे पालनपोषण कर बड़ी की थी। दैवेच्छासे उसका पिता भी भयंकर व्याधिसे ग्रसित हुआ तब उसने अपने एकमित्र चन्द्रचूडके हाथमें उस कन्याको सौंपा और थोड़े ही सम-यमें वह भी मरणको प्राप्त हुआ। चन्द्रचूडको कुछभी सन्तति नहीं थी जिससे उसका अपनी कन्याके समान प्रेमसे पालन पोषण किया और वेद, पुराणादि शास्त्र, इतिहास संगीत, काव्य, योग, चित्रकला प्रभृति विद्यायें पढाकर विदुषी बनाई। जैसी वह विदुषी थी वैसेही स्वरुपसे सुन्दर, स्वभावसे सरल, विवेकी व विनयवाली थी। उसका सम्बन्ध (वाग्दान) उसके समान गुणस्वभाववाले वरके साथ किया था; किन्तु वह मर गया। इस प्रकार पांचवार सम्बन्ध किया; किन्तु वे पांचो वर दैवेच्छासे विवाहके पूर्वही मृत्युको प्राप्त हुए। इससे नर्मदाने अत्यन्त खिन्न हो तपश्चर्या करनेका संकल्प किया। उसने इतनी तपश्चर्या की कि उसके प्रतापसे वह उसी शरीरसे स्वर्ग में जानेको समर्थ हुई। वह प्रतिदिन देवसभामें जाकर अनेक शास्त्र और वेदान्तके मतमतान्तरों के सम्बन्धमें सम्वाद करती थी। एक समय शास्त्रचर्चा चलनेपर एक प्रश्न अपूर्ण रहा इसका उत्तर कल दुंगी ऐसा कहकर वहांसे चल निकली; किन्तु किसी कारणसे मार्ग में से फिर लौटकर देवसभामें आई वहांपर उसके बैठनेके स्थानको देवगण पवित्र करते थे उसे देखकर उसने पूछा कि आप यह क्या करते हैं? इन्द्रने उसके प्रभावसे दबते हुए स्वरसे कहा कि देवि! आपको अपने गुणोंके प्रभावसे यहांपर आना अशक्य नहीं है; किन्तु अपने पतिकी सेवा किये विना जप, तप, ईश्वरपूजन, दान, ध्यान, शम, दम, और दया प्रभृति सहस्रों व्रतोंसे भी स्त्री पवित्र नहीं हो सक्ती। इससे आप जिस स्थानपर बैठ थे वह स्थान अपवित्र हो गया था उसे हमलोग पवित्र करते हैं। इसलिये आप कृपाकर हमें क्षमा करेंगे।

इन्द्रके इस कथनको सुनकर नर्मदाने गद्‌गद् स्वरसे कहा कि;—देवगण! मेरे मातापिताओं ने मेरा पांचवार सम्बन्ध (वाग्दान) किया; किन्तु दैवेच्छासे वे पांचो पति विवाह होनेके पूर्व ही स्वर्गवासी हुए इसमें मेरा क्या अपराध है? अब आप लोग श्रेयस्कर मार्ग बतलाइए। देवोंने कहा कि;—देवि नर्मदे! इसमें तेरा कुछ भी

अपराध नहीं है। अब आप पृथ्वीपर जाकर जाहिर करो कि;—"तीन दिन के भीतर जो मेरा पाणिग्रहण करेंगे उसके साथ मैं अपने जीवन पर्यन्त मन, वचन, और कर्मसे एकरुप होकर सदैव उसकी आज्ञामें रहुंगी" यदि ऐसा करनेपर भी कोई विवाह करनेको तैयार न हो तो पीछे आप उस पापसे मुक्त होंगे। सती नर्मदाने देवोंके इन वचनोंको सुनकर प्रयत्न किया; किन्तु उसके तेजसे भयभीत हो उसके साथ विवाह करनेकी किसीकी भी हिम्मत नहीं हुई। आखिर आधिव्याधिसे युक्त, महारोगी, स्वभावसे क्रूर, लोभ प्रभृति समस्त अवगुणोंसे युक्त एक कौशिक नांवके ब्राह्मणने उसके साथ विवाह करना स्वीकार किया। नर्मदाने उसके रोगसे घृणा नहीं कर लोक हास्यकी कुछ परवाह नहींकर तुरन्त उसके साथ सहर्ष विवाह किया। पीछे पतिकी पूर्ण प्रेमसे निर्मलभावसे सेवा करने लगी। रोगसे उसके शरीरसे खून और पीप बहते थे उसकी कुछभी परवाह नहीं कर उसे साफ रखकर जिस प्रकार वह रोग मिट जाय उस प्रकार चेष्टा करती थी। विनयवाणी द्वारा मधुर वचन बोलकर उसे सन्तुष्ट करती थी। कटुवचन या निन्दाके जैसे शब्दका भूलसे भी उच्चार नहीं करती थी। मलमूत्र साफकर उसके शरीरपर तेल लगा स्नान कराकर भोजन करवाती थी। पतिके क्रोध करनेपर और अपमान करने पर भी नर्मदा प्रेम व सरल स्वभावसे विवेक वचन बोलती थी कि प्राणेश्वर! मुझसे कोई अपराध भूलसे हो गया हो तो आप कृपाकर क्षमा कीजिये। आपको क्या प्रिय है? मैं उसे करनेको तैयार हूं। ऐसे२ प्रियवचन कहकर उनके क्रोधको शान्त करती थी। मनुष्य चाहे वैसा क्यों न हो फिरभी उसे सद्गुणी या दुर्गुणी मनुष्यकी संगत होनेपर सद्गुण या दुर्गुणकी असर हुए विना नहीं रहती। इस साधारण नियमानुसार इस रोगी कौशिक ब्राह्मणको जबसे महा ज्ञानी सती नर्मदाका समागम हुआ तबसे उसकी अज्ञानता क्रमशः दूर होने लगी। एक समय उसने कहा कि सति! मैने इस पृथ्वीपर जन्म लेकर अनेक पापाचरण किये होंगे; उनसे मुक्त करनेवाली भागिरथी गंगाके समान एकभी उत्तम तीर्थ नहीं हैं, इस लिये किसी प्रकारसे मुझे उसकी यात्रा करा दे।

सती नर्मदा पतिके इन वचनोंको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। पतिको साथमें लेजाकर अनेक तीर्थ कराये। दोनों प्रतिष्ठानपुरकी ओर आते थे वहां मार्गमें एक राजाने महान् तपस्वी मांडव्य मुनिको चोरीके झुठे अभियोगसे शूली पर चढाया था उसके पास होकर ये अंधेरी रातको निकले। उसमें अजानसे उसका स्पर्श हो जानेसे कुछ वेदना हुई जिससे मांडव्य मुनिने उसे शाप दिया कि "मुझको ऐसे दुःखमें स्पर्श कर अधिक दुःखी बनानेवाला परम दुःखको पाकर यमद्वारको जाओ!" इस कठिन

शापको सुनकर नर्मदा अत्यन्त दुःखित हुई। उसने भी ईश्वरकी आराधनाकर अपने सतीत्वके प्रतापसे पतिको बचानेकी चेष्टा की। इन दोनोंके धर्मसंकटमय विवादमें प्रजा दुःखी होने लगी;* जिससे सब देवोंने मिलकर सती नर्मदाजीको समझाने के लिये सती अनसूयाजीको भेजा। वे प्रतिष्ठानपुरमें सती नर्मदाजीके पास आई। सतीने अनसूयाजीका आतिथ्य सत्कार किया उस समय अनसूयाजीने उसे कुशल समाचार पूछे कि तू कुशल है? तू अपने प्राणनाथके सुखदर्शन कर आनन्दमें रहती है? तेरा पतिव्रता धर्म कुशल है? देवि! जो स्त्री अपने पतिकी पूर्ण प्रेमसे सेवाकर प्राण जानेपर भी उसका रक्षण करती है, सासश्वसुरको तीर्थरुप समझती है, पतिको अनेक कार्योंमें सलाह व सहायता देती है, सदैव मधुर वचनसे बुलाकर सन्तुष्ट करती है, और जो स्त्री चौराशी लक्ष योनीमें उत्तम ऐसे मनुष्य देहको पाकर जगत्के हितकर व सुखकर कार्योंको करती है उसे धन्य है! जो मनुष्य जगत्के उपकार करने में प्रीतिवाले नहीं होते उनके जीवन, धन, गृहादि सभी व्यर्थ है। जिसने स्वधर्मानुसार चलकर दोनों कुलोंका उद्धार किया है उसीको कुलवती कन्या समझना चाहिये। उसीने असार संसारको सार रूप किया है इत्यादि सुबोध वचन अनसूयाजीने नर्मदाजीके प्रति कहे।

यह सुनकर सती नर्मदाने कहा कि "तीन लोकोंको पवित्र करनेवाली भगवति अनसूये मातः! मैं आपके समान सतियोंके चरणकी रज हूं। मैं किसी गुनती में नहीं हूं! आप इस दीन दासीपर कृपाकर यहां पधारे यह बहुत ही अच्छा किया। आप मेरे योग्य जो कुछ आज्ञा हो कहिये। सती अनसूयाजीने कहा;—देवि नर्मदे! तैंने तेर पतिके सुखके लिये जो उपाय किया है उससे प्रजा दुःखी हो रही है इस-लिये सबको सुख हो उस प्रकार कीजिये। ऐसी महान् आपत्ति को स्वीकार कर सबको सुखी करनेपर तुम कभी भी दुःखी नहीं होगी। नर्मदाने अनसूयाके कथनानुसार किया; जिससे प्रजाकी पीडा दूर हुई। यह देखकर अनसूयाजी परमेश्वरकी प्रार्थना करके बोली कि,—"यदि मैंने अपने रुपसे, शीलसे, बुद्धिसे, वाणिसे और कर्मसे अपने प्राणपतिको प्रसन्न रक्खे हों और एकभावसे प्रभु भक्ति की हो तो यह ब्राह्मण (नर्मदाका पति) रोग रहित हो अपनी पत्नीके साथ अनेक वर्ष पर्यन्त सुख भोगना"।

*मांडव्य ऋषिने शाप देते हुए कहा था कि सूर्योदय होतेही मुझको कष्ट देनेवाला मरजायगा। इसलिये नर्मदाने अपने सतीत्वके प्रभावसे सूर्यका उदय होना रोक दिया। यही प्रजाके दुःखका कारण था।

सतीके ऐसे वचनोंसे ईश्वरने कृपाकी और सती नर्मदाका पति मांडव्य मुनिके शापसे मुक्त हो सब प्रकारसे सुखी हुआ। जिससे देवोंने जय ध्वनीकर पुष्प वृष्टी की। सती नर्मदाने अनसूयामाताको प्रणाम किया। पीछे अनसूयामाता आशीर्वाद देकर अपने आश्रमको पधारे। अहा! सतीका कैसा प्रताप है!

सुकन्या।

मनु महाराजका पुत्र शर्याति नांवका राजा था उसकी कन्याका नांव सुकन्या था। उक्त राजाको यही एकमात्र कन्या थी। यह कन्या स्वरुपसे सुन्दर और मनोहर थी। वैसेही विद्याकलामें भी कुशल थी। शर्याति राजाके नगरसे कुछ दूरपर मानसरोवरके समान एक मनोहर सरोवर था। उसका जल स्वच्छ, और मीठा था। भीतर विविध प्रकारके कमल प्रफुल्लित हो रहे थे। आसपासमें चारों ओर साग, सीसम, देवदार, तमाल, केतकी, केवडा, अशोक, आम्र, कदली, पिप्पल, अश्वत्थ, वट, कदम, नीम्बु, बादाम, फनस, सुपारी, जामून, अमली, नीम्ब प्रभृति वृक्षोंका समूह शोभित हो रहा था। उसमें हरण, हंस, मैना, तोते, मयुर, कोयल, काकाकौवे, कबुतर, चकवाचकवी, सारस, सिंह, चित्ते, व्याघ्र, साबर, मृग व रींछ प्रभृति अनेक पशु पक्षीगण आनन्दसे इधर उधर विहार कर रहे थे। उसमें गुलाब, जाई, जुई, मोगरा, चमेली, करणा, केतकी, गुलदावदी इत्यादि अनेक प्रकारके फुल, फल व कन्दमूलसे वह वन सुशोभित हो रहा था। ऐसे मनोहर अथच रमणीय वनमें महात्मा भृगु ऋषिके पुत्र च्यवन ऋषिका आश्रम था। इस तपस्वी मुनिके तपोबलसे उस आश्रममें रहे हुए पशु पक्षी कोई किसीको कुछ भी कष्ट नहीं दे सक्तेथे। सब कोई विरोधका परित्यागकर आनन्दमग्न रहते थे। मुनिने दृढ आसन लगा समस्त इन्द्रियोंको जीत कर अन्नजलका त्याग किया था और प्राणायामकर एकाग्रचित्तसे तपश्चर्या कर रहे थे। इस प्रकार अधिक समयके जानेसे उनके ऊपर मिट्टी जम गई थी। और ऊपर वृक्ष उत्पन्न हो गये थे। वह मिट्टी जमकर एक बीला बन गया था जिसमें दो छीद्र मालूम होते थे।

एक समय शर्यातिराजा अपनी राणियों व सुकन्या समेत उस मुनिके आश्रमवाले वनमें सुन्दर सरोवर था वहांपर विहार करनेके लिये आया। राजाराणी उस सरोवर और आसपासके वनमें क्रीडा कर रहे हैं। सुकन्या भी अपनी सखियों के साथ

फल फुलको लेती व खेलती हुई च्यवन मुनिके उस बीलके ऊपर आ गई। बीलमें दो छीद्र देखनेमें आये जो पतंगके समान चमकते थे। बालाने उसे देखकर यह क्या होगा? ऐसा जानकर बालकपनसे उन छीद्रोमें शलियें डाली। जिससे मुनिकी दोनों आंखे फूट गई और खूनकी धारा वहने लगी। तब सुकन्याने जान लिया कि इसमें कुछ होगा ऐसा विचारकर वह अपने खेलमें लग गई।

च्यवनमुनि नेत्रके फूटनेसे अत्यन्त क्रोधायमान हुए। इस समय मुनिने कुछ कहा; किन्तु उसे वह बाला समझ नहीं सकी और तुरन्त आश्चर्यान्वित हो अपने पिताके पास आई और जो कुछ, वृतान्त हुआ था सो उनसे कहा। जिसे सुनकर राजाने निश्चय किया कि वह महात्मा च्यवन ऋषिका आश्रम है और संभव है कि उन्हीका इस कन्याने अपराध किया है। ऐसा जान वह उस स्थानपर आया और उस बीलको खुदवाया जिसमेंसे शुष्क शरीरधारी महात्मा च्यवनजी निकले। राजा दोनों हाथ जोड़ उनके पांवमें पड़कर प्रार्थना करने लगा कि "हे महा-मुनि! मेरी बाल कन्याने खेलते२ खेलकी धुनमें अज्ञानतासे आपका अपराध किया है उसे कृपाकर आप क्षमा कीजिये। आपके समान महात्माओंको क्रोध नहीं करना चाहिये।" मुनिने कहा, "हे राजन्! मैं कभीभी क्रोध नहीं करता। तेरी पुत्रीने मेरी आंखें फोड़ डाली है फिरभी मैंने उसे शाप नहीं दिया है। मैं वृद्ध हूं और फिर अन्ध हुआ अब मेरी सेवा कौन करेगा?" राजाने कहा कि आप चिन्ता न करें। मैं आपकी सेवामें सेवकोंको दूंगा। आप कृपाकर क्षमा कीजिये।

मुनिने कहा कि राजन्! वृद्धावस्था अत्यन्त खराब है, फिर अन्धत्व प्राप्त हुआ इससे बहुत विपत्ति पड़ेगी। ऐसी दशामें नोकरोंसे चाहिये वैसा कार्य नहीं हो सक्ता। इस स्थितिमें सम्बन्धमें जुड़ा हुआ मनुष्य ही यथोचित सेवा व सहायता कर सक्ता है। मेरी यह दशा हुई, मैं तपस्वी हूं। अब मुझे योगसाधनामें सहायक चाहिये अन्यथा मेरा योग भंग होगा। आपके नौकर मेरा क्या कार्य कर सक्ते हैं? यदि आप अपनी कन्याके किये हुए अपराधकी क्षमा चाहते हैं और मेरे तपका भंग करना नहीं चाहते हैं तो इस अपनी कन्याको मुझे दान कीजिये। ऐसा करनेसे आपका इस लोक और परलोकमें कल्याण होगा; क्योंकि मैं उत्तम नियम-वाला तपस्वी हूं।

मुनिके इन वचनोंको सुनकर राजा चिन्तातुर हुआ, कुछ भी बोले विना विचार करने लगा कि मेरी देवकन्याके समान पुत्रीका दान इस अन्धको कैसे करुं? जाननेपर भी ऐसी सुकोमल कन्याके सुखका नाश कैसे किया जाय? इस ऋषिको

कन्यादान करनेपर उसका जन्म कैसे व्यतीत हो? नहींर यह कन्या तो उसीके समान सद्गुणी व युवा पुरुषको देखकर देना चाहिये। चाहे मुझे दुःख पड़े किन्तु यह कन्या मुनिको नहीं देना चाहिये। ऐसा विचार करता हुआ और खेदको प्राप्त होता हुआ राजा अपने घर गया। राजसभा बुलाकर मंत्रीमंडलकी सम्मति ली। मन्त्रियोंने कहा कि महाराज! यह धर्मसंकट आया है। ऐसी स्वरुपवती व सुकोमल कन्या ऐसे वृद्ध अन्ध मुनिको कैसे दी जाय? उस भयंकर जनशून्य जंगलमें उसका समय कैसे व्यतीत हो? इस प्रकार राजा और मंत्रीमंडल चिन्तान्वित हो रहा था इतनेमें वहांपर यकायक सुकन्या आकर उपस्थित हुई। उसने कहा कि पिताजि! आज आप आनन्दित क्यों नहीं हैं? आपको क्या चिन्ता हो रही है? यह मंत्री-मंडल क्यों चिन्तित प्रतीत होता है? मैं जब यहांपर आती हूं तब सबको आनन्दित देखती हूं; किन्तु आज कुछ और ही दशा देख रही हूं इसका क्या कारण है? कृपाकर, पिताजि! मुझे सत्य बात कहिये। क्या मुनिने कुछ कहा है? आप मेरे लिये इतने चिन्तित व दुःखित क्यों होते हैं? मैं उन मुनीश्वरके आश्रममें जाती हूं। मेरे द्वारा कष्ट पाये हुए मुनिको मैं धैर्य देकर उन्हें मैं अपना शरीर अर्पण करुंगी। मैं उनकी सदैव सेवाकर उनके तप व योगसाधनामें सहायता करुंगी और वे जिस प्रकार प्रसन्न होंगे उसी प्रकार मैं करुंगी। आप कुछ भी चिन्ता न करे। मेरा यह विचार द्रढ हैं आप उसमें बाधा नहीं देकर मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करेंगे।

राजा शर्यातिने सुकन्याके ऐसे वचन सुनकर मंत्रीमंडलके सुनते हुए कहा कि "प्रियपुत्रि! तू अभी बाला है। फिर अबला जाति है। इससे वनमें रहकर अन्ध और वृद्ध मुनिकी सेवा किस प्रकार कर सकेगी? मैं अपने सुखके लिये वृद्ध व अन्ध ऋषिको तेरे समान मनोहर, रूपलावण्ययुक्त कन्याको कैसे दूं? मातापिताओंने अपनी कन्याका दान करनेके समय निम्न बातें अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये। स्वरुपसे सुन्दर हो, वयसे तरुण हो, गुणकी खान हो, सभी विद्याओंमें कुशल हो, पाप व दारिद्य जिनके कुलमें भी न हो, धन धान्य सम्पत्तिसे भरपूर हो ऐसे वरको देखकर कन्यादान देना चाहिये। तू बुद्धिमती है इसलिये हठका परित्याग कर बेटि! तेरा सुन्दर स्वरुप कहां? और इस जंगलमें रहनेवाले वृद्ध मुनि कहां? पुत्रि! यह मुनि सदैव पर्णकुटिमें रहनेवाले हैं उसको मैं तेरा दान कैसे दे सक्ता हूं। मेरा और मेरे सैन्यका चाहे मृत्यु हो, चाहे सर्वस्व नष्ट हो जाय किन्तु मैं तेरे समान पुत्रीरत्नको ऐसे अयोग्य स्थान पर नहीं दुंगा।"

सुकन्याने पिताजीके ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न मुखसे कहा कि "पिताजि! आ

मेरे लिये कुछ भी चिन्ता न करें। आप प्रसन्नतासे उस तपस्वी मुनिको मेरा दान कीजिये। मुझे उसीसे सन्तोष है। मैंने मनसे उनको पति बना लिया है। अब मैं भूलसे भी दूसरेके साथ विवाह नहीं करुंगी। अब मेरे पति तो वे मुनि ही है, उनके साथ रहनेसे मुझे सन्तोष होगा। मनुष्य रहित इस जंगलमें मैं तप करके पूर्ण भक्ति द्वारा पति सेवामें सावधान रहुंगी। मैं सती धर्ममें प्रवीण रहकर योग्य आचरण करुंगी। पिताजि! मुझे इस असार संसारके भोग विलासकी इच्छा नहीं हैं, मेरा चित्त स्वच्छ है। इस संसारकी माया मिथ्या है। मातापिता, कुटुम्ब परिवार, भ्राता भगिनी, राज्य वैभव, ये सभी अस्थिर है; यह सम्पूर्ण दृश्यमान संसार नश्वर है। मृत्यु किसीको भी नहीं छोडता; इसलिये इस संसारमें उत्पन्न हो, धर्म—कर्म, पतिसेवा परोपकार प्रभृतिमें तत्पर रहकर जितना सत्कार्य हो सके उतना कर लेना चाहिये। अन्तमें सुकृत्य ही साथ आवेंगे। अत एव हे पिता! आप मेरे लिये कुछ भी चिन्ता न करे और मेरे इस निश्चयका भंग न करे। मेरे धन्यभाग है कि ऐसे तपस्वी, महामुनिके समान मेरे पति होंगे। उनकी सेवासे मेरा उद्धार होगा। आप उस महामुनिको ऊपरसे अन्ध व वृद्ध जानकर अन्ध व वृद्ध न समझे। वे ज्ञानचक्षुके द्वारा सब कुछ देखते हैं और तपोबलके द्वारा वे युवान है। मेरे इन वचनोंको आप सत्य समझ-कर आप उन्हें मेरा दान करें।"

सुकन्याके ऐसे वचन सुनकर राजा व मंत्रिमंडल सब कोई आश्चर्यान्वित हुए और अत्यन्त प्रसन्न हुए। राजा व मंत्रिमंडल ऋषिके आश्रममें गये। उन्होंने प्रणाम कर कहा कि "हे मुनि! आपकी सेवा करनेके लिये मैं अपनी इस कन्याको आपके चरणमें अर्पण करता हूं। आप विधिपूर्वक क्रिया कर इसे ग्रहण कीजिये!" इस प्रकार कहकर शर्याति राजाने शास्त्रविधिके अनुसार कन्यादान किया। जिससे मुनिने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया। राजाने वस्त्राभूषणादि देनेका आग्रह किया। उस मुनिने स्वीकार नहीं किया। राजाने अपने सैन्य समेत अपने नगरमें जानेकी तैयारी की। तब सुकन्याने कहा कि "पिताजि! मेरे ये उत्तम वस्त्र आभूषण प्रभृति समस्त रजोगुणी पदार्थोंको ले जाईये। मैं अब मुनिकी अर्धांगना हुई हूं, इसलिये तपश्चर्याके योग्य भेष धारणकर अपने पतिकी सेवा करुंगी। इससे आपकी कीर्ति तीनलोकमें अचल रहेगी। मैं परलोकके सुखके लिये अपने प्रियपतिकी अहोरात्र सेवा करुंगी और जैसे सती सीता, सावित्री, अनसूया, लक्ष्मीजी, पार्वतीजी प्रभृति सतियोंने अपने पतिमें प्रेम रखकर अपना शियल भंग नहीं होने दिया, वैसेही मैं भी अपने प्रियपति च्यवन ऋषिकी धर्मपत्नी हुई हूं, इस लिये मैं उनकी सेवामें सदैव तत्पर रहुंगी।

मैं किसी प्रकार अपने धर्मको नहीं छोडूंगी । अब आप मेरे विषयमें कुछ भी चिन्ता न करिये । "

सुकन्याके ऐसे वचन सुनकर राजाको हर्षके आँसु आ गये । उसे वल्कल व मृगचर्म धारण की हुई देखकर राणियोंके नेत्रोंसे भी आँसुओंकी धारायें बहने लगी। सब कोई व्याकुलसे बन गये और सुकन्याको मुनिके पास रखकर वे अपने नगरमें गये । राजाके जानेके पश्चात् धर्ममें एक निष्ठावाली सुकन्या अग्निहोत्रके कार्यमें पतिको सहायताकर सेवा करने लगी । प्रतिदिन वनमें जाकर फल, फुल, मूल, कंद और काष्ट प्रभृति लाकर हाजिर करती थी । नहानेको जल, पहिननेको वस्त्र, और बैठनेको मृगचर्म इत्यादि सभी तैयार रखती थी । प्रातःकाल और सायंकालको नित्यकर्म करनेकी यव, तील, दाभ, पञ्चपात्र, भस्म, कमण्डलु प्रभृति सामग्रियें लाकर समीपमें रखती थी । नित्यकर्म होनेके बाद निश्चित समयपर भोजन कराती थी और शयनके लिये शय्या तैयार करती थी । इस प्रकार अपने स्वामिके समस्त कार्योंको करनेके पश्चात् उनकी आज्ञा लेकर स्वयं फलाहार करती थी । इसके सिवाय पति जो कुछ आज्ञा करते थे उसे पूर्ण करनेको तैयार रहती थी । पतिको प्रतिदिन निवृत्तिके समयमें पतिव्रताके धर्म पूछती थी । उष्णकालमें पंखेसे पवन डालती थी और शीतकालमें अग्निका ताप कर देती थी । जब दो घडी रात्रि रहती थी तब पतिसे पहिले जागृत हो प्रतिदिनके अनुसार समस्त सामग्रियें तैयार करती थी । आश्रममें किसी अतिथिके आनेपर उसका प्रेमपूर्वक आदर सत्कार करती थी । पतिको सदैव सन्तुष्ट रखकर स्वयं आनन्दित रहती थी ।

एक समय सूर्यपुत्र अश्विनीकुमार भ्रमण करते हुए च्यवन ऋषिके आश्रमके पास आये । उस समय मनोहर स्वरुपवती सुकन्या स्नानकर आ रही थी वह उनके दर्शनमें आई । देवकन्याके समान उस कन्याको देखकर अश्विनीकुमारोंने समीपमें आकर कहा कि " हे सुन्दरि ! आप खड़ी रहो ! हम जो पूछते हैं उसका यथार्थ उत्तर देना । आप किसकी कन्या हैं ? आपका पति कौन है ? आप इस सरोवरमें स्नान करनेके लिये क्यों आई हो ? आप लक्ष्मीके समान तेजस्वी हैं ? आप अपने सुकोमल चरणोंको पृथ्वीपर धरती हैं जिसे देखकर हमारे मनमें दुःख उत्पन्न होता है । सुन्दरि ! आप विमानमें बैठने योग्य हो फिर इस वनमें पांवसे क्यों भ्रमण कर रही हो ? सुन्दर वस्त्र धारण करने योग्य इस शरीरमें वल्कल वस्त्र क्यों धारण किये हैं ? आप एकाकी इस जंगलमें क्यों आई है ? साथमें सखियें क्यों नहीं हैं ? आप किसी राजाकी कन्या हो या अप्सरा हो ? आपका जिन मातापिताओंके घरपर

जन्म हुआ वे धन्य है और आपका पति भी महाभाग्यवान होना चाहिये ! सुन्दरि ! जो कुछ सत्य हो वही कहो।"

सुकन्याने अश्विनीकुमारके इन वचनोंको सुनकर कहा कि:—"हे महात्मन्! मैं शर्याति राजाकी कन्या और महात्मा च्यवन मुनिकी पत्नी हूं। मेरे पिताने मुनिके साथ मेरा विवाह किया है। मेरे पति महान् तपस्वी है; किन्तु वे अन्ध एवं वृद्ध हैं इसलिये सदैव उनकी सेवामें लगी हुई हूं। मैं स्नान करके अब अपने आश्रममें जा रही हूं। आप कौन है? यहांपर किस लिये पधारे हुए हैं? मेरे पति आश्रममें हैं वहांपर पधारकर उस आश्रमको पवित्र कीजिये।" अश्विनीकुमारोंने सुकन्याके इन मधुर वचनोंको सुनकर कहा कि:—"पतिव्रते! तेरे पिताने ऐसे अन्धपतिके साथ तेरा विवाह क्यों किया? जिस प्रकार आकाशमें मेघोंकी घटाके बीचमें विद्युत्का प्रकाश सुशोभित हो रहा है उसी प्रकार आप इस वनमें सुशोभित हो रही हो! आपके समान सुन्दर अंगवाली कन्या हमने आजदिन तक कहां भी नहीं देखी है। हे सुन्दरि ! आप उत्तम वस्त्राभूषण धारण करने योग्य है। इन वल्कल और मृगचर्मको धारण करने योग्य आपका शरीर नहीं हैं। अहा! दैवकी गति विचित्र है। उसकी अद्‌भुत-कला किसीके जाननेमें नही आती। आपके समान विशाल नेत्रवाली स्त्रीको इस निर्जन अथच भयंकर वनमें रहकर वृद्ध और अन्धपतिकी सेवा करना योग्य नही हैं। आप किसलिये इस वनमें कष्ट भोग रही हैं? ऐसे पतिके साथ आप नहीं शोभा पाती। अभी अवस्था तरुण है। हे विधाता! इसको ऐसा अन्ध व वृद्ध पति तैंने क्यों दिया? विधाताने यह भारी भूल की है! आप ऐसे पतिके साथ कैसे रह सक्ती हैं? ऐसे पतिकी सेवाकर अपनी जिन्दगीका नाश क्यों कर रही हो? आपके भरण पोषण करने में भी वह असमर्थ है। इसलिये ऐसे भाग्यहीन पतिकी सेवा किसलिये कर रही हो? आप राजकन्या होनेके कारण संसारसुखको समझती हैं; फिरभी भाग्य हीन हो इस जनशून्य जंगलमें क्यों व्यर्थको समय काट रही हो? आपके संसार सुख भोगनेके लिये हम दोनोंमेंसे एकको पतिरुपसे स्वीकार कीजिये और इस अन्ध व वृद्ध तपस्वीको छोड़कर देवताओंके सुशोभित उपवनोंमें विविध प्रकार के सुखोंका अनुभव करनेके लिये तैयार हो जाईये!"

अश्विनीकुमारोंके इन वचनों को सुनकर सती सुकन्या क्रोधायमान हुई; किन्तु धैर्य रखकर बोली कि,—"हे देव! आप सूर्यपुत्र होकर, क्या आप देवताओंमें सन्मान प्राप्त धर्मिष्ट स्वभाववाली सती स्त्रियोंके धर्मसे अपरिचित है? मैं अपने सतीधर्ममें रहनेवाली हूं उसे ऐसे वचन कहना योग्य नही हैं। मेरे पिताने धर्मात्मा महात्मा

च्यवन ऋषिको दी है। उनकी मैं पूज्यभावसे सेवा करती हूं। इस सृष्टिमें चाहे तो देव, मनुष्य या गन्धर्व हो फिर भी सती स्त्रीको अपने स्वामिके सिवाय कोई प्यारा नही है। सतीको अपना स्वामी चाहे कैसा ही क्यों न मिला हो; किन्तु वही उसके लिये देवस्वरूप है। ऐसी भावना रखकर उसकी सदैव आज्ञामें रहकर सेवा करे उसीमें उसका कल्याण है। कश्यपसे उत्पन्न होनेवाले कर्मके साक्षी श्री सूर्यनारायण तीनों लोकमें साक्षीरुपसे देखा करते हैं। उनके पुत्र होकर आप मुझे दुष्ट स्त्रियोंके आचरण करनेयोग्य मार्गको बतलाते हैं। क्या ऐसा बोलना आपको उचित है? उत्तम कुलकी कन्या अपने पतिका परित्यागकर दूसरे उत्तम स्वरूपवाले पुरुषको कभी देखती भी नही हैं। आप देव हैं, इस असार संसारमें धर्मके निर्णयको आप अच्छी तरहसे जानते हैं; फिरभी ऐसे अनुचित वाक्योंका उच्चारण आप क्यों कररहे हैं? सद्गुणी पुरुषके मुखमें ऐसे वचन शोभा नहीं पाते। अस्तु—आप सतीका धर्म जानते हैं। इसलिये आपकी जहांपर इच्छा हो वहां चले जाओ! अन्यथा मैं शाप दुंगी।"

अश्विनीकुमार सतीके इन वचनोंको सुनकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए। यह सती शाप देगी और मुनीश्वर कोप करेंगे ऐसा जानकर कहा कि;—"पतिव्रते! हमने आपकी परीक्षा लेनेके लिये ये वचन कहे थे; इसलिये आप क्षमा करें। हम आपके धर्मको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं इस लिये वरदान मांगिये! आप अपने श्रेयके लिये जो कुछ मांगेगे वही हम देंगे। हम देवताओंके बड़े वैद्य हैं; इसलिये आपके पतिको हम अपने समान युवान, स्वरुपवान, व बलवान बनाकर नवीन नेत्र देंगे। हमारे समान ही वह बन जांयगे—हम तीनों समान बन जांयगे उनमेंसे आप अपने पतिको पहिचान लीजियेगा।"

अश्विनीकुमारोंके इन वचनोंको सुनकर सुकन्याको विस्मय हुआ और अपने पतिके पास जाकर कहा कि—"सूर्यके पुत्र अश्विनीकुमार नांवके देव आपके आश्रममें आये हुए है, वे कहते हैं कि तेरे पतिके शरीरको औषधिसे हमारे समान दिव्य कर देंगे फिर उन हम तीनोंमेंसे अपने पतिको पाहिचान लेना। इस अद्भुत कार्यके विषयमें क्या करना चाहिये? इस कार्य में कुछ प्रपञ्च तो नही हैं? देवताओंकी मायाको जानना अशक्य है। इसलिये आपकी जैसी इच्छा हो वैसा किया जाय।" यह सुनकर च्यवन मुनिने कहा कि "उन्हें यहांपर बुलाव उनके कहनेको स्वीकार करना चाहिये—उसमें शंका करनेका कोई कारण नहीं है।" पतिकी आज्ञानुसार सती उन्हें आश्रममें ले आई। ऋषि अश्विनीकुमारोंकी आज्ञाके अनुसार करनेसे स्वरुपसे सुन्दर

व युवान होगये, अन्धत्व दूर हुआ। च्यवन मुनिने अश्विनीकुमारोंसे कहा कि देव ! आपने मुझपर महान् उपकार किया है। मेरा अन्धत्व और वृद्धत्व नष्टकर तारुण्यताके साथ२ स्वरुप भी दिया है। जो मनुष्य अपने पर उपकार करनेवालेके ऊपर कुछ भी उपकार न करे उसे धिक्कार है। इसलिये आप जो मांगेगे वही मैं दुंगा। च्यवन मुनिके ऐसे वचन सुनकर अश्विनीकुमारोंने कहा कि हमें देवोंके साथ सोमपान करनेकी इच्छा है। जब ब्रह्माने मेरु पर्वतके ऊपर यज्ञ किया तब इन्द्रने हमें वैद्यक करनेके कारण अधम कहकर सोमपान लेनेकी मना की है। इसलिये आपसे हो सके तो मुझे सोमपान कराना। जिससे हम अत्यन्त सन्तुष्ट होंगे। च्यवन मुनिने शर्याति राजाके यज्ञमें उस प्रकार करा देना स्वीकार किया; जिससे वे—अश्विनीकुमार प्रसन्न हो स्वर्गको गये।

एक समय शर्याति राजाकी स्त्रीने अपनी पुत्रीकी स्थिति जाननेके लिये राजासे प्रार्थना की। शर्याति राजा रथमें बैठकर मुनिके आश्रममें आया। वहांपर देवके समान कान्तिवाले महा तेजस्वी मुनीश्वरको देखा। यह देखकर राजा विस्मयान्वित हुआ और विचार करने लगा कि, क्या पुत्रीने कुछ नीच कर्म किया है ? संसारमें जिसकी पुत्री नीच हो उसके जीवनको धिक्कार है। मनुष्यको समस्त पापोंके फलरुप पुत्री दुःख देनेके लिये उत्पन्न होती है। मैने अपने स्वार्थके लिये वृद्ध और अन्धको पुत्री दी यह बहुत ही नीचकार्य किया। अब मुझे क्या करना चाहिये ? राजा इस प्रकार चिन्ता कर रहा था उतनेमें दैवेच्छासे सुकन्याकी उनके ऊपर द्रष्टि पडी और प्रेमसे कहा कि:—"पिताजि ! इन सुन्दर स्वरुपवान और उम्मरके युवान मुनिको देखकर आप क्या विचार कर रहे हैं ? आप क्यों चिन्ताग्रस्त हो रहे हैं ?" सुकन्याके ऐसे वचन सुनकर राजा क्रोधयुक्त हो बोला कि;—"पुत्रि ! च्यवनमुनि कहां है ? और यह युवान कौन है ! मुझे अत्यन्त सन्देह पडा है इसलिये तुरन्त कह दे। पिताके इन वचनोंको सुनकर अपने पिताको मुनिके पास लाकर कहा कि; "पिताजि ! यह आपका जामाता च्यवन मुनि है। इसमें कुछभी शंका मतकरना। अश्विनीकुमारोंकी कृपासे ऐसा सुन्दर शरीर हुआ है। मैं आपके समान धर्मात्मा राजाकी पुत्री हूं मैं अपने प्राण जाने पर्यन्त पाप नहीं करसक्ती। भृगुपुत्र महात्मा च्यवन मुनिको आप सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछिये। वे आपको सब कुछ कहेंगे"। पीछे च्यवन मुनिने राजाको सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया जिससे राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मैने अश्विनीकुमारोंको उपकारके बदलेमें सोमपान करानेका वचन दिया है इसलिये यज्ञकी तैयारी कीजिये। यह

सुनकर राजा और भी प्रसन्न हुआ और वशिष्ट प्रभृति ऋषियोंको बुलाकर यज्ञका आरंभ किया। उसमें इन्द्र प्रभृति देवोंको अपने तपोबलसे प्रसन्नकर आश्विनीकुमारोंको सोमपान कराया। इस महात्मा मुनिके तपोबल और सुकन्याके सतीत्वको देखकर समस्त देवोंने उनकी स्तुति की और सब कोई अपनेर आश्रममें गये। अहा! धन्य है सती सुकन्याको!

सुभद्रा।

ह साध्वी स्त्री श्रीकृष्ण भगवानकी भगिनी थी। उसका विवाह पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ हुआ था। सुवर्ण और सुगन्ध कभीभी एकत्र न हो; किन्तु यदि वे एकत्र हों तो उसकी बात ही क्या कहना! यह जोडी सुवर्ण और सुगंधके एकत्र होनेके समान थी। सुभद्रा रुप, गुण व ज्ञान प्रभृतिमें पूर्ण थी। अर्जुन भी वैसाही था। पति पत्नीकी जोडी सब प्रकार योग्य थी। दोनोंमें परस्पर अत्यन्त प्रेम था। एक समय सनकादि ऋषि समस्त स्त्रियोंके पातिव्रत्यधर्मका अवलोकन करते हुए सुभद्राके सतीत्वका स्मरणकर उसके पवित्र स्थानपर पधारे। सतीने उन महात्माओंका यथाविधि पूजन किया और प्रणाम कर भोजन कराया। प्रणाम करनेके समय मुनिके अंचलको सतीका मस्तक लगा और मस्तकके कुमकुमका दाग उनको लग गया। यह देखकर अन्य स्त्रियोंने उसके चारित्रके सम्बन्धमें शंका की। वास्तविकमें सुभद्रा सती थी उसने कहा कि "मैं पतिसेवा और ईश्वरभक्तिके सिवाय और कुछ नहीं जानती"। तब उन स्त्रियोंने कहा "कि यदि तू सती है तो अपना सतीत्व दिखलाव"! इस परसे सुभद्राने ईश्वरकी आराधना की कि "यदि मैं शुद्ध पतिव्रता हूं तो मुझे इस कलंकसे आप मुक्त करें"। देवोंने कहा कि;—आप धैर्य रखिये ऐसा कहकर सांत्वन किया और सबसे कहा कि यह सच्ची पतिव्रता है। सबको यह देववाणी पर विश्वास करना पडा और सती सच्ची सिद्ध हुई।

इस पवित्र सतीके उदरसे महापराक्रमी धीर वीर अभिमन्यु उत्पन्न हुआ। वह छोटी वयमें ही महाभारतके समान महान् संग्राममें सप्त कोठेकी लडाईमें लडा था। उसमें उसने वीरत्व दिखला दिया था। सप्त कोठेकी लडाई का ज्ञान उसको माताके गर्भमें

ही हुआ था; जिससे वह स्वाभाविक था ऐसा महाभारतमें लिखा है। जब अभिमन्यु लड़ाई करता हुआ रणमें पड़ा तब सुभद्राने अत्यन्त विलाप किया जिस सुनकर बड़े२ धीर, वीर और कठिन हृदयके महावीर पुरुषोंके हृदय भी आर्द्र होगये और अपने अस्त्रशस्त्रोंका त्यागकर स्तब्ध बन अश्रुपात करने लगे। उसके ऐसे रुदन व आक्रन्दसे कौरव एवं पाण्डवोंकी सेनामें हाहाकार मचरहा था। उसके विलापसे अर्जुनके समान महा शूरवीर पुरुषने प्रतिज्ञा की कि;—जिसने अभिमन्युको मारा है उसका कल सूर्यास्तके पहिले नाश करुं तो ही अपना जीवन रक्खुंगा अन्यथा जल मरुंगा। सुभद्राके अत्यन्त विलाप करनेसे भीमके समान गदाधारीको और समस्त सैन्यको महा शौर्य उत्पन्न हुआ जिससे कौरवोंका संहार हुआ।

साध्वी सुभद्रामें पारलौकिक उच्चभाव अत्यन्त प्रशंसनीय था ऐसा उनके विलापसमयके वचनोंसे स्पष्ट होता है। वह विलाप करती हुई कहती है कि;—"हे वत्स! संयमी मुनिगण ब्रह्मचर्यसे और पुरुष एकपत्नीके परिग्रहसे जिस गतिको प्राप्त करते हैं उसी गतिको तू प्राप्त कर। नृपतिगण, अधिकारीगण और चारों वर्णके मनुष्य पुण्यके संरक्षणसे जिस सनातन गतिको प्राप्त करते हैं उसी गतिको आप प्राप्त करें। जो लोग दीनोंपर दया रखते हैं, जो लोग सत्य संविभाग करते हैं, जो लोग पिशुनतासे निवृत्त होते हैं, जो सर्वदा यज्ञानुष्ठान, धर्मानुशीलन और गुरुसेवा परायण है, अतिथिगण जिनके पाससे विमुख नहीं जाते, जो अत्यन्त कष्ट पड़नेपर और शोकाग्निमें दग्ध होनेपर धैर्यसे अपनी रक्षा करते हैं, जो सदैव माता पिताओंकी सेवा में लगे हुए हैं और जो अपनी पत्नीमें निरत रहते हैं, जो मत्सर रहित हो समस्त सेवकोंके प्रति समद्रष्टि रखते हैं और सर्वशास्त्रज्ञ ज्ञानगोप्ता जीतेन्द्रिय साधुगण जिस गतिको प्राप्त करते हैं उसी गतिको तू भी प्राप्तकर"! अहा कितना उच्चभाव है!

सती सुभद्रा और द्रौपदी ये दोनों एक ही सम्बन्धमें थी; किन्तु उनमें किसी दिन विक्षेप जैसा नहीं हुआ था। वैसेही अपनी साध्वी सास कुन्ताजीके साथ किसी दिन अनुचित वचनका उच्चार नहीं किया था। वह सदैव अपनी सासकी आज्ञानुसार चलती थी और उनका मान रखकर सेवा करती थी। अपनी पुत्रवधू उत्तरा कुंवरीके प्रति अपनी पुत्रीके समान प्रेम रखकर उसको प्रसन्न रखती थी। वह कुटुम्बमें किसीके साथ क्लेश नहीं करती थी। सारांश कि उसका सम्पूर्ण आचरण उत्तम था। माता देवकीजीको धन्य है कि जिनकी कुक्षीसे ऐसा पुत्रीरत्न उत्पन्न हुआ।

गान्धारी ।

यह साध्वी गान्धार (कंदहार) देशके राजा सुबलकी कन्या थी। उसका विवाह हस्तिनापुरके राजा धृतराष्ट्रके साथ हुआ था। वह धर्म और नीतिको पालन करनेवाली ज्ञानी थी। पति धृतराष्ट्रके अन्ध होनेसे पतिके दुःखसे अपनेको भी दुःखी होना चाहिये यह विचारकर उसने अपने नेत्रोंपर पट्टी बांध रक्खी थी। ऐसा करनेका और भी एक कारण कहा जाता है कि अन्धपतिको अपने नेत्रोंसे देखनेके कारण कदापि उसमें अपनी अरुचि न हो जाय। धन्य है इस सती गान्धारीको कि जिसने अपने पातिव्रत्य धर्मको पालन करनेके लिये पतिके साथ अन्धत्व व्रतको धारण किया—असह्य दुःख सहन किया और पतिव्रताके धर्मानुसार प्रेमपूर्वक उसकी सेवा की। उसकी ऐसी पतिभक्तिको देखकर महात्मा व्यासजीने उसकी अत्यन्त प्रशंसा की है। सती गान्धारीने कुरुक्षेत्रके संग्रामके पहिले अपने पतिके पास दुर्योधन प्रभृति पुत्रोंके अधर्माचरणका वर्णन करते हुए कहा है कि;—"स्वामिन्! राज्य लोभसे पाण्डवोंके साथ जुआ खेलकर उन्हें धूर्ततासे पराजित किया, साध्वी द्रौपदीको सभाके समक्ष सहन न हो सके वैसा दुःख दिया, पाण्डवोंको वनवास भेजा, उनको विविध प्रकारसे दुःखितकर क्रोधायमान किया इत्यादि अधर्माचरण किया है इससे अपने कुलके क्षयके साथ२ महान् अनिष्ट फल होगा। क्योंकि आखिर "धर्मका जय और पापका क्षय" होता है इसमें कुछ भी संदेह नहीं हैं। यह दुर्योधन कुटुम्बक्लेश कर कुलके क्षय करानेवाले कार्योंको करता है। पाण्डवोमें और कौरवोमें भिन्नभाव नहीं होना चाहिये।" इत्यादि अनेक बातें कही और पुत्रोंको भी समझानेकी चेष्टा की; किन्तु उन्होंने नहीं माना। सतीके उपदेशको नही मानने से उसका परिणाम अत्यन्त अनिष्ट आया। कौरव मारे गये, और पाण्डवोंका विजय हुआ। सतीने अपने शत पुत्रके मृत्युके समाचार सुनकर अत्यन्त शोक किया। अपने पुत्रोंने द्रौपदीको अत्यन्त दुःख दिया था जिसके लिये उसके पास क्षमा मांगी। कौरवोंके संहार होनेसे कुन्ताजी, गान्धारी और द्रौपदीने परस्पर अत्यन्त शोक किया। आखिर उसने पुत्रोंके शोकसागरमें रहकर यथासमय शरीर छोड़ा।

इस साध्वीका मनोभाव अत्यन्त उच्च था। उसने अपनी एकसो पुत्रवधुओंको ऐसी उत्तम शिक्षा दी थी कि वे कभी भी परस्पर कुसंपकर लड़ी हो ऐसा कहां पर

भी जाननेमें नहीं आता। सती गान्धारी अपने ऐसेही अनेक सद्गुणों के कारण संसारमें आदर्शरुप हो अपना नांव चिरस्थायी बना गई है।

लोपामुद्रा।

यह पवित्र सती वैदिक समयमें विदर्भ राजाके वहांपर उत्पन्न हुई थी। जैसे वर्तमानसमयमें राजकुमारियें राजवैभवमें पडकर बाल्यावस्थाके अमुल्य समयको केवल ऐश आराम और खेल कुदमें गुमाकर ज्ञान बढ़ाने में बेपरवाह रहते हैं और उनके मातापिता भी उस ओर कम ध्यान देते हैं वैसे प्राचीन समयमें नहीं था। उस समय पुत्र पुत्रीके योग्यवयमें आते ही उन्हें विद्याभ्यास करानेके लिये अधिक ध्यान दिया जाता था। इस प्रकार लोपामुद्राको भी उसके पिताने धर्मनीति प्रभृति विद्याओंका अध्ययन कराया था। जिससे वह अत्यन्त दक्ष व सद्गुणी हुई थी। लोपामुद्राके पिताकी सम्पत्ति और शक्ति बहुत थी। सदैव लोपामुद्राके पास बहुतसी दासियां रहती थी। जो सदैव उनकी सेवा शुश्रुषा प्रभृति में लगी रहती थी। वह मनोहर वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित बनी रहती थी, उसको शयनके लिये सुन्दर पलंग था और बैठनेके लिये विविध प्रकारकी पालखियें थी। ऐश आरामके लिये उसके पास अन्य विविध प्रकारके वैभव थे; फिरभी वह अपने अमुल्य समयको ऐश आराममें नही व्यतीत करती थी। उसको विद्याके ऊपर अधिक प्रेम था जिससे अधिक समय वह विद्यावृद्धिके कार्यमें लगाती थी और अपना जन्म कैसे सफल हो उस विषयमें विचार किया करती थी।

वर्तमान समयके राजा लोग अपनी कुंवरियोंको बड़े२ रजवाडोमें देनेके लिये ही विचार रखते हैं; फिर चाहे वे कैसे भी गुणके क्यों न हो? चाहे वह राजा दो चार या उससे अधिक स्त्रियोंके साथ ब्याहा हो फिरभी इस बातकी कुछ भी परवाह नहीं करके वैसोंके साथ ब्याहकर दुःखरूपी कूपमें डालते हैं जिससे दूसरी राणियों के साथ यह भी संसार सुखोंके यथार्थ अनुभव किये विना ही परदेरुपी जेलखानेमें पड़ी हुई सड़ती हैं। उन्हें न पतिकी ओरका वास्तविक सुख मिलता है, न पतिके समागममें रहकर उनकी प्रीति सम्पादनकर पतिधर्मको पूर्ण करनेका सौभाग्य ही मिलता है। बीचारी योंही ज्यों त्यों करके अपनी जीन्दगीको पूर्ण करती है। प्राचीनसमयमें वैसा नहीं था। उस समय राज्यसत्ता या सम्पत्तिबल कुछ भी नहीं

देखकर केवल जहां अपनी प्यारी पुत्री सुखी हो वहांपर एक पत्नीकी इच्छा रखनेवाला गुणवान पति देखकर पुत्रीकी प्रसन्नताके अनुसार विवाह किया जाता था। इसी प्रकार लोपामुद्राका भी राज्यसम्पत्ति रहित किन्तु उस सम्पत्तिसे श्रेष्ठ ऐसी तपसम्पत्तिवाले महात्मा मित्रावरुणके पुत्र अगस्त्य ऋषि जो कि महान् विद्वान्, तेजस्वी, सद्गुणी और तपस्वी थे उनके साथ विवाह किया था। यदि इस ऋषिकी प्रत्यक्ष सम्पत्ति देखी जाय तो अपनी रक्षाके लिये पलासकी लकडीका दंड, जल पीनेका कमडलु, रहनेके लिये जंगलमें एक पर्णकुटी और पहिननेको वल्कल वस्त्र केवल इतनी ही सम्पत्ति थी। फिर भी लोपामुद्रा उसमें अधिक सुख मानकर राजवैभवको तुच्छ समझकर अपने पिताकी ओरसे श्वसुरालमें जानेके समय राजपुत्रीके लिये योग्य ऐसी जो कुछ सम्पत्ति मिली थी उसका त्यागकर अपने पतिकी सम्पत्तिके योग्य ऐसे वल्कल वस्त्र धारण किये। सिंह व्याघ्रादि भयंकर पशुओंके भयंकर शब्दोंसे प्रतिध्वनित अरण्यमें पतिके साथ रहनेमें पूर्ण सुख मानकर आनन्दसे उनके पीछेर चल निकली। जिसने कभी भी ठंडी, गरमी या वर्षाको सहन नहीं किया था, जो पांवसे कभी भी नहीं चलती थी वही कोमलांगी स्त्री मन, वचन और कर्मसे स्वामीकी सेवामें एकरुप होकर दिन निर्गम करने लगी।

यह सुनकर किसे आश्चर्य नहीं होगा कि जो स्त्री राज्यवैभवोंमें रही थी वही वनमें योगिनीके भेषसे पति के साथ रहकर उनकी सेवा करने लगी। अहा ! सति लोपामुद्रे ! आपको धन्य है और आपके मातापिताओंको भी धन्य है कि जिन्होंने आपके समान पुत्रीरत्नको उत्पन्न किया !

सती लोपामुद्रा पतिकी आज्ञानुसार रहकर उसकी छायाके अनुसार सदैव चलती थी। वह स्वेच्छासे कुछ भी नहीं करती थी। पतिको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भोजन करती थी। उन्हें सुलाने के पश्चात् स्वयं सोती थी और उनके उठने के पहिले उठती थी। स्वामी किसी कारणसे कुछ कहे तो उसे धैर्यके साथ सहनकर सामने जवाब नहीं देती थी। पतिको योग्य परामर्श और सहायता देती थी। कभी असन्तोष नहीं रखती थी। फिर उसका यह एक महान् नियम था कि पति, अतिथि, गौ, अनाथ, और कुटुम्बियोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भोजन करती थी। इस महान् व्रतको उसने सम्पूर्ण जिन्दगी पर्यन्त पालन किया था। वह उत्सव या शुभ कार्यों में पतिकी आज्ञा लेकर उत्साहसे कार्योंको पूर्ण करती थी। वह अत्यन्त उत्साही व उद्योगी थी। उसके ध्यान व ज्ञानका विषय केवल उसका पति था। उसने अपने पतिके पाससे तत्त्वज्ञान सम्पादन किया था और तपश्चर्या कर शरीरको

त्तीण बनाया था। उसने अपनी विद्वत्तासे ऋग्वेदकी कितनीक ऋचाओंको रचना कि थी ऐसा कई लोगोंका मत है।

सती लोपामुद्राको दृढस्युं नांवका एक परम तेजस्वी पुत्र था। वह बाल्याव-स्थासे इंधन एकत्र करता था जिससे उसका नांव इध्मवाह पड़ा था। अगस्त्य ऋषि का आश्रम एक स्थानपर नहीं था। सुतीक्ष्ण मुनिने रामको जिस प्रकारका मार्ग बतलाया था उससे मालूम होता है कि उसका आश्रम दण्डकारण्यमें था। यह अर-ण्य गोदावरी नदीके उत्तर तट पर था। महाभारतमें उनका आश्रम गयाजीके पास था ऐसा लिखा है। सती लोपामुद्राने पतिके साथ अनेक देशोंकी यात्रा की थी। इस ऋषिने बहुत कुछ शोध की थी। "अगस्त्य ऋषि समुद्रका पान करगये" ऐसा जो कहा जाता है उसका यह अभिप्राय मालूम होता है कि इस ऋषिने पृथ्वीपरके समस्त समुद्रो में भ्रमण किया था। उन्होंने सबसे पहिले नौका की रचना की हो ऐसा अनुमान किया जाता है। इसमें कुछभी संदेह नहीं कि इस दम्पतीने अपने सद्‌गुणोंसे इस नाशवन्त संसारमें अविनाशी कीर्तिकी स्थापना की है। जब तक संसार रहेगा तब तक इस दम्पतीका नाम स्थायी रुपसे रहेगा।

अहिल्याजी।

प्रथम ब्रह्माजीने सृष्टि रची उस समय एक स्वरुपसे सुन्दर, परम तेजस्वी कन्या उत्पन्न हुई; जिसका नांव अहिल्याजी रक्खा। समस्त देवगण उसके रुप व गुण पर मोहित होकर उसके साथ विवाह करना चाहते थे; किन्तु ब्रह्माजीने उसका स्वयंवरसे गौतम ऋषिके साथ विवाह किया। यह ऋषि परम विद्वान्, तेजस्वी और तत्त्वज्ञ था। वह अपनी प्रबल शक्तिसे सर्वत्र सन्मान प्राप्तकर ऋषि मुनियोमें अग्रसर समझे जाते थे। सती अहिल्याजी पतिगृहमें आकर पतिसेवा, गृहकार्य, धर्मोपदेश, धर्मनीतियुक्त कृत्य और तप, ईश्वरभक्ति प्रभृति करने लगी। जिससे वह समस्त सतियोंमें श्रेष्ट व प्रातः-स्मरणीय हुई। उसको शतानन्द नांवका पुत्र और अंजनी नांवकी पुत्री ये दो सन्तान थे। इस पति पत्नीमें परस्पर अत्यन्त प्रेम था। तपोबलके प्रभावसे यह दम्पती संसारमें श्रेष्टताको पाये और उनकी कीर्ति संसारमें फैल गई। वे सब प्रकारसे सुखी थे। उनके सुखका नाश होनेका समय समीपमें आपहुंचा। ईश्वरकी गति गहन है।

उसकी कला व इच्छाको कोई नही जान सक्ता। वह एक क्षणमात्रमें चाहे सो कर सक्ता है। जगन्नियन्ता किसीका गर्व नहीं रहने देता; सतीको कष्ट होता है, सतीकी परीक्षा होती है यह कथन असत्य नही हैं। धार्मिक व सत्यवानोंकी परीक्षा लेनेके लिये ईश्वर अनेक संकटरुपी कसौटीपर चढाते हैं। जो उसमें नहीं गभड़ाकर धैर्य रखकर अपने विचारको नहीं छोड़ते वे पार होकर प्रभुको प्रिय होते हैं और वे संसारके लिये आदर्शरुप हो जाते है।

अहा! इस पवित्र दम्पतीको भी कसौटीपर चढ़नेका अवसर आया। सती कभी भी भूल नहीं कर सक्ती थी; किन्तु ईश्वरकी मायाके आगे किसीका कुछ भी वश नही हैं। दैवेच्छासे इन्द्रकी बुद्धि दुष्ट हुई। वह गौतम ऋषिका भेष धारणकर उनकी अनुपस्थितिमें सतीको वञ्चित करनेके लिये आया। सती देवताकी मायाके प्रपञ्चसे वञ्चित हो उसको अपना पति समझकर सत्कार करने को तैयार हुई। उतनेमें ऋषि घरपर आये और सती सावधान हो गई। कपटीके कपटको समझकर उसको धिकार दिया और ऋषिने उस दुष्ट दुराचारीको शाप दिया कि—हे पापी, तेरे शरीरमें सहस्त्र भग हो और तू बहुत समय तक नपुंषक रहे।" इस दण्डसे इन्द्र अधिक समय तक दुःखी रहा। ऋषिने सतीके ऊपर क्रोधित होकर उसे भी शाप दिया कि "तू देवताकी मायाको पहिचान न सकी और कपटीके कपटको नहीं समझा जिससे तुझे मेरा वियोग होगा"। पतिके इस दण्डसे सतीने दीनतासे प्रार्थना की कि "प्राणेश्वर! आप क्षमा करें, मैंने कपटीके कपटको नहीं समझा, मैंने तो आपहीको समझा था; इसलिये इस दीन अबलापर दया कीजिये। यदि आपका वचन मिथ्या नहीं हो सक्ता तो आप आज्ञा कीजिये कि फिर मुझे आपके दर्शन कब होंगे? ऋषिको दया आई और कहा कि "तू रामचन्द्रजीके दर्शनके पश्चात् मुझे मिलेगी।" इस प्रकार प्यारी पत्नीके वियोगसे ऋषि बहुत दिन तक उदासी हो दुःखित रहे। गृहस्थाश्रम में इस प्रकार विषके आपड़नेसे ऋषिने उदास हो आश्रम और अन्य जो कुछ था उसे त्यागकर—केवल मृगचर्म एवं कमण्डलु हाथमें लेकर शोकातुर चित्तसे बद्रिकाश्रममें जाकर सतीको फिर मिलनेके समय तक तपश्चर्या की।

बहुत वर्षके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके प्रतापसे सतीका उद्धार हुआ। शापसे मुक्त होनेपर सतीने श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविंदमें पड़कर सजल नेत्रसे गद् गद् कण्ठ होकर उन्हें आशीर्वाद दिया कि "मैं आपके दर्शनके प्रतापसे अपने पतिको प्राप्त हुई इसलिये आप जनककन्या सीताजी जो कि साक्षात् लक्ष्मीस्वरुप हैं उसको प्राप्त होंगे"। सतीके मुक्त होनेके समाचार ऋषिको मिले और जहांपर श्रीरामचं-

न्द्रजी, विश्वामित्रजी, लक्ष्मणजी, और अहिल्याजी वहांपर आये। सती पतिके दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुई और गद्‌गदित हो पतिके चरणोंमें पड़ी। सब कोई प्रसन्न हुए और ऋषि सतीको लेकर अपने आश्रममें आये। श्रीरामचन्द्रजी, गौतम-ऋषि, और सती अहिल्याजी ये सब दैवीगुणवाले थे। उनका प्रताप अभीतक संसारमें प्रसिद्ध है। यद्यपि सतीको पतिने महान् शिक्षा की थी किन्तु उनका कुछ भी अभाव न लेकर कहाथा कि—प्राणेश्वर! फिर मुझे आपके दर्शन कब होंगे? ऐसे वचनों परसे उसके पतिके ऊपरके अखंड प्रेमकी और दैवीभावकी परीक्षा हो सक्ती है। वैसे ही गौतम ऋषिका भी अपनी पत्नीके प्रति वैसा ही प्रेम था। ऋषिने भी सतीके वियोगसे उदास रहकर उसको फिर मिलने पर्यन्त तपश्चर्या की थी। अहिल्याजीने पतिको फिर मिलनेपर प्रथमके दण्डकी बातको कभी मनमें भी नहीं स्थान दिया था। सदैव प्रेम भावसे ही पतिसेवामें रहे थे। इस प्रकार उस पवित्र पति-पत्नीने चिरकाल तक गृहस्थाश्रमके सुखोंको भोगा और पृथ्वीमें अपना नांव अमर किया। अहा! धन्य है पवित्र दम्पति आपके महत्त्वको! इस चरित्रसे स्त्रियोंने सदैव सावधान रहना चाहिये और दुराचारी पापियोंके प्रपञ्चमें नहीं आना चाहिये। पापियोंके प्रपञ्च व प्रलोभनमें आनेसे दांपत्य प्रेम व गार्हस्थ्य सुख नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

अरुन्धती।

सती अरुन्धती महात्मा वशिष्ठ ऋषिकी पत्नी थी। वह अत्यन्त विदुषी अथच पतिव्रता थी। वशिष्ठ ऋषिने उसे वेद, न्याय, नीतिशास्त्र और अध्यात्मज्ञान प्रभृति की उत्तम शिक्षा देकर उसे परम बुद्धिमती व ज्ञानी बनायी थी। वे दोनों परम धर्मनिष्ठ थे। प्रथम अवस्थामें अरुन्धती व्यवहारासक्त थी, किन्तु पीछेकी अवस्थामें महा ज्ञानी व तपस्विनी हो गई थी। ऋषिकासा भेष धारणकर हिमालय पर्वतके ऊपर पतिके साथ तपश्चर्या की थी। आत्मा क्या है? शरीर क्या है? जगत् क्या है? इन विषयोंपर उसने बहुत कुछ विचार किया था और ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान एवं दैहिक मानसिक धर्मों का ज्ञान जिसे सनकादि महामुनि जानते थे उसका फिर प्रकाश किया और आर्योंका ध्यान ज्ञानोपदेशकी ओर आकर्षित किया। सांसारिक धर्मके प्रचारके लिये और लोगोंको उद्योगी बनानेके लिये भी उसने अपने पतिके साथ रहकर अच्छा कार्य किया था। वह

पतिको अत्यन्त प्रिय थी उसने अनेक सत्कार्योंके द्वारा पतिकी प्रसन्नता प्राप्त की थी। विवाह मन्त्रमें लिखा है कि "कन्याने विवाहके समय ऐसा कहना कि "हे अरुन्धति! मैं आपके समान पतिसेवामां मग्न रहुं ऐसी मैरी प्रार्थना है" इस परसे मालूम होता है कि यह सती कैसी पतिव्रता होनी चाहिये? अरुन्धतीको शक्ति नांवका पुत्र था, उसको उत्तम शिक्षा देकर उसने विद्वान् बनाया था। वह शक्ति सुप्रसिद्ध पाराशरका पिता था। अरुन्धतीको और भी कई पुत्र थे जो मरण को प्राप्त हुए थे फिर भी उसने धैर्य धारणकर पतिको धैर्य दिया था। वह अपने अनेक गुणोंसे प्रसिद्ध होकर सन्मानयोग्य हो गई है।

मैत्रेयी।

यह धर्मनिष्ठ एवं परमपुनित स्त्री महात्मा याज्ञवल्क्यजीकी पत्नी थी। वह ईश्वरमें भक्तिवाली एवं पतिव्रता थी। उसने आध्यात्मिक ज्ञानरुपी जलसे अपने अन्तःकरणको शुद्ध किया था। वह अपने पतिके पाससे ज्ञान लेती थी और दूसरोंको सद्धर्म पर चलनेका उपदेश किया करती थी। महात्मा याज्ञवल्क्यजीको कात्यायनी नांवकी दूसरी पत्नी थी। उसके साथ सती मैत्रेयी अत्यन्त स्नेहभाव रखती थी। याज्ञवल्क्य मुनिने बृहदारण्यक उपनिषद् रचा एवं अन्यान्य धर्मशास्त्रों की रचना की है। बृहदारण्यक उपनिषद्मेंसे मैत्रेयी सम्बन्धी कितनाक उपयोगी वृत्तान्त मालूम होता है। एक समय याज्ञवल्क्य ऋषिने अपनी दोनों स्त्रियोंको सम्बोधनकर कहा कि;–"अब मैरी अन्तिम अवस्था है, इसलिये अब मैं जंगलमें जाकर अवशिष्ट आयु व्यतीत करना चाहता हूं। मैरी जो कुछ सम्पत्ति है उसे दो भागो में विभक्त कर देता हूं उसे तुम लोग ग्रहण करो!" इसके उत्तरमें कात्यायनी कुछ भी नहीं बोल सकी; क्योंकि वह केवल गृहकार्यमें ही कुशल थी; किन्तु तेजस्वी बुद्धिकी मैत्रेयीने कहा कि;-हे प्राणेश्वर! यदि यह संसार धनसे परिपूर्ण होकर मैरे हाथमें आजाय तो क्या मैं निर्वाण पदको प्राप्त कर सकुं? याज्ञवल्क्यजीने कहा,–नहीं तुम्हारा जीवन धनवान लोगोंके समान होगा, धनसे अमर होनेकी आशा नहीं। तब मैत्रेयीने कहा कि "जिससे मैं अमर नहीं हो सक्ती उसे लेकर मैं क्या करुं[1]? जिससे मुझे अमरत्व न प्राप्त हो

१ येनाहं नामृत्तास्यां किमहं तेन कुर्याम्ः

ऐसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश दीजिये।" जहांपर आप पधारेंगे वहांपर ही मैं आपकी सेवा करनेके लिये आवुंगी। मुझे धन सम्पत्ति क्या? मेरे लिये जीवन भी आप ही हैं।

याज्ञवल्क्य—मैत्रेयि! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, तुमने परमकृपालु परमेश्वर सम्बन्धी प्रश्न पूछकर उसे जाननेकी इच्छाकर मेरी अत्यन्त प्रिय हुई हो। तुमने मुझे जो कुछ प्रश्न पूछा है उसका यथार्थ उत्तर देता हूं जिसे सुनो। कोई स्त्री स्वामीकी इच्छानुसार उसको प्रिय होनेकी इच्छा नहीं करती; किन्तु आत्माकी कामनाके अनुरुप स्वामीकी प्रीतिपात्र होती है। अर्थात् पत्नी अपनी इच्छाके परिपूर्ण होनेसे ही सन्तुष्ट होती है। यदि पत्नी पतिको कुछ न समझे तो वह स्वामीकी विरक्तीकी पात्र हो जाती है। पुत्र पिताको प्रिय होते हैं उसका भी यही कारण है। वह यह कि पुत्रसे भविष्यमें पिता सुखी हो सक्ता है जिससे पिता पुत्रपर स्नेह रखता है। यदि पुत्र पिताके आधीन न हो तो वह भी पिताका प्रीतिपात्र नहीं हो सक्ता। उसी प्रकार अश्व, गौ प्रभृति पशुभी ऊपरोक्त नियमानुसार प्रीति पात्र हुए हैं। जब वे अपने कार्य करनेमें असमर्थ होते हैं तब वे अपने मालिकके सन्तोषके पात्र नहीं होते। वेद लोगोंमें प्रिय है; उसका कारण यह है कि जो मनुष्य उसका अध्ययन करता है वह उसके अभिप्रायको समझता है कि वेदके पढनेसे इस लोकमें सन्मान और परलोकमें श्रेय प्राप्त होगा। इन सब दृष्टान्तोंका यह अभिप्राय है कि "आत्माके सिवाय और कुछ भी प्रिय नही हैं, आत्मा ही यथार्थ प्रिय है। स्त्री पुत्रादि जो प्रिय होते हैं वे भी आत्मश्रेयके उद्देशसे ही। इस लिये हे मैत्रेयि! परमात्माका साक्षात्कार करना चाहिये। उसका यह उपाय है कि आत्माका प्रतिपादक जो वेद उसका ही आरंभसे श्रवण करना चाहिये। पीछे युक्तिसे उसके अर्थका मनन करना पीछे निदिध्यासन अर्थात् उसके अर्थको अच्छी तरहसे ध्यानमें लेना। परमात्माके श्रवण करनेसे और उसको जान लेनेसे परमात्माके तत्त्वरुप साक्षात् जगत्को जान सक्ते हैं। अतएव आत्मा ही दर्शन, मनन, श्रवण, एवं ध्यान करने योग्य है। मैत्रेयि! महा अंतरमें (आत्मामें) जो लोग है वे महान् आत्मा—परमात्माको देखते हैं तभी उसने सबकुछ जान लिया, सुन लिया और मनन कर लिया एवं उसीका नाम धारणा है। एक वस्तुके जान लेनेसे दूसरी वस्तु कैसे जानी जासक्ती है? परमात्माके सिवाय अन्य कुछ भी सत्ता नही हैं। संक्षेपमें परमात्माके सिवाय और कुछ भी वस्तु नही हैं, वह स्वतंत्र है। इस लिये स्वयं आत्मस्वरुप होनेसे ही सब कुछ जाननेमें आसक्ता है। जैसे मृदंग वीणाके शब्दको सुननेसे मृदंगके मारनेका और वीणाके बजानेका शब्द सुनाई देता है, वैसेही परमात्माके

जाननेसे सबकुछ जाननेमें आजाता है। समुद्र केवल समस्त जलोंका केवळ आश्रय स्थान है। चमडी यह केवल स्पर्शका आधारस्वरुप हैं, जिव्हा रस ग्रहण करनेकी आधार है और नासिका गन्ध लेनेकी आधार है। यदि नासिका नहीं रहता तो सुगंधी लेनेका कार्य नहीं चल सक्ता। कान यही शव्दकी आश्रयभूमि है। चित्त समस्त वासना भूमिका मंदिर है; हृदय समस्त विद्याओंका आवास स्थान है, हाथ समस्त कर्मोंका आश्रय है, वायु, समस्त कुदरती वस्तुओंका भंडार स्वरुप है, और वाक्य यह श्रुतिका अवलम्बन स्थान है। यदि वाक्य न हो तो भेद नहीं रह शक्ता। इन पदार्थोंके आश्रयोंका फिर आश्रय है। वह आश्रय ब्रह्म है। मैत्रेयि! तुम इस ब्रह्मके ही अवलम्बनपर जीवित हो।

मैत्रेयी—भगवन्! आपने जिस महान् आत्माके सम्बन्धमें कहा है क्या वह मोहमें फस सक्ता है?

याज्ञवल्क्य—नहीं वह आत्मा अविनाशी, स्थितिरहित एवं नाशरहित है। अज्ञानता कभीभी आत्माके स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं हैं।

याज्ञवल्क्य और मैत्रेयीके आध्यात्मिक तत्त्वसे भरे हुए इन तत्त्वोंके श्रवण करनेसे वह मैत्रेयी कितनी विदुषी, बुद्धिमती एवं ब्रह्मज्ञानमें दक्ष होनेके साथ २ कैसी विद्याविलासिनी थी यह अच्छी तरहसे समझमें आजा सक्ता हैं। मैत्रेयीकी विद्या ग्रहण करनेकी बुद्धि अत्यन्त विशाल थी एवं उसकी धर्म प्रवृत्ति भी वैसेही थी जिससे उपनिषद्में उनके कहे हुए वाक्य वेद वाक्यवत् प्रीतिपात्र व माननीय हुए हैं। वह ब्रह्मवादिनी हुईथी ऐसा श्रुतिमें लिखा है "**तयोर्हि मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव**" क्योंकि ईश्वर तत्त्व जाननेकी इच्छा उसमें अत्यन्त बलवती थी।

एक समय महात्मा याज्ञवल्क्य ऋषि जनकराजाकी सभामें गये थे। वहांपर राजाने वैराग्य व योगके विषयमें प्रश्न पूछा था उसपरसे राजाको मुखसे कहनेके बदले आचरण कर दिखलानेके लिये ऋषिके अन्तःकरणमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। सभामेंसे घरपर आकर मैत्रेयीसे कहा कि सति। मैं संन्यास धारण करुंगा। यह सुनकर मैत्रेयीने उनके साथ जानेका विचार प्रदर्शित किया; तब याज्ञवल्क्यजीने कहा कि;— "संन्यासी होकर स्त्रीको कैसे साथ रक्खुंगा?" फिरभी उसने अपना विचार नहीं फेरा जिससे ऋषिने उसको तत्त्वोपदेश कर योग धारण कराया और स्वयं भी योग धारण कर कौपीन लगाकर "**ॐ तत्सत् परमात्मने नमः**" करके दोनों विलक्षण स्वरूपसे जनकके पास जापहुंचे। ऋषिके प्रतिदिनके भेषसे सबने आज अलग ही भेष देखा किन्तु कान्तिको देखकर सबने पहिचान लिया।

ऋषिके इस भेषको देखकर सब कोई आश्चर्यको प्राप्त हुए। राजा सिंहासन परसे उतरकर साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर ऋषिके चरणमें पड़ा और कहने लगा कि;—आप कृपाकर इस योगीके भेषका त्याग कीजिये; तब ऋषिने सबके सुनते हुए कहा कि;—राजन्! क्या मलमूत्रका त्यागकर उसे फिर देखना चाहिये? क्या हाथीके दांत जो बाहर निकलते हैं वे फिर मुखमें जाते हैं? कभीभी नहीं! उस प्रकार मैं इस धारण किये हुए वैराग्य योगका कैसे त्याग करुं? मैं तो इससे अपनेको कृतार्थ समझता हूं और प्रसन्न होता हूं कि ईश्वरने मुझे ऐसा शुभावसर दिया। क्योंकि यह असार संसार विषयोंका भरा हुआ है। जिस विषयोंके भोगते कभी भी तृप्ति नहीं होती। उसमेंसे मुझे परमात्माने यकायक मुक्त किया है इस लिये हे राजन्! इस संसारकी जालमेंसे छूटा हुआ मैं फिर उसमें फंसना नहीं चाहता। अब मुझे और इस योगिनी मैत्रेयीको योग ही प्रिय व कल्याणकारी मालूम होता है। ज्ञान होनेके पश्चात् इस संसारकी झंझटमें पड़ा रहना यह कभीभी समझदार मनुष्यका कार्य नहीं हैं। इत्यादि योगके विषयमें उपदेश देकर स्त्री पुरुष दोनों योगीके भेषमें वहांसे वनकी ओर चल निकले।

अहा! धन्य है! याज्ञवल्क्य और मैत्रेयि! आपकी पवित्र इच्छाको! आपने परस्पर धर्मका पालन किया और अन्तमें संसारकी मायाका त्याग कर आत्मश्रेय सम्पादन किया। सति मैत्रेयि! आपके उस अपूर्व पतिप्रेमको भी धन्यवाद है! आपने धन सम्पत्तिको तुच्छ समझकर एक पतिकी सेवाको ही श्रेष्ठ समझकर योगी बने हुए पतिके साथ उसकी सेवाके लिये योगिनीके भेषसे चल निकली और सत्य पातिव्रत्यधर्मका आदर्श बताकर आपने अपने जीवनको सार्थक बनाया!

तुलसी-वृन्दा।

सती वृन्दाका दैत्यके राजा जालंधरके साथ विवाह हुआ था। यह स्त्री परम पतिव्रता थी। जालंधर स्वभावसे कुटिल, क्रोधी व कामी था। किन्तु उसने अपने स्त्रीके सतीत्वके बलसे देवोंको परास्त कर अपने आधीन किया था। उसने उनके ऊपर बहुत जूल्म किया जिससे उन देवोंने मिलकर विष्णु भगवान्की आराधना की। श्री विष्णुने आकर उनको अभयवचन देकर कहा कि वह दैत्य वृन्दा सतीके सतीत्वके

प्रभावसे बलवान बना है; किन्तु मैं उसे युद्धमें युक्तिद्वारा मारकर तुम्हें सुखी करुंगा।

इस प्रकार कहकर श्रीविष्णु भगवानने देवोंको साथमें लेकर उस जालंधर दैत्यके साथ युद्ध करते २ कई वर्ष व्यतीत हो गये: किन्तु उसमें कोई भी परास्त हो ऐसा नहीं मालूम होने लगा। उस परसे उस दैत्यने मांगा कि लक्ष्मीजी समेत आप आकर मेरे घरपर रहें। श्रीविष्णु वैरका त्यागकर लक्ष्मीजी व समस्त देवोंके सहित उसके घरमें रहे। ब्रह्मा, विष्णु और सर्व रिद्धि सिद्धि उसके वहां आनेसे वह अत्यन्त सुखी हुआ। इस प्रकार उसने अनेक वर्ष वैभव भोगे। एक समय नारदमुनिने युक्ति रचकर उस दैत्यके द्वारपर आकर कहा कि दैत्येन्द्र! मैंने जैसी शिवजीके कैलासकी शोभा देखी है वैसीही तेरे नगर की शोभा है। यह देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं; किन्तु शंकरकी स्त्री पार्वतीजी जैसी स्वरुपवती हैं वैसी स्वरुपवती स्त्री मैंने चौदह लोकमें नहीं देखी। वृन्दा तो उसके सामने कुछ भी नहीं हैं। इतना कहकर नारद मुनि वहांसे चल निकले; क्योंके उनका तो यही कार्य था। दैत्य स्वभावसे मूर्ख व कामांध था फिर देवोंके उसके वहांपर रहेनेसे वह और भी फुल गया था। वह सती पार्वतीजीको प्राप्त करनेके लिये आतुर हो रहा था। वह मूर्ख शंकर–पार्वतीकी शक्तिको नहीं जानता था; किन्तु वृन्दाको ये समाचार मिलते ही उसने दैत्यसे कहा कि प्राणेश्वर! वह सती साक्षात् शक्ति स्वरुप है उनके सतीत्वका प्रभाव पृथ्वीमें प्रसिद्ध है, वह किसी अन्य पुरुषके आधीन नहीं हो सक्ती। उसके सतीत्वका नाश करनेको त्रिलोकीमें कोई भी समर्थ नही हैं। फिर आपकी क्या शक्ति है? आप ऐसा दुष्ट विचार नहीं करे। यदि आप मेरा कहा नहीं मानेंगे तो अपना अत्यन्त अनीष्ट होगा। इस प्रकार कहकर सतीने बहुत कुछ समझाया; किन्तु उस दुष्टने अपने विचारमें कुछ भी परिवर्तन नहीं किया। "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः" उस प्रकार उस दैत्यको उल्टा सुझा, उसने तुरन्त एक दूतको बुलाकर कहा कि;–तू शंकरके पास जाकर कहे कि "पार्वति आपके लिये योग्य नहीं हैं वह जालंधरके योग्य है इस लिये उसे मेरे साथ भेज दो या युद्ध करनेकी तैयारी करो! किम्वा कैलास छोड़कर चले जाओ!" यह समाचार दूतने शंकरने कहा। शंकरने दूतका शिरच्छेदन करनेकी आज्ञा की। दूत पुकारकर प्रार्थना करने लगा कि;–भगवन्! इसमें मेरा कुछ भी अपराध नहीं हैं इस लिये कृपाकर मुझे छोड़ दीजिये। शंकरने कृपाकर उसको छोड़ दिया वह तुरन्त पलायन कर जालंधरके पास आया। शंकरकी शक्तिकी बात कहकर कहा कि राजन्! शंकरकी शक्ति अद्भुत है; इस लिये आप अपने विचारको छोड़ दीजिये अन्यथा इसमेंसे विपरीत होगा।

इस बातको सुनकर वह दैत्य क्रोधित हुआ, तुरन्त वह शंकरके साथ युद्ध करनेके लिये शुंभ निशुंभ समेत कैलास पर्वतमें आया। शंकर भी दैत्यके आनेके समाचारको सुनकर युद्ध करनेके लिये तैयार हुए। दैत्यने पार्वतीके हरण करनेके लिये अनेक युक्तियां की, शिवजीको मोहमें डालनेका प्रपञ्च किया एवं पार्वतीजीको ठगनेके लिये शिवजीका भेष धारण कर शिव मन्दिरमें जाकर खड़ा हुआ। सती पार्वतीजीने जान लिया कि वह दुष्ट वेषधारी दैत्य है। ऐसा जानकर तुरन्त उसने मन्दिरमें जाकर क्रोधसे हरिहरका स्मरण किया कि तुरन्त वहांसे दैत्य पलायन कर गया। उतनेमें श्रीहरिने आकर कहा कि सति! आपने मुझे क्यों बुलाया। सतीने दैत्यकी बात कह सुनाई और कहा कि आप उस दुष्टके आधीन होकर लक्ष्मी समेत उसके घरपर क्यों रहते हैं? और उस दुष्टको क्यों सहायता करते हैं? दुष्टको उत्तेजन देनेसे वह सामने अधिक दुष्ट बनता है और अपने जाति स्वभावानुसार अपने प्रिय करनेवालेका अनीष्ट करनेको तैयार होताहै। इस लिये उसे उत्तेजन देनेका क्या कारण है? दानवको वश होनेका कुछभी कारण होना चाहिये! किन्तु वह दुष्ट अजर करने योग्य नही हैं। उस अधम पापीका तुरन्त नाश कीजिये।

पार्वतीजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीहरि ने कहा कि;—सति पार्वतीजि! आपके ऊपर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं आपके साथ छल करनेवाले उस दुष्टका अभी ही मैं नाश करुंगा। वह दैत्य अत्यन्त पापी है यह मैं जानता हूं, किन्तु मैं उसे मार नहीं सकनेके कारण उसके वश हुआ हूं। देवि! उसका यही कारण है कि उसकी स्त्री वृन्दा प्रसिद्ध सती है, उसके सतीत्वके बलसे सभी देव डरते रहते हैं। आप जानते है कि योग, यज्ञ, तप प्रभृति अनेक साधन सिद्ध किये जाय; किन्तु स्त्रीका पातिव्रत्य धर्म उन सभोंसे उत्तम धर्म है। पतिव्रताके पुण्य प्रभावसे समस्त पाप नष्ट होते हैं। पातिव्रत्यके पुण्यसे वह अपने पतिको महान् बल देती है, पतिके समस्त दुःखोंको काट देती है, तेजको बढाती है, सभी स्थानोमें जय व महा सुखको देती है। इतनाही नहीं; किन्तु सती स्त्री स्वयं संसारसे तरकर अपने पतिकोभी तारती है। सती स्त्रीकी प्राप्ति पूर्व जन्मोंके पुण्यसे होती है। स्त्रियोंने पातिव्रत्य धर्मका पालन करना चाहिये ऐसा वेदमें भी लिखा है। सती वृन्दाके सतीत्वसे वह दुष्ट बहुत सुखी व बलवान बना है। कोई देव उसे नहीं पहुंचनेके कारण उसके आधीनमें हो गये हैं। हे जगज्जननि! उस सतीके व्रत भंग होनेसे उस असुरका नाश होगा। ऐसा वचन देकर श्रीहरि दैत्यके घरपर पधारे।

श्रीहरि शरीरपर विभुति लगा बड़े योगीका भेष धारणकर उस दैत्यके एक

बगीचेमें जाकर बैठे। उन्होंने अपनी माया विस्तारी और सती वृन्दाके व्रतका नाश किया। वह सती तुरन्त समझ गई और क्रोधित हो कम्पित स्वरसे बोली कि;—हे हरे! आपने जो मेरे व्रतको नष्ट किया है उसका फल आपको भोगना पड़ेगा। आप अपनी स्त्रीके वियोगसे दुःखी हो वनर में भ्रमण करोगे। आपको उस समय वानरोंके सिवाय और कोई सहायता नहीं करेंगे। ऐसा शाप दिया। श्रीहरिने कहा कि तू दूसरे जन्ममें मेरे वहां आवेगी तब तू मुझे अत्यन्त प्रिय होगी। सती श्रीहरिको अपने वशमें करके जलकर भस्म हो गई और स्वर्गको चली गई।

सतीने अपने व्रतके भंगसे शरीर छोड़ा जिससे जालंधरमें जो सतीका तेज था वह नष्ट हुआ और शिवजीने उसका संहार किया; जिससे समस्त देवगण प्रसन्न हुए। श्रीहरिने मायाके द्वारा सतीके व्रतको नष्ट किया, यह केवल जालंधरको मार कर देवोंको सुखी बनानेके लिये ही किया था। क्योंकि जालंधर महान् पापी व दुष्ट बुद्धिका था, उसने पार्वतीके समान महा सतीको भी ठगनेके लिये प्रपञ्च किया था। वृन्दाको ठगनेके अपराधसे श्रीहरिका चित्त व्याकुल होगया था उसे लक्ष्मीने शान्त किया। वृन्दाका दूसरा नाम तुलसी है। श्री तुलसी विष्णु भगवानको अत्यन्त प्रिय है। उस तुलसीके प्रतापसे ही तुलसीके पत्र श्रीविष्णु भगवान् पर चढाये जाते हैं और वृन्दाके नांव परसे वृन्दावन धाम पवित्र समझा जाता है। श्रीहरि श्री पतिव्रताके शापको अन्यथा नहीं कर सके। वह शाप उन्हें रामावतारमें भोगना पड़ा। ऐसा पुराणोंमें लिखा है। अहा! सती स्त्रीका कैसा प्रताप है। स्त्रियोंके पातिव्रत्य धर्मके पालन करनेसे कितना लाभ है और उसके भंग होनेसे कितनी हानि है। यह इस चरित्रसे स्पष्ट होता है।

इन्द्राणी।

यह सती तीनों लोकमें सुप्रसिद्ध स्वर्गके महाराजा इन्द्रकी पत्नी थी। वह साध्वी अत्यन्त स्वरुपवती अथच तेजस्वीनी थी। वह अपने स्वरुपके लिये जगत्में प्रख्यात है। वह अत्यन्त बुद्धिवाली, नीतिवाली, धर्मपरायणा, ज्ञानयुक्त एवं पतिव्रता थी। इन्द्र राजाको नहुष राजाकी ओरसे बहुत ही परिताप सहन करना पड़ता था, उस ताप व भयसे इन्द्र अत्यन्त दुःखित था। इस सतीने अपने सतीत्वके बलसे

अपने पतिकी रक्षा कर उसको महान् भयसे मुक्त किया। जब इन्द्रको अपने पाप कर्मसे अत्यन्त सन्ताप हुआ तब कान्ति रहित हो त्रास पाने लगा। वह मान रहित हो गया और उसे कहां भी चैन नहीं पड़ने लगा जिससे वह मानसरोवरके कमलवनमें जा छुपा, तब सती इन्द्राणी अपने पतिके दुःखसे दुःखी हो पतिके पास गई और कहा कि:—प्राणेश्वर ! आपका कोई भी शत्रु बलको नहीं प्राप्त हुआ है फिरभी आप क्यों चिन्तित हो रहे हैं। आप अपने दुःखका कारण कृपाकर मुझे कहिये, मुझसे आप कुछ भी गुप्त न रक्खे, पतिने अपनी अर्धांगना स्त्रीके पास अपने दुःखकी बात अवश्य कहनी चाहिये। पतिका यह आवश्यक धर्म है। और स्त्रीने उसे जानकर उसकी हिस्सेदारिन होकर जिस उपायसे वह दुःख दूर हो उसके लिये यत्न करनेमें सहायता देनी चाहिये। यह पत्नीका परमधर्म है। इस लिये अपने दुःखका कारण मुझे कहिये !

अपनी प्रियाके इन मधुर वचनोंको सुनकर इन्द्रने कहा कि,—प्रिये ! यद्यपि मेरा कोई बलवान शत्रु नही हैं तोभी मुझे शान्ति नहीं मिलती। मैं घरमें सदैव भय पाता हूं, आनन्द भूवन, अमृत, अप्सराओंका नृत्य, गन्धर्वोंका संगीत और महान् विलासवन ये सभी मुझे अच्छे नहीं लगते। प्रिये ! समस्त सुखोंकी भंडार तू है; फिरभी तुझसे और अन्यान्य स्त्रियोंसे भी मुझे आनन्द नहीं मिलता। मुझे दिनरात्र ऐसा ही होता है कि मैं कहांपर जाऊं और क्या करुं कि जिससे मुझे सुख हो। इस दुःख उत्पन्न होनेका कोई बाहरी कारण मुझे नहीं मालूम होता; किन्तु मेरे अन्तरमें रहा हुआ मेरा दारुण पापही मुझे संताप दे रहा है, ऐसा मालूम होता है।

इन्द्राणी अपने पतिके इस दुःखको जानकर अत्यन्त सन्तापित हुई। वह देवोंकी सभाके समक्ष सूर्यनारायणके सामने हाथ जोड़कर बोली कि;—हे जगन्नियन्ता ! हे सर्व शक्तिमान् ! हे पवित्र प्रभो ! यदि मैंने अपने पतिकी एकाग्र चित्तसे अच्छि तरहसे नियम पालनकर सेवा की हो, यदि मैंने पतिव्रता धर्मके अनुसार पातिव्रत्य धर्मकी रक्षा की हो, तो हे मंगलमय प्रभो ! इस पुत्रीपर कृपाकर मेरे पतिको इस दुःखसे मुक्तकर सुख दीजिये ! सतीकी ऐसी प्रार्थनाके पश्चात् सूर्यनारायणने कृपा की और इन्द्रको सुख मालूम होने लगा। कुछ समयके पश्चात् वह उस उद्विग्नतासे मुक्त हुआ और सब प्रकारसे आनन्दमें रहने लगा। इस प्रकार सती इन्द्राणीने अपने सतीत्वके बलसे प्रभुकृपा प्राप्त की और पतिको सुखी बनाकर अपने सौभाग्यकी रक्षा की। उस सतीके सौभाग्यकी इतनी महिमा है कि इस समयभी विवा-

हके समय कन्याको इन्द्राणीकी सौभाग्य दी जाती है। अर्थात् जैसे इन्द्राणीका चिरकाल तक सौभाग्य रहा, वैसेही ईश्वर इस कन्याका सौभाग्य चिरकाल तक रक्खे। सति इन्द्राणि! आपको धन्य है! आपने पतिव्रताके धर्मका पालन कर अखंड सौभाग्यपनेकी अखंड कीर्तिको संसारमें स्थिर रक्खा है!

तारा

यह सती तारा किष्किन्धाके राजा वालीकी स्त्री और अंगदकी माता थी। वह शरीरसे स्वरुपवती, विवेकी, ज्ञानी और महा पतिव्रता स्त्री थी। उसके पति वालीने अपने छोटे भाई सुग्रीवको दगा देकर राज्य अपने आधीनमें कर रक्खा था। उसके लिये ताराने अपने पतिसे कहा था कि;—प्राणेश्वर! सुग्रीव आपका छोटा भाई है, उसके साथ विरोधको छोड़कर उसको युवराज पद दीजिये; उसके साथ मेल रखकर सुख भोगिये। भाईके समान कोई भी बन्धु नही हैं, छोटे भ्राताको पुत्रके समान ही रखना चाहिये। भ्राताओंके साथ कुसंप रखना यह किसी प्रकार उचित नही है। यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं और मुझे आप अपनी हित करनेवाली समझते हैं तो मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये! इत्यादि वचन कहती थी। वह राजनीति सबन्धी सूक्ष्म विचारोंमें और विपत्तिके समयमें योग्य सलाह देनेमें बहुत निपुण थी। उसकी दी हुई सलाहमें कुछ भी परिवर्तन नहीं होता था, वह ऐसी बुद्धिमती थी। जब राम लक्ष्मण सीताकी शोधके लिये ऋष्यमूक पर्वतपर आये, तब सुग्रीवने उन्हें सीताजीके अलंकार प्रभृति जो चिन्ह रास्तेमेंसे मिले थे वे रामचन्द्रजीको दिखलाये और रावण सीताजीका हरण कर गया है ये समाचार भी यहांही मिले। सीताजीकी शोध करनेमें और वहां जा युद्ध कर उन्हें लानेमें सहायता देनेके लिये सुग्रीवने कहा, जिससे राम लक्ष्मण उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुए। सुग्रीवने अपना दुःख निवेदन किया उस परसे रामचन्द्रजीने उसकी सहायता की। वालीके साथ युद्ध कर उसको मारकर उसे किष्किधाका राज्य दिलाया। रणसंग्राममें अपने पतिके मरणके समाचार सुनकर साध्वी तारा अपने पुत्र अंगदको साथमें लेकर जहांपर वालीका शब पड़ा था वहां आई और शबके पास बैठकर रुदन करने लगी। फिर उसने रामचन्द्रजीसे कहा कि,—हे रघुपते! आपने मेरे प्राणपतिका क्यों संहार किया? मुझ पतिव्रता स्त्रीको विधवा बनाकर मेरे शृंगार आपने उतरवाये। इसलिये अब मुझे

एक बाण मारकर उसके पास स्वर्गमें पहुंचा दीजिये। पतिव्रता स्त्रीको पतिके विना नहीं रहना चाहिये। स्त्रीके लिये पति यही प्राण है। विना पति की स्त्री प्राणके होनेपर भी प्राणरहित है। विना पति स्त्रीका जीवन व्यर्थ है। जैसे जलके विना मछली दुःखित हो मरती है, जैसे जल रहित नदी भयंकर व निरर्थक है, वैसेही पति रहित स्त्री निरर्थक एवं शोभा रहित है। इस संसारमें स्त्रीके लिये पति ही सर्वस्व है।

हे प्रभो! आपने मेरा सर्वस्व नष्ट किया। आपने मुझे शुष्क व शोभारहित की। विना जीवका शरीर शहदशून्य मधुपुड़ेके खोखेके समान है। आपने मुझे मधुपुड़ेके समान कर दी! मेरा मधुरूपी स्वामी चला गया अब मैं व्यर्थ जीवित रह-कर क्या करूं? हे प्रभो! मुझे आप तुरन्त बाण मारिये! इस प्रकार सती तारा रुदन के साथ कल्पान्त करने लगी। जिसे देखकर कठिन हृदयवाले पुरुषकाभी कलेजा आर्द्र हुए विना नहीं रह सक्ता। सती ताराके विलापसे रणक्षेत्रमें हाहाकार मच गया। सब कोई उसके विलापको सुनकर अपने नेत्रोंसे आँसु बहाने लगे। रामचन्द्रजीने तारासे कहा कि;—" पतिव्रते! तू क्यों रुदन व कल्पान्त करती है? भावी अन्यथा नहीं हो सक्ता। सुन्दरि! तू किसके लिये शोक करती है? यदि तू शरीरके लिये शोक करती है तो वह यहां तेरे पासही पड़ा है। यह शरीर पञ्चभूतका बना हुआ है वह कर्मानुसार उत्पन्न होता है और कर्मानुसार नष्ट हो जाता है। उसके लिये धीर, वीर और ज्ञानी जन शोक ही नहीं करते। यदि तू कहेगी कि मैं आत्माके लिये रुदन करती हूं तो वहभी महान् अविवेक है। आत्मा अखंड, अविनाशी एवं एक चैतन्य द्रष्टा रूप है। वह अपरिछिन्न है, दुःख रहित है। इस लिये वह तो सुखका सागर व अमररूप है। उसके निमित्त शोक करना व्यर्थ है; नाशवानके निमित्त क्यों शोक करना चाहिये? और अखंडका शोक कैसे उचित कहा जा सक्ता है? इत्यादि उपदेश दिया।

इस प्रकार रामचन्द्रजीके उपदेशसे ताराको ज्ञान प्राप्त हुआ और उसका शोक चला गया। उसने उठकर रघुपतिके चरणोंमें मस्तक नवाया। रामचन्द्रजीने आशीर्वाद दिया कि, हे तारा! तेरा नाम इस जगतमें अमर रहेगा। इस प्रकार कहकर वालीके शबको अग्नि संस्कार किया। सुग्रीवने उसकी क्रिया की। तारा अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे इस संसारमें अमर नांव रख गई है। ताराके परम शूरवीर पुत्र अंगदने रामचन्द्रजीकी रावणके साथ युद्धके समय बहुत सहायता की थी; रावणको समझानेके लिये प्रथम वही भेजा गया था। रावणके नहीं समझनेसे उसके साथ महान् युद्ध हुआ जिसमें अंगदने अचळ पराक्रम दिखलाया था। यह सब प्रताप सती तारा

माताका ही था कि उस उदरसे उत्पन्न हो कर, उससे योग्य शिक्षा व उपदेश प्राप्त किया था। अहा! उत्तम माताका कैसा प्रताप है! साध्वि तारा! तेरी साधुताको सहस्रों धन्यवाद हैं।

गार्गी।

यह परम तत्वज्ञा साध्वी महात्मा गर्गाचार्य ऋषिकी कन्या थी, जिससे उसका नांव गार्गी रक्खा गया था; वह अत्यन्त बुद्धिमती, उत्साही और समस्त कार्योंमें निपुण थी। सदाचार, नीति और विद्या ये उसके लिये शृंगाररूप थे। उसने अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया था। उसकी शिक्षा, आचार और व्यवहार आध्यात्मिक थे। वह जो कुछ सीखती व करती उसपर पूर्ण ध्यान रखती थी। उसको बाह्याडंबरके ऊपर तिरस्कार था। जो उपदेश ऐहिक व पारमार्थिक मंगलजनक न हो, जो उपदेश व अभ्यास आत्माको शान्ति नहीं दे सक्ता, वह उपदेश व अभ्यास उसे प्रिय नहीं थे। हृदय जैसा आध्यात्मिक जलसे धुलता है वैसा अन्य किसी पदार्थसे नहीं धुलता ऐसा उसका विचार था। उसकी शिक्षा ईश्वर व आत्मा सम्बन्धी थी। उसका चित्त एक परब्रह्मके साथ लगा हुआ था। उसका ऐसा उपदेश है कि;—

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त; छंद और ज्योतिष प्रभृति इनमेंसे जो अविनाशी परब्रह्मका ज्ञान न दे वह व्यर्थ है। "**येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्**" जिनसे मैं अमर न हूं उसे लेकर मैं क्या करूं? ऊपरोक्त उपदेशने इस आर्य महिलाके अन्तःकरणमें स्थान पाया था। उसका मनोभाव अत्यन्त उच्च था, यह बात उसके चारित्र्यपरसे सिद्ध होती है।

यह पंडिता, तत्वज्ञानमें अत्यन्त निपुण थी। बृहदारण्यक उपनिषद्‌के तीसरे अध्यायमें उसके वचन अत्यन्त उपदेशप्रद देखे जाते हैं! वे वचन परम आदरणीय हैं।

प्राचीन समयमें मगध देश विविध प्रकारकी तत्वविद्याके विचारका केन्द्र था; उस मगध देशमें विदेह नामका प्रदेश था, जिसकी राजधानी मिथिला नगरी थी। उसको अभी लोग तिरहुत कहते हैं। उस मिथिलामें एक समय बृहद्रथ—जनक नांवके राजर्षिने "बहु दक्षिणा" नांवके महान् यज्ञकी तैयारी करनेके लिये भिन्न २ स्थानमेंसे धार्मिक ब्राह्मणोंको बुलाया था, उस समय कुरु और पांचाल देशमेंसे वेद

जाननेवाले ब्राह्मण आये थे, जिससे यज्ञ मंडपमें एक प्रकारकी अपूर्व शोभा हो रही थी। उस समय राजर्षि जनकके अन्तःकरणमें यज्ञमें आये हुए ब्राह्मणोंमें "कौन सबसे अधिक ब्रह्मज्ञ है" यह प्रश्न उपस्थित हुआ, इस प्रश्नके समाधान करनेके लिये उसने सभामें ब्राह्मणोंके साथ १००० गौ रक्खी और उनकी सींगके ऊपर सुवर्ण लगवाया; तदनन्तर राजा जनकने ब्राह्मणोंसे कहा कि:—"आप सबमेंसे जो ब्राह्मण अधिक ब्रह्मज्ञ हो उनको ये गौयें मैं दानमें देना चाहता हूं। जनकजीके इन वचनोंको सुनकर कोई भी उस दानको लेनेके लिये आगे नहीं बढ़ा। आखीर याज्ञवल्क्य ऋषिने अपने शिष्य सोमश्रवाको गौधन ले जानेकी आज्ञा दी। याज्ञवल्क्यके इस कार्यसे सभामें बैठे हुए ब्राह्मण लोग क्रोधायमान हुए; किन्तु वे कुछ भी बोल नहीं सके। केवल जनक राजाके पुरोहित अश्वा ने कहाकि,—याज्ञवल्क्य! क्या आप हम सबसे अधिक ब्रह्मज्ञ हैं? तदनन्तर यस्कार वंशके आर्तभाग, लह्यपुत्र, भुज्यु, चरकके पुत्र उषरस्त, और कुषितकके पुत्र कहोड़ प्रभृतिने विविध प्रकारके प्रश्न पूछे। तत्पश्चात् ब्रह्मपरायण देवी गार्गीने याज्ञवल्क्यके साथ प्रश्नोत्तर कियेथे जिसको हम यहांपर उद्धृत करते हैं।

गार्गी—याज्ञवल्क्यजि! यह जगत् जलसे व्याप्त हो रहा है वह जल किससे व्याप्त है?

याज्ञवल्क्य—वायुसे।

गार्गी—वायु किससे व्याप्त है?

याज्ञवल्क्य—पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाशसे।

गार्गी—फिर वह किससे व्याप्त हो रहा है?

याज्ञवल्क्य—गान्धर्व लोकके द्वारा।

गार्गी—वह किससे व्याप्त है?

याज्ञवल्क्य—हे गार्गि! सूर्य लोकके द्वारा।

गार्गी—सूर्य किससे व्याप्त है?

याज्ञवल्क्य—चन्द्र लोकके द्वारा।

गार्गी—फिर वह किससे व्याप्त है?

याज्ञवल्क्य—नक्षत्र लोकसे।

गार्गी—नक्षत्र लोक किससे व्याप्त है?

याज्ञवल्क्य—देव लोकके द्वारा।

गार्गी—देव लोक किससे व्याप्त है?

याज्ञवल्क्य–इन्द्र लोकके द्वारा ।

गार्गी–वह किससे व्याप्त है ?

याज्ञवल्क्य–ब्रह्म लोकके द्वारा ।

गार्गी–फिर ब्रह्म लोक किससे व्याप्त है ?

गार्गीके इस अन्तिम प्रश्नको सुनकर याज्ञवल्क्यने कहा कि;–गार्गि ! पराजित होनेकी शंकासे ऐसा असंभव प्रश्न मत कीजिये । आपने जो प्रश्न पूछा है वह जिज्ञासासे बाहरकी वस्तु है इसलिये हे गार्गि ! इस विषयमें प्रश्न पूछना उचित नहीं है ।

तदनन्तर कुछ समयके लिये गार्गी चुप रही उतनेमें अरुण ऋषिके पुत्र उद्दालकने कुछ पूछा । याज्ञवल्क्यने उसका भी यथार्थ उत्तर दिया ।

फिर गार्गी समस्त ब्राह्मणोंको सम्बोधन करके बोली कि;–ब्राह्मणगण ! मैं याज्ञवल्क्यजीसे और दो प्रश्न पूछना चाहती हूं । यदि इन दो प्रश्नोंका उत्तर वे दे सकेंगे तो आपको स्वीकार करना पड़ेगा कि कोई ब्रह्मज्ञानी उनको पराजित नहीं कर सक्ता ।

समस्त ब्राह्मण यह सुनकर उसके अभिप्रायमें सम्मत हुए । तदनन्तर गार्गीने कहा कि;–हे याज्ञवल्क्य ! विदेह प्रदेशमें रहनेवाले अथवा काशी प्रदेशके क्षत्रीय जिस प्रकार धनुष्यमें तीर डालकर सामनेवाले मनुष्यका वेध करते हैं उसी प्रकार मैं अपने दो प्रश्नरूपी तीरोंसे आपका वेधन करती हूं । आप उनके उत्तर देनेके लिये तैयार हों ।

याज्ञवल्क्यने कहा कि पूछिये !

गार्गी–नभो मण्डलके ऊपरके भागमें और भूलोकके नीचके भागमें कौन है ? आकाश व भूमण्डल वह क्या है ? और किससे यह सबकुछ ओतप्रोत भावसे रहा है ? भूत, भविष्य और वर्तमान काल कौन पदार्थमें व्याप्त है ?

याज्ञवल्क्य–ऊपरकी व नीचेकी सभी जगह महाकाशसे ओतप्रोत है ।

गार्गी–महाभाग ! आपके इस सयुक्तिक उत्तरसे कृतार्थ हुई हूं । मैं ऐसे सदुत्तर देनेके कारण आपको प्रणाम करती हूं । अब दूसरे प्रश्नका कृपाकर उत्तर दीजिये?

याज्ञवल्क्य–पूछिये !

गार्गी–आपने कहा था कि महाकाश पृथ्वी ऊपरके व नीचेके दोनों प्रदेशका सन्धिस्थान हैं । और भूत, भविष्य और वर्तमान काल उससे परिव्याप्त हो रहे हैं यह ठीक है, किन्तु वह महाकाश किससे परिव्याप्त है ?

याज्ञवल्क्य–गार्गि ! ब्राह्मणगण जिसे प्रणाम करते हैं वह अक्षर ब्रह्म है ।

वह स्थूल किम्वा सूक्ष्म, ह्रस्व किम्वा दीर्घ नहीं हैं, लाल नही हैं, चीकनी वस्तु भी नहीं, छाया किम्वा अन्धकार, वायु किम्वा शून्य नहीं हैं, वह माया, फल किम्वा गन्ध भी नहीं हैं। नेत्र, कर्ण, मन, वाणी, तेज, किम्वा प्राण नहीं हैं। वह मुख और उपमा रहित हैं।

हे गार्गि! उस परमात्माके शासन बलसे चन्द्र, सूर्य, भूलोक और देवलोक, निमेष, मुहूर्त, रात्रि, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, सम्वत्सर, स्थिति करते हैं, उस अविनाशी जगदीश्वरके शासनसे पूर्व और पश्चिममें बहनेवाली नदियां, सफेद पर्वतमेंसे निकलकर प्रवाहित होती हैं।

अहो! गार्गि! जो मनुष्य उस अक्षय्य परमात्माके यथार्थ तत्त्वको नहीं जानकर केवल याग, यज्ञ, तपश्चर्या और होम किया करते हैं वे कदापि स्थायी सुखको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते; किन्तु जो पुरुष उनके तत्त्वको जानकर परलोकमें गमन करते हैं वही ब्राह्मण यानी सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञानी है। गार्गि! उस परमात्माको कोई नहीं देखते, किन्तु वह सब किसीको देखता है; उनके कथनको कोई नहीं सुन सक्ता, किन्तु वह सब किसीके कथनको सुनता है। कोई उनको नहीं जान सक्ता, किन्तु वह सबको जानता है। गार्गि! यह दृश्यमान नभोमण्डल उसीसे ओतप्रोत भावसे परिव्याप्त हो रहा है। देवी गार्गीकी बुद्धि के विषयमें हम इससे अधिक क्या परिचय दें! ऐसे धर्मज्ञानकी अवधिके निर्णय करनेमें कौन समर्थ हो? तर्क शक्ति तो अतुलनीय है; अन्यथा वह परम प्रशंसनीय विद्वान् महात्माओंकी सभामें इतनी प्रभुता बतानेके लिये कैसे जा सक्ती थी? संक्षेपमें यह स्त्री एक अद्भुत शक्तिवाली थी। उसके ऐसे श्रेष्ट ज्ञान प्रबलसे समस्त ऋषि आश्चर्यान्वित हो गये और उसकी प्रशंसा करने लगे। उसने अनेक देशोमें भ्रमण कर आध्यात्मिक ज्ञानके विषयमें अपनी सम्मति प्रदर्शित की थी। यह तत्वज्ञ पण्डिता अपने श्रेष्ट ज्ञानके बलसे संसारमें प्रसिद्ध हो गई है।

दुःख इस बातका है कि, यह भारतवर्ष किसी एक समय सम्पूर्ण पृथ्वीमें ऐसी तत्वज्ञ देवियोंके कारण सुप्रसिद्ध हो रहा था; उसी भारतवर्षकी आर्य महिला उस ज्ञानसे विमुख हुई हैं और अज्ञानावस्थामें अपना जीवन निर्वाह कर रही हैं। तत्त्वज्ञानकी बात तो दूर रही; किन्तु धर्म क्या है! नीति क्या है? और ज्ञान यह किस चिड़ियाका नांव है? यह भी नहीं जानती, क्या यह कम दुःखकी बात है? हे प्रभो! भारतवर्ष पर कृपाकर गार्गी जैसे स्त्रीरत्न फिर इस देशमें उत्पन्न करो।

सतियां ।

पद्मणी ।

इस साध्वी स्त्रीके माता पिता जगन्नाथ पुरीमें रहते थे। उसका पिता अग्निहोत्री ब्राह्मण था। यह कन्या अत्यन्त स्वरूपवती व गुणवती थी। इसका विवाह जगन्नाथपुरीके समीपके किन्दुबिल्व गांवमें रहनेवाले जयदेव कविके साथ हुआ था। जयदेव कवि महान् विद्वान् व प्रसिद्ध था। यह स्त्री परम पतिव्रता थी, उसका पतिके प्रति अपूर्व प्रेम था, उसको श्रीकृष्णमें पूर्ण भक्ति थी। जयदेव कवि वहांके राजा सात्यकका आश्रित था। जिससे पद्मणीको रानी अपने पास समय २ पर बुलाती थी। एक समय ऐसा हुआ कि रानीका भ्राता मर गया, उसके साथ उसकी स्त्री जलकर सती हो गई। उसकी प्रशंसा रानी दूसरी स्त्रियोंके साथ मिलकर करती थी कि;—अहा ! आज ऐसी कोई पतिव्रता है ? दूसरी स्त्रियां भी हांमें हां करती थी, किन्तु इस समय पद्मणी जो कि पासहीमें बैठीथी वह कुछभी नहीं बोली। उस परसे रानीने विचार किया कि इसके नहीं बोलनेका कुछ कारण होना चाहिये। ऐसा विचार कर उसको आग्रहसे पूछा कि इस विषयमें जो आपका विचार हो वह कहिये। इससे पद्मणीके मुखमेंसे साधारण तौरपर यह बात निकल गई कि "जिस क्षणमें पतिका मरण सुननेमें आये उसी क्षणमें प्राण त्याग करना यह उत्तम है। इस लिये उसी समय जिसके प्राण निकल जाय वही सच्ची पतिव्रता है। पतिके साथ शरीरका दाह करके प्राण निकालना यह उतना प्रशंसनीय नहीं।"

पद्मणीके इन वचनोंको सुनकर रानीको अच्छा नहीं लगा और उसने पद्मणीकी परीक्षा लेनेका विचार किया। एक समय राजा सवारी समेत बाहर गांव गया था। उसके साथ जयदेव कवि भी गया था। ऐसा अवसर देखकर रानीने नगरमें बात फैलाई कि जयदेव कवि जंगलमें फिरने गया था वहां उसको सिंहने मारडाला। जिस समय यह बात पद्मणीके कर्णपर आई उसी समय उसके शरीरमेंसे प्राण निकल गये और शबके समान होगई। इस बनावसे गांवमें हाहाकार हो गया। रानी भी लज्जित हो कांपने व विचार करने लगी कि अब मैं राजाके सामने क्या जवाब दूंगी ? इस प्रकार वह चिन्ताकर रही थी उतने में जयदेव व राजा गांवमें आपहुंचे। जयदेव कवि

अपने घर गये और वहांपर देखते हैं तो अपनी प्यारी स्त्रीका शव पड़ा हुआहै। इसे देखकर जयदेवजी रुदन करने लगे। राजाको उसका कारण तपास करनेपर मालूम हुआ कि यह सब रानीके अपराधका कारण है। जिससे उसको अनेक प्रकारसे धिक्कार दिया। सतीकी हत्या होनेसे महान् पाप हुआ ऐसा विचारकर स्वयं राजाने मरनेकी तैयारी की; किन्तु उनको जयदेवजीने शान्त किया। पीछे उसने अपनी स्त्रीकी शय्याके पास बैठकर अष्टपदियांसे (गीतगोविंद) ऐसे मधुर रस व करुणारसमें जाकर, श्रीकृष्णकी प्रार्थना की कि आसपासमें खड़े हुए समस्त मनुष्य रुदन करने लगे। आठवीं अष्टपदीके पूर्ण होते ही ईश्वर कृपासे पद्मणीने नेत्र खोले! जैसे कोई निद्रामेंसे उठकर शरीर मोड़ता है, वैसेही शरीर मोड़कर बैठी हुई। अपने पतिको आनन्दसे प्रणाम किया। यह देखकर राजा रानी इत्यादि सब कोई प्रसन्न हुए। उस दिन महान् उत्सव किया गया। पतिव्रताके पतिके ऊपरके अगाध प्रेमकी व उसके सतीत्वकी सब कोई प्रशंसा करने लगे और जयदेवको धन्यवाद देने लगे। आसपासके राजाओंने जयदेव कविको अपने यहां निमन्त्रितकर बड़ी २ भेटें दी। पद्मणीके सतीत्वके प्रभावसे जयदेव कविकी कीर्तिकी अभिवृद्धि हुई। जहां जाय वहां "जय पद्मणीपति जयदेव!" ऐसे कहकर लोग आदर करने लगे। जयदेवने अपनी स्त्रीके निमित्त श्रीकृष्णकी प्रार्थना की थी वह "गीतगोविन्द"के नामसे प्रसिद्ध है। उसके पाठ करनेका बहुत महात्म्य है। अभी भी कालिंग देशमें श्रीकृष्णके उत्सवोंपर अष्टपदीका गायनकर जागरण किया जाताहै। अष्टपदियोंके ऊपर अनेक विद्वानोंने संस्कृत, बंगला, मराठी, हिन्दी और गुजराती इत्यादि भाषाओंमे टीकायें की हैं। सर विलियम जोन्सने उसका अंग्रेजी में भी अनुवाद किया है। उसकी युरोपमें अत्यन्त प्रशंसा हुई है। अहा! धन्य है पद्मणीके आदर्श पति प्रेमको! अपने इस अपूर्व प्रेमके द्वारा वह संसारके इतिहासमें अपना नाम अमर कर गई है।

शकुन्तला।

सती स्त्री पुरुकुलोत्पन्न राजा दुष्यन्तकी धर्मपत्नी और महात्मा कण्वकी पालिता पुत्री थी। उसकी उत्पत्तिके विषयमें महाभारतमें ऐसी कथा है कि, "महात्मा विश्वामित्र ऋषि परम उग्र तपश्चर्या कर रहे थे। जिससे इन्द्रने भयभीत हो उनके तपको भङ्ग करनेके लिये मेनका नांवकी अप्सराको विश्वामित्रके पास वनमें भेजी। उनसे मेनकाको एक

कन्या हुई। उस कन्याको मेनका वनमें छोड़कर चली गई। इतनेमें कण्वऋषि वहां जा पहुंचे, उन्होंने उस कन्याको देखा। उसके पासमें कोई मनुष्य नहीं होनेसे उसको अपने आश्रममें लेजाकर उसका पालन किया। वनमें जब एकाकी रही थी तब शकुन्त नांवके पक्षीने उसकी रक्षा की थी जिससे कण्वऋषिने उसका नाम शकुन्तला रक्खा। शकुन्तला कण्वऋषिके समान पालन पिताके पास रहकर उत्तम प्रकारकी शिक्षा प्राप्तकर सद्गुणसम्पन्ना हुई थी। वह अत्यन्त मनोहर स्वरूप व लावण्यता वाली हुई थी। वह अत्यन्त तेजस्विनी थी। इस ऋषिका आश्रम अनेक प्रकारके वनवृक्ष, और सुन्दर पक्षियों से युक्त परम रमणीय वनमें था। एकसमय शकुन्तला अपनी सखियोंके साथ वन वृक्षोंकी धटामें अपनी गृहवाटिकाके वृक्षोंको जल पिलाती थी और फिर थोड़े समयके लिये विश्रांति करनेको द्राक्ष कुंजकी लता मण्डपमें सखियोंके साथ बैठकर मृगके बच्चोंके साथ खेल कर रही थी। उतनेमें मृगया करने के लिये निकला हुआ राजा दुष्यन्त भ्रमण करता हुआ वहां पर आ पहुंचा। उसकी दृष्टिपर यह पवित्रनयना, लतामृगानुरागिनी, आश्रमवासिनी तापस बाला आई। राजा दुष्यन्त इस रूपराशिनी बालाको देखकर मोहित हो गया। दोनोंकी दृष्टिके मिलतेही परस्पर प्रेमने आकर्षण किया। शकुन्तला भी मनसे उसके साथ विवाह कर चुकी। शकुन्तलाका विचार ऋषिके जाननेमें आनेपर उसका दुष्यन्तके साथ विवाह करा दिया। दुष्यन्त कुछ समय तक आश्रममें शकुन्तलाके साथ रहा। अपनी प्यारी पत्नीको पीछेसे अपनी राजधानीमें बुलानेका निश्चय कर, विवाह के चिन्ह स्वरूप एक मुद्रिका देकर दुष्यन्त वहांसे अपनी राजधानीमें आया। उसके जानेके पश्चात् योग्य समयपर शकुन्तलाको एक परम सुन्दर पुत्र हुआ। निश्चयके अनुसार प्रतीक्षा देखी; किन्तु शकुन्तला दुर्वासा ऋषिके शापसे शापित हुई थी कि, "तुझे दुष्यन्त भूल जायगा; जब वह अपनी दी हुई मुद्रिकाको देखेगा तभीही तू याद आवेगी। अन्यथा नहीं याद आवेगी"। ईश्वरेच्छासे शकुन्तलाने अभिज्ञान मुद्रिकाको गुमा दिया; किन्तु वह नहीं जानती थी कि मैने गुमा दिया है। दुष्यन्त शकुन्तलाके शापके प्रभावसे भूल गया। इससे कण्व ऋषिने उसकी दासी व शिष्य के साथ शकुन्तलाको उसके पुत्र समेत भेज दिया। वह मुद्रिकाको गुमाकर, विश्वको मोहित करनेवाले मनोहर पवित्र रूपको साथ लेकर अपने जन्ये हुए पुत्रके साथ वल्कल वस्त्र पहिनकर पवित्रनयना लतामृगानुरागिनी आश्रमवासिनी तापसबाला दुष्यन्तके सामने आकर उपस्थित हो बोली कि, राजन्! मैं आपकी पत्नी हूं और यह बालक आपका पुत्र है। राजाने उसकी बातपर विश्वास नहीं किया। धर्मवीर दुष्यन्त जिस रूपराशिको देखकर उसदिन मोहित हो गया था, वही रूपराशि आज भी

दुष्यन्तके नेत्र व मनको मुग्ध कर रहा है। दुष्यन्त शकुन्तलाको दुर्वासासे मिले हुए शापके प्रभावसे भूल गया है किन्तु जो नेत्र उस दिन शकुन्तलाको देखकर अपने मनको उन्मत्त करते थे आज भी वही नेत्र और मन रहा है फिर भी आज क्यों शकुन्तला दीन जैसी खड़ी है? यह सब वहां पर उपस्थित मनुष्य देख रहे थे। दुष्यन्त भी उस रूपको देखकर मुग्ध होता है और विचार करता है कि, "मेरे समीपमें उपस्थित इस सुन्दर स्वरूपवती स्त्रीके साथ मैने कभी विवाह किया है क्या? मेरा मन दृढ नहीं होता है और बारम्बार तर्क वितर्क हो रहा है! यद्यपि मैं इसको अच्छी तरहसे पहिचान नहीं सक्ता; तथापि मेरा मन इसकी ओर इतना क्यों आकर्षित होता है? इस प्रकार बार २ विचार करता है; किन्तु यह शकुन्तला मेरी पत्नी है ऐसा उसका निश्चय नहीं हुआ जिससे उसको स्वीकार नहीं किया। तब शकुन्तलाने अपने पतिसे कहा कि,—"राजन्! भार्या धर्मकार्यमें जनक स्वरूप है, आर्त मनुष्यकी जननी स्वरूप हैं और मुसाफरके लिये विश्राम स्थान है। सत्य यही धर्म है, सत्य यही परमब्रह्म है, सत्य—प्रतिज्ञाका पालन करना इसके समान और कोई धर्म नहीं; आप कृपाकर सत्यका त्याग न करें। इस प्रकार उसने अनेक धर्म व नीति सम्बन्धी वचन कहे। राजाको धर्मके उपर अत्यन्त विश्वास था, किन्तु मनके निश्चय हुए विना उसके सुन्दर स्वरूपको देखकर मोहित नहीं हुआ; उसके कथन परभी विश्वास नहीं कियां। इस प्रकार राजाकी ओरसे शकुन्तलाका भारी अपमान हुआ; किन्तु उसको पतिके ऊपर नेकभी अभाव नहीं आया। पतिके प्रति कुछभी आक्षेप व कटु वचन के उच्चार किये विनाही अपने पर पड़े हुए इस दुःखको उसने सहन किया। वह पूर्वके अनुसार पतिके प्रति प्रीतिभाव रखकर खड़ी रही। अन्तमें ईश्वर कृपासे गुम होनेवाली मुद्रिका मिली। मुद्रिका दुष्यन्त राजाकी द्रष्टि पर पड़ी और उसे शकुन्तलाकी स्मृति हुई। स्मृतिके होते ही तुरन्त अपनी प्राणप्रिया शकुन्तला और अपने पुत्रको आलिंगन किया और अन्तःपुरमें निवास कराया। पति पत्नी मिलकर आनन्दसे रहने लगे। पुत्रका नाम भरत रक्खा वह भरत आगे चलकर महान् पराक्रमी हुआ और उसीके नामसे आर्यावर्त देशका नाम भारतवर्ष किम्वा भरतखंड पड़ा। कितनोंका कथन है कि शकुन्तलाके पुत्र भरतके नाम परसे नहीं किन्तु ऋषभदेवके पुत्र जड़ भरतके नाम परसे इस देशका नाम भरतखंड पड़ा है। अस्तु जो कुछ हो; किन्तु इस सती शकुन्तलाका पुत्र राजा भरत महान् पराक्रमी और चक्रवर्ती राजा हुआ था। इसमें कुछभी संन्देह नहीं!

देवयानी।

यह सती दैत्योंके गुरु शुक्राचार्यकी कन्या व राजा ययातिकी धर्मपत्नी थी। वह विद्युत्के समान तेजस्विनी एवं सौन्दर्यवती थी। वह अत्यन्त चतुरा व बुद्धिमती थी। उसकी शर्मिष्ठा नामकी एक राजपुत्री सखी थी। एक समय देवयानी अपनी इस सखी व अन्य सखियोंके साथ नदीपर स्नान करने गई थी। स्नान करनेके पश्चात् भूलसे देवयानीने शर्मिष्ठाके वस्त्र पहिन लिये। यह देखकर शर्मिष्ठाने कहा कि तूने ऋषिकन्या होकर मेरे वस्त्र क्यों पहिन लिये? तूने मेरा अपमान किया। इस लिये यह बात मैं अपने पितासे कहूंगी और तुझको और तेरे पिता शुक्राचार्यको अपने गामसे निकलवा दूंगी। ऐसे कितनीक बातें कहकर शर्मिष्ठाने देवयानीको एक कुवेमें डाल दिया। यह समाचार शुक्राचार्यको मिले। उन्होंने क्रोध करके राजासे कहा कि, तेरी पुत्रीने मेरी कन्याको विना अपराध किये ही साधारण बातपरसे कुवेमें डाल दी इस लिये मैं शाप दूंगा और तेरा तथा तेरे राज्यका नाश करूंगा। ऋषिके इन वचनोंसे राजा बहुत घबड़ाया और ऋषिसे कहा कि आप मेरी कन्याके इस अपराधको क्षमा कीजिये। आप इस अपराधके बदलेमें मुझे जो आज्ञा करेंगे मैं उसे सादर शिरोधार्य करूंगा। राजाके ऐसे दीनता भरे शब्द सुनकर शुक्राचार्यने कहा कि, तेरी पुत्रीने मेरी पुत्रीका अपराध किया है इसलिये वह अपने पतिके समागम रहित हो सम्पूर्ण जीवनभर उसकी दासी बनकर रहे। राजाने इस बातको स्वीकार किया, जिससे ऋषि अपनी कन्याके पास आये।

अब देवयानीने कुवेमेंसे बाहर निकलनेके लिये अनेक यत्न किये; किन्तु बाहर नहीं निकल सके। उतनेमें मृगयाके लिये निकला हुआ राजा ययाति तृषातुर होनेके कारण उक्त कुवेके ऊपर आया। उसने एक सुन्दर स्वरूपवती कन्याको कुवेमें पड़ी हुई देखी; कन्याकी दृष्टि भी उस राजाके ऊपर पड़ी। कन्याने कहा कि, राजन्! मुझे आप कुवेसे निकालिये। राजाने अपना दाहिना हाथ लंबाकर देवयानीके दाहिने हाथको पकड़कर उसको कुवेसे बाहर निकाली। देवयानीने बाहर निकलकर उसका उपकार मानकर कहा कि;—राजन्! आपने मुझे जीवित दान दिया है और मैंने अभी तक किसी पुरुषका दाहिना हाथ नहीं पकड़ा। आज आपनेही मेरे दाहिने हाथको अपने दाहिने हाथसे ग्रहण किया और मेरी मृत्युसे रक्षा

की हैं। इस लिये अब मेरे लिये आपही प्राणाधार पति हैं। अब मेरे लिये दूसरे पुरुष भ्राताके समान हैं। यदि आप मुझे नहीं स्वीकारेंगे तो मैं आपको हत्या दूंगी। मैं अब दूसरा पति करके अपने व्रतको नष्ट नहीं कर सक्ती। राजाने कहा कि;—कुमारि! मैं इस प्रकार तुझे ग्रहण नहीं कर सक्ता। यदि तेरा पिता शुक्राचार्य विधि सहित तेरा दान करे तो मुझे अस्वीकार नहीं। देवयानीने राजाकी इस बातको स्वीकार किया। घरपर जाकर उसने अपने पितासे सब वृतान्त कहा उस परसे शुक्राचार्यने विचार किया कि देवयानीका कथन उचित है। इसलिये मुझे ऐसाही करना चाहिये। यह विचार कर उसका विवाह राजा ययातिके साथ विधिपूर्वक किया। पीछे ऋषिने शर्मिष्ठाके पिताके पास जाकर कहा कि अब तू अपनी पुत्रीका भी ययाति राजाको दान कर और देवयानीकी दासी बनाकर उसके साथ उसे भेज दे। देवयानीने ययाति राजाके साथ ऐसी प्रतिज्ञा करवा ली कि मैं अपनी इस दासीका कुमारिपन मिटे इसीलिये उसका आपके साथ विवाह कराती हूं इसलिये आप उसका समागम कभी भी न करें। यदि आप उसका समागम करें तो फिर मेरेमें और दासीमें भेद ही क्या रहा? दासी कदापि मेरे अधिकारको भोगने योग्य नहीं है। शास्त्रमें कहा है कि, "**स्त्रियोंको एकही पति होना चाहिये और पतिको भी एकही पत्नी होनी चाहिये। स्त्रीने पतिव्रतका पालन करना यह उसका भूषण है और पुरुषने एक पत्नीव्रतका पालन करना यह उसके लिये भूषण रूप एवं कल्याणकारी है**"। फिर विवाहके समय आपने प्रतिज्ञा की है कि, "मैं तेर सिवाय दूसरी स्त्रीको नहीं चाहूंगा" इसलिय आप मेरे साथ उस प्रकार आचरण करनेके लिये बंधे हुए हैं। यह दासीको तो मैं ही अपने खास कारणसे आपके साथ व्याह कराती हूं। यदि आपने प्रतिज्ञाका भङ्ग किया और मेरा अधिकार दूसरेको देना चाहा तो उस दिनसे मैं अपने पिताके घरपर जाकर रहूंगी। ययाति राजाने देवयानीके कथनको स्वीकार किया। शर्मिष्ठाका विवाह करा कर उसको देवयानीने अपनी दासी बनाई। देवयानी पतिकी आज्ञामें रहकर पतिव्रताके धर्मानुसार आचरण करने लगी। पतिके राज्य प्रभृतिके कार्योंमें सलाह व सहायता दे उसको अत्यन्त उपयोगी हुई। इस प्रकार सुख व आनन्दमें अनेक वर्ष व्यतीत किये। एक समय ययाति राजाने दैवेच्छासे भूलकर शर्मिष्ठाका समागम किया, उस दिनसे देवयानी पिताके घर जाकर रही और अवशिष्ट आयु ईश्वरकी आराधनामें योगिनीकी दशामें रहकर व्यतीत की और अन्तमें सद्गतिको प्राप्तकर संसारमें अपना नाम अमर बना गई है।

मीरांबाई ।

यह परम साध्वी स्त्री मारवाड़के मेडताके राजा जयमल राठोड़की पुत्री थी । उसका जन्म संवत् १४८० में राजपुतानेके नेरेटा नामक ग्राममें हुआथा । उसका विवाह मेवाड़के सुप्रसिद्ध कुंभा राणाके साथ संवत् १४९५ में हुआ था । मीरांबाईके पिता जयमलजी विष्णु भगवान्के भक्त थे। जिससे वह अपने घरमें श्रीकृष्णकी एक सुन्दर प्रतिमा रखकर उसकी अत्यन्त भावसे पूजा करता था और भगवद्भक्तोंका समागम रखता था। अपने पिताके ऐसे आचरणको देखकर मीरांबाईका चित्त भगवान्की भक्तिमें लग गया । ऐसा कहा जाता है कि मीरांबाई अत्यन्त स्वरूपवती थी । उसके समान उस समयमें और कोई भी स्त्री स्वरूपवती नहीं थी । चित्तोड़के महाराणाका उस समय सम्पूर्ण ज्ञातिमें मान व आदर था । उसको वे लोग अपना प्रधान राजा स्वीकार करते थे । इससे राजपूतोंकी सबसे अधिक स्वरूपवती कन्या ही उसके साथ ब्याही जाती थी । और उसको महारानी पद मिलता था । इस नियमानुसार चितोड़के राजकुमार कुंभासिंहके साथ मीरांबाईका विवाह उसके पिताने करवाया था। वृद्ध महाराणाके स्वर्गवासके पश्चात् महाराज कुंभासिंहजी महाराणा हुए और मीरां महाराणी हुई । ये दोनों स्त्री पुरुष साहित्य शास्त्रके अनुरागी थे । दोनों काव्य शास्त्र व संगीत शास्त्रमें कुशल थे । राणाजी मीरांबाईसे राज्यकार्य में भी सलाह व सहायता लेता था और सब प्रकारसे उसको राजी रखता था । वह अपना पति रूपसे जो धर्म था उसको अच्छी तरहसे समझता था और उसके अनुसार आचरण करता था । मीरांबाई दया, परोपकार व ईश्वर भक्तिमें प्रेम रखती थी । वह अपनी प्रजापर प्रेम रखकर उनके भलेके लिये राणासे बार२ सूचनायें किया करती थी । इससे प्रजा उसके ऊपर अत्यन्त प्रेम रखती थी । मीरांबाईका मन ईश्वर व पतिकी सेवामें लगा हुआ था; वह पतिव्रताके धर्मानुसार चलकर पतिके मनको सदैव राजी रखती थी । अवकाशके समयमें कविता बनाकर और संगीत सुना कर महाराणाको प्रसन्न करती थी । प्रतिदिन राणाका मन सांसारीक विषयोंकी और आकर्षित होता था और मीराका मन ईश्वरकी ओर । मीरांबाई जैसे शरीरसे स्वरूपवती थी ऐसी बुद्धिमती भी थी। वह विवाहके पश्चात् सुसरालमें गई और स्वामीकी सेवामें लगी फिरभी उसका मन ईश्वर भक्तिसे नेकभी चलायमान नहीं हुआथा। वह धीरे२ इस संसारके सार रहित विषय

सुखका त्याग करने लगी। उसको मालूम हुआ कि ईश्वरकी ओर भक्ति भावके नहीं रखनेसे इस संसारमें और पर लोकमें स्थायी सुख मिलनेकी आशा नहीं है। इन समस्त विचारोंसे उसका ईश्वरमें अत्यन्त प्रेम हो गया।

ईश्वरभक्ति यह मनुष्यके हृदयकी संजीवन शक्ति है। जिसका हृदय सदैव भक्ति-रसमें डूबा रहता है वह मनुष्य होनेपर भी देवलोकका पवित्र सुख भोगता है। भक्ति सदैव स्वच्छ जलके समान निर्मल है। वह सुख देकर जीवनको बढाने वाली है। भक्तिमान मनुष्य उच्च गतिको प्राप्त करते हैं। उनका हृदय निर्मल रहता है और वह जड़ जगत्की अनन्तशक्तिके विकाशको देखकर भी आनन्दित हो सुखी बनते हैं। इस नाशवान जगत्में किसीके साथ उसकी तुलना नहीं हो सक्ती। इस संसारकी अस्थिरता और शरीरकी नश्वरताका विचार करके मीरांबाईने अपनी इच्छासे सर्व शक्तिमान परमात्माकी शरण ली। उसका पति व अन्य आत्मीयगण शिवभक्त थे और मीरां कृष्णकी भक्त थी। इससे उसको अपने श्वसुरके साथ धर्म विषयमें महान् सम्वाद हुआ था; किन्तु वह अपने मनसे नेकभी चलायमान नहीं हुई। वह ईश्वर भक्तिके प्रभावसे पवित्र आनन्द प्राप्त करने लगी। उसने इस संसारके सार रहित विषय सुखोंका त्याग किया। उसने राज्य वैभवके सुख, भोगविलास और संसार व्यवहारके प्रपञ्चको छोड़कर भक्तिमार्गको स्वीकार किया। वह अपनी सखि-येंके साथ ईश्वर भजन करने लगी और श्रीकृष्णकी स्तुतिके भजन बनाने लगी। उसका कण्ठ अत्यन्त मधुर था और उसकी कविता उत्तम प्रकारकी थी। उसके भजनोंको सुनकर उसकी सखियां भी विमुग्धके समान बन गई। वह अपनी साससे कहने लगी कि, "अब मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। आपके राज्य वैभव व भोगविलासको मैं क्या करूं? मेरा मन तो श्रीहरिमें लगा है इसलिये मैं अन्य समस्त विषयोंको छोड़कर उसीका ध्यान—भजन करूंगी"। वह इस प्रकार कहकर दृढ निश्चय पूर्वक भगवानकी भक्ति करने लगी। अब उसने चित्तोड़के दुर्गमें रहकर ईश्वर भजन करना इसकी अपेक्षा श्रीकृष्णके मंदिरमें जाकर उसकी भक्ति करना इस बातको उत्तम समझा और उस प्रकार करनेका निश्चय कर लिया। प्रथम दिन अपने स्वामीकी स्तुति कर उनकी आज्ञा ले उसने भगवन्मंदिरमें जाकर भगवानकी भक्ति की। उसमें वह इतनी लग गई कि उसको कुछभी ज्ञान नहीं रहा। जिससे सखियोंने अत्यन्त परिश्रमद्वारा उसको सावधान की। पीछे कुछ समयके पश्चात् उठकर वह अपने राज्यमंदिरमें आई। उस दिनसे वह प्रतिदिन मंदिरमें जाकर अपने मधुर स्वरसे ईश्वरका भजन करने लगी। वह अब राजमहलको छोड़कर अपना

अधिक समय ईश्वर भजनमें लगाती थी फिरभी राणाजी उसको कुछभी नहीं कह कर उसको हरएक प्रकारका सुवीधा कर देता था और अपनी पत्नीका चित्त ईश्वर भक्तिमें लगा है यह जानकर प्रसन्न होता था। मीरांबाई भूख प्यासकी परवाह नहीं करके भजन करने लगी। और मुखसे सदैव "श्री गोविन्द" तथा "श्री राम श्री राम" इस नामका जाप करने लगी। उसने अपनी भक्तिसे अन्य लोगोंके मन सरलतासे ईश्वरकी ओर आकर्षित किये और भक्ति प्रवाहमें अपना देह बहता छोड़ दिया। उसको इस कार्यसे रोकनेके लिये राजमाताने अत्यन्त परिश्रम किया; किन्तु उसका कुछ फल नहीं हुआ। आखिर उसने मीरांबाईको राज महलमेंसे बाहर निकाल दिया, राणाजीने उसके लिये अलग महलका प्रबंध कर उसके भोजनादिका प्रबंध कर दिया। यह सब कुछ होनेपर भी उसने भक्तिका त्याग नहीं कर जो दीक्षा ली थी उसमें दृढ रही; जिससे उसकी कीर्ति सम्पूर्ण देशमें फैल गई।

मीरांबाईकी अपूर्व भक्तिके विषयमें दिल्लीके बादशाहने सुना; जिससे उसको देखने व उसके भजन सुननेके लिये बादशाह आतुर हुआ। चित्तोड़के महाराणाने दिल्लीकी शहेनशाहतको स्वीकार नहीं किया था; फिरभी उनके बीचमें अधिक वैरभाव उस समय नहीं था। तथापि प्रसिद्ध रीतिसे मीरांबाईको देखकर उसके भजन सुननेकी इच्छा करना यह राजपूतोंके क्रोधके पात्र बननेका कार्य है ऐसा समझकर उसने वैसा करना नहीं चाहा। पीछे उसने अपने सुप्रसिद्ध गवैयेको बुलाकर इस विषयमें उसकी सलाह मांगी। तत्पश्चात् दोनोंने विचार कर संन्यासीके भेषमें चितोड़के जिस मंदिरमें महाराणी प्रतिदिन जाती थी वहां आये और सर्व साधारण मनुष्योंके बीचमें बैठकर मीरांबाईका भजन सुना इससे वे दोनों मुग्ध हो गये। मीरांबाईके समान सुन्दर नारीके कंठके मधुर गायन सुननेसे शहनशाहके ऊपर इतनी असर हुई कि, वह तुरन्त उठकर उसके चरणोंमें पड़ा और अपने पापोंसे छुटकारा पानेका व ईश्वरको मिलनेका रास्ता पूछा। साथ ही उसने अपने कपडोंमेंसे बहु मूल्य हीरेका हार निकालकर उसके पासमें धरा और कहा कि,—"माननीया देवि! इस छोटीसी भेटको स्वीकार कीजिये और अपने हाथसे इस देवमूर्तिको धारण करवाइये"। मीरांबाईने उस हारको अपने हाथमें लिया और उसको देखकर कहा कि,—महाराज! यह हार बहुत मूल्यका मालूम होता है! आपके समान संन्यासीके पास ऐसी वस्तु कहांसे आई है?

भेषधारी संन्यासीने जवाब दिया कि देवि! हम पवित्र यमुना नदीमें स्नान करनेके लिये गये थे, वहांसे यह हमें मिला है इसे आप अपने आराध्य देवको अर्पण

कीजिये हमें इसकी कोई जरूरत नहीं है। इसके पीछे मीरांबाईने उसकी देव भक्तिको देखकर उनकी प्रशंसा की और वे दोनों संन्यासी चलते हुए ।

इस प्रकार दिल्लीका बादशाह शुद्धबुद्धिसे हार अर्पण कर दिल्ली गया; किन्तु यही हार मीरांबाईके समान पवित्र नारीके संसार सुखका नाश करनेवाला हुआ। वह हार अधिक मूल्यका था; जिससे इसकी बात थोड़े समयमें सर्वत्र फैल गई और अन्तमें यह बात इसके स्वामीके कानपर पहुंची । जिससे उसने उस हारको देखनेके लिये मंगवाया और झवेरियोंके पास उसका मूल्य कराने पर उसका मूल्य १० लाख रुप्या हुआ । फिर एक झवेरीने तो यहांतक कह दिया कि यह हार दिल्लीके बादशाहके यहां बिका था वही है । इस परसे राणाजीको तलाश करने पर मालूम हुआ कि जो दो मनुष्य संन्यासीके भेषमें आये थे और हार दे गयेथे उनमेंसे एक दिल्लीका बादशाह व दूसरा उसका गवैया था । मीरांबाईके शत्रुओंने राणाजीको समझाया कि, दिल्लीका मुगल बादशाह देखनेके लिये आया था और उसने उसका स्पर्श कर हार अर्पण किया । इससे मेवाड़की निष्कलंकी शिशोदिया राजवंशकी बदनामी हुई है । ऐसा कहकर राणाजीको खूब समझाया । इससे वह मीरांबाईके ऊपर नाराज हुआ और उसको मार डालनेकी आज्ञा दी । किन्तु उस आज्ञाको अमलमें लानेका किसीका साहस नहीं हुआ । आखीर राणाजीने मीरांबाईके पास जहर भेजकर उसको पीनेकी आज्ञा भेजी । तब उसने अपने पतिके अन्तिम दर्शनकी इच्छा प्रदर्शित की; किन्तु राणाजीने स्पष्ट जवाब दिया कि, "मैं तुम्हे देखना नहीं चाहता" तब मीरांबाईने कहलाया कि, "जैसी आपकी आज्ञा ! प्राणेश्वर ! मैं आपकी आज्ञानुसार अपने प्राणका त्याग करूंगी" ।

मीरांबाईने अपने पतिकी आज्ञाको शिरोधार्य कर जहरका पान किया; किन्तु उसकी कुछ भी असर नहीं हुई । फिरभी पतिको मुख नहीं दिखानेके विचारसे आधी रातको उठकर अपने उत्तम राजशाही वस्त्राभूषणोंका त्यागकर केवल सादे वस्त्र पहिन लिये और सबको सोते हुए छोड़कर स्वयं एकाकी चल निकली । चलते २ एक नदीके किनारे पर जा पहुंची । वहां पर कुछ समय तक ठहरकर नदीके जलके प्रवाहमें कूद पड़ी । तदनन्तर उसका मस्तक घूमने लगा । उसके नेत्रके सामने कुछ देवताई तेज आया फिर कुछ स्वप्नके पश्चात् उसने एक विचित्र वस्तु देखी । परम तेजस्वी एक देवी उसके नेत्रके सामने आकर खड़ी हुई और उसने मीरांबाईके गाल पर चुम्बन किया ! पीछे उसने हँसकर कहा कि;—मीरां तैने अपने स्वामीकी आज्ञा को मानकर अपना जीवन नष्ट करना चाहा है; किन्तु अभी तुझको संसारमें अधिक

महत्वका कार्य करना है। वह कार्य यह है कि मनुष्य जातिको सुखी बनानेवाला जो ईश्वर प्रेम है वह तुझे लोगोंको सिखाना चाहिये। यह कार्य तुझको ही करना है; इस लिये तू संसारमें जाकर उस कार्यको करनेमें प्रवृत्त हो! इतना कहकर देवी अदृश्य हो गई। तदनतर मीरांने नेत्र खोले तो सूर्योदय हो चुका था, सूर्य नारायण आकाशमें खूब तेजसे तप रहे थे। मीरां नदीके किनारे पर वह आई थी वह उठकर खड़ी हुई और अपने आसपासमें देखा तो वहांपर कोई भी प्राणी नहीं है। पीछे वह वहांसे आगे चलने लगीं। उसको मार्गमें कितनेक रबारीके लड़के मिले। उन्हें मीरांने कहा कि, मेरे प्रियपुत्रगण! मुझे वृन्दावनका मार्ग बतावोगे? वे लड़के उसकी प्रेममय वाणीको सुनकर प्रसन्न हुए और उसको पीनेके लिये दूध दिया तथा वृन्दावनका मार्ग बतलानेके लिये साथ चले। मीरांबाई मुखसे प्रभुके नामका उच्चारण करती हुई और भजन गाती हुई आगे चलती थी। वह जिस गाममें होकर जाती थी वहां पर उसके मधुर भजनोंकी मिठास फैल जाती थी। लोग अपना कार्य छोड़कर उसके भजन सुननेके लिये उसके आसपासमें पहुंच जाते थे। वैसे ही छोटे बालक अपने खेल कूदको छोड़कर उसके पीछे "हरि! हरि!" पुकारते चलते थे। लोग उसे प्रभु भक्त व देवी समझकर उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करते थे। कितनेक तो अनेक प्रकारकी भेट सामग्री व भोजनकी वस्तुयें लाकर उसके पास धरते थे; किन्तु मीरांबाई उन्हें उपकारके साथ फेर देती थी। वह केवल दूध पीकर रहती थी। कितने मनुष्य तो मीरांकी अलौकिक भक्तिसे आकर्षित हो अपने घरद्वार छोड़कर उसके साथ जानेको तैयार हुए। उनके साथमें नहीं जानेके लिये मीरांबाईने वहुत कुछ समझाया; किन्तु कुछ भी फल नहीं हुआ। एक के पीछे एक ऐसे उसके पीछे जानेवालोंकी संख्या सहस्त्रोंकी हो गई। जब वह वृन्दावनकी भूमिमें जा पहुंची तब वह एक देवीके समान दिखाई देने लगी। उसके सहस्त्रों अनुयायी उसकी चारों ओर अपने डेरे जमा कर ठहर गये और उसके भजनके अमृत रसमें मग्न हो गये।

मीरांबाईके वृन्दावनमें जा पहुंचनेके समाचार सारे देशमें थोडे ही समयमें फैल गये। उसके भजन गरीबोंके झोंपड़ोंमें और राजाओंके महलोमें समान रीतिसे गाये जाने लगे। जो लोग उसको चित्तोड़में देखकर उसकी प्रशंसा करते थे, जो लोग उसको देखनेके लिये भाग्यशाली नहीं हुएथे वे सब उसके दर्शन करनेके लिये आतुर होकर वृन्दावनमें आये। थोड़े ही समयमें उस पवित्र स्थलमें सहस्त्रों मनुष्य एकत्र हो गये। इस प्रकार मेवाड़की महाराणी मीरांबाईने अपने राज्यबलसे

नहीं, किन्तु एक भिक्षुक अबलाके भेषमें अपनी भक्तिके बलसे मनुष्य जातिके उद्धारके लिये इस जगत्‌को स्वर्ग बना दिया। उसके भजनोंसे वृन्दावनकी हवामें स्वर्गीय सौरभ आने लगी। उसके भजन सम्पूर्ण भारतवर्ष में गाये जाने लगे। चित्तोड़ भी उस अमृतमयी प्रसादीसे वञ्चित नहीं रहा। उसके हरएक महलोमें और गलियोमें हरएक मनुष्यके मुखसे "मीरां कहे प्रभु गिरिधरके गुन" इन शब्दोंसे पूर्ण होनेवाले पद सुनाई देते थे। चित्तोड़का महाराणा जहां २ जाता था वहां २ अपनी महाराणीका नाम सुनता था। अब उसको मालूम हुआ कि उसकी राणी एक ऐसे महाराज्यपर हुकूमत चलाती है कि जिसके सामने उसका मेवाडके समान राज्य भी कुछ वस्तु नहीं हैं। अब उसका निश्चय हो गया कि मीरांने मेवाड़के पवित्र राज्यकुटुम्बकी कीर्तिको कलंकित नहीं किया है; किन्तु सामने उसकी कीर्तिकी अभिवृद्धि की है। इस विचारसे उसने मीरांके साथ किये हुए व्यवहारके कारण उसको अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। पीछे वह मीरांबाईको मिलनेके लिये गुप्त भेष धारणकर पांवसे चलकर वृन्दावन गया और जहांपर मीरां एक मंदिरके आंगनमें बैठकर भजन गा रही थी वहांपर जा पहुंचा। पीछे धीरे२ मीरांके पास जाकर उनसे भिक्षा मांगी। तब मीरांने कहा कि, "मैं भी एक भिक्षुक अबला जाती हूं इसलिये आपको किसी श्रीमान् के पास जाकर मांगना चाहिये"। राणाजीने कहा कि:—एक सच्चा भिक्षुक अपने आश्रयदाताके पाससे सहायता मांगनेके लिये आता है। मीरांबाईने कहा कि, "अच्छा आप कहिये कि मैं आपकी किस प्रकार सहायता कर सक्ती हूं"? तब राणाजीने कहाकि, "मैं आपसे केवल क्षमा मांगता हूं"। पीछे राणाजीने अपने धारण किये हुए भेषको बदल दिया जिससे मीरांने उसे पहिचान लिया और प्रसन्न हुई। मीरां अपने पतिके चरणोंमें पड़ी और कहा कि, "प्रियनाथ! आपने मुझे याद की है यह जानकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुई हूं। उस समयका उन दोनोंका आनन्द विचार करनेपर पाठक स्वयं समझ सक्ते हैं।

इस प्रकार दोनों मिलकर वृन्दावनसे फिर अपने राज्यमें आये। वहांपर मीरांबाई अपने पतिके साथ प्रेमसे रहने लगी और राणाजी भी उसकी इच्छानुसार भगद्भक्तिके कार्योंमें उसकी सहायता करने लगा। तबसे मीरांबाई छ मास तक अपने राज्यमें रहती थी और छ मास वृन्दावन, द्वारिका प्रभृति यात्राओंके स्थलोंमें रहकर ईश्वरकी भक्ति करतीं थी। वह संसारको छोड़ देनके विचारका विरोध करती थी। वह लोगोंको ऐसा उपदेश करती थीं कि मनुष्योंको संसारके कार्यों को करते हुए

ईश्वर भक्ति करनी चाहिये। संसार व्यवहारको करते हुए ईश्वर में जो मनुष्य प्रेम करते हैं उनका सब प्रकारसे कल्याण होता है।

मीरांबाई निराश्रित साधु-सन्तोंको आश्रय देकर संतुष्ट करती थी। पूर्वमें कहा गया है वैसे जिसमें भक्तिका प्रवाह बहता है उनकी नसोंमें विशेष करके कविता रचनेकी शक्ति भी स्वतः उत्पन्न होती हैं। पवित्र भक्ति के प्रभावसे मीरांबाईकी कविता भी जलके प्रवाहके समान अविच्छिन धारामें निकलती थी। आज भी मीरांबाईके पद सम्पूर्ण भारतवर्षमें चारों ओर अत्यन्त आदरके साथ लोग गाते हैं। वह कविता करनेकी चतुरतामें और संगीतशास्त्रमें भी कुशल थी। उसकी मूल कवितायें हिन्दीमें हैं किन्तु उनमेंसे कुछ कवितायें धीरे २ गुजरातीमें मिल गई हैं। फिर वह गुजरातमें भी रही थी जिससे गुजराती भाषामें भी उसने कुछ कवितायें की हों ऐसा मालूम होता है। उसके पद नानक साहेब व कबीर साहेब के ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। उसने अपने कृष्णको प्रेम भक्तिसे गया है। नवीन भजनोंकी रचनाके लिये वह श्रीमद्भागवत सुनती थी और वृन्दावन तथा द्वारकाजी की सन्त-मण्डलीमें बैठकर वीणां लेकर भजन गाती थी। उसकी कविता मनोरंजक व रसिक है। वैसेही उसकी भाषा भी शुद्ध व सरल है। उसके पदोंमें प्रेमकी मात्रा अधिक है। उसके भजनोंको गुजरातकी स्त्रियां व साधु संत अभीतक प्रेमसे गाते हैं। कबीरपंथमें और नानकपंथमें जो क्रिया विधिके प्रकरण हैं उनमें भी उसके पदोंका संग्रह है। मीरांबाई सम्वत् १५२० में अपनी ४० वर्षकी उमरमें इस लोकको छोड़कर परधाममें चली गई। उसके शरीर त्यागके सम्बन्धमें कहा जाता है कि, वह अपने आराध्य देव रणछोड़जीके मंदिरमें जा स्तुतिकर इस लोकसे सदैवके लिये अदृश्य हो गई। इस बातकी सत्यताके विषयमें चाहे जो कुछ हो; किन्तु इस समय मेवाड़में श्रीकृष्णकी मूर्तिके साथ मीरांबाईकी मूर्ति भी पूजी जाती है। लोग कहते हैं कि मीरांबाई श्री कृष्णकी एकाग्र भक्तिसे अदृश्य हो गई है। उसकी स्मृति रखनेके लिये इस मूर्तिकी स्थापना की गई है। मीरांबाईके नांवसे एक स्वतंत्र सम्प्रदाय चल रहा है। उस सम्प्रदायके अनुयायी श्रीकृष्ण व मीरांबाईकी श्रद्धापूर्वक भक्ति करते हैं। इस प्रकार देवी मीरांबाई अपने ईश्वर प्रेम व पतिप्रेमके कारण संसारमें अपनी अखंड कीर्तिको स्थापित कर गई है। धन्य है मीरांबाई व उसकी उस भक्ति व शक्तिको।

मालती ।

जैसे आकाशस्थ नक्षत्रोंमें चन्द्र देदीप्यमान हो रहते हैं वैसे ही स्त्रियों के भीतर सती स्त्री सुशोभित हो रहती हैं । सती मालती भी वैसी ही सती शिरोमणि थी । परदुःख भंजन गंधर्वोंके राजा चित्रसेनको मालती नांवकी सुन्दर कुमारिका थी । उसके ऊपर माता पिताका पुत्रसेभी अधिक अनुराग था । वह नीतिसूत्रके मूल तत्त्वोंको जाननेवाली, व्यावहारिक कार्यों में कुशल, विद्याकलामें प्रवीण और सद्गुणोंके समुद्र समान थी । उसके पिताने उसका विवाह उपबर्हण नांवके एक उत्तम गांधर्वके साथ किया था । वह पतिव्रता अपने पवित्र आचरणोंसे पतिको प्रसन्न रहकर अनेक अप्रतिम सुख भोगने लगी । वह एकाग्र चित्तसे पतिमें प्रेम रखकर उसकी आज्ञानुसार समस्त कार्य करती थी । वह अपने सद्गुणोंके प्रभावसे समस्त लोगोमें प्रशंसाको प्राप्त हुई थी । एक समय ब्रह्मलोकमें महान् उत्सव हुआ । उस समय समस्त देव, देव-कन्या प्रभृति वहांपर एकत्रित हुए थे । वहांपर उपबर्हण भी अपनी पत्नी समेत गया था । सभाके समक्ष उर्वसी, मैना, मोहिनी और रंभा प्रभृति अप्सरायें गान, तान व नृत्य करती थी । उनमेंसे रंभाके रूप, लावण्य और नृत्यको देखकर उपबर्हण उसके ऊपर मोहित हो गया । उस समय वह अपना मनोभाव गुप्त नहीं रख सका। यह बात ब्रह्माजीने जान ली और उसको धिक्कार दिया कि, "हे विवेकहीन गंधर्व ! तूने लज्जाको त्यागकर सभाका अपमान किया । इसलिये तू यहांसे चला जा। हमें तू अपना मुख मत दिखला ।" ऐसा कहकर उसको शिक्षा दी । ऐसे अपमान व शिक्षाको सुनकर उसको मूर्छा आ गई ।

मालती अपने पतिकी ऐसी दशाको देखकर अत्यन्त विह्वल हो गई । पतिके शरीरका आलिंगनकर गलेसे लगकर विलाप करने लगी कि, "हाय ! यह आपत्ति कहांसे आपड़ी । हाय ! नाथ ! दीन दासीपर कृपाकर उठियें और मुझे धैर्य दीजिये । विना पतिके मातापिता व भ्रातादिका समागम भी सुखकर नहीं होता । हे नाथ ! मैं आपको सहस्रोंवार प्रणाम करती हूं आप मुझे कृपाकर अपनी शीतल-वाणीको एकवार सुनाइये । हे दीनबन्धो ! आप इस दीन दासीको इस दुःख समुद्रसे पार उतारिये । मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये मेरे पतिके अपराधकी मैं क्षमा मांगती हूं" इत्यादि प्रार्थनाकर वह जलकर मरनेको तैयार हुई । तब देवोंने दया की; क्यों कि

सतीके कोपसे राम सीताका वियोग हुआ, कौरव व रावणके कुलका नाश हुआ। इसलिये सतीको कुपित नहीं करना चाहिये ऐसा विचारकर देवोंने उपबर्हणकी मूर्छाका नाश किया और उसको पूर्वके समान बना दिया। पीछे मालती पतिके साथ आनन्दसे अपने घरपर गई और सुखसे समय व्यतीत करने लगी। इस प्रकार सती मालतीने अपने पतिको देवताओंके अपराधसे मुक्त किया।

पद्मा।

अनेरण राजाकी पद्मा नामकी एक गुणवती पुत्री थी, पिप्पलाद नामके वृद्ध मुनिने उसके साथ विवाह करनेकी याचना की। राजाने विचार किया कि इस वृद्धको मैं अपनी कन्या कैसे दूं? किन्तु उसके क्रोध के भयसे उसके साथ विवाह करदिया। पद्मा विवाहके पश्चात् अपने पतिके साथ वनमें चली गई। वहांपर जाकर नियम पूर्वक पतिसेवा करने लगी। इस प्रकार करते२ कई दिन व्यतीत हो गये। पीछे एक दिन धर्मराजाने विचार किया कि यह स्त्री वृद्धके साथ व्याही गई है। इसकी उसके प्रति कैसी बुद्धि है, यह देखना चाहिये। ऐसा विचारकर जब पद्मा गंगा तटपर स्नान करने गई थी तब उसके शीलकी परीक्षा लेनेके लिये धर्मराजा सुन्दर युवा राजाका भेष धारण कर रास्ते में आकर खड़े रहे और सतीको बुलाकर कहाकि, हे सुन्दरि! तेरा जीवन व्यर्थ है; क्योंकि तेरा पति वृद्धावस्थाके कारण चल नहीं सक्ता, उसका शरीर शिथिल हो गया है। इसलिये तू उसे छोड़कर मेरे साथ चल और संसारके सुख भोग। मैं तुझे अनेक प्रकार वैभव भोगनेका प्रबंध कर दूंगा। तू व्यर्थ अवस्था क्यों गुमाती है? उसके ऐसे वचन सुन सती क्रोधकर बोली कि, "हे दुष्ट! दुराचारी! तु कौन है? हे मूर्ख! अधम! तू यहांसे दूर हट! तेरा मुख देखनेसे भी मुझे प्रायश्चित करना पड़ेगा। ऐसा कहकर पद्मा चल निकली। तोभी उसने रास्ता नहीं छोड़ा। तब सतीने क्रोधसे कहा कि, हे दुष्ट! तू क्यों दुःखी होना चाहता है? रास्ता छोड़ दे अन्यथा मैं अपने व्रतके प्रभावसे तेरा नाश करूंगी। ऐसा कहने पर भी व समीपमें आने लगे। इससे सती क्रोधित हो उसके नाश करनेके लिये तैयार हुई। यह देख कर सभी लोग काम्प उठे। देवोंने आकर सतीका पूजन किया और प्रार्थना की कि,-ये धर्मराजा हैं। आपकी परीक्षा लेनेके लिये आये हैं, इत्यादि कहकर उसको

शान्त की। तब सतीने विचार किया कि धर्मका प्रभाव सर्वथा नष्ट होनेसे दुनियाकी महान् हानि होगी इसलिये कहा कि इसका कलियुगमें पाव भाग प्रभाव रहेगा। इस प्रकार सतीके सतीत्वको देखकर धर्मराजाने कहाकि, "मैं तेरे व्रतको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं और वरदान देता हूं कि तेरे समस्त कार्य सिद्ध होंगे। मेरे आशीर्वादसे तुझे अपने व्रतमें कोई भी विघ्न नहीं कर सकेंगे"। ऐसा वचन देकर धर्मराजा वहांसे चलते हुये। सती अपने आश्रममें आई और अनेक वर्ष पर्यन्त पतिके साथ विविध प्रकारके सुख भोगकर अपनी कीर्तिको अखंडित कर गई है। अहा! धर्मके विषयमें सतीकी भविष्य वाणी आज कलियुगमें सत्य होती जाती है।

ईला।

यह सती मनुकी कन्या थी। उसका विवाह वशिष्टके पुत्र शक्तिके साथ हुवा था। वह परम तेजस्वी, धार्मिक, नम्र स्वभाववाली और पतिव्रता थी। उसके उदरसे पारासरके समान विद्वान्, तेजस्वी, राजनीतिज्ञ और धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुए। सती ईलाने पाराशरको बाल्यावस्थामें अनेक प्रकार की उत्तम शिक्षा दे नीति निपुण नर श्रेष्ठ बनाया था। इस ऋषिके हृदयमें उसकी माताकी शिक्षाकी दृढ छाप पड़ी थी। जिससे व आगे चलकर उद्योगी, विद्वान् व ग्रन्थकार हुये। इस ऋषिने एक स्मृति बनाई है जो पाराशरस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध है। उन्होंने औरभी कई ग्रन्थ बनाये हैं। वे खगोल व नौका-शास्त्रमें प्रवीण थे और उन्होंने समुद्र पर्यटन किया था। इतना ही नहीं; किन्तु इन्होंने कई बेटोंकी शोध की थी। इस कार्य में उनकी स्त्री मत्स्यगंधाने बहुत सहायता की थी। ऋषि अपने अनेक सत्कार्योंके द्वारा सुप्रसिद्ध हो गये हैं। यह सब कुछ उसकी साध्वी माता ईलाका शिक्षाबलका ही प्रताप था।

ईलाने अपनी पुत्रवधू मत्स्यगंधाको पुत्रीके समान रखकर अच्छे यत्नसे पतिसेवा, गृहकार्य और धर्मनीति प्रभृति विषयों का उपदेश देकर उन कार्योंमें कुशल बनाई थी। माता व पुत्री के समान उन सास पतोहूमें परस्पर प्रेम था। ईला वहूका अपमान हो ऐसा कोई भी कार्य नहीं करती थी; वैसेही बहू भी अपनी सासको माताके समान समझकर उसकी मर्यादा रखती थी और उनको जो कार्य प्रिय हो उसे ही करती थी वह सासके सामने कभी जवाब नहीं देती थी और उसका अपमान कभी

नहीं करती थी। इन सास-बहूके आदर्श व्यवहारको देखकर लोग उनकी प्रशंसा करते थे और उनका उदाहरण देते थे। वर्तमान समयकी सास-बहुओंको इससे कुछ उपदेश लेना चाहिये।

ईलाने पतिकी सेवाकर उनकी आज्ञानुसार चलकर उनकी प्रीति सम्पादन की वैसेही कुटुम्बियोंमें और स्नेहीवर्गमें उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। सभी स्त्रियां उनकी सलाह लेकर काम करती थी। ऐसे अनेक सद्गुणोंके कारण ईला अत्यन्त प्रसिद्ध हो गई है।

लीलावती।

यह सती धारानगरीके विद्याव्यसनी महाराजा भोजकी पत्नी थी। वह अत्यन्त स्वरूपवती व तेजस्विनी थी; साथही विद्वत्ता, सत्यनिष्ठता, नीतिज्ञता, धार्मिकता व पातिव्रत्यमें परिपूर्ण थी। उसके उपर राजा भोजकी अत्यन्त प्रीति थी। सुप्रसिद्ध पण्डित कालिदास और अन्य विद्वानोंके बीचमें द्वेष-भाव चलता था। राजा भोज कालिदासजीको अधिक चाहते थे उसे अन्य विद्वान् सहन नहीं कर सके। उन्होंने कालिदासको राजासे दूर करनेका प्रपञ्च किया। एक दासीको मोतीके हार देनेकी आशा देकर कालिदासको राजा निकाल दे वैसी युक्ति रचनेके लिये समझाया। दासीने यह कार्य करना स्वीकार किया। एक दिन राजा भोज शयन कर रहे थे। उसको कुछ जागृतावस्था में देखकर दासीने अपनी एक सखीको सम्बोधन करके कहा कि, "सखि मदनमालति! दुष्ट कालिदास स्त्रीका भेष धारणकर अन्तःपुरमें लीलावती के पास जाता है"। भोज राजाने इस बातको सुना और विचार किया कि यह बात असंभव है फिर भी परीक्षा देखनेके लिये कालिदासको देशसे निकाल दिया। जब यह बात लीलावतीके जाननेमें आई तब उसने राजासे पूछा कि "महाराज! आपने अपने परममित्र कालिदासको देशमें से क्यों निकाल दिया? राजाने कहाकि, "मैंने सुना था कि कालिदास अन्तःपुरमें आता था"। राणी राजाके इन वचनोंको सुन हँसकर निःसंकोच होकर बोली कि, "महाराज! मैं अत्यन्त भाग्यशाली हूं कि आपके समान मुझे पति मिले हैं। आपको छोड़कर भला मेरा मन अन्यत्र कभी जा सक्ता है? कभी नहीं! जो स्त्री अपना धर्म समझती है वह कभी भी पर पुरुषकी इच्छा नहीं कर सक्ती। पतिव्रता किसी प्रकारकी आशा व लोभसे प्रेरित हो पापकर्म नहीं करती। क्षणिक सुखके

लिये कोईभी समझदार स्त्री अपने पतिको अप्रिय नहीं हो सक्ती । पतिव्रता स्त्री किसीके प्रपञ्चमें नहीं फस सक्ती और चाहे वैसा दुःख व बलात्कार हो, किन्तु सच्ची पतिव्रता अपने प्राण रहने पर्यन्त अपने धर्मका नाश नहीं कर सक्ती। जो स्त्री परपुरुष सहवासका पाप करती है वह स्त्री नहीं किन्तु पिशाचिनी है । ऐसी नीच वृत्तिवाली स्त्रीको धिःकार है। आपको मेरे प्रति संदेह उत्पन्न हुआ है, इसलिये आप मेरे विषयमें निर्णय किये विना यहांसे पधारेंगे तो मैं अपना प्राण त्यागूंगी।

भोजराजाने राणीका कथन स्वीकार किया। पतिव्रतरूप अग्निसे प्रदीप्त सुकोमल शरीरवाली लीलावती राणीने सभोंके समक्ष ईश्वर प्रार्थना की कि,—" हे सर्व शक्तिमान प्रभो ! आप संसारके साक्षीरूप हैं इसलिये यदि मैंने जागृत, स्वप्न और सुषुप्तिमें भी मेरा पति केवल भोजके सिवाय और कोई नहो तो आप मुझे सच्ची बताकर इस कलंकसे मुक्त करेंगे" इत्यादि वचन कहकर अनेक साधन व साक्षियोंके द्वारा भोज राजाको अपना सतीत्व दिखला दिया। अन्तमें राणी शुद्ध ठहरी और सभी कोई उसकी प्रशंसा करने लगे। भोजराजाने शरमिंदे होकर पश्चात्ताप किया। राणीने उसे शान्त किया। वह अपनी स्त्री ऐसी सती है यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और स्वर्गके समान सुखों में दिन निर्गमन करने लगा इस प्रकार लीलावतीने अपने सतीत्वको बताकर अपने पतिकी प्रीति सम्पादन की थी।

अंशुमती ।

यह प्रतापी सती तपोवनमें रहनेवाले सुव्रत नांवके मुनिकी पतिव्रता स्त्री थी। उसने बाल्यावस्थामें भृगुऋषिके पास वेद, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र प्रभृतिका अध्ययन किया था। उनमें बुद्धिचातुर्य प्रभृति प्रशंसनीय गुण थे। उसका स्वभाव प्रारंभसे ही परमार्थी था। वह पति-सेवा, गृहकार्य प्रभृति पतिव्रताके करनेके कार्योंमेंसे निवृत्त हो अवकाशके समय स्वामीकी आज्ञा लेकर दीन दुःखियोंकी सहायता करती थी। वह भूखों को अन्न, प्यासोंको जल, वस्त्ररहितोंको वस्त्र और रोगियोंको औषध देकर उनकी वेदनाको शान्त करनेका यत्न करती थी। वह परोपकारी थी और मनुष्योंमें सद्गुणोंकी वृद्धि हो ऐसे विचारसे उपदेश किया करती थी। वह अपने उपदेशमें कहती थी कि,—

समस्त प्राणियोंके ऊपर समान भाव रखकर दया करनी चाहिये। दया यह

धार्मिक मनुष्योंका सामर्थ्य है । अपने पर किसीने निर्दयता की हो तो उसका बदला दवासे देना चाहिये । जैसे चन्दन वृक्षको कुहाड़ी काटती है फिर भी उसको वह सुगन्धी देता है वैसेही साधु पुरुषोंको अपना गुण दुश्मनोंको भी दिखाना चाहिये। पुत्र पुत्रियोंको बाल्यावस्थामें अपने कार्योंसे निवृत्ति ले करके उत्तम शिक्षा दीजिये। माता, पिता, गुरु और बड़ोंकी मर्यादा रखकर उनको मान देते रहिये । आप प्रति-दिन विवेकभरे प्रीतियुक्त वचन बोलिये । मनुष्य विषयसुखमें लुब्ध हो अपनी इन्द्रि-योंके द्वारा अनेकप्रकारके अधर्म व अनीति करता है । इसलिये इन्द्रियोंको अंकुशमें रखकर इंद्रिय दमन कीजिये । इन्द्रियजीत होनेवाले पुरुषको सदैव सुख प्राप्त होंगे । परमार्थबुद्धिका कभीभी अनादर नहीं करना चाहिये । जो मनुष्य दूसरोंको दुःख नहीं देकर सबका भला चाहता है वह अक्षय्य सुखको भोगता है । मनोधर्मको वशमें रखना चाहिये । विषयके पदार्थों में आसक्ति रहना यह बंधनका कारण है और उन पदार्थोंसे विरक्त रहना वह मोक्षका साधन है । इसलिये ज्ञानके द्वारा विषयके पदा-र्थोंसे अपने मनको अलग रखना, सद्गुणसे चलनेपर अत्यन्त दरिद्रता आपड़े तोभी दुर्गुणके ऊपर चित्तको मत लगाना; क्योंकि दूसरा अवतार धारण करने में माता, पिता, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री या सगा सम्बन्धी कोई साथी नहीं होता । केवल किये हुये सत्यासत्य कर्म ही साथमें जाते हैं । किये हुए कर्म ही आत्माके साथ लगे रहते हैं इसलिये सत्कर्मको करनेकी चेष्टा करनी चाहिये । सत्कर्म ही सच्चा साथी है । मोक्षकी प्राप्तिके लिये परमात्माका ध्यान करना, धर्माचरण करना चाहिये । धर्मके नाश होनेसे इस शरीरमें रहे हुये आत्माको लगनेवाले पाप और धर्मके अनुसार चलनेसे होनेवाले पुन्यका विचार एवं दुर्गुण से आत्मका जन्मान्तर होता है इस बातका बुद्धिसे विचार करके सदैव सद्गुण के ऊपर प्रीति रखकर विचार, वाणी और कर्म से पवित्र आचरण करना चाहिये । परमात्मा प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें रहा हुवा है उसे मनुष्य नहीं जानते किन्तु मनुष्य जो कुछ करता है उसे वह देखता हैं, और ध्यान में रखता है । आत्मा उसका साक्षी हैं और उसके आश्रय का वह स्थल है । वह मनुष्यका सबसे महान् साक्षी है । आप अपनी इच्छानुसार आचरण न करें । मनुष्य अपने कर्मके योगसे सुख दुःखको प्राप्त हो रहा है वह अपने आचरणोंके फलको भोगता है । अधर्मके द्वारा सुख प्राप्त करनेकी इच्छा रखने वाले मनुष्य कभी भी सुखी नहीं हो सक्ते। पाप-बुद्धि के मनुष्य कदाचित् तुरंत दुःखको न प्राप्त हों तो भी आगे पीछे उस पापके फलरूप दुःखको भोगते हैं । इसलिये प्रतिदिन प्रातःका-लमें उठकर पति और परमेश्वरसे मांगना चाहिये कि मुझे बुरी बुद्धि न देकर मुझसे

परोपकारका कार्य कराइये। दया तथा धर्मको धारण कराइये और आपके ऊपर मेरा प्रेम हो ऐसी मेरी बुद्धि हो। इस प्रकार आचरण करनेसे पति और परमेश्वर तुम्हारे ऊपर अत्यंन्त प्रेम करेंगे। अंशुमती स्त्रियोंको इस प्रकारका उपदेश देनेसे संसारमें प्रसिद्ध हुई थी। उसको सब कोई मान देते थे। वास्तवमें इस सतीका उपदेश अत्यंत मनन करने योग्य है।। धन्य है ऐसी साध्वी स्त्रीको जिसने अपना जीवन परमार्थके कार्यमें लगाकर उसे सुफल बनाया!

सत्यव्रती।

बंगाल प्रदेशमें मालहदके भीतर गौड़में रामानन्द नामक एक परम वैष्णव भक्त रहते थे, उनको कितनीक भूमि दानमें मिली थी, वे धार्मिक पुरुष साधू-संतों को अन्नपान वस्त्रादि प्रभृति देकर उनकी सेवा करते थे। जिससे उनका नाम देशमें फैल गया था। उनकी स्त्रीका नाम सुनीति देवी थी, वह परम साध्वी स्त्री थी। वह अनेक प्रकारके व्रत व अनुष्ठान करती थी। अपने गांवके आसपासमें मनुष्योंको भेजकर दीन दुःखियोंको अन्न आदि भेजती थी, और सब किसीके भोजन करनेके पश्चात् स्वयं अपने हाथसे रसोई बनाकर अपने पति प्रभृतिको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भोजन करती थी। उसका सदैव यही नियम था। इस साध्वीको प्रेमानंद नामका पुत्र और प्रभावती नामकी पुत्री थी। प्रेमानंद अत्यंत विद्वान् था। वही इस परम साध्वी सत्यवतीका पति था। यह कुटुम्ब अत्यंत शांति सुख भोग रहा था; किन्तु संसारमें मनुष्यके जीवनमें ईश्वर इच्छासे परिवर्तन हुवा करता है। किसीके भी सदैव समान दिन नहीं जाते। विपत्ति सबके शिरपर गुप्त रीतिसे लटक रही है। किस समय किसके ऊपर पड़ेगी यह कोई नहीं कह सक्ता। ऐसाही समय इस धार्मिक कुटुम्बके ऊपर भी आपड़ा। जिसे देखकर किसका हृदय दुःखित न होवे? किसीको यह भी शंका उपस्थित हो सक्ती है कि क्या धार्मिक कुटुम्बकी भी प्रभु दुःखसे रक्षा नहीं करते? धार्मिक कुटुम्ब ही जब दुःखी हो तब परमेश्वरको मंगलमय कैसे कह सक्ते हैं? यह शंका मानव मंडलके इतिहासको जो जानता है, वह कभी नहीं कर सक्ता। बंगालमें कम्पनी सरकारका राज्य था, उस समय बंगालमें महा दुर्भिक्ष पड़ा था। भूमिसे कुछ पैदायश हुई नहीं, और जमीनदारोंको कर देना आवश्यक था। घरमें

देने योग्य वस्तु नहीं रही। फिरभी कर वसूल करनेवाला देवीसिंह माल मिलकियतको नीलाम कर व मार पीटकर कर वसूल करता था। कितनेक प्रतिष्ठित जमीदारोंकी स्त्रियोंको कचहरीमें लेजाकर सिपाही लोग बेइज्जत करते थे। ऐसे जुल्मसे देशमें त्राहि२ हो रहा था। रामानंद स्वामीको दानमें मिली हुई जमीनपर कोई कर नहीं था: फिर भी देवीसिंहने उनसे कर मांगा। रामानंदने जुल्मके भयसे रानी भवानीसे पचास हजार रुप्या ऋण लेकर ३ वर्षका कर दिया। फिर भी देवीसिंहने अधिक कर मांगा। रामानंदके पास रुप्या नहीं था जिससे देवीसिंहने उसका सर्वस्व लूटकर मारपीट करनेकी आज्ञा दी। इस भयसे क्या करना ? यह उसे नहीं सूझा; किन्तु प्रेमानंदने हिम्मत दी कि आप कुछ भय न करें, मैं उसके पास जाता हूं; आप मेरी कुछ भी चिंता न करें, बहिन व मेरी स्त्रीको लेजाकर रंगपूरमें जाकर किसी शिष्यके यहां रहें। इस प्रकार कहकर वह चलता हुवा। उसको सिपाही लोग कचहरीमें ले आये। कचहरीमें जमींदारोंकी आठ स्त्रियोंको नग्न कर उन बेचारियोंका सिपाही लोग अपमान करते थे। स्त्रियां लज्जाकी मारी हाथसे आंखे ढांकती हैं, और आंसुओंकी धारायें बहा रहीं हैं। उन कांपती हुई स्त्रियोंमेंसे ४–५ स्त्रियां लज्जाकी मारी बेशुध हो भूमिपर गिर गई; और मरण तुल्य हो गई। स्त्रियोंकी ऐसी दुरावस्था और इस भयंकर दृष्यको देखकर प्रेमानंद अपने मनको वशमें नहीं रख सका। वह सिंहके सदृश गर्जना करके बोला कि, "हे नर पिशाच! नराधम! अबलाओंके ऊपर ऐसा जुल्म करता है ? अभी तेरा खून करता हूं"। ऐसा कह छुरी लेकर देवीसिंहको मारनेके लिये झपटा। जैसेही वह देवीसिंहके पास पहुंचा वैसे ही सिपाहियोंने आकर उसे गिरफ्तार कर लिया। गिरफ्तार हो जानेपर भी यह उसे धिक्कार दिया करता था। सिपाही लोग उसको कारागारमें ले गये जहांपर भयंकर सोंटोंसे लोग पीटे जाते थे। जिससे उनके चहरे सूज–फूल जाते थे और कई मृत्युके शरण होते थे। प्रेमानंदको भी खूब मार पड़ी, आठ कैदी उसी समय इस जुल्मसे मर चुके थे। यह सब समाचार रामानंद व सत्यवतीको मिले; उन्होंने जाना कि प्रेमानंद मर गया होगा। इससे रामानंद आकर उसके शबकी शोध करने लगा। किन्तु शरीरके फूल जानेसे पहिचान नहीं सका; इससे शोकातुर हो अपने स्थानपर लौट आया। सत्यवतीका विचार था कि यदि पतिका शव मिल जाय तो मैं उनके साथ जलकर 'सती' होऊं; किन्तु शबके नहीं मिलनेसे बिचारी वैधव्य धर्मका पालन करने लगी। उस समयके दु:खोंका अनुमान पाठक स्वयंही कर सक्ते हैं।

देवीसिंहके सिपाहियोंको यह पता लगा कि, इस ग्राममें कोई रूपवती युवती आई है। उसको बलसे पकड़ कर देवीसिंहके पास भेज देनेका वह मौका देखने लगे। देवीसिंह बहुत खराब मनुष्य था; अच्छे२ प्रतिष्टित घरोंकी स्त्रियोंको बलात् पकड़कर एक स्थानमें बंद कर रखता था; उसमेंसे कितनीक, अधिकारियोंको राजी रखनेके लिये, उनके पास भेज देता था। परम सुंदरी सत्यवतीकी अवस्था २६ वर्षकी थी, किन्तु वह देखनेमें बालिकाके समान थी। सत्यवती, सिपाही पकड़नेको आवें उसके पहिले ही, स्वशुरके साथ दीनाजपुरके जंगलमें चली गई। सत्यवतीने निश्चय किया था कि 'यदि सिपाही लोग पकड़नेको आवें तो उसके पहिलेही प्राणोंको छोड़ देना। उस जंगलमें अपने स्वशुरके साथ बहुत दिनतक रही। एक समय सायंकालमें यह समाचार मिला कि कम्पनीके सिपाही यहां आ रहे हैं। यह सुनकर रामानंदने सत्यवतीसे कहा कि, "इस वृद्ध दासी और विश्वासी सेवक जग्गा और रूपाके साथ काशी चली जावो"। सत्यवतीने रोते हुए उत्तर दिया कि, "पूज्य पिताजी! मैं इस पापी जीवनको किस लिये धारण कर रही हूं? विधवाका जीवन विड़ंबना मात्र है। आप मेरे स्वशुर नहीं हैं, मेरे पिता नहीं हैं, किन्तु आप मेरी माता हैं। माताके पास पुत्री जैसे निष्कपट मनसे सब कुछ स्पष्ट कहती है वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि मैं आपको छोड़कर कहीं भी नहीं जाऊंगी; यदि आपको वह कैद करेगा तो मैं भी कैदमें रहूंगी। मैं उस स्थितिमें यदि आपको १ अंजलीभर जल दे सकूंगी तो अपनेको कृतार्थ मानूंगी। रामानंदने कहा, बेटा! देवीसिंह प्रतिष्ठित घरकी स्त्रियोंको खराब इच्छासे पकड़ता है। सत्यवतीने क्रोधसे कहा कि, "उस दुष्ट देवीसिंहकी कुछ भी शक्ति नहीं है कि वह मेरे धर्मका नाश कर सके। यदि स्त्रियां अपनी इच्छासे धर्मके मार्गको न छोड़ना चाहें तो संसारमें कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जो उनके धर्मका नाश कर सके; बारह वर्ष तक अनेक विपत्तियोंको और अनेक प्रकारके कष्टोंको सहन करनेसे मैं अब देखती हूं कि स्त्रियोंकी धर्म रक्षाका सम्पूर्ण भार स्वयं परमात्माने अपने हाथमें रक्खा है। दुर्बलका बल केवल एक ईश्वरही है; इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। यदि मैं अपनी इच्छासे अपने धर्मको छोड़ना न चाहूं तो कोईभी मेरे धर्मका नाश नहीं कर सक्ता; किन्तु मुझे दुःख केवल यही है कि अभी भी इस हत्भागिनीके लिये आपको कितना दुःख सहन करना पड़ेगा?" इतना कहते ही वह मूर्छित हो पृथ्वीके ऊपर गिर पड़ी, किन्तु थोड़ी देरमें सावधान होकर बोली कि, हा! परमेश्वर इस हत्-भागिनी के लिये आपने रूप और सौन्दर्य किस लिये दिया? मेरा रूप और

सौन्दर्य जिसके लिये है वे तो चले गये, फिर मुझे इस रूप और सौन्दर्यकी क्या आवश्यक्ता है, मैं इसी समय अपनी नाक काट डालूं और शरीरको कुरूप बना दूं इस प्रकार कह कर अपने केशोंको नोंचने लगी व जोरसे शिरको कूटने लगी। रामानंद ने हाथ धरकर ऐसा नहीं करनेका उपदेश देकर शांत किया।

सत्यवती कहने लगी कि, हे परमेश्वर! मैं उनके साथ क्यों नहीं जल मरी? यदि उसी समयपर अपने प्राणोंका त्याग किया होता तो आज यह दशा क्यों होती। यदि मुझे उसी दिन आपने साथ लेजाकर उस मृत शरीरकी शोध की होती तो मैं अवश्य उनके मृतक शरीरको पहिचान लेती। मैं उनके शिरपरके बालोंको सैकड़ों मनुष्योंके बालोंमें पहिचान सक्ती थी। उनके हाथकी अंगुलियाको देखकर मैं निश्चय कर सक्ती थी कि यही मेरे प्राणनाथकी अंगुलियां हैं। रामानंदने कहा कि, बेटा! तो क्या पिता स्नेहसे भी पत्नीका प्रेम इतना सूक्ष्म दृष्टिवाला है? माता, पिताओंका प्रेम क्या पत्नीके प्रेमके सामने पराजित होता है? यह कह कर उसको विलंब न कर तुरंत चलनेके लिये समझाई। तब सत्यवतीने जाना कि स्वशुरके साथ नहीं रह सक्ती, इससे निराश हो वृद्ध दासी और नोकरको साथ ले जंगलमें चली गई, और जहांपर किसीके भी आनेकी हिम्मत नहीं हो सक्ती ऐसे भयंकर स्थानमें अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये झोंपड़ी बनाकर रहने लगी। जो सत्यवती एक दिन ठंडीके समय गरीबोंको गर्म वस्त्र देनेमें सहस्त्रों रुप्योंका खर्चा करती थी आज उसीके पास शीत निवारणार्थ यथेष्ट वस्त्र भी नहीं हैं। ऐसी स्थितिमें भयंकर स्थानमें दिन निर्गमन करने लगी। उसके हृदयमें प्रेम और भक्तिका प्रवाह बह रहा था। उसीसे इन समस्त संकटोंको भूलकर केवल एक स्वशुरके दुःख की ही चिंता करने लगी। रामानन्द सत्यवतीके विदा होनेके पश्चात् झोंपड़ेके बाहर बैठकर भजन कर रहा था, वहां सिपाहियोंने आकर उसे पकड़कर कैदमें डाल दिया; उसने वहांपर अन्न, जल नहीं लिया जिससे वह अत्यंत अशक्त हो गया। इस समाचारको सुनकर सत्यवतीने अपने प्राण जाने पर्यंत परिश्रम कर उसको छुड़ा लानेकी और उसमें कोईभी अपने धर्मका नाश करनेके लिये आवे तो आत्म-हत्या करकेभी अपने धर्मकी रक्षा करनेका निश्चय कर वहां जानेको तैयार हुई।

सत्यवतीने पुरुषकी पोशाकको धारण किया; और वृद्ध दासी तथा दो विश्वासी सेवकोंको साथमें लेकर जहां स्वशुर कैद था वहां आ पहुंची; कैदखानेसे थोडी दूरपर सबको छोड़कर स्वयं जैलके पास आई। जैलका जमादार रामसिंह अत्यंत दयालु और अच्छे स्वभावका था उसने पन्द्रह वर्षके स्वरूपवान लड़केको

देखकर पूछा कि तू कहां रहता है ? तेरा नाम क्या है ? और किस लिये आया है ? लड़केने कहा हजूर ! मेरा नाम नानकू है और मैं गया जिलामें रहता हूं; मेरे माता-पिता पूर्णियाके जमींदार थे, वे मुझे छोटी अवस्थामें छोड़कर मर गये इसीसे मैं नोकरीकी शोधमें निकला हूं" । रामसिंहने लड़केके रूप और लावण्यताको देखकर कहा कि, "क्या तू मेरे पास रहेगा ? और क्या तनखाह लेगा ? नानकूने रहना स्वीकार किया और कहा कि आप जो कुछ देवेंगे वही लूंगा । पीछे नानकू प्रतिदिन रामसिंहकी सेवामें भांग तैयार कर देने लगा । उसकी भांग कर देनेकी चतुराईसे रामसिंह बहुत प्रसन्न हुवा और अपनी स्त्रीको कहा कि, इस नानकूको अपने बालकके समान रखना । इस प्रकार उसने रामसिंहकी प्रीति सम्पादन की । एक समय औसर देखकर कैदखानेमें जा रामानंदकी स्थिति देखी और उसे बेशुधावस्थामें देखा । यह देखकर सत्यवतीको अत्यंत दुःख हुआ, किन्तु किसीको मालूम नहीं होने दिया । कैदखानेके ऊपर सख्त पहरा था फिरभी उसने रामानन्दको निकाल लेजानेकी युक्ति रची । रूपा और जग्गाको प्रथमहीसे सावधान कर रक्खा था; समयके आते ही रामसिंह और पहेरेदार जानने न पावें उस प्रकार बेशुध पड़े रामानंदको आधी-रातको लेकर जग्गा, रूपा और सत्यवतीने चल दिया । सिपाहियोंको समाचार मिले और उन्होंने पीछा किया किन्तु उनको भुलाकर पाडुवेके जंगलमें आपहुंची । जङ्गलमें एक झोंपड़ी देखने में आई, जिसमें एक विधवा स्त्री योगिनीके भेषमें शिवजीकी आराधना करती हुई बैठी थी । वास्तवमें किसी देवीकी मूर्तिके समान यह मालूम होती थी । सबने हिम्मत करके उसके आश्रममें जाकर उससे बातचीत की । ये लोग प्रेमानंदको मरा हुवा समझते थे, किन्तु वहतो प्रथमहीसे कैदखानेमेंसे निकल कर चला गया था और फिर गिरफ्तार होकर कलकत्तेकी जैलमें जीवत है, यह समाचार उस योगिनीके द्वारा सुनकर सब कोई प्रसन्न हुये । अब सत्यवती स्वामीको उद्धार करनेके लिये श्वशुरकी आज्ञा लेकर तैयार हुई और साथ में केवल एक जग्गाकोही लिया ।

विपत्तिही मनुष्यका सच्चा मित्र है, विपत्ति ही मनुष्यका सच्चा गुरू है और विपत्ति ही मनुष्यका रक्षक है । इस विपत्तिने ही सत्यवतीको अलौकिक साहस प्रदान किया था, इस साहससे ही सत्यवती दिनरात चलकर तीन दिनमें कलकत्ते आ पहुंची । उसने पूर्ववत् पुरुषकी पोशाक धारण कर अपना नाम रामकृष्ण अधिकारी रक्खा था । कैदियोंको छुड़ानेके लिये सुप्रिम कोर्टमें दरखास्त कर इजाजत हासिल करनी पड़ती थी, उसके सिवाय काम नहीं चल सक्ता था । उस कोर्टमें दरखास्त

देनेमें रुप्याकी जरूरत थी, परन्तु रुप्या इसके पास बिलकुल ही नहीं थे। फिर कलकत्तेकी जैल देवीसिंहकी जैलके समान नहीं थी इससे उसको बहुत चिंता हुई। कुछ समयके पश्चात् गंगा गोविंदसिंहकी माताका श्राद्ध था, उस प्रसंगपर सैकड़ो ब्राह्मण दक्षिणा लेनेके लिये जाते थे। वहांपर सत्यवती ब्राह्मणके लड़केका भेष धारण कर स्वामीको जैलमेंसे छुड़ानेकी याचनाका विचार कर वहां गई। किन्तु उसकी वह इच्छा पूर्ण नहीं हुई। इससे अत्यंत निराश हो शीत व धूपको सहन करती रात दिन रास्तेपर एक वृक्षके नीचे बैठकर समय व्यतीत करने लगी। खाना, पीना और निद्राका उसने त्याग किया था और विविध प्रकारके शारीरिक व मानसिक कष्टोंको सहन कर रही थी। इस प्रकार २१ दिन तक दुःख भोगा; सदैव पतिका उद्धार किस प्रकार करना चाहिये? इसी बातका विचार कर रही थी। एक दिन पतिको छुड़ानेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करती थी, उतनेमें दैवयोगसे एक प्रतिष्ठित मनुष्य निकला, उसके हाथमेंसे आवश्यकीय कागज़ात गिर गये परन्तु उसका उसको ध्यान भी नहीं था। किन्तु वे सत्यवतीकी दृष्टिमें पड़नेसे उसने वे कागजात उस प्रतिष्ठित मनुष्यके पास भेज दिये, जिससे वह अत्यंत प्रसन्न हुवा और कहा कि ये कागज मेरे बहुत जरूरी थे, इन कागजोंके जानेसे मेरा सर्वस्व नष्ट हो जाता। गंगा गोविन्द-सिंह मेरा परम शत्रु है, वह अवश्य मेरा अनिष्ट करता। महाराज! आपको जो कुछ चाहिये सो मुझसे मांगो। सत्यवतीने कहा कि मेरा आत्मीय यहांकी कैदमें है, उसको छुड़ानेका उपाय बताइये। उस मनुष्यने कहा कि आप कुछ भी चिंता न करें। मैं उसका उपाय करूंगा, आप मेरे साथ चलिये। सत्यवती उसके साथ गई। उस मनुष्यने साहबको सब हाल विदित किया और जैलमेंसे निकालनेका हुक्म लिखवा लिया। उसे रामकृष्ण अधिकारी और जग्गाने लेजाकर जैलके अधिकारीको दिया। उसने प्रेमानंदको छोड़ दिया। सत्यवतीने जग्गाको पहिलेहीसे समझा रक्खा था कि तू मेरा परिचय उन्हें मत देना। उस प्रकार दोनो जाकर प्रेमानंदके पास खड़े रहे। बातचीत परसे प्रेमानंदने जग्गाको पहिचान लिया। जग्गाने सत्यवतीका यथार्थ परिचय न देकर उसको रामकृष्ण अधिकारी ही बताया। यद्यपि प्रेमानंद उसके सामने देखा करता था, किन्तु बहुत दिनसे बिछुडनेके कारण और सत्यवती भी दुःखकी मारी अत्यंत दुर्बल हो गई थी इत्यादि कारणोंसे यह पहिचान नहीं-सका। उसने समझा कि यह मेरा कोई सम्बधी मुझे छुडानेको आया होगा।

सत्यवती अपने पतिके मुखकी ओर देखा करती थी। वह स्वामीके दर्शनसे इस दुरावस्थामें भी अपार आनंद पाती थी। साध्वी स्त्रियें जब अपने स्वामीका दर्शन

करती हैं, तब उनका हृदय आनन्दसे उछलने लगता है। सत्यवतीने आज १२ वर्षमें पतिका दर्शन किया है, वह जिसको मरा हुआ समझती थी उसे आज जीवित देखा इससे उसका हृदय आनन्दसे उछल रहा था। रास्तेमें कितनीक बातचीत होनेके पश्चात् पुरुषके भेषको धारन की हुई सत्यवती स्वामीके गलेसे चिपक गई और हर्षके आंसु गिराती हुई बोली कि, स्वामिन् ! पहिले अज्ञानताके कारण मुझसे सेवा नहीं हो सकी होगी; किन्तु मैंने विपत्तिमें पड़कर सोच लिया है कि, आप ही मेरे सच्चे देव हैं, आपकी मैं छायाके समान आपका पदानुसरण करूंगी, आपके समस्त कार्योंको भूल जाउंगी, आप मेरे अपराधोंके लिये मुझे क्षमा करेंगे। प्रेमानंद अपनी स्त्रीकी इस दशाको देख प्रेमाश्रु गिराने लगा। ऐसी स्थितिमें दोनो शोक तथा मोहसे स्तब्ध हो गये। कुछ समयके पश्चात् सत्यवतीने कहा कि, प्राणनाथ ! आप अब शीघ्र ही पधारियें; क्योंकि पिताजी आपका स्मरण कर रहे हैं। पीछे वे तीनों जहां देव कन्या और रामानन्द थे उस जंगलमें आये। यह देखकर रामानन्द प्रभृतिके हर्षकी सीमा न रही। सत्यवतीको सबने धन्यवाद दिया। इस प्रकार सत्यवतीने अपने सतीत्वकी रक्षा की; उसने अनेक प्रकारके कष्टोंको सहकर प्राणोंकी भी अपेक्षा नहीं कर पति और अपने स्वशुरको जैलमेंसे निकालकर महान् चातुर्यताका परिचय दिया। जो गुण अबलाका मनोहर भूषण है, जिस गुणसे अबला पवित्रतासे इस रोग, शोकवाले संसारमें सुख व शांतिका राज्य फैलाती है, उन समस्त सद्गुणोंसे यह साध्वी सदैवके लिये अलंकृत थी। उन्हीं सद्गुणोंसे वह संसारमें अक्षय कीर्तिको रख गई है !।

दुःशला।

यह हस्तिनापुर (दिल्ली) के राजा धृतराष्ट्रकी पुत्री थी वह गांधारी जैसी साध्वी माताके हाथ नीचे शिक्षाको प्राप्त हुई थी। वह अत्यंत धर्म और नीतिको पालन करनेवाली और पतिव्रता थी। उसका विवाह जयद्रथके साथ हुआ था। जयद्रथ अत्यंत अविचारी था। यह क्षत्रिय बाला धर्म और शौर्यादि सद्गुणोंके द्वारा अपने पति प्रभृतिको हिम्मत देकर कुटुम्बकी ही नहीं, किन्तु सम्पूर्ण राज्यकी रक्षा करनेमें सहायक थी। उसने

अपने सहोदर भाई कौरवोंकी कुबुद्धिको देखकर कहा था कि, " तुम राज्य सुख के लिये कितना अधर्म करते हो ? द्रौपदी पतिव्रता, सत्य और प्रेमकी मूर्ति है उसकी लज्जाका नाशकर उसे दुःख देनेसे विपरीत फलको भोगना पड़ेगा। सच्चे शूरवीरोंमें कोमलता व क्षमाका गुण अवश्य होना चाहिये। उन्हीं गुणोंको मैं तुम्हारे पास नहीं देखती। नीति और सद्गुणका सदैव अनुसरण करना चाहिये। जिसका नाम है उसका नाश होगा यह संसारका साधारण नियम है, फिर भी सद्गुण व नीतिके रक्षण करनेवालोंका नाम नष्ट नहीं होता। किसी भी मनुष्यके किये हुए सत्कर्मोंके द्वारा जो उसे कीर्ति प्राप्त होती है वह नष्ट नहीं होती; यद्यपि वह उसका पंच-भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है, किन्तु सूक्ष्म शरीर कभी भी नहीं नष्ट होता। जो मनुष्य अपने जीवनको उत्तम रूपसे चलाता है, वह अपने संतानोंके लिये उत्तम वारसा छोड़ जाता है। मनुष्यको सदैव उत्तम मनुष्योंका समागम कर उत्तम विचार करना चाहिये। खराब संगति करनेवाले मनुष्य स्वयं नष्ट होकर अपने आश्रियोंका भी नाश करते हैं। जिसके कुलमें लड़कियां व स्त्रियां दुःखसे निःश्वास त्याग करती हैं उसके कुलका नाश होनेमें कोई विलंब नहीं लगता। आप कुटुम्बमें क्लेशकर द्रौपदीके समान साध्वी स्त्रीको दुःख देना चाहते हैं, यही इस कुलके नाश होनेका कारण होगा। यदि आप अपना भला चाहते हैं, तो क्लेशको छोड़कर सदाचारका पालन कीजिये। सदाचारही मनुष्य जीवनको सार्थक करता है "। इस प्रकार उसने अनेक सुबोधक वचन कहे; किन्तु **विनाशकाले विपरीत बुद्धिः** इस कथनानुसार उस सतीका उपदेश उन्होंने नहीं सुना।

फिर जब जयद्रथने द्रौपदीका वनमें हरन किया, और पांडवोंके आजानेसे उसे छोड़कर भाग आया, उस समय भी साध्वीने उससे कहा था कि, स्वामि ! द्रौपदीके समान सतीका हरन करनेकी जो आपको कुबुद्धि सूझी है इसको मैं अपशकुन समझती हूं। आपके इस कृत्यकी शिक्षा अवश्य भीम दिये विना नहीं रहेगा। पर स्त्रीकी अभिलाषा रखनेवाला कोन सुखी हुवा है ? इंद्र, चंद्र, प्रभृति भी इसी कृत्यसे दुःखी हुये हैं। पर स्त्रीके समागमकी अभिलाषासे शरीरका रूप जाता है, प्रतिष्ठाकी हानि होती है और उत्तम कर्मोंका लोप होता है, और ऐसे कर्म करनेवालोंके ऊपर परमेश्वर अप्रसन्न हो जाते हैं, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, इसके सिवाय चित्तमें व्यग्रता रहती है; और सब प्रकारसे उसका अनिष्ट होता है।" इस लिये आप ऐसा अधमाचरण कभी न करें यही मेरी प्रार्थना है। फिर आप युद्धमें भी किसी प्रकारका अधर्माचरण न करें। युद्धमें मरणका भय कभी नहीं करना चाहिये, इस संसारमें

कोईभी अमर नहीं है; किन्तु जिसने उत्तम कार्य किये हैं वही अमर है। क्षत्रिय-पुत्रको रणभूमिमेंसे पलायन करनेकी अपेक्षा शरीरका त्याग करना ही श्रेय है। मृत्युसे मरनेकी अपेक्षा युद्धमें मरना अच्छा है, उससे कीर्ति बढती है। स्वामिन्! यह आप निश्चय समझिये कि स्वर्गमें भी मैं आपके साथ रहूंगी। इसी प्रकार इस सतीने धर्म नीति और विचारके अनेक बचन कहे थे, जिससे उसके आत्मबलकी और अलौकिक शक्तिकी तुलना हो सक्ती है। धन्य है, ऐसी वीर साध्वी स्त्रीको कि जिसने अपना चरित्र पवित्रतासे उत्तम बनाया था! जबतक यह संसार रहेगा तबतक इस सतीकी कीर्ति अमर रहेगी!

सुलीबा पंडिता।

यह पंडिता काशीके पास रामनगरके रहनेवाले कृष्ण शर्मा नामके ब्राह्मणकी पुत्री थी। कृष्ण शर्मा अत्यंत विद्वान था। उसने अपनी पुत्रीको पुराण, ज्योतिष और वेदान्त प्रभृति धर्मशास्त्रोंका अभ्यास कराया था, जिससे वह विदुषी समझी जाती थी। वह शरीरसे दुर्बल, कोमल व सामान्य आकृतिकी थी और गुणसे बुद्धिमती, नीतिवती, धर्मप्रिया और पतिव्रतको पालन करनेवाली थी। उसके ऐसे उत्तम गुणोंको देखकर उसके पिताने उसके समान स्वभाव गुणवाले उसी ग्रामके जगन्नाथ शास्त्रीजीके साथ विवाह कर दिया था। यह शास्त्री भी विद्वान् व प्रसिद्ध था; जोड़ी समान मिलनेसे परस्पर प्रसन्न रहते थे। सुलीबा पतिकी इच्छाको देखकर अपने पातिव्रत्यधर्मोंका पालन करती थी। उसका पति भी सहृदय दयालु और उत्तम स्वभाववाला था। इससे सुलीबा अपनेको पूर्ण भाग्यशालिनी मानती थी। उसने संस्कृत पाठशाला स्थापन की थी जिसमें कन्यायें और विधवायें पढ़नेको आती थीं। उसने अपने परिश्रमसे अपनी शिष्याओंको धर्मशास्त्रका अध्ययन कराया था। वह पढानेके उपरान्त स्त्रियोंको धर्म व नीतिका भी उपदेश दिया करती थी। उसने "तत्वदर्शन" नामक ग्रंथ बनाया है, जिसमें उसने धर्म, नीति, व वेदान्त विषयका निरूपण किया है।

किसी एक समय पति-पत्नी दोनों रामेश्वरकी ओर यात्राके लिये गये, वहांसे लौटने पर श्रीरंगपट्टन आये, वहां विद्वानोंकी सभा हुई थी जिसमें पंडिता सुलीबाने अपनी विद्वत्ताको दिखलाकर पंडित मंडलीको संतुष्ट किया और पंडितोंने उसको

"पंडिता"की उपाधि प्रदान की थी। तबसे वह सुलीबा पंडिताके नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई। उसका स्त्रियोंके प्रति अत्यंत सद्भाव था। वह वारंवार उपदेश दिया करती थी कि, "भगिनी गण! यह शरीर अस्थि, मांस, रुधिर और मल-मूत्र प्रभृति अपवित्र पदार्थोंसे भरा हुआ है, फिर वह जलके बुलबुलके समान क्षणभंगुर है। इस शरीरसे चाहे जितने भोग भोगे जांय किन्तु तृष्णा घटनेके बदले बढती ही जाती है। तृष्णाको शान्त करनेके लिये मनुष्य भोगोंको भोगनेके लिये हाय, हाय! करता रहता है। इतने ही में काल आकर उसे उठा ले जाता है। जिससे अपना प्रधान कर्तव्य रह जाता है और अंतमें पश्चात्ताप रह जाता है। एवं जन्म मरणके दुःख वारंवार भोगने पड़ते हैं। इसलिये इस शरीरसे अपने पातिव्रत्यधर्मका पालन कर पतिकी सेवा करनी चाहिये। स्त्रीके लिये पति ही सर्वस्व है, वह चाहे कैसा भी क्यों न हो फिर भी उसकी सेवा शुश्रूषा करना स्त्रीका परम धर्म है। पति सुन्दर राज्य-भवनमें हो अथवा वनमें हो, सुखमें हो या दुखमें हो, उसकी सहायतामें सदैव रहकर जिस प्रकार वह प्रसन्न रहे वैसा सदैव करना चाहिये। इसके सिवाय पतिको प्रेम-पाशमें बांधनेका दूसरा उपाय नहीं है। समस्त सुख साधन पुत्र परिवार, प्रभृति सब कुछ पतिकी प्रसन्नतासे ही प्राप्त होते हैं। इसलिये मन, वचन और कर्मसे एक निष्ठा रख कर प्रीतिसे ही उसके साथ रहना यह पतिव्रता स्त्रीका परम धर्म है। यदि दैव इच्छासे पति अपने पहिले परलोक यात्रा करे तो उससे अधीर न होकर एक ईश्वरके ऊपर मन, वचन और कर्मसे दृढ प्रेम रखकर समस्त इन्द्रियोंको वशमें करना और सौभाग्यवतीके समस्त चिन्होंको त्याग कर ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। इससे पुत्ररहित होने पर भी स्त्री स्वर्गको प्राप्त होगी। जिसने दांत दिये हैं वही खानेको भी देगा। जिसको जितना चाहिये उसे वह उतनाही देता है। इसलिये प्राण जानेपर भी कभी निंदितकर्म नहीं करना चाहिये। अपने धर्मकी रक्षा करके घर बैठे जो कुछ हो सके उसे करके अपना निर्वाह करना। जो स्त्री अपने धर्मका नाश करती है वह इस लोकमें निंदित होकर नरकमें जाती है। इस अस्थायी शरीरको अल्प सुखोंके लिये भोग तृष्णामें न लगाकर सन्मार्गमें लेजाकर मनको पवित्र कर आध्यात्मिक ज्ञानके द्वारा परमात्माको जानना जिससे सद्गतिकी प्राप्ति होगी।"

इस पंडिताने कई वर्ष पतिके साथ सुख वैभवमें निकाले। इतनेमें उसके पतिको यकायक पीड़ा उत्पन्न हुई, जिसे देखकर उसे अत्यंत चिन्ता हुई। पतिकी वेदना बढ़ने लगी; उपचार अनेक किये, किन्तु वे सब व्यर्थ गये। थोड़े समयमें उसने

प्राण त्याग किया। पंडिता स्वामीके शबके पास अपने केशोंको फैलाकर शोकसे रुदन करने लगी, मुखमेंसे दीर्घ निःश्वास निकलने लगा, हृदय विदारक आर्तनादसे घरमें हाहाकार हो गया! हिन्दू रमणीको उसके पतिकी मृत्युसे जो दुःख होता है, उसका वर्णन करना अशक्य है। आज सुलोबाके नेत्रका तेज नष्ट हो गया, उसका हृदय शून्य हो गया, उसे जगत् अंधकारमय दिखाई देने लगा, वह वैधव्यकी असह्य वेदनासे भयंकर रुदन करने लगी। उसके समीपके संबंधियोंने कहा कि, "पंडिता तू बुद्धिमती है फिर इतना शोक क्यों करती है? मनुष्यका जीवन शोकमय ही है। जब ईश्वरने जो कुछ किया वही ठीक है, उसमें किसीका बल नहीं चल सक्ता। तू ऐसी ज्ञानवान होकर रुदन करती है, क्या यह ठीक है?" पंडिताने कहा कि, "हृदयेश्वर चिर निद्रामें सोये हैं वे मुझे अत्यंत चाहते थे, मैं दासी जीवनमें उनपर प्रीति रखती थी और अब मरणके पश्चात् भी मैं उनका साथ करूंगी"। इसपरसे सबने समझ लिया कि इसका विचार सती होनेका है। इस विचारका परिवर्तन करनेके लिये सबने बहुत समझाया किन्तु धीर, शांत सुलोबाने अपने विचारका परिवर्तन नहीं होने दिया। उसका यही कथन था कि, "हृदयेश्वर मेरे ऊपर अत्यंत प्रीति रखते थे मैं उन्हें छोड़कर रहनेकी इच्छा नहीं रखती। मैंने जीवनके सत्य भूषण और नेत्रोंकी मणिको गुमाया है, क्या मैं उसे इस जीवनमें फिर प्राप्त कर सकूंगी? जो आत्मा इस दासीके ऊपर अत्यंत प्रीति करता था, अत्यंत कृपा रखता था क्या उसे मैं फिर देख सकूंगी? मैं उन्हींके संगमें विविध प्रकारके सुखोंको प्राप्त हुई हूं, सदैव आनंदमें मग्न रही हूं। हाय! अब उस प्रीतमके विना अपने मनकी बात किससे कहूंगी! अपने पतिके सिवाय अन्य कहां भी सच्चा मान नहीं मिलता। अब मेरा सुख नष्ट हो गया! मेरे जीवनको धिक्कार है! आज मैं स्वामीके विना अमंगल रूप हुई। प्राणेश्वर! मैं आपको कहांपर जाकर मिलूंगी। ऐसे उसके हृदयवेधक वचनोंसे सबसे कहने लगी कि मेरे सुखमें विघ्न मत कीजिये। जो प्राणेश्वर इस दासीको अत्यन्त चाहते थे उनके साथ इसे जाने दीजिये"। यह सुनकर सब कोई निस्तब्ध हुए। चिता तैयार हुई उसके ऊपर जगन्नाथ शास्त्रीका शब रक्खा गया; पंडिताने उत्तम वस्त्रालंकार धारण किये और एक साथ सबसे विदा लेकर चिताके पास आई। अलंकार उतार कर गरीब दुःखियोंको बांट दिये। अपने हाथसे नेत्रके आंसुओंको पोंछ सबको मधुर वचनसे शांत कर और बड़ोंको प्रणाम किया; और कुछ समयतक उपदेश देकर बोली कि, "**स्त्रियोंके लिये जीवनका तत्त्व पति ही है**"। ऐसा कहकर पतिके चरणका स्पर्श कर बोली कि, हृदयेश! मुझपर

कृपा कीजिये, मैं आपके चरणकी दासी हूं, जन्म जन्मातरों तक आपकी पत्नी हो कर आपकी सेवा करूं। हे भगवन् ! जगदीश्वर ! इस तेरी पुत्रीको इसके सिवाय अन्य इच्छा नहीं हैं। इस प्रकार बोलकर चितापर चढकर पतिके पैरको भक्ति भावसे गोदमें लिया और नेत्रोंके मींचते ही उसकी आत्माने स्वर्गमें प्रवेश किया, ऐसा सब लोगोंने देखा। चिता प्रदीप्त हुई, उसका शरीर थोड़े समयमें जलकर भस्म हो गया। अहा ! कैसा पवित्र प्रेम ! धन्य है इस प्रेमी दम्पतीको !

कमलादेवी।

इस परम साध्वी स्त्रीके पतिका नाम जगन्नाथ भट्टाचार्य था। वह मुर्शिदा-बादके समीपके एक ग्राममें रहते थे, उसके पूर्व पुरुषोंको मानसिंहने कितनीक भूमि दानमें दी थी। कमलादेवी अत्यंत स्वरूपवती थी वैसा उसका चारित्र्य भी पवित्र था। शान्त, सुशीला कमलादेवीको कमला--लक्ष्मीके समान परम साध्वी जानकर ग्रामके लोग भक्ति रखते थे। जो उसे एक वार भी देख लेता था वह उसको कभी भी भूल नहीं सक्ता था। उसको तीन पुत्र थे। वह कुटुम्ब सुखसे काल निर्गमन करते थे; किन्तु भाग्ययोग्यसे बंगालमें कम्पनी सरकारका राज्य हुआ और उसके अधिकारी द्रव्य प्राप्त करनेके लिये लोगोंके ऊपर जुल्म करते थे। इस पवित्र कुटुम्बको दानमें मिली हुई भूमिके ऊपर भी गंगा--गोविन्दसिंहने भारी कर डाला। पृथ्वीसे आमदनी कम होने लगी फिर भी कर पूर्ववत् ही देना पड़ता था। भाग्यवश दुर्भिक्ष पड़ा, जिससे लोग कर नहीं दे सक्ते थे। फिर भी गंगागोविन्दसिंहने उनकी सम्पत्तिको नीलाम कर जुल्मसे कर वसूल करना शुरू किया। घरमें कुछ भी नहीं रहा, इस कारण लोगोंको अपने निर्वाह करनेकी चिन्ता हो पड़ी। सब लोग दरिद्री बन गये। जो सबकी दशा थी, वही जगन्नाथ भट्टाचार्यकी भी हुई। खानेके लिये अन्न नहीं मिलता था। इससे उसकी पत्नी और बच्चोंको वृक्षके पत्ते और सूरनका मूल खाना पड़ा। यह दुःख जगन्नाथको असह्य मालूम हुवा। कमलादेवी एक फटा हुवा वस्त्र पहिन कर लज्जाको निवारण करती थी। सम्पूर्ण शरीरको ढांकने योग्य वस्त्रके न मिलनेसे साध्वी घरके बाहर नहीं जा सक्ती थी। बालकोंके शीतनिवारणके लिये वस्त्र लेने योग्य द्रव्य नहीं था इससे बालकोंको अपनी छातीसे दबाकर उनका शीतनिवारण करनेकी चेष्टा करती थी।

इस प्रकार दुर्दशा देखकर जगन्नाथ पागल जैसा होकर आत्महत्या करनेको तत्पर हो गया। उसे कमलादेवीने समझाया, किन्तु उसने घरसे गुप्त रीतिसे निकलकर गलेमें फांसी बांधकर प्राणका त्याग किया। कमलादेवी स्वामीके मरणसे अत्यंत अधीर हो गई और अब उसके दुःखकी सीमा नहीं रही। बड़ा लड़का क्षेमनाथ कहता था कि माता मेरे पिता कहते थे कि "दिल्लीके बादशाहके पास जानेसे इस भूमिको छुड़ा सक्ते हैं" सो मैं दिल्ली जाता हूं; आप अपने घरमें रहकर मेरे छोटे भाईयोंकी रक्षा करना। कमलादेवीने कहा कि, "पुत्र! तू अभी केवल १२ वर्षकी छोटी अवस्थाका है इस लिये मैं तुझे नहीं जाने दूंगी। परमेश्वरने अपने भाग्यमें जो लिखा होगा वही होगा"। इस प्रकार समझानेपर भी वह रातको विना कहे ही चला गया। हाय! अब कमलाके ऊपर विपत्तिके ऊपर विपत्ति आ पड़ी। शोकके ऊपर शोक बढ़ने लगा। दरिद्रता इतनी बढ़ गई कि बालकोंको खानेके लिये अन्न भी मिलना असंभव हो गया। पति और पुत्रका वियोग हुवा। इन दुःखोंको देखकर वह आत्महत्या कर लेती; किन्तु पुत्र स्नेहने ऐसा नहीं होने दिया। अहा! माताका स्नेह कैसा अमूल्य धन है! कमला केवल दो पुत्रोंके लिये ही संसारके दुःखोंको धैर्य धरकर सहन करने लगी। इतने में छोटे २ दोनों बालक भी अन्नके अभावके कारण मरणके शरण हुए। वह शोक व दुःखसे पागलसी बन गई। मरे हुए बालकोंको गोदमें लेकर सुतीक्ष्ण छुरीको ले गंगागोविन्दसिंह जहां बैठा था वहां जा पहुंची। अपनी दानभूमि व अपनी दुरावस्थाका वृत्तांत कहकर बोली कि, "हे दुष्ट! ऐसा जुल्म कर रहा है? अच्छा देख"। ऐसा कहकर छुरी खैंच गंगागोविन्दसिंहके पास जा पहुंची। उसके बोलनेके ऊपरसे गंगागोविन्दसिंहने जान लिया कि यह जगन्नाथ भट्टाचार्यकी स्त्री है। तब वह कांप उठा और उसके हृदयमें बहुत दुःख होने लगा और वह खड़ा हो गया। सिपाहियोंने आकर कमलादेवीको पागल समझकर बाहर निकाल दिया। किसी पड़ोसीने उसके मरे बालकोंकी अन्तिम क्रिया की। कमलादेवी अत्यंत स्वरूपवती थी। वह छूटे केश रखकर रास्तेमें घूमती थी। उसके स्वरूपको देखकर बहुत लोग मोहित होते थे। एक दिन गंगागोविन्दसिंहके हाथके नीचेके अमलदार देवीसिंहने उसे देखा। उसका रूप देखकर देवीसिंहने उसे पकड़नेके लिये मनुष्य भेजे। दुरात्मा देवीसिंह बहुतही खराब आदमी था, वह बहुत स्त्रियोंको पकड़कर एक अखाड़ेमें इकठी करता था; वहां बड़े २ प्रतिष्ठित जमींदारोंकी स्त्रियोंको भी क़ैद रखता था; और उनमेंसे सुंदर स्त्रियोंको अपनेसे बड़े अधिकारियोंको राजी रखनेके लिये उनके पास भेज देता था;. परदेशी अधिकारी इस देशकी भाषाको

नहीं जानते जिससे इनका पागलपन उनकी समझमें नहीं आवेगा, ऐसा विचारकर उस नर-पिशाचने इस परम साध्वी कमलादेवीको इस कैदमें बंद कर रक्खी। कमलाने यहांपर २-४ दिन कुछ भी नहीं खाया और प्राण त्याग करनेके लिये तैयार हुई किन्तु बड़े पुत्र क्षेमनाथके स्नेहके कारण और उसके साथ मिलाप होगा इसी आशापर देह धारण कर रही थी। थोड़े दिनमें उसकी समझमें आया कि देवीसिंहका विचार भ्रष्ट है जिससे अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिये वस्त्रमें छुरी छुपा रक्खी थी। अब एक दिन वह परदेशी अधिकारीके घर भेजी गई; यदि यह उसे पहिले मालूम होता तो वह कभी भी नहीं जाती। वह दुष्ट अधिकारी हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ने गया वैसे ही उसने छुपी हुई छुरीको निकालकर उसकी छातीसे लगाई; किन्तु वह अधिकारीने अनेक वस्त्र पहिने थे जिससे छुरी उसे नहीं लगी। उसके पश्चात् उसने इसका स्पर्श नहीं किया और देवीसिंहपर अत्यंत क्रोधित हुवा। तबसे देवीसिंह कमलाको किसीके पास नहीं भेजता था। अभी उसको आशा थी कि वह कुछ समयमें वशमें हो जायगी। इसी विचारसे दूसरी १०-१२ स्त्रियोंके साथ उसे भी मुर्शिदाबादसे पुर्नियाको ले गया। वह पुर्निया नहीं जाना चाहती थी; किन्तु उसे बांधकर बलात् ले गया। जो स्त्रियां मरनेका भय रखती हैं और धर्म रक्षा करनेके लिये तैयार नहीं होती उसके धर्मको दुष्ट मनुष्य सहजमें नष्ट करते हैं; किन्तु जो स्त्रियां अपने धर्मकी रक्षाके लिये जीवनदान करनेके लिये तैयार होती हैं उसके धर्मका नाश करनेके लिये कोई भी समर्थ नहीं। कमला देवी डेढ वर्ष तक देवीसिंहके कब्जेमें रही; किन्तु उसने अपने धर्मकी रक्षा की। इस देवीकी पवित्रताको देवीसिंहके जमादार लक्ष्मणसिंह नामके सिक्खने देखी जिससे उसके मनपर बहुत अच्छी असर हुई। कमलादेवीको वह श्रद्धा और भक्तिसे माता कहकर बुलाने लगा। कमलाने उसकी सहानुभूतिको देखकर कहा कि, भैय्या! अपने पति और पुत्रके शोकसे मेरा हृदय दग्ध हो रहा है, मैं यहांपर बड़ी आपत्तिमें फंसी हूं इत्यादि वचनोंसे उसे अपनी वास्तविक स्थिति कह सुनाई, जिसे सुनकर लक्ष्मणसिंहका हृदय पिगल गया। वह एक बहादुर धैर्यवान् पुरुष था, फिर भी कमलाकी इस कथाको सुनकर रोने लगा और कहने लगा कि, "माता! मैं आपको अपनी माताके समान समझता हूं, दुष्ट देवीसिंहने अनेक स्त्रियोंके धर्मको सहजमें नष्ट किया है: किन्तु आपके समान साध्वी स्त्रीके सामने उसका कुछ भी जोर नहीं चल सक्ता। वास्तविकमें आपके समान साध्वी स्त्री जहां रहती है वह स्थान तीर्थ-रूप है। मैंने निश्चय किया है कि मैं और मेरी स्त्री दोनों आपकी प्रतिदिन सेवा करेंगे और आप मुझे अपने

पुत्रके समान समझेंगा तो मैं अपनेको कृतार्थ मानूंगा। आपका मेरे घरपर रहनेसे मेरा घरभी तीर्थ-रूप हो जायगा"। लक्ष्मणसिंहके इस कथनको सुनकर कमलाने उसके मस्तकपर हाथ धरा और लक्ष्मणसिंह पाले हुवे सिंहके समान उसके चरणोंमें गिर गया। उसने सच्चे हृदयसे कहा कि, "यदि देवीसिंह आपको नहीं छोड़ेगा तो मैं अपनी इस सुतीक्ष्ण तलवारसे उसका मस्तक छेदनकर आपका उद्धार करूंगा" इतना कहकर वह चलता हुवा।

आकाशमें चन्द्रमाके अस्त होनेका समय है, अब चारों ओर घोर अंधकार छा रहा है। उस समय लक्ष्मणसिंहने कमलादेवीको अपने भाई रामसिंहके पास दीनाजपुर को भेज दी। रामसिंह भी पवित्र दिलका पुरुष था। कुछ समयके पश्चात् लक्ष्मणसिंह भी नोकरी छोड़कर अपनी स्त्री सहित आकर यहां रहने लगा। सबकोई कमलादेवीको माताकी समान समझकर सेवा करने लगे। कमलादेवीके कहनेपरसे लक्ष्मणसिंह उसके पुत्र क्षेमनाथकी शोध करने लगा। कुछ दिनमें सुना कि देवीसिंहके सिपाही गुप्त रीतिसे कमलादेवीकी शोध कर रहे हैं। इसपरसे रामसिंहने उसको पाडुवाके जंगलमें गुप्त स्थलपर एक झोंपड़ी बांधकर रक्खी। कमलादेवी प्रतिदिन वहां योगासनसे बैठ कर फूल, चंदनद्वारा एकाग्र चित्तसे महादेवकी पूजा करती थी जिसे देखकर उसे सब कोई साक्षात् देवी समझने लगे। यह प्रतिदिन ईश्वर भजनमें अपने समयको व्यतीत करने लगी। लक्ष्मणसिंह सच्चा पुरुष था। उसने जो उपकार किया उसको विचारकर कमला प्रतिदिन कहती थी कि इस जीवनमें मैं उसका ऋण नहीं चुका सक्ती। परमात्मासे वह प्रार्थना किया करती थी कि वह लक्ष्मणको सदैव सुखी रक्खे। कुछ समयके पश्चात् लक्ष्मणसिंह देशमेंसे शोधकर क्षेमनाथको ले आया। कमलादेवी पुत्रकी मुखाकृतीको देखकर वत्सावियोगा गौके समान अधीर बन गई और लक्ष्मणसिंह तथा क्षेमनाथको प्रेमसे आलिंगन कर दोनोंका शिर चूमने लगी। क्षेमनाथने कहा कि, "माता! मैं आपका सदैवका अपराधी, कृतघ्नी पुत्र हूं"। इतना कहकर माताके चरणोंमें पड़ गया। कमलाका भी हृदय प्रेमातुर हो उछल पड़ा। केवल "बेटा!" इतनाही कह सकी। कुछ समयके पश्चात् हृदयकी शांति होनेपर सब बैठ गये। इस तरह जीवनके शेष दिन सुखसे व्यतीत करने लगी। अहा! कमलादेवीपर कितनी बड़ी विपत्ति पड़ी! उसने किस प्रकारसे अपने शील और धर्मकी रक्षा की! लक्ष्मणसिंहने अपना सद्धर्म कैसा निबाहा! ऐसे पवित्र मनके स्त्री पुरुषोंको धन्य है! ऐसी परम साध्वी स्त्रियां अपने जीवनके पवित्र दृष्टांतसे जगत्का उपकार करती हैं। ऐसा उपकार अर्थ, सम्पत्ति, ऐश्वर्य या अन्य किसी

दूसरी रीतिसे होना असम्भव है। ऐसी स्त्रियोंके मरणके पश्चात् संसार उपकृत होता है। जनककी पुत्री वैदेही (सीता) युगयुगांतर व्यतीत हो चुके परन्तु उसका सद्दृष्टान्त स्त्रियोंको सन्मार्गमें चलाता है। ऐसी परम पवित्र सुचरित्रवान साध्वी स्त्रियां संसारके कल्याणको ही उत्पन्न होती हैं, ऐसा कहनाभी अत्युक्ति न होगा।

विजया।

अयोध्या नगरीमें रहनेवाले शूरसेन नामके प्रतिष्ठित सज्जनकी पतिव्रता स्त्री थी। इस कुटुम्बके लोग आस्तिक और भक्तिवान थे। उनमें ऐसा एक नियम था कि सब कोई एक साथ बैठकर धर्मशास्त्र सुनते और ईश्वर प्रार्थना करते थे। प्रथम ईश्वरकी सहायता और कृपा मांगनेके पश्चात् उत्साहसे कार्यमें लगते थे। इस कुटम्बके लोग अत्यंत सुखी थे; किन्तु ईश्वरकी गहनगति अगम्य है, इस धार्मिक कुटुम्बको दुःखके दिन आ पहुंचे। शूरसेनको नशेबाजोंकी संगति हुई जिससे वह सदैव नशेमें रहने लगा। उसका मन ईश्वर भक्तिपरसे उठ गया। प्रथम उसे जो भक्ति अत्यंत मधुर मालूम होती थी वही अब उसके लिये अप्रिय हो गई। शास्त्र पढ़ना उसे विषके समान मालूम होने लगा, भगवन्-मंदिरमें जाकर ईश्वरके गुणोंका गान सुनना इस बातसे उसे अरुचि हो गई। साध्वी विजया किसी दिन मंदिरमें आनेको कहे तो शूरसेन सेवाका निमित्त निकाले। अधिक आग्रह करनेपर लड़नेको तैय्यार हो। इस प्रकार दिनो दिन उसकी दशा बिगड़ने लगी। अपने कार्य व्यवसायको छोड़के बदमाशोंके साथ घूमना व द्रव्यका दुरुपयोग करना प्रारंभ किया। जिससे द्रव्यका अभाव होने लगा; यहां तक कि भोजनके लिये कष्ट भोगना पडता था। विजया बिचारी अपने खानेकी कुछभी परवाह नहीं रखकर जो कुछ अन्न घरमें रहता था वह पति और बालकोंको खिलाती थी। इस प्रकार दुःखमें दिन निकालने लगी। जो बालक पिताके घर आनेपर सामने जा प्रसन्नतासे गोदमें बैठनेके लिये तैय्यार होते थे और विविध प्रकारके खेल करते थे वैस बालक भी उसे अप्रिय हो गये। बालक पिताकी ऐसी स्थितिको देखकर समझ गये कि प्रथम जो हमें आनंदसे खिलाते थे वही पिता अब दूसरी प्रकृतिके हो गये हैं।

यहां तक कि बालक उसे देखकर भय खाने लगे। घरका व्यवहार नष्ट भ्रष्ट हो गया। पतिव्रता विजया दुःखी होने लगी कि, जो पति प्रथम प्रेमी स्वभावका था,

मेरेपर प्रेम करता था, मेरी सलाह लेता था, मुझे अर्धांगना समझता था वही अब मेरा भाव नहीं पूछता। बात बातमें चिढ जाता और शत्रु समान दृष्टिसे देखता है। प्रथम भोजनमें कुछ विलम्ब होता था तोभी धैर्य रखता था और समयपर सहायता करता था वही अब थोड़ा ही विलम्ब होनेपर नाराज होकर गालियां देता तथा मार मारनेको दोड़ता है। इन सब बातोंसे विजयाका खून सूखने लगा। उसका प्रसन्न वदन निस्तेज बन गया। क्रमशः वह निर्बल होती गई और छोटे बालकोंको दूध मिलना कठिन हुआ; पतिकी ऐसी खराब स्थिति होनेपर भी ईश्वरपर विश्वास रखने-वाली उस पतिव्रताने धैर्यको नहीं छोड़ा। ईश्वरकी सहायता मांगकर धैर्य, सत्यता, नम्रता एवं पातिव्रत्यादि सद्गुणोंकी रक्षा कर समस्त व्यवहार चलाती थी। उसने समस्त दुःखोंको सहन कर ईश्वरके विश्वासको नहीं छोड़ा। उसकी सहायता मांगकर प्रार्थना करती थी, पति किस प्रकार सुखी हो, पतिका यह लोक परलोक कैसे सुधरे वह इसी बातकी चिंता करती थी। पतिके अप्रसन्न होनेपर बारम्वार विनय कर उसे शान्त करती थी व सेवामें किसी प्रकारका प्रमाद नहीं करती थी। शूरसेन अपने उन व्यसनी बदमाश मित्रोंके पास वारम्वार अपनी स्त्रीकी ईश्वरकी आस्था संबंधी बातें करता था और कहता था कि मेरी स्त्री मुझे किसी दिन भी अनुचित वचन नहीं बोलती, सदैव नम्रता और श्रद्धापूर्वक मेरी सेवा करती है; वह प्रभुपर पूर्ण विश्वास करती है।

एक दिन वह अपने मित्रोंको घरपर ले आया। साध्वी विजयाको अपने पतिके साथके व्यसनी मित्रोंको आये हुए देखकर दुःख हुवा। शूरसेनने विजयासे कहा कि, "सुनो। मेरे मित्र आये हैं उनके लिये विलम्ब न करके भोजन तैयार करो"। विजयाने कहा कि, "अभी सब तैयारी करती हूं" ऐसा कहकर खानेका तैयार किया। सब कोई खाकर व्यसन कर चले गये। विजयाका पति नशेमें चूर था उसे शयन कराया। आज इस साध्वीको अत्यंत चिंता हुई। वह बारम्वार निःश्वास छोड़ कर परमेश्वरका स्मरण करने लगी। थोड़ी देरमें शूरसेनका नशा उतर गया। मानो ईश्वरने आज साध्वीकी प्रार्थनाको सुनकर शूरसेनको सुबुद्धि देना चाहा है। विजया-के गुणोंको देखकर शूरसेनके मन व मुख और ही प्रकारके बन गये। वह अपने पापकर्मोंका स्मरण कर ईश्वरसे क्षमा मांगने लगा, उसके मुखपर क्रोधके बदले दीन-ताके चिन्ह मालूम पड़ने लगे। जो शूरसेन कठोरता और क्रोधसे बोलता था और विजयाके वचनोंको विषके समान समझता था वही आज फीके चहेरेसे मधुर वचन बोलने लगा;-"मेरि प्यारि! तेरे प्रभुपरके विश्वाससे तेरे सदाचरणोंसे मुझे अत्यंत आश्चर्य

मालूम होता है। मैने तेरे साथ कई दिनसे असद् व्यवहार किया है, मैने तेरा मान नहीं रक्खा, तेरी सलाहको स्वीकार नहीं किया, फिर भी तू अत्यंत प्रेमसे समान भाव रखकर नम्रता और धैर्यसे मेरे साथ वर्तन कर रही हो। तेरी इस नेकनिष्ठाके लिये सहस्रों धन्यवाद है। पतिके ऐसे वचनोंको सुनकर विजयाको हर्षके आंसु आये, उसके विदारित मनको शांतिका आविर्भाव हुवा। पतिव्रताने देखा कि आज मेरे प्राणनाथका चित्त कोमल मालूम होता है, वे मधुर वचन बोल रहे है, वे हठ व दुराग्रहके परिणामोंको समझ गये हैं। ऐसा देखकर उसका हृदय यकायक भर आया व नेत्रोंसे आंसु भर आये। वह मधुर स्वर व वचनोंसे कहने लगी कि, "मेरे प्राणप्रिय पति! आपकी इस दुःखप्रद स्थितिको देखकर मुझे अत्यंत दुःख होता है क्योंकि आप जैसे प्रथम थे आज वैसे नहीं हो। इसीसे मुझे आज आंसु आ रहे है। कई दिनसे आप मेरे साथ पति-धर्मके अनुसार प्रीतिसे नहीं वर्तते। आज आपके स्वभावके परिवर्तनको देखकर मेरा हृदय भर आता है, अपनी समस्त सम्पत्तिकी दुर्दशा हो गई है घरमें इन छोटे बालकोंके सिवाय और कुछभी नहीं है। आप मेरे मस्तकके मुकुट हैं, विवाहके समय मैंने प्रतिज्ञा की है और उसके अनुसार मेरा धर्म है कि आपकी सेवा कर आपके आधीन बनी रहुं; क्योंकि मरणके पश्चात् आपका और मेरा वियोग होनेका भय है। प्राणेश्वर ! परमात्माके शरण जाकर उनकी भक्ति रखनेसे वे हम लोगोंके मनोंको निर्मल कर धर्म—पथ दिखलाकर हमें सुखी बनावेंगे। इस प्रकार विजयाने दया उत्पन्न हो ऐसे नम्र वचन कहे; जिसकी शूरसेनके हृदयपर अच्छी असर हुई। वह अपने दुर्गुणोंके लिये पश्चाताप करने लगा व सावधान होकर ईश्वर व अपनी पत्नीसे क्षमा मांगने लगा और पापका प्रायश्चित्त करने लगा। अबसे वह अपने समस्त कार्योंको चित्त लगाकर करने लगा और उसका चित्त ईश्वरभक्तिमें भी लगने लगा। पूर्वके समान उत्साहसे अपने कार्य व्यवसायोंको करने लगा जिससे सम्पूर्ण कुटुम्ब अच्छी स्थितिमें आ गया। पतिव्रता विजया तुझे धन्य है ! तूने शुद्ध धर्माचरणोंसे व ईश्वरप्रेमसे बिगड़े हुए पतिके मनको सुधार लिया है। अहा ! ईश्वर—भक्ति, पवित्र—मन, सदाचरण, धैर्य व परिश्रमके फलको परमदयालु परमात्मा दिये विना नहीं रहता। ऐसी सुशीला स्त्रीको सहस्रों धन्यवाद है !

जया ।

काशीमें रहनेवाले नन्दराज नामक एक धनाढ्यकी जया नामकी पतिव्रता स्त्री थी । वह सभ्यता, शील, धर्म, और विवेकसे पूर्ण थी । वह सुख सम्पतिमें बढ़ी हुई थी । वह स्वरूपसे सुन्दर, आकारसे मध्यम व वर्णसे गौर थी । नन्दराजका शरीर श्याम वर्णका था । इस दम्पतीके शीलकी समानताका भाव तो मेघ व विद्युत्‌की की जा सक्ती है। स्वरूपमें ऐसा भेद था; किन्तु इनके प्रेममें भेद नहीं था । नन्दराज मित्रमंडलमें बैठा हो तो भी अन्तःकरणके सच्चे प्यारके भावसे अपनी प्रियाकी ओर अमृत-दृष्टिसे देखता था । पतिकी ऐसी प्रेम दृष्टिसे जया आनन्दको प्राप्त हो गुलाबकी खिलती कलीके समान हास्यकर शर्मिन्दी हो नीचे देखती किम्वा कोई जानने न पावे उस प्रकार पतिकी ओर प्रेम दृष्टि करती थी । पतिको प्रसन्न कर उसकी आज्ञानुसार चलनेमें सुख मानती थी । नन्दराज भी अपनी प्यारी पत्नीको सुखी करनेमें ही अपनेको सुखी मानता था । इस प्रकार इन दोनोंको अत्यंत प्रेम था। यह सर्वोत्तम सुखी दम्पती इस अगाध भवसागरमें प्रेम रूपी नौकामें बैठकर आनन्द करते थे । ऐसे दम्पती क्वचित् ही होंगे । ईश्वरेच्छासे उसे सुखकी छायामें परिवर्तन होनेका समय आ पहुंचा । नन्दराजको व्यापारमें बड़ी भारी हानि हुई । उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति स्थावर, जंगम जो थी चली गयी, जिसके कारण वह निर्धन बन गया। इस दुःखजनक बातको सुनकर स्त्रीको कष्ट होगा, ऐसा विचारकर उसने इस भेदको गुप्त रक्खा । अन्तमें उसे वे दुःखके दिन भयके समान मालूम होने लगे फिर भी इस बातको प्यारी पत्नी न जाने इसके लिये वह उसके सामने प्रसन्न मुखसे रहता था। साध्वी जया बड़ी समझदार थी । उसने पतिके बिगड़े हुए चहेरेसे अनुमान किया कि पतिको कोई दुःख आ पड़ा है । नन्दराज स्त्रीके सामने अपने मुखको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता था; परन्तु वह व्यर्थ गयी; क्योंकि जिसमें सत्य-प्रेम रहता है उसको वञ्चित नहीं कर सक्ता । साध्वी जया पतिके मनको शांत करनेका यत्न करने लगी किन्तु पतिके हृदयमें अशांति बढती गई; मेरी प्यारी पत्नी दरिद्रताके दुःखमें आ पड़ेगी ऐसा विचार आनेसे उसका हृदय भर आया । वह विचार करने लगा कि, “यदि यह बात मैं उसे कहूंगा तो यह प्रफुल्लित, कोमल-मुख थोड़ी देरमें सूख जायगा । उसके प्रवालमेंसे निकलने वाले मधुर शब्द सूख जावेंगे । तेजस्वी

और चंचल नेत्र दुःखरुपी भारसे भारी ही जायगे और उसका अंतःकरण जो आज आनन्दित देख पड़ता है वह पलभरमें हतभाग्यकी नांइ दुःखी हो जायगा"। इस प्रकार विचारता हुआ दीर्घ निःश्वास छोड़ रहा था इतनेमें उसका एक मित्र आया और कहने लगा कि क्या आपने यह बात अपनी स्त्रीसे भी कही है? यदि न कही हो तो कहकर इस दुःखका आधा भाग उसे दीजिये तो अच्छा हो, यदि ऐसा न करोगे तो दोनोंके अंतःकरणको इकट्ठी करनेवाली प्रीतिको धक्का लगेगा, ऐसा मुझे भय आता है। एकको दूसरेकी इच्छा और विचारको साधारण रीतिसे जाननेसे ही प्रीति दृढ रहती है अन्यथा शिथिल हो जाती है। नंदराजने कहा "भाई! आपका कहना सत्य है, मैं उसके ऐश्वर्यका नाश करनेवाला हूं, उससे कैसे कहूं कि मैं (तेरा पति) भिखारी हो गया, अब तुझे शेष आयु दुःख—दरिद्रतामें मेरे साथ रहकर काटनी पड़ेगी; इत्यादि वचन मैं कैसे कह सकूंगा! हा! शोक!! शिव शिव!!! यह कैसे कह कर अपनी स्त्रीको दुःख दूं? हाय! यह तो मुझसे कदापि न हो सकेगा।" उस प्रकार वह शोक-सागरमें डूब गया; इस दशाने उसे सीताजीके विरहमें श्रीरामचंद्रजीके तमसा देवी प्रति कहे हुए वाक्यका स्मरण कराया कि,—"जब सरोवर पानीसे अच्छी तरह भर जाता है तब उसे फोड़नेके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं उसी भांति जब हृदयमें शोकका सरोवर भर जाता है तब नेत्रोंके आंसुओं द्वारा उसे खाली करनेके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं"। इस वचनका स्मरण होते ही उसका हृदय स्तब्ध हो गया, आंखोमें आंसू भर आये, परन्तु धैर्य धरके विचार करने लगा कि, "दुःखके समय स्त्रियोंका स्वाभाविक गुण, धैर्य, उत्साह आदि जो अंतःकरणमें गुप्त रहते हैं वे ऐसा समय आने पर प्रगट होते हैं, वे ऐश्वर्यकी लोभी नहीं होती केवल निश्चयसे पतिपर प्रीति रखती है। प्रत्येक स्त्रीके प्रेम-युक्त हृदयमें एक ईश्वरीय (अंश) दीपक सदैव प्रकाशित रहता है। जिस भांति सूर्यके प्रकाशमें दीपककी ज्योति दृष्टिमें नहीं आती उसी भांति सम्पत्ति, सुख, और मौजके दिनोंमें वह भी दृष्टि नहीं पड़ता; परंतु विपत्ति रूपी घोर अंधकारमें उसका सम्पूर्ण प्रकाश दृष्टिगत होता है, स्त्रियोंका भेद विपत्तिकालमें ही जाना जाता है।

नंदराजने दूसरे दिन सब वृत्तान्त अपनी स्त्रीसे कह सुनाया। साध्वी जया यह समाचार सुनकर पतिके पास बैठ गयी और कहने लगी कि मैं कई दिनसे आपके चित्तकी उदासीको देख रही थी, आज मालूम पड़ा कि उदासीका कारण यही समाचार है। प्राणपति! धैर्य न त्यागिये, चढ़े हुये गिरते हैं, अस्तोदयका चक्र किसीको नहीं छोड़ता, सबके दिन एक समान नहीं जाते। ईश्वरने हमको ये

दिन दिये है उन्हें मस्तकपर लेना चाहिय, उसमें घबराना उचित नहीं, और घबरानेसे हो ही क्या सक्ता है? उससे तो और भी दूना कष्ट होता है। अपने शिरपर जो कष्ट आ पड़ा है उसे भोगे ही बनेगा"। नन्दराजको अपनी प्रियाके ऐसे कोमल वचन सुनकर कुछ धैर्य हुवा और कुछ उदासी भी दूर हो गयी। नन्दराज और जयाको बाह्याडंबर नहीं रुचता था, इस लिये हवेली आदिको बेच कर शहरसे दूर गामड़ेमें एक साधारण घर ले लिया और उसमें आवश्यकीय वस्तुओंको ऐकत्र किया। साध्वी जयाने अपने मस्तकमें कुंकुम भरनेकी चांदीकी डब्बी और एक सितार अपने पास रख छोड़ा; कुंकुम भरनेकी डब्बीको अपने सौभाग्यसूचक आवश्यकीय वस्तु मानी तथा सितारके मधुर स्वरोंसे आनंद पाती थी इसी लिये उसने इन दोनों वस्तुओंका त्याग नहीं किया। साध्वी जया गामड़ेके घरमें आनन्दसे रहने लगी। नंदराज शहरमेंसे अपने मित्रके साथ गांवके घरकी ओर आ रहा था; मार्गमें कहने लगा "हाय! मेरी परम साध्वी पत्नीको गामड़ेमें रहकर श्रमण करने पर पेट पालनेमें कैसा दुःख होता होगा?" यह सुन उसका मित्र बोला कि क्या उसे यह स्थिति दुःखदायी मालूम होती है? यह सुनकर नंदराजने कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा कहना आपकी भूल है, वह तो आनन्द और सद्गुणोंकी मूर्ति है। तब उसके मित्रने कहा, सचमुच ही वह चतुर सुशील और शान्त है। चतुर आदमीकी बात ही निराली है, मैंने बहुत युवतियां देखी है। नन्दराज! आप अपनी पत्नीको निर्धन व दरिद्री मत समझें यह आपकी स्त्री सद्गुणोंका भंडार है, क्या यह आपको मालूम नहीं है? इससे अधिक आपको और किस वस्तुकी आवश्यक्ता है? नन्दराजने कहा, भाई! आप सत्य कहते है; परन्तु आज उसके भाग्यमें भिखारीके समान घरमें रहना पड़ा है, ऐसे ही समयमें घरके काम करनेका अनुभव होता है वोही दुःख अब सामना आ पड़ा है। इसी प्रकार परस्पर बातें करते घरके निकट आ पहुंचे। घरके सामने स्वच्छ आंगने था, जो कि फूलोंके वृक्षोंसे सुशोभित हो रहा था, पौरके किमाड़ खोलने पर घरमेंसे मधुर शब्द सुनाई पड़े। ये शब्द उसीकी परमसाध्वी स्त्रीके थे; आगे देखने पर खिड़कीमें बैठी हुयी पूर्ण चन्द्रवदनी तरुणी पर दृष्टि पड़ी, परन्तु वह तुरंत ही अदृश्य हो गई। इतनेमें नूपुरके मधुर झंकार—शब्द सुनाइ पड़े। वह अपने पतिका आगमन सुनकर सामने आतीथी। उन्हें सुवासित पुष्पोंका हार पहिने थे, उसका मुख कमलकी नांई प्रफुल्लित था, उसके होठे परवालकी सदृश लाल थे; ऐसी प्रसन्नवदनी पहिले कभी नहीं देखी थी, सचमुच ही आज वह लक्ष्मीके समान प्रतीत होती है। प्राणनाथको सामने

आये देखकर नमन करके बोली कि, "हे प्राणनाथ! आपने कितना समय लगाया? मैं आपकी बहुत समयसे राह देख रही हूं; आप अब आते हैं, अब आते हैं, इसी आशासे वारम्वार मार्गकी ओर निहार रही थी, अब मेरे चित्तको शांति प्राप्त हुई। उस चंपाके वृक्षके नीचे नहानेका प्रबंध करके करौंदा बीन रही थी; क्योंकि आपको उसका आचार अधिक प्रिय लगता है, अन्य दूसरे कार्य पूरे कर चूकी हूं। मुझे यहां बड़ा आनन्द मिलता है यह परम रम्यभूमी है।

यह सुनकर नन्दराज अधिक मोहित हो गया; इतना सौन्दर्य, इतने सद्‌गुण, इतना व्यवस्थितपन, ये बातें देखकर वह बड़ा हर्षित हुवा। उसे अपनी सुध बुध ही न रही, उसे यह भी ध्यान न रहा कि मैं कौन हूं? और कहां हूं? अतिशय प्रेम उत्पन्न होनेसे उसके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकला उसका कंठ गद्‌गदित हो गया, और नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बह निकली। साध्वी जयाकी भी यही दशा हो गयी। निदान अपने हृदयकी गति रोककर नन्दराजने अपने मित्रकी ओर देख कर कहा, "भाई! इस संसारमें मेरे ऊपर कितना भी दुःख क्यों न आ पड़े? परन्तु घरमें मुझे बड़ा ही आनन्द है, उसमें कोई संदेह नहीं कि मेरी आयु सुखमें ही व्यतीत होगी"। अंतमें इस तरुण दम्पतीको बड़ा सुख रहा। अहा! संसारमें पुरुषका सुख स्त्री पर ही अवलंबित है। सद्‌गुणी स्त्रीके सहवाससे मिला हुवा सुख सब सुखोंसे अधिक है। सम्पत्तिसे या अन्य किसी उपभोग पदार्थसे होनेवाला सुख कदापि उसकी समता नहीं कर सक्ता। परमात्माने उसमें ऐसा कोई अलौकिक गुण रक्खा है कि वे दुःखके समय अति उपयोगी होती है। अतएव अपनी भार्या सुख दुःखमें सहचरी हो वैसी उसको अवश्य करनी चाहिये। धन्य है! जया तुझको कि तू अपने पवित्र सद्‌गुणोंके द्वारा पतिके दुखमें भी महासुखदायक हुयी और धन्य है नन्दराजको कि वह अपनी प्यारी पत्नीके सुखार्थ कितना बड़ा चिन्तामें मग्न रहता था। वास्तवमें पति-पत्नी प्रेमी युगल तो ऐसेही होने चाहिये!

सुमति।

शीके निकट कनकपूरमें रहनेवाले विदुरमति नामक गृहस्थकी धर्मपत्नीका नाम सुमति था। एक समय शिवदत्त नामक एक तपस्वी विद्वान् ब्राह्मण एक वृक्षके नीचे बैठा था इतनेमें वृक्षपर बैठी हुई एक चिड़ियाकी बीट उसके ऊपर आ पड़ी, जिससे क्रोधित हो ब्राह्म-

णने अपने तपोबलसे उसका नाश किया था। उसीका पश्चात्ताप करता हुआ उस पतिव्रताके यहां भिक्षा मांगनेके लिये आया। पतिव्रताने उसे "देता हूं" ऐसा कहके उसे ठहरनेका संकेतकर भीतर गई; भीतर पतिको भोजन परोसके आज्ञा ले भिक्षा देनेको बाहर आयी। तपस्वीने उसे देखकर क्रोधित हो कहा कि, "मुझे यहां ठहरनेका कहकर इतना समय लगानेका क्या कारण है?" सुमतिने कहा, "महाराज! अपराध क्षमा कीजिये, मेरे देवरूप पतिको भोजन करानेमें यह समय व्यतीत हो गया है"। यह सुन तपस्वीने कहा "तूने मेरे समान तपस्वीकी अपेक्षा अपने पतिको अधिक मान ब्राह्मणका (मेरा) अपमान किया, इन्द्र भी ब्राह्मणको नमन करता है वहां मनुष्यकी गिनती ही क्या? तूने वृद्ध मनुष्योंसे ब्राह्मणकी योग्यता नहीं सुनी? वे अपने क्रोधसे क्या नहीं कर सक्ते?" सुमति देवीने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि, महाराज क्रोध न कीजीये, मैं किसीका तिरस्कार हो ऐसा नहीं करती, मुझे पति और परमेश्वरकी भक्तिके सिवाय दूसरा धर्म नहीं रुचता। हे तपस्वि! पति और प्रभुकी सेवाका अधिक फल है। आपने उस दीन चिड़ियाका नाश किया है, यही आपके गर्वका हेतु है। क्रोध ही मनुष्यका बड़ा शत्रु है। जिसने क्रोध और मोहका त्याग किया है, सत्य, संतोष, जितेन्द्रियता, समानता, सरलता, दया, क्षमा, दान और परोपकारादि सद्गुण जिसमें है उसेही ब्राह्मण कहना चाहिये। आप वेदको जाननेवाले हैं, किन्तु तत्त्वसे धर्मको नहीं जानते। महाराज! यदि आप धर्मको जानना चाहते हैं तो मिथलापुरीके राजा जो माता-पिताकी सेवा करनेवाले, सत्यवादी, धर्मिष्ट और जितेन्द्रिय हैं, उनके पास जाकर धर्मको सीखिये। यदि मुझसे कोई अनुचित अपराध हुवा हो तो क्षमा कीजिये; क्योंकि जो धर्मके जाननेवाले हैं वे स्त्रियों पर दया ही करते हैं"। तपस्वीने कहा कि, सति! मैं तेरे पातिव्रत्य-धर्मसे बड़ा प्रसन्न हुवा, तूने अपने योगबलसे मेरे हृदयकी बात जान ली, तू निःसंदेह देवी है, तूने जो कुछ कहा है वह मेरे भलेके लिये ही कहा है, 'तेरा कल्याण हो!'। ऐसा कहकर उस सतीका गुण वर्णन करता हुवा वह अपने आश्रमको चला गया। धन्य है पातिव्रत्यधर्मके प्रतापको!

प्रभावती।

यह सती हरिपूरके राजा कनकसेनकी स्त्री थी। यह पातिव्रत्यधर्मके अनुसार चलती थी। इसे महादेवजीकी पूजापर सच्चा प्रेम था। जिसे नित्य प्रातःकालमें पतिकी आज्ञा लेकर पूजनके लिये जाया करती थी। मंदिरके पासमें ही फूलोंके वृक्ष थे। उन वृक्षोंसे अपने हाथसे पुष्प तोड़कर महादेवजीपर चढ़ानेका उसका नियम था। एक समय राजाने विचार किया कि यह बड़े प्रातःकाल ही पूजाके बहाने कहां जाती है? इसकी परीक्षा करनी चाहिये। ऐसा विचार कर दूसरे दिन भेष बदलकर पुष्पके वृक्षकी ओटमें छिप रहा। प्रभावती नियमानुसार पुष्प लेनेको वहां पहुंची। छुपे हुवे राजाने पहिचान न सके इस युक्तिसे उससे कहा कि, अरे! कच्चे पुष्पोंको चुननेवाली स्त्री! यहां आव और मेर पास बैठ ऐसे वचन कहे। यह सुनते ही राणी बोली "अरे दुष्ट! पापि!! इधरसे दूर हो, मेरे तो चन्द्र सूर्यके समान तेजस्वी पति है"। ऐसा कहकर पूजा करनेको चली गई। राजा मनमें विचार करता हुआ घर लौट आया। जब प्रभावती पूजा करके घर आयी तब अपने पतिसे निष्कपट हो बीती हुई सब वात कह सुनाई। राजा सुनकर क्रोधित होनेके बदले हंसने लगा। यह देख कर सती बोली "महाराज! उस दुष्टको दण्ड देनेके बदले आप क्यों हंसते हैं? यह सुन राजाने प्रेमालिंगन कर कहा कि, हे प्रिये! मैंने ही तेरे पतिव्रतधर्मकी परीक्षा करनेके लिये यह युक्ति रची थी। यह सुनकर सती अपने कहे हुए कटु वचनोंके लिये पश्चात्ताप करने लगी "हे महाराज! मैंने आज तक आपकी आज्ञा भंग नहीं की है, कभी कटु वचन नहीं कहे। आज अज्ञानतासे जो कुछ मैंने अपराध किया है उसे क्षमा कीजिये" ऐसा कहकर रुदन करने लगी। राजाने उसे हंसकर समझाया कि तू किसलिये शोक करती है? मुझे तेरे इन वचनोंसे तेरे पतिव्रतधर्मकी परिक्षा हो गयी। जिसके कारण मुझे पूर्ण संतोष और आनन्द प्राप्त हुवा है। प्रिये! पतिके चित्तको दुःखी करना यह साध्वी स्त्रीयोंका धर्म नहीं है; किन्तु तूने ऐसा कभी नहीं किया। स्त्रियोंका सच्चा धर्म पतिको प्रसन्न रखना ही है, इसी प्रकार अनेक वचनोंसे उसे शान्त किया। पीछे आनन्दसे दोनों अपनी आयु भोगने लगे!

जसमा।

यह साध्वी स्त्री मालवाकी रहने वाली थी। यह कान्तिवान तथा शरीरसे कोमल थी। शिरके केश, नेत्र, ओष्ठ, नासिका आदिसे सुन्दरता अपूर्व होनेके कारण इन्द्रकी अप्सराको भी लज्जित होना पड़ता था। इसकी मधुर वाणी, सदाचरण, पातिव्रत्य, स्वामीपर दृढ प्रीति, अचल शील व्रतादिको देखकर लोगोंको आश्चर्य होता था। मनुष्यके स्वरुपका आधार श्रम, इच्छा, बुद्धिबल और ऊंच–नीच पर नहीं होता वह केवल ईश्वरेच्छासे ही प्राप्त होता है। ईश्वरके यहां सब समान है। पुत्र-पुत्रीके जन्मका और बालकके रूप कुरूपका आधार ईश्वरेच्छा पर ही निर्भर है। जसमा ओड़ जाति, जो हिन्दुओंमें नीच जाति मानी जाती है, उसी जातीमें धार्मिक और नीतिवान थी। ओड़ नायक त्रीकमके साथ इसका पाणीग्रहण हुआ था। विवाहके पश्चात् पतिव्रतधर्मके अनुसार ही यह चलती थी। इन दोनोमें परस्पर अत्यंत प्रेम था। ओड़ जातिके लोग घर बांधना, कुवा, वावली खोदना, तालाव खोदना आदिमें कुशल माने जाते हैं। जसमा और त्रीकम अपनी जातिके मुखिया व नायक थे। इनके अधिकारमें हजारों स्त्री पुरुष काम करते थे। जब सिद्धराज जयसिंहने पाटणमें सहस्रलिंग तालाव खोदनेका विचार किया तब मालवासे ओड़ जातिके मनुष्योंको बुलानेके लिये दूधमल नामक अपने भानजाको भेजा। दूधमलको, दो हजार ओड़ पुरुष और दो हजार स्त्रियों उनके श्रमानुसार वेतन पर, त्रीकम व जसमाकी मारफ़त मिले। उन्हें लेकर दूधमलने पाटणमें आकर तालावके खुदवानेका काम प्रारंभ करदिया। राजा सिद्धराज जयसिंह नित्य सुबह, सांझ, और जब उसे अवकाश मिलता था तब तलाव पर जहां उसने अपने लिये एक तम्बू बनवा लिया था वहां जाया करता था। एक समय राजा तम्बूके बाहर शीतल, मंद वायुमें बैठा था और सामने ही ओड़ लोग काम कर रहे थे। उनमें यह साध्वी जसमा मिट्टीकी टोकरीको शिरपर धर, मिट्टी डालकर दूसरी बार उसे भरकर ला रही थी। हठात् उसपर राजाकी दृष्टि पड़ी। राजा उसके चन्द्र समान मुखको देखकर आश्चर्यमें मग्न हो विचारने लगा कि, ओड़ जातिके समान नीच जातीमें भी ऐसी चन्द्रमुखी स्त्रियां होती है? क्या प्रभुके पास उच्च, नीचका कोई भेद नहीं? सत्य है, ईश्वरकी लीला अलौकिक है। इस प्रकार सोचता जसमाकी ओर बड़े ध्यानसे देख रहा था। उसे उसकी कोमलता, व सुंदरताके अधिक प्रमाण

मिलते गये। जैसे अंधेरी रातमें बिजली चमके उसी प्रकार जसमाके मैले पुराने वस्त्रोंमेंसे उसका मुख चमकता था। उसकी सुंदरतामें किसी भांतिकी त्रुटि नहीं थी। उसकी आयु भी केवल १८ वर्षकी थी। उसकी सुंदरताको देखकर राजा मोहित हो गया। क्योंकि राजा अभीतक अविवाहित ही था। इसलिये उसने विचारा कि इसे अपनी पटरानी बनाना चाहिये। इस प्रकार प्रेमके आवेशमें जसमाको अपने पास बुलायी, परन्तु वह नहीं आई। संध्याकालमें राजा अपने राज-महेलको चला गया, परन्तु उसके हृदयसे यह बात दूर नहीं हुई। उसके सौन्दर्यसे राजाका चित्त वशमें न रहा। अनेक विचारोंके कारण रात्रिको पूरी निद्रा भी नहीं आई।

दूसरे दिन राजा प्रातःकाल तालाव पर गया। उसने जसमा और उसके पतिके पास संदेशा भेजा कि, "तुम सब ओड़ ओड़नीके मुकाद्दम हो इस लिये तालाव-पर सोना, वृक्षके नीचे खाना बनाना, और खाना उचित नहीं। जसमा सुकुमार और स्वरूपवती है, एवं दूधमुख बालक गोदमें है। उसको रातदिन मैदानमें रहना अनुचित है। इस लिये तुम दरबारमें चलकर महलमें रहो। वहां तुमको एक स्वतंत्र स्थान देकर तुम्हारी सब प्रकारसे रक्षाका विशेष ध्यान दिया जा सकेगा"। यह समाचार सुनकर जसमा तथा उसके पतिने उत्तरमें कहा कि,—"हम मजदूर लोग झोंपड़ीके रहनेवाले हैं, हमको महलमें रहना कैसे शोभित हो सकेगा? जब हम कहीं अन्य स्थानपर मजदूरीको चले जायगे तो ऐसा महल कहां प्राप्त हो सकेगा? हमको मैदानमें ऐसी ही झोंपड़ियोंमें रहनेकी आदत पड़ गयी है। महा-राजका हम उपकार मानते है और यह प्रार्थना करते है कि हमको इस तालावपर कामके पास ही रहनेकी आज्ञा देवे"। जब राजाने यह उत्तर सुना तब तो अधीर हो स्वयं वहां गया और जसमासे कहने लगा कि, "तुम्हारा शरीर अति सुकुमार है। तुम मजदूरीका काम करनेके योग्य नहीं हो। टोकरीके उठानेसे तुम्हारे कोमल गोरे हाथ लाल पड़ जाते हैं। भारके उठानेसे तुम्हारे मस्तकको पीड़ा होती होगी। तुम इस मजदूरीके कामको छोड़कर महलमें चलके मौजसे रहो। मैं तुम्हें विना श्रम किये ही वेतन दूंगा। यह तुम्हारा बालक रोता है, जिसे दिनमें धूप और रात्रिमें शर्दी लगती होगी, महलमें जो पालना है उसमें इसे सुलाना" इत्यादि बातें उसके मनको लुभानेके लिये कहने लगा। यह सुनकर जसमाने नम्रतासे उत्तर दिया, "महाराज! महलमें रानियें ही शोभा पाती हैं। मुझे विना श्रमके वेतनकी आवश्य-कता नहीं। बालकके लिये मैंने वृक्षमें झोली बांध दी है जिसे मैं आते जाते झुला दिया करती हूं, जिसमें यह सुखसे शयन करता है! हम लोगोंके बचें वस्त्र रहित

होने पर भी श्रम करने योग्य शरीरसे बलवान होते हैं। इस लिये पालना व अन्य खिलोंनेकी आवश्यकता नहीं है"। जसमाके ऐसे वचन सुनकर राजा अपनी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये उसे अनेक प्रकारके प्रलोभनें दिखाने लगा। वह कहने लगा, "जसमा! तुम मजदूरीको छोड़ दो और महलमें रहो, अपने पतिको त्याग दो, मैं तुम्हें तथा तुम्हारे बालकको जागीर दूंगा, मैं तुम्हें ब्याहिता पटरानीसे अधिक बनाकर नाना प्रकारसे राज्य वैभवका सुख दूंगा"। परन्तु सतीके मनमें इन लोभमय वचनोंसे कुछ भी परिवर्तन नहीं हुवा, किन्तु ये वचन उसे बाणकी नांई हृदयको पीड़ित करने लगे। धैर्य धरके राजासे कहने लगी, "महाराज! यह आप क्या कह रहे हैं? आपको ऐसे दुर्वचन शोभित नहीं होते। राजन्! परस्त्रीको बहिनके समान देखना चाहिये। मैं पतिव्रता स्त्री हूं, यदि आप पृथ्वीका भी राज्य मुझे देवे व मेरे प्राण ही ले लेवें तोभी मैं कदापि अपने पातिव्रत्य धर्मको न त्यागूंगी। प्राणोंकी अपेक्षा मुझे अपना शील अति प्रिय है। मैं प्राणका त्याग कर सक्ती हूं; परन्तु शील नहीं त्याग सक्ती। आप मेरी बातको निश्चय और सत्य मानिये। आप भविष्यमें इस प्रकार आग्रह करना छोड़ दीजिये। आप अपनी मर्यादासे रहिये, जो दुराचारिणी स्त्रियाँ हों उन्हें आप इस लालचमें फंसा सक्ते हैं और वेही सहजमें लोभित हो जाती हैं। मैं आपके ऐसे वचनोंसे मोहित हो कदापि दुष्कर्म नहीं करूंगा। यद्यपि मैं जातिकी शूद्र हूं तथापि धर्मशास्त्रानुसार चलनेवाली सती स्त्री हूं। मैंने अपने पतिके साथ अग्निदेवके सामने ईश्वरको समक्षमें जानकर शास्त्रानुसार पाणिग्रहण किया है। उस पतिका कभी त्याग नहीं कर सक्ती। जो मेरे इस शरीरका स्वामी है भविष्यमें उसके सिवाय अन्य नहीं हो सक्ता। जहां साधारण लेन देनमें भी किये हुए करारका भंग नहीं हो सक्ते तब ईश्वरको बिचमें रखकर किये हुये करारका कैसे भंग हो सक्ता है? मैं आपसे लग्न करने योग्य नहीं हूं। मुझे पटरानी होनेकी इच्छा नहीं है। मुझे राज्य वैभवके सुख भोगनेकी इच्छा नहीं है। मुझे ईश्वरेच्छासे जो पति प्राप्त हुवा है वही सच्चा पति है। मेरे पतिकी ओरसे मुझे जो सुख दुःख होगा उसे मैं प्रसन्नतापूर्वक भोगूंगी। मेरी महनत, मजदूरी मुझे पसंद है और उसीमें सुखपूर्वक निर्वाह होता है अब अधिक सुखके लिये मुझे किसी अनीतिके कार्य करनेकी इच्छा नहीं हैं। नीतिके अनुसार उदर पोषणार्थ धंधा करूंगा। ईश्वरभक्ति और सदाचरण ही मुक्तिके दाता है"।

जसमाके ऐसे वचन सुनकर राजा निराश हो गया और पीछे दरबारमें लौट आया। जसमाका रूप और उसकी पातिव्रत्य-धर्मपर दृढ़ता देखकर आश्चर्यमें लीन

हो अधिक आसक्त हो गया। इस कारण अपने प्रधानको बुलाकर कहा कि, "प्रधानजी ! किसी भी युक्तिसे जसमाको मेरे महल लाना चाहिये"। प्रधान सुनकर अप्रसन्न हो मनमें सोचने लगा कि राजा कोई राजपूत-कन्याके साथ विवाह करनेकी अपेक्षा एक शूद्र स्त्रीको पटरानी बनानेकी इच्छा रखता है इससे राजकुलमें कलंक लगेगा, संसारमें अपकीर्ति होगी, और दूसरे राजाओंमें निंदा होगी। यद्यपि मंत्री ये विचार मनमें ही कर रहा है, परन्तु प्रत्यक्ष राजाके डरसे कुछभी नहीं कह सक्ता। यह बात वायुके समान पूर्ण राज्यमें फैल गई। नगर-निवासी अप्रसन्न हो गये तब वृद्ध पुरुष और धनिक लोगोंने मंजुल नामक प्रधानसे कहा कि आप हिम्मत करके महाराजको समझानेकी चेष्टा कीजिये, राजाको ऐसे दुष्कर्म करना शोभित नहीं होता, राजाकी नीतिपर प्रजाकी नीतिका आधार है। यदि राजा सदाचरणी होगा तो प्रजा भी सदाचरणी होगी। इसलिये उन्हें अपनी नीतिका नाश नहीं करना चाहिये। इनको कोई अच्छे प्रतिष्ठित राजाकी सुन्दर कन्याके साथ पाणीग्रहण करना चाहिये, इससे राजनीति रहेगी अन्यथा वर्णसंकर राजपुत्र होगा, जिससे राज्यको बड़ी हानी होगी। मंत्रीने यह सुनकर विचार किया कि निःसंदेह यह मेरा धर्म है कि राजाको समझाकर ऐसी अनीति करनेसे रोकूं। इस भांति मनको दृढ़ कर राजाके समीप जा उसे अनेक भांतिसे समझाने लगा। राजा और प्रधानमें जाति-भेद, उच्च-नीच, विषयपर अनेक प्रकार विवाद होने लगा। राजा बोला "अपने देशमें कुलाभिमान यह अस्वाभाविक एवं ईश्वरीय नियमसे विरुद्ध है। प्राचिन महर्षियोंके ग्रंथोमें गुणकर्मके अनुसार उच्च नीच समझा गया है। इस विषयमें जितने उदाहरण चाहिये मिल सके हैं जो गुणवान है वही कुलवान और उच्च है। यह बात अनेक वर्षासे मेरे मनमें आई थी उसे आज कहनेका मुझे अवसर मिला है। इस जसमाको ईश्वरने मज़दूरी करनेके लिये उत्पन्न नहीं की है। देखिये ! उसकी सुंदर कांतिको और सुनिये उसकी मधुर वाणीको ! उसकी बुद्धि, उसकी चतुरता एवं उसके सद्गुणों परसे ही मालूम होता है कि यह राज्य महलके योग्य हैं। उसके नहीं पढ-नेका कारण केवल उसका गरीब घरमें उत्पन्न होना ही है। यदि उसके पढ़ानेका प्रबंध किया जाय तो थोडे ही समयमें पढ़ लिखकर विदुषी हो सक्ती है।

प्रधानने कहा कि यह बात सत्य है; किन्तु अर्वाचीन कालमें देश रीतिसे विरुद्ध चलनेसे बहुत हानि होगी। अभी तो स्वज्ञातिमेंसेही विवाह करना सर्व भांति अच्छा है। हे राजन् ! आप जसमासे विवाह करनेका विचार त्यागकर किसी क्षत्रिय-कन्याके साथ विवाह करें तो अति उत्तम है। परन्तु राजाने प्रधानकी एकभी शिक्षा

नहीं मानी । फिर तो प्रधानने राजाकी इच्छाको निष्फल करनेके लिये युक्ति रचनेका मनमें निश्चय कर, राजासे प्रगट कहा "अच्छा महाराज ! जो आपकी आज्ञा है उसे पूर्ण करनेका उपाय करता हूं"। इस प्रकार राजाको धैर्य देकर जसमाके पास आया । वहां उसका पतिपर पूर्ण स्नेह देखकर प्रसन्न हो जसमा और उसके पतिसे तालावके खोदनेका काम शीघ्र पूर्ण कर अपने देशको लौट जानेकी सलाह दी ! जसमा तथा उसके पतिने प्रधानकी बताई हुई युक्तिके अनुसार तालावके कार्यको अपने साथियोंके साथ बहुत जल्दी पूर्ण कर दिया । जब राजासे अन्तिम हिसाब चुकता करनेको कहा तब उसने जसमा तथा उसके पतिको दरबारमें सिरपाव देनेके बहाने उनका हिसाब न देकर उनके अन्य साथियोंका हिसाब चुकता करके उनको विदा किया । मालवी लोग अपने देशमें जानेके लिये तैय्यार हो गये तब जसमाने भी आधिरातको अपने पतिके साथ और अन्य साथियोंको लेकर चल दिया । राजाको इस बातकी खबर पहुंचते ही उसने तुरंत घोडेपर सवार हो उनके पीछेर बड़ी शीघ्र-तासे घोड़ेको दोड़ाया । कितनेक कोस चलने पर राजा उन लोगोंके पास पहुंच गया। त्रीकम व उनके अन्य साथियोंने राजाका सामना किया; किन्तु वे लोग मारे गये । जसमाने अपने पतिकी इस दशाको देखकर अपने पेटमें कटारी मार ली; किन्तु मरनेके पहिले ही राजासे कहा कि, "तेरे तालावमें पानी नहीं रहेगा"। राजाने तुरंत ही घोड़ेपरसे उतरकर उसका हाथ पकड़ लिया; किन्तु इसके पहिले ही कटार उसके पेटमेंसे निकलकर पीठकी ओर निकल चुकी थी । राजाने जसमाके शिरको अपनी गोदमें रखना चाहा; किन्तु उसने राजाका हाथ झटक दिया और जबतक उसे कुछ होश रहा तब तक उसने अपने दोनों हाथोंसे आंखे बंद करके राजाका मुंह भी नहीं देखा । राजाने धीरसे उसके पेटमेंसे कटार नीकाल ली; किन्तु कटारके निकलते ही उसकी सब आंते बाहर निकल आई और उसके प्राण—पंखेरू उड गये । यह हाल देखकर राजा बहुत पछताया और नेत्रोंसे आंसू बहाकर रोने लगा । इतनेमें उसके शरीररक्षक आ पहुंचे । वे राजाको समझाकर विनयपूर्वक राजधानीको लौटा ले गये वहां राजाने जसमा तथा उसके पतिकी अन्तिम क्रिया की । जसमाके वचनानुसार उस सहस्रालिंग तालावमें पानी नहीं रहा । जसमा ! तुझे धन्य है कि तूने अपने पातिव्रत्यके लिये राज्यसुखको तिलांजली दे दी! किसीको लोभके वशमें नहीं पड़ना चाहिये । देखो जसमाने अपने प्राण खोकर अपने पातिव्रत्य धर्मकी रक्षा की और अपना नाम संसारमें अमर कर गई ! धन्य है ऐसी साध्वी स्त्रीको !

धनलक्ष्मी ।

यह साध्वी स्त्री बड़ोदा राज्यके बीलना नामक ग्रामके निवासी जगन्नाथ लक्ष्मीरामकी पुत्र-वधू और डभोई जिलेके छतरारके निवासी जोषी जीवरामकी पुत्री थी। धनलक्ष्मीकी सास महाकुंवर धार्मिक, उदार, चतुर और शिक्षिता होनेसे उसने अपनी वहू धनलक्ष्मीको आर्य-धर्म, नीति, रीति आदिके अनुसार शिक्षा देकर सुलक्षणा बनाई थी। इतनाही नही; उसने अपने पति तथा गिरिजाशंकरको भी सद्गुण सम्पन्न बनानेमें बड़ा श्रम किया था। जिस दिनसे विवाहित होकर घरमें आई है उस दिनसे जगन्नाथ भट्टकी प्रतिष्ठा प्रति-दिन बढ़ने लगी। उसको प्रारंभसे ही आर्य-नीति, धर्मकी पुस्तकें पढ़नेका तथा उपदेश-प्रद पद बनाकर उपदेश देनेका वैसेही बालकोंको शिक्षा देनेका बहुत शौक था। ऐसे सद्गुणी स्त्रीके हाथके नीचे पुत्रवधू व पुत्र उत्तम हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? धनलक्ष्मी अपनी सासके अमृत समान वचन व प्रेमको पाकर अपने माता-पिताके घर जानेका कभी भी संकल्प नहीं करती थी। कदापि माताके आग्रहसे जाना पडता तो भी वहां २-४ दिन रहकर फिर सासके समीप चली आती थी। सास-वहूमें अत्यंत घनिष्ट प्रेम था यह बात आज कलकी सास-वहुओंको ध्यानमें रखनेके योग्य है। जहांपर ऐसा स्नेह सास-वहूके बीचमें रहता है और वे अपने २ धर्मके अनुसार चलती है उस घरमें सुख सम्पत्तिकी न्यूनता कभी नहीं रह सक्ती। धनलक्ष्मी अपनी सासको सदैव ही माताके समान समझकर उसकी आज्ञामें रहता थी। सास-स्वशुरके मनको बुरा मालूम हो ऐसा कोई भी आचरण नहीं करती थी। पति व सास-स्वशुरकी प्रीतिपूर्वक सेवा करनेसे उनका उसने आशीर्वाद प्राप्त किया था। वह कभी भी परपुरुषका मुख नहीं देखती थी और पर पुरुषके साथ हंसकर बात करना वह नहीं जानती थी। अपने जीवनमें उपयोगी हो ऐसे पुस्तकोंके पढ़नेका उसे अत्यंत प्रेम था। यही नहीं, किन्तु उसे पुस्तकोंमेंसे उपयोगी सार समझकर हृदयमें उसे दृढ करनेका अभ्यास था। वह अपने पतिकी आज्ञाके विना कुछ भी नहीं करती थी; इस प्रकारकी वह सद्गुणी थी। वास्तविक सद्गुणी स्त्रीकी कसोटी संङ्कटके समय ही होती है। इस साध्वी स्त्रीको भी उस कसौटीपर चढ़नेका समय आया। पति प्रेम, दया, शील, धैर्य, समय सूचकता इत्यादि गुणोंकी परीक्षा हुई जिसमें वह उत्तीर्ण हो गई उससे उसकी कीर्तिकी अभिवृद्धि हुई। साथ ही उसने

अपने माता-पिता सास-स्वशुर और पति प्रभृतिको धन्यवादका भोगी बनाया था।

सम्वत् १९४५ के चैत्र कृष्ण पक्षमें जम्बूसरके निवासी शुक्ल विश्वनाथके भतीजेका विवाह था। उसकी बारातमें धनलक्ष्मी और गिरिजाशंकर दोनों खंभात गये थे। खंभातमें विवाह हो जानेके पश्चात् जम्बूसर पीछे आनेके लिये नौकामें बैठे। उस नौकामें दो बारातके मिलकर कई मनुष्य थे। उन सबको कावी बंदरमें उतरना था। नौका चलाकर थोड़ी दूर ले गये थे कि दरियामें एक बड़ा तूफान आया, लहेरोंपर लहेरें आने लगी, नौकामें उसके डूबनेके लक्षण प्रतीत होने लगे। निदान नाविक घबराने लगे। नौकामें बैठे हुये मनुष्योंने नाविकसे सावधान होने कहा; किन्तु अब वह क्या कर सक्ता है? जब मनुष्योंके भाग्यही फिर गये हों, ईश्वरकी यही इच्छा हो तब मनुष्यका बल क्या काम कर सक्ता है? यह हाल देखकर कोई परमेश्वरसे विनय करने लगे, कोई उच्च स्वरसे रुदन करने लगे। इतनेहीमें एक बड़ी मौज आई; उसे देखते सब कोई तन बदनकी सुधि भूल गये। नाविक लोग समुद्रमें कूद२ कर तरने लगे। यह हाल देखकर सब बैठने वालोंके शरीर बरफके समान हो गये और सबने जीवनकी आशा छोड़ दी। परन्तु धनलक्ष्मीको जिसने "सहस्र रजनी चरित्र" पुस्तकमें पढ़ा था कि "नौकामें सचेत होकर बैठना चाहिये नौकाओंमें सेमर लकड़ीके टुकड़े रक्खे जाते हैं। इस लकड़ीका एक छोटा टूकड़ा भी मनुष्यके भारको लेकर जलमें नहीं डूब सक्ता" इस बातका स्मरण हो आया। फिर तो वह ऐसे टुकड़ेकी खोज करने लगी। अपने शरीरपरके समस्त वस्त्रोंको समेटकर अच्छी तरह बांध लिये। इतनेमें एक साधारण सेमरकी लकड़ीपर उसकी दृष्टि पड़ी। उसने अपने पति गिरिजाशंकरको बुलाकर उसको पकड़ लेनेके लिये कहा। गिरिजाशंकरने उस लकड़ीको पकड़ लिया, उसने एक हाथसे उक्त लकड़ी व दूसरे हाथसे जेवरोंका पाकिट पकड लिया, किन्तु लोभ वश उसका ध्यान जेवरोंके पाकिटकी ओर विशेष था और लकडीकी ओर साधारण था। धनलक्ष्मीने उसका यह हाल देखकर उसके हाथसे जेवरोंके पाकिटको छुडाकर फेंक दिया किन्तु उसने उसे फिरसे उठा लिया और नौकाके आगे रख दिया। यह सब उसने बड़ी शीघ्रतासे किया उतनेमें वह नौका उछलकर उलटी हो गई उसके भीतर जल भर गया। धनलक्ष्मी तथा उसके पतिने लकड़ीको पकड रखा। व उसीके आधारपर बचे और शेष मनुष्य डूब गये। इनके मुखमें भी पानी घुसता था। उन लोगोंसे कुछ दूरपर एक ब्राह्मणका लड़का जिसका नाम हरिशंकर था वह डूबकर फिर जलके ऊपर आ गया। वह इन दोनोंको देखकर इनके पास आया और इनसे चिपट गया।

यह देखकर गिरिजाशंकर घबरा गया; क्योंकि लकडी तीनोंका भार नहीं सहन कर सकनेके कारण डूबने लगी। इस समय धनलक्ष्मी धैर्य धरकर उसे सहाय देने लगी। गिरिजाशंकरको तेरना नहीं आता था; वैसेही वह पानीसे डरता था। वह जब डाकोरजी जाता था तब गोमतीके घाटपर बैठकर ही स्नान कर लेता था वह इस प्रकारका डरपोक था; किन्तु आज उसे इस समुद्रके अगाध जलमें फंसनेका समय उपस्थित हुआ। ईश्वरकी गति विचित्र है। धनलक्ष्मीने जान लिया कि तीनोंके बोझका भार सहन न करके लकडी जलमें डूब जायगी; इससे यदि दो ही प्राणी बच सकें तो उत्तम है। ऐसा विचार कर पति तथा हरिशंकरको बचानेके लिये आप स्वयं डूबजानेके लिये तत्पर हुई। किन्तु उसे तैरना आता था इस लिये यह भी सोचा कि मुझसे जब तक हो सकेंगा तैरुंगी यदि इसपरभी डूब मरुंगी तो मैं समझूंगी कि मेरी आयु ही पूर्ण हो चूकी; परन्तु इन दो ब्राह्मणोंकी जान तो बचेगी। ऐसा करना मेरे परम सौभाग्यकी बात है इस प्रकार विचार करके लकड़ीको छोड़ दिया और स्वयं तैरती हुई अपने पति गिरिजाशंकरको कहने लगी कि " सावधान! कभी घबराकर लकड़ी न छोड दीजियेगा, ईश्वर जो करेगा वही उचित और ठीक है। हरिशंकरसे कहा कि भाई! यदि तू उस लकड़ीके ऊपर चढ़ बैठेगा तो तुम दोनों ही डूब जाओगे; इस लिये लकड़ीको केवल सहारा मात्र समझकर पकडे रहना। फिर पतिसे कहा कि, "प्राणनाथ! अब मैं आपको अन्तिम प्रणाम करती हूं।" इतना कहते हीं वह एक बडी लहरमें डुब गई; किन्तु उसे डुबकी लगानेका भी कुछ अभ्यास था। इससे उस लहरके जाने पर जलके ऊपर आई; किन्तु इतनेमें तो दूसरी लहर आ पहुंची। धनलक्ष्मी उसमें डूबनेकी अपेक्षा उस लहरके ऊपर हो गई और आस पासमें पतिको देखने लगी; परन्तु उसका उसे दर्शन भी न हूवा। यह चरित्र जहां पर नौका डूबी थी उसी स्थानके समीप ही हो रहा था। धनलक्ष्मी अपने पतिकी रक्षार्थ ईश्वरसे प्रार्थना करती हुई तैर रही थी। इतनेमें उसके पांवमें उस नौकाकी मोटी रस्सीका स्पर्श हुवा, तब उसने उस रस्सीके सहारे उस नौका तक जानेका विचार किया। इस समय नौकाका एक सिरा जलसे १ बालिश्त ऊंचा देख पड़ता था। उसे भी धीरे २ लहरोंमें डूबता हुवा देखकर कहने लगी, हे जगत्पिता! हे दीनदयालु! इस महान् संकटसे पार करनेवाला, सिवाय तेरे और कोई भी दृष्टि नहीं पड़ता। इतनेमें ईश्वरेच्छासे एक मोटा लकड़ उसकी दाहिनी ओर दृष्टिपर पड़ा और उसने उस लकड़को तैरकर पकड़ लिया। फिर उसे पकड़े २ तैरकर उस नौका तक आ पहुंची। नौकाके सिरपर जेवरोंका पाकिट देख पड़ा उसने उस पाकिट को पांवमें लिया और एक पांव और एक हाथसे तरने लगी।

इस समय समुद्रकी लहरें कुछ २ स्थिर हो चुकी थी। धनलक्ष्मीने धैर्यसे बलानुसार एक हाथ व एक पैरसे तैरना प्रारम्भ किया, किन्तु अधिक थक जानेके कारण उसने सोचा कि अब मरणकाल निकट आ पहुंचा है। ऐसा विचार कर उसने उस जेवरोंके पाकिटको जो पांवमें फंसाये थी जलहीमें छोड़ दिया। अब तो वह दोनों पांव और एक हाथसे तैरने लगी। इस प्रकार तैरती २ किनारेके पास आ पहुंची; किन्तु वहां पानीके वेगके कारण वह लकड़ी परिश्रम करने पर भी आगे नहीं बढ़ती थी। इतनेहीमें एक लहरने उसे बहुत ऊंचे उठा लिया; इस समय जब उसने ऊपरसे दृष्टि फैलाकर देखा तो कुछ दूरीपर एक मनुष्यके समान शिरपर वस्त्र लपेटा हुआ पदार्थ दृष्टिपर पड़ा। उसे देखते ही अपने पतिका स्मरण हो आया और उसके नेत्र भर आये। जैसे द्रौपदीजीने अपने वस्त्रहरण होनेके समय प्रभुको पुकारा और प्रार्थना की थी, उसी प्रकार धनलक्ष्मी भी नेत्रोंसे जल बहाती हुई ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी कि, " हे दीनबंधु! हमारी रक्षा करो! हे प्रभो! आप अनाथोंके नाथ हैं। अनाथनके नाथ आपने अनेकवार अपने आश्रितोंकी बड़े २ दुःखोंसे रक्षा की है। मेरे सास श्वशुरको हम अत्यन्त प्रिय हैं। यदि आप हमारी रक्षा न करोगे तो अवश्य वे प्राण त्यागेंगे। इस लिये दीनबन्धो! कृपाकर इस विपत्तिसे हमारी रक्षा कीजिये!"

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् चित्तमें पतिका चिंतवन करती हुई विचार करने लगी और कहने लगी कि," हाय! आपको तैरना नहीं आता, लकड़ी छोटी है, दो मनुष्य लगे हुए है वे महाजलमें बह गये है, वह मनुष्य यदि लकड़ीके ऊपर चढ़ बैठेगा या स्वयं कायर हो लकड़ीको छोड़ देगा तो डूब जायगा। हाय! इस समुद्रमें जीव जन्तुओंका भी अत्यंत भय है। हे ईश! तेरी इस दीन पुत्रीकी प्रार्थनापर ध्यान देकर उसकी रक्षा करना।" ऐसा कहकर रुदन करती हुई विचार करने लगी कि परमात्मा सत्यका साथी है उसने अनेक पतिव्रताओंकी सहायता की है; फिर क्या मेरे सत्यव्रत और मेरे पतिने अपने माता-पिताकी की हुई भक्तिकी ओर नहीं देखेगा? अवश्य देखेगा। ऐसा विचार कर हिम्मत करके लकड़ीको धकेलने लगी। कावी बंदर अनुमान १ मील रहा होगा वहां आपहुंची। इस समय दिनके ५-६ बजे होंगे। बंदर दिखाइ देने लगा। किनारे पर विश्वनाथ शुक्ल सवारी लेकर बारात लेनेके लिये आये थे। समुद्रके 'जलमें गाडीके पहिये भिगोनेसे दृढ़ होनेके विचारसे एक गाडी वाला अपनी गाडीको समुद्रमें डुबा रहा था। बड़ी२ नौकाओंसे उनमेंका लदा हुवा असबाब किनारे पर उतारा जा रहा था। ये सब उसको देख पड़ा। धनलक्ष्मी

उच्चःस्वरसे उस गाडीवानकी ओर हाथ उठाकर पुकारने लगी; परन्तु वह उससे आधा मीलकी दूरीपर था इस लिये उसने इसकी पुकारको नहीं सुना । फिर उसने दोनों हाथ ऊंचे करके उच्चःस्वरसे उग्रे पुकारा; अबकी वार उस गाडीवानने उसकी ओर देखा और देखते ही एक नाविक पास दौड़ता हुवा गया । उससे कहने लगा कि एक जीवित स्त्री तैरती हुई आती देख पड रही है ! जब नाविकने समुद्रकी ओर दृष्टि करके देखा तो उसे एक स्त्री उंचे हाथ किये हुये पुकारती हुई देख पड़ी । अब तो इस नाविक व अन्य देखनेवालोंको उस गाडीवानके कथन पर विश्वास हुवा; परन्तु इस समय भी समुद्रमें तोफान था जिसके कारण किसीकी हिम्मत जानेकी नहीं पडती थी । यद्यपि धनलक्ष्मी बहुत ही थक गयी थी तथापि वह यथा शक्ति तैर ही रही थी । किनारे परके देखनेवालोंको उसकी इस दशा पर अत्यंत दया आ रही थी । उन्होंने एक चतुर तैराक नाविकको अत्यंत समझाकर तैयार किया । उस लंगोट बांधकर ईश्वर स्मरण कर जलमें कूद पड़ा । जल्दी २ तैरकर धनलक्ष्मीके पास आपहुंचा और कहने लगा कि, "बहिन ! धैर्य रक्खो, मैं तुम्हें जलसे निकालनेके लिये आया हूं, परन्तु तू मुझसे चिपट मत जाना ।" धनलक्ष्मीने उत्तर दिया कि," भाई ! चिंता मत कर, मुझे भी तैरना आता है; किन्तु मैं बहुत थक गयी हूं; इसलिये तू मुझे इस लकडीके धकेलनेमें सहायता दे ।" चतुर नाविकने एक हाथ उस लकड़ीको धकेलना और दूसरे हाथसे तैरना प्रारम्भ किया । इस प्रकार उसकी सहायतासे वह लकडी बंदरके किनारे आ पहुंची । धनलक्ष्मी अत्यंत थकित होनेके कारण किनारे पर बैठ गयी । अब तो झुंडके झुंड उसे देखनेको बंदरपर आने लगे । उस समय धनलक्ष्मीके शरीर पर केवल एक लेंगे और काचलीके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था । वायुके लगनेसे उसे शर्दी लगने लगी । यह देख कर एक भले आदमीने उसे एक कपडा ओढ़नेके लिये दिया ।

इस समय उसको अपने पतिका स्मरण हुवा जिससे वह रुदन करने लगी । हाय ! मेरा पति बह गया और मैं क्यों बाहर निकली ? हाय ! मैंने एक बार लकड़ी पतिको सोंप कर मरनेकी तैयारी की, इतनेमें परमेश्वरने मुझे फिर लकडी क्यों दी । हे ईश ! अब मैं विना पतिके जीवित रह कर क्या करूंगी ? इस प्रकार शोक करने लगी । इतनेमें विश्वनाथ शुक्लने आकर उससे सब वृतांत पूछा । उत्तरमें रुदन करती हुयी धनलक्ष्मीने सब वृतान्त कहा । शुक्लजीने यह हाल सुनकर कहा कि हाय ! सबकोई डूब गये ? ऐसा कहकर रुदन करने लगा । जिसे देखकर गांवके सब लोगों में हाहाकार मच गया । धनलक्ष्मीको एक ब्राह्मणके यहां बैठा-

कर विश्वनाथ शुक्ल कितनेक मनुष्योंको साथमें लेकर मशालें लेकर किनारे२ मनुष्योंकी शोध करने लगा। धनलक्ष्मी अपने सौभाग्यके धन स्वामीको स्मरण कर रुदन करने लगी। गांवके स्त्री-पुरुष धैर्य देने लगे और कहने लगे कि, "देवि! तू क्यों रोती है! तूने अपने शरीरकी परवाह नहीं कर दयासे अपने पति और दूसरे ब्राह्मणके बचानेके लिये लकड़ी छोड़ दी थी उसपरसे ईश्वर तेरे ऊपर दया करेंगे। तूने उन दोनोंके ऊपर दया करके लकड़ीको छोड़ दिया तब ईश्वरने तेरी इस उदार वृत्तिको देखकर दूसरी लकड़ी दी; यही उसकी दयाका पहिला फल है। सिवाय इसके इतने भयंकर तोफानसे इस गहरे समुद्रकी मौजोंमें पड़कर भी तेरे शिरपरका सौभाग्य सूचक चिन्ह (बिन्दी) ज्योंकी त्यों बनी हुयी है; यह दूसरा शकुन है। ईश्वर तेरे सत्यव्रतकी ओर देखकर तेरे पतिकी रक्षा करेगा। तू विश्वास रख।" इस प्रकार निकटके मनुष्य उसे धैर्य और दिलासा देकर समझाने लगे; किन्तु धनलक्ष्मीको धीरज नहीं आती वह न भोजन करती थी, और न नींद ही लेती थी। वह वारम्वार ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी कि, "हे ईश्वर! मुझ अबलापर दया करके मेरे पतिकी रक्षा करो!" इस प्रकार रात्रिके ४ बज गये उस समय फौजदार उसका बयान लिखनेके लिये आया। फौजदारके सिपाहियोंने धनलक्ष्मीको सिखाया कि तू इस प्रकार लिखा दे कि, "मुझे फौजदारने समुद्रके अगाध जलसे बचायी हैं" किन्तु धनलक्ष्मीने जो सत्य बात थी वही लिखाई कि मुझे एक नाबिकने जलमेंसे बचाई है। इस बातपरसे फौजदार क्रोधित हो गया और कहने लगा ठहरो; मैं सारोदसे बयान लिख लाया हूं यह इसीके अनुसार है या नहीं? ऐसा कहकर धनलक्ष्मीके पतिका नाम पढ़कर बयान पढ़ सुनाया। जैसे ही धनलक्ष्मीने उस बयानके ऊपर अपने पतिके हस्ताक्षर देखे, वैसे ही उसको शांति हुई। फौजदारने हस्ताक्षर करनेके लिये कहा तब उसने अपने रु. १५००) के जेवरोंका पाकिट जिस स्थानपर छोड़ दिया था वह भरती उतरने पर शोध करनेसे मिलेगा ऐसा लिखकर अपने हस्ताक्षर किये। अपने पतिके जीवित रहनेका समाचार पाकर नेत्रोंमें हर्षके आंसु आ गये और उसके दर्शनके लिये आतुर हो गई। उतनेमें एक मनुष्यने आकर खबर दिया कि, बहिन! तेरा पति आ रहा है। यह समाचार गांवमें फैल गया कि उस स्त्रीका पति सारोदमें रातके ११ बजे निकला था वह अपनी स्त्रीकी खोज करता हुवा यहां आया है। यह सुनकर उस समय उसे देखनेके लिये बहुत मनुष्य एकत्र हुये। धनलक्ष्मी पतिको आता हुवा देखकर खड़ी होकर सामने चली और रुदन करती हुई पांवमें गिर पड़ी। उसके पतिने हाथसे पकड़कर बिठाल दिया और दोनों रुदन करते

हुये स्तब्ध हो गये। कुछ समयके पश्चात् शांत हुये। धनलक्ष्मीके कंधेपर हाथ धरकर उसके पतिने सबके देखते हुये कहा कि "हे स्त्रि! तुझे धन्य व तेरे माता को भी धन्य है! तूने हम दोनोंकी रक्षाके लिये अपना मरण स्वीकार किया। तेरा कल्याण हो! कृपासिंधु प्रभुने तुझे फिर एक लकड़ी देकर रक्षा कि जिसके लिये मैं उसका उपकार मानता हूं।" इतना कहनेके पश्चात् समुद्रमें जो अपनी मरणतुल्य दुःखकर दशा हुई थी वह कही; जिसे सुनकर लोग अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुये।

जगन्नाथ भट्टको यह गिरिजाशंकर नामक एक ही पुत्र था और धनलक्ष्मी एक ही वहु थी इस कारण इनपर बडा स्नेह था। धनलक्ष्मीको समुद्रमेंसे निकलनेपर अपने पतिका कुछभी पता नहीं था इस लिये उसने जगन्नाथ भट्टको १ पत्रके द्वारा यह वृत्तांत विदित कर दिया था। जिसे वह पतिसे कहने लगी कि, "हे प्राणनाथ! अब आप अपने जीवित निकल आनेका समाचार अपने पिताजीको लिख भेजिये नहीं तो आपके पिता इस भयंकर समाचारको सुनते ही प्राण त्याग देवेंगे। मेरी सासुजी तो न घभ-ड़ायेंगी क्योंकि जबसे मैं विवाहित होकर उनके पास रहती हूं तभीसे जानती हूं कि उन्हें हानि-लाभ जो भविष्यमें होनेवाला है उसकी खबर पड़ जाती है।" गिरिजाशंकरने कहा कि, "तू चिंता मत कर; मैंने उस गांवकी ओर जानेवालोंसे यह संदेशा कह दिया है।" धनलक्ष्मीके इस पवित्र प्रेमको देखकर पासकी बैठी हुई स्त्रियां एक एक करके उसके पैर लगने लगी; किन्तु धनलक्ष्मीने उन्होंने ऐसा करनेसे रोककर परमेश्वरको पैर लगनेका उपदेश दिया और कहाकि, "बहिनो! आज तुम सबके पुण्यप्रतापसे ईश्वरने हम लोगोंकी रक्षा की है। आज हमारे हर्षकी सीमा नहीं; मानो मेरे मृतक शरीरमें पतिके आजानेसे पुनः प्राण आ गये हैं।" इस प्रकार कह कर उन स्त्रियोंको अपने पति, सास-श्वसुर, माता, पिता प्रभृतिकी सेवा करनेका और स्त्री-धर्म, नीति आदिका उपदेश देने लगी। उसने पतिप्रेमका उपदेश देते हुये कहा कि, "बहिनो! तुम कोई भी परपुरुषकी ओर एकदृष्टिसे मत देखो और न उसके साथ कोई हंसीकी बात करो। इसका परिणाम अत्युत्तम है। देखो! अपने पासके एक ग्राममें दो भाई गराशिया रहते थे। इन दोनोंमें परस्पर बड़ा स्नेह और प्रेम था। बड़े भाईकी स्त्री कभी परपुरुषकी ओर नहीं देखती थी और न हँसी करती थी; किन्तु छोटे भाईकी स्त्री हँसमुख थी। एक दिनकी बात पर छोटे भाईकी स्त्री देवमंदिरके निकटके कुवेपर चोरीसे पानी भरनेको गई। वहांपर हवालदार बैठा था। हवालदारने इस स्त्रीको देखकर कहा कि, "ठकुरानीजी!

क्या हाल है ?" उस हँसमुखी स्त्रीने कहा कि "हवालदार साहब ! सब ठीक है !" इस प्रकार हवालदारके दो चार प्रश्नोंका उत्तर इसने स्वभावतः हँसते हुये दिया। तब तो हवालदारने सोचा कि यह स्त्री मुझपर प्रेम करती है, किन्तु इस बिचारी भोली स्त्रीके मनमें किसी प्रकारका कपट नहीं था। इसका तो इसी प्रकारका स्वभाव ही था। फिर हवालदारने उसके पतिसे मीठे २ वचन कहना प्रारंभ किया और अंतमें वह धीरे २ उसके घर भी आने लगा। एक दिन हवालदारने सोचा कि इस प्रकार मेरा काम पूर्ण न होगा; इस लिये इसके पतिको मार डालनेसे यह तुरंत ही हाथमें आ जावेगी। एक दिन दोनों भाई दहलानमें सो रहे थे; उस दिन यह पापी हवालदार दीवार परसे चढ़कर घरमें आया और बड़े भाईकी तलवार जो पास हीमें टंगी थी उठाकर छोटे भाईके शिरको काट डाला और तलवारको वहीं छोड़कर उसी दिवारपरसे घरके बाहर निकलकर चल दिया। दूसरे दिन कलेक्टरने तहकीकात की और छोटे भाईकी स्त्रीसे पूछा कि, "क्या तुझे तेरे जेठपर संदेह है ?" किन्तु उसने कहा कि, "नहीं, वे कदापि इस अनुचित कार्यको नहीं करेंगे"। किन्तु अंतमें कलेक्टरने बड़े भाइको ही अपराधी ठहराकर उसको फांसी लगवा दी। इस प्रकार ये दोनों भाइयोंकी अकाल मृत्यु हुई ! फिर एक दिनकी बात है कि वह हंसमुखी स्त्री उसी कुवेपर पानी भरने गई। वहांपर उसी हवालदारने उससे फिर पूछा कि, "कहो ठकुरानीजी ! अब क्या हाल है" यह सुनतेही वह हंसमुखी स्त्रीको पहिले दिनका स्मरण हो आया और सोचने लगी कि, "इसी दुष्टने मेरे पतिको मारा है। यह विचार उसके जीमें आते ही उसने हवालदारको उत्तर दिया कि, "सब ठीक है, यदि आज आप मेरे यहां आनेका कष्ट सहें तो बड़ी कृपा होगी"। यह सुनकर हवालदार उसे अपने आनेका समय बताकर चला गया। उस स्त्रीने पुलिसको इत्तला दी और कहा कि आज मेरे घरमें छिपकर दो सिपाहियोंको बैठनेकी आज्ञा दी जावे। पुलिसके ऑफीसरने वैसाही करनेकी—दो सिपाहियोंको बैठनेकी—आज्ञा दी। संध्या होते ही दो सिपाही आकर उसके घरमें छिप कर बैठ गये। अब रातको अपने कहे हुये समयपर हवालदार आया। हंसमुखीने उसे दहलानेमें बैठाल दिया और इस प्रकार बात चीत करने लगी। वाह साहब ! आपने बड़ा बहादुरीका काम किया ! आपने उसे किस रीतिसे मारा था ? हवालदारने सब वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया। अब तो छुपे हुये सिपाहियोंने घरमेंसे निकल कर तुरंतही उस पापीको पकड़ लिया। दूसरे दिन कलेक्टरने तहकीकात करके उसको फांसी लगवा दी; किन्तु कलेक्टरने जो उस निरपराधीको फांसी लगवादी थी उसपर बहुत

पछताने लगा। इस प्रकार पर पुरुषकी ओर एक दृष्टिसे देखने और हंसनेका ऐसा परिणाम हुवा। इस लिये स्त्रियोंको ऐसा नहीं करना चाहिये।" इस प्रकार धनलक्ष्मीने उपदेश देकर अन्य कई उपदेशके गीत उनको सुनाये और अपनी सासके द्वारा सुने हुये स्त्री-धर्म भी बताया। पीछे पति-पत्नीने भोजन करके जम्बूसरसे चल दिया।

यहां धनलक्ष्मीके पत्रानुसार उसका स्वशूर छाती शिर कूट२ कर रो रह था; किन्तु उसकी सास उसे धैर्य देती और कहती थी कि, "तुम क्यों व्यर्थ रो रहे हो? मैंने किसीका कुछ अनर्थ नहीं किया, मैंने अपने धर्ममें किसी प्रकारकी भूल नहीं की है, तथा गिरिजाशंकरकी स्त्री भी पतिव्रता है; इसलिये ईश्वर मेरा कभी भी न बिगाडेंगे। मेरे हृदयमें इस विषयका किसी प्रकारका खेद नहीं है। तुम जंबूसर जाकर इस विषयकी सच्ची खबर लावो। जगन्नाथ भट्टने कुछ धैर्य होनेसे घोडेपर बैठकर तुरंत जम्बूसरकी ओर चल दिया। मार्गमें धनलक्ष्मी तथा उसके पति अपने पिताको देखकर रुदन करने लगे और उसके पांवपर गिर गये। जगन्नाथ भट्टने भी प्रेमाश्रु बहाते हुये उन दोनोंको अपनी छातीसे लगा लिया और आशीर्वाद दिया। इस प्रकार आनन्दसहित तीनों अपने घर आये। कुछ दिनके पश्चात् उस पाकिटके सब जेवर मिल जानेसे वह जेवर इनको दे दिये गये।

उपरोक्त कथा वर्तमान पत्रोंमें प्रगट हुई थी। इस साध्वी स्त्रीको बडोदा प्रांतके पर्सनल नायब सूबाने स्वयं अपने नेत्रोंसे देखी थी तथा उसीके मुखसे यह सब कथा सुनी थी। उन्होंने धनलक्ष्मीको अनेक धन्यवाद दिये थे। इस प्रकार वह परम साध्वी स्त्री अपने धर्म और वीरताके कारण अपना नाम इस संसारमें अमर कर गई है! धनलक्ष्मि! तुझे धन्य है और धन्य है तेरी सासको कि जिसने अपनी बहूको स्त्री धर्मकी ऐसी उत्तम शिक्षा दी थी। सत्य है सास बहुयें ऐसी ही होना चाहिये।

देवी शरत्-सुंदरी।

बंगाल प्रांतमें राजशाही जिलेके पुतिआना ग्रामके श्रीमान् राजा जोगेन्द्रनाथकी पतिव्रता स्त्री थी। पति-पत्नीमें परस्पर अधिक प्रेम था। यह देवी पातिव्रत्य धर्मानुसार पतिसेवा करती थी। पतिकी आज्ञाके विरुद्ध नहीं चलती थी। इस प्रकार थोडे दिन सुखसे

व्यतीत होनेपर इसके पतिकी मृत्यु हो गयी; जिसके कारण देवी शरत्सुंदरी अल्प बयमें विधवा हो गयी; अब उसने अपनी शेष आयुको ईश्वर-भक्तिमें व्यतीत करनेका पक्का विचार कर लिया और अपने अमूल्य वस्त्राभूषण गरीबोंको दान कर दिये। केवल वैधव्यसूचक साड़ीके अतिरिक्त अन्य वस्त्र नहीं धारण करती थी और सवा मन रुई भरे हुये बिछानेको त्याग कर तृणकी शय्यापर शयन करने लगी। अपनी सखी सहेलियोंको जो इसे सदैव हंसाती रहती थी उसे त्याग दी और अपने समान विधवा स्त्रियोंके पास जाकर काशीधाममें रहने लगी। ईश्वर-भक्ति, पूजन, और ध्यानादिमें अपना समय व्यतीत करने लगी। ऐसा करते२ अधिक समय व्यतीत न हुआ था कि इसका दत्तक पुत्र भी मृत्युकी शरण हुआ; परन्तु इस देवीने अपनी पूर्व सम्पत्तिका मोह बिलकुल त्याग दिया था इसलिये अपने निश्चय किये हुये विचार पर दृढ़ रही। अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिको शुभ कार्यमें लगा दी और स्वयं काशीजीमें निश्चिंत होकर ईश्वरभक्ति करने लगी। सरकारने इस देवीके अद्भुत वैराग्य और उदारताको देखकर उसे "महारानी" पदवी दी थी। इस प्रकार इसने अपनी शेष आयु ईश्वर-भक्ति और परोपकारमें व्यतीत करके मृत्यु पायी थी। इसकी मृत्युसे देशके बहुत मनुष्योंको दुःख हुवा था; क्योंकि यह अपने द्रव्यको स्वयं न लेकर परोपकारमेंही व्यय कराती थी। सौभाग्यावस्थामें पतिपरायण और वैधव्यपनमें ईश्वर-भक्ति परायण रही थी। इसने "साध्वी सती" ये नाम प्रत्यक्ष सत्य कर दिखाये हैं। इसके सौंदर्य, धर्मनिष्ठा, आचार और विचारसे चकित होकर प्रोफेसर वर्डस्वर्थने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। हे ईश! इस देशमें फिर ऐसी पवित्र मनकी स्त्रियोंको उत्पन्न कीजिये।

वसुमती, रानी-हेमंतकुमारी।

यह साध्वी स्त्री महारानी शरत्सुंदरीकी पुत्रवधू थी। यह पातिव्रत्य धर्मानुसार चल कर पतिको अत्यंत प्यारी हो गयी थी। इसी प्रकार इसका पति भी इसे अनेक प्रकारसे सुख देकर इसे प्रेमसे चाहता था, किन्तु दैवेच्छासे पतिका देहान्त हो गया; जिसके कारण इसने अपने सब सुख-साधनोंको त्याग कर अपनी सास शरत्सुंदरीके समीप रहना स्वीकार किया। इसमें भी देवी शरत्सुंदरीके समान उत्कृष्ट गुण थे। जब देवी

शरत्सुंदरीकी मृत्यु हो गयी तब सरकारने यह जाननेके लिये कि, "रानी वसुमती राज्य-कार्य सम्हालने योग्य है या नहीं ?" एक कलेक्टरको भेजा। कलेक्टरने कई देशी अधिकारीयों और प्रतिष्ठित गृहस्थोंके साथ उसके समीप जाकर गणित, भूगोल और जमींदारीके अतिरिक्त कई प्रश्न पूछे। वसुमतीने उन प्रश्नोंके उचित उत्तर दिये। इसकी इस प्रकार विद्वता देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुवा और कलेक्टरने अत्यंत प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा सहित अपना रिपार्ट सरकारमें भेज दिया। कलेक्टरने विदा होते समय इससे कहा कि, "रानी साहब ! आपको परिश्रम हुवा उसके लिये मैं क्षमा मांगता हूं और सलाम करता हूं"। रानीने इसके उत्तरमें कहा, "मेरी आपको हजार वार सलाम है, आपने मुझे कोई परिश्रम नहीं दिया किन्तु आपको जो मेरे कारण कष्ट उठाना पड़ा मैं उसके लिये आपसे क्षमा मांगती हूं। अंतमें मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि मुझे मेरी सम्पत्ति दीजिये"। कलेक्टरने उत्तरमें कहा कि, "सम्पत्ति देनेका अधिकार मुझे नहीं है किन्तु मैं बेहशक सरकारमें लिखकर आपकी सम्पत्ति दिलानेकी चेष्टा करुंगा। आप इस बड़ी सम्पत्तिको क्या करोगे ?" रानीने कहा "मेरी स्वर्गवासिनी सास देवी शरत्सुंदरीके कई परोपकार सम्बंधी कार्य अधूरे रह गये है, जिन्हें मैं देशोन्नतिके लिये पूर्ण करूंगा"। इस प्रकारका उत्तर पाकर कलेक्टर अत्यंत प्रसन्न हुवा और उसके सद्गुणोंकी प्रशंसा की। निदान सरकारने इसे इसकी सम्पत्ति दे दी; जिससे वसुमतीने बड़े २ परोपकारी कार्य किये थे। उसके आचार, विचार और सद्गुणादि अत्यंत प्रशंसनीय थे। वह अपनी सासके समान दान, धर्म और ईश्वर-भक्तिमें प्रेम रखकर प्रजाको अति आनन्द देती थी। प्रजा भी उसे पूजनीय देवीके समान मानती थी। निःसंदेह आर्य-बालायें प्राचीन कालसे ही श्रेष्ठ और सद्गुणी मानी गयी हैं। धन्य है ऐसी सती साध्वी स्त्रीको जिसने अपने जीवनको सार्थक करके अपनी कीर्तिको संसारमें अमर कर दी हैं !

विमला।

साध्वी गुर्जरपति जयशिखरकी बहिन थी। जयशिखर पंचासरमें इ० स० ६९५ में राज्य करता था। उस समय यह नगर सर्व वैभवोंसे भरपूर था; जिसके कारण वह चहुँओर प्रख्यात था। महाराज जयशिखर धर्मात्मा, वीर, विद्वान्, पराक्रमी और

तेजस्वी था। इसके राज्यकी प्रजा अत्यंत सुखी थी। इस राजाके यहां विद्वान् और कवियोंका बड़ा आदर था। इसके यहां एक शंकर नामक विद्वान् कवि था। इसी उत्तम कुलमें राज-बाला विमलाका जन्म हुवा था। यह कुमारी रूप और गुणमें अद्वितीय थी। इसका मुख चंद्रमाके समान तेजस्वी था। इसके रूप और गुणोंकी प्रशंसा सुनकर बहुत राजाओंकी इससे विवाह करनेकी इच्छा थी; किन्तु विमला किसी भी राजाके धन, राज्य-ऐश्वर्य और रूपपर मोहित नहीं होती थी। इसकी इच्छा वीर, धीर, विद्वान्, पराक्रमी और सद्‌गुणी राजकुमारसे विवाह करनेकी थी। विमलाने उत्तम गुरुके हाथके नीचे संस्कृत, काव्य, गायन, नृत्य, वाद्य और पुराणादिकी श्रेष्ठ शिक्षा पाई थी; जिसके कारण इसकी बुद्धि बड़ी निर्मल थी। इसकी नीतिपर बड़ी प्रीति थी। यह प्रेमपूर्वक दीन दुःखियोंको अन्नवस्त्रादिसे सत्कार करती थी। इसके ऐसे सद्‌गुणोंको देखकर जयशिखर अत्यंत प्रसन्न रहता था। उस समय मुलतानका राजा अपनी स्त्री, पुत्र और पुत्रीको लेकर प्रभासक्षेत्रकी यात्रा करनेके लिये आया था। उसी यात्रासे वह पंचासर आ पहुंचा। महाराज जयशिखरने उसका अत्यंत सत्कार किया और आग्रह करके १ मास पर्यंत पंचासरमें रोक रक्खा। मुलतान नरेशका राजकुमार सुरपाल बड़ा स्वरूपवान्, तेजस्वी, पराक्रमी, प्रामाणिक, विद्वान् और शूर था। वह तीर, तलवार, भालादि शस्त्रप्रयोगमें बड़ा चतुर और बलके कार्य कुश्तीप्रभृतिमें भी प्रख्यात था। जयशिखर इस राजकुमारके साथ नित्य नयी२ शास्त्रचर्चा किया करता था। इन दोनोंके कलाकौशल्य देखनेके लिये महलकी रानियां खिड़कियोंमें आ बैठती थीं; किन्तु सुरपालही सब कलाओंमें जीतता था; जिससे देखनेवाले चकित हो जाते थे।

एक दिन जयशिखर और सुरपाल जंगलमें मृगयाके लिये गये थे। कुमारी विमलाको सिंहका शिकार देखनेका बड़ा शौख था; उसने अपने भाई जयशिखरसे कई बार इस विषयमें कहा था। इसलिये विमला और अन्य रानियां भी जंगलमें इनके साथ गयी थीं। वहां सब स्त्रियोंको ऊंचे वृक्षपर बैठनेका जयशिखरने बंदोबस्त कर दिया था; जयशिखर और सुरपाल दोनों एक हाथीपर बैठे थे। सरदार और अन्य साथीगण सिंहकी खोज कर रहे थे। खोज करते२ एक भयानक सिंह नदीकी ठंडी रेतीमें पड़ा हुवा मिला। तब जयशिखरने उसे एक तीर मारा जिसके कारण सिंह चमककर उठ बैठा और दूसरी ओर भाग निकला; तब तो जयशिखरने उसका लक्ष्य करके दूसरा तीर मारा जिसके लगनेसे सिंह अत्यंत क्रोधित हो छलांग मारकर हाथीके निकट आ पहुंचा। सिंहके आते ही सुरपालने एक तीक्ष्ण बाणका

प्रहार किया । उस प्रहारसे सिंह अत्यंत क्रोधित हो हाथीके कुंभस्थलपर कूद पडा; इतनमें जयशिखरने खड़ा होकर उसकी छातीमें एक भाला मारा कि सिंह भालासहित जयशिखरको लेकर पृथ्वीपर गीरा; तब तो सुरपाल हाथीपरसे कूद पड़ा और सिंहको मार कर महाराज जयशिखरके प्राणोंकी रक्षा की । इस प्रकार सुरपालका पराक्रम देखकर विमलाका हृदय मोहित हो गया । सुरपाल भी इस सुंदरीके रूप और गुणोंको देख-कर मोहित हो गया था और चाहता था कि किसी प्रकार यह सुंदरी मेरे हाथ आ जावे। इतनाही नहीं; किन्तु उसने कई बार इस सुंदरीको अपने मोहमें फंसानेकी चेष्टा की थी; किन्तु कुमारी विमलाको यह हाल नहीं मालूम था। आज इस सिंहकी शिकारमें कुमारीका चित्त सुरपालके पराक्रमको देखकर अत्यंत चलायमान हो गया। जिस समय सुरपालने हाथीपरसे कूदकर महाराज जयशिखरकी रक्षा की थी उसी समय विमलाने इससे विवाह करनेका संकल्प कर लिया था ।

इस प्रकार विमलाका चित्त सुलतानके राजकुमारने हरण कर लिया। महाराज मुलतान नरेशने स्वदेश लौटनेकी तैयारी की और जयशिखरने भी उनको सन्मान पूर्वक विदा की। जयशिखरने कुछ समयके पश्चात् मुलतान नरेशके पास विमला देवी-के विवाह करनेकी सूचना अपने भाटद्वारा भेजी । विमलाने उस भाटको एक पत्र सुरपालके नामका लिखकर दे दिया था। सुरपालने इस पत्रको बड़े आदरसे स्वीकार किया । भाट विमलादेवीके विवाहकी पक्की बातचीत करके पंचासरको प्रसन्नतापूर्वक लौट आया । इतनमें सुरपालको, जयशिखरकी सेवा करनेका, दूसरा अवसर प्राप्त हुवा । लाट देशके राजाने कई वर्षोंसे कर नहीं दिया था जिसके कारण उससे युद्ध करना पड़ा । उस युद्धमें सुरपाल भी निमंत्रण करके बुलाया गया था । रणक्षेत्रमें गुर्जरके सेनापतिकी मृत्यु हो गयी; जिसके कारण सुरपालने क्रोधित हो लाट नरेशको कैद करके जयशिखरके पास भेज दिया। सुरपालके इस पराक्रमको देखकर गुर्जरेश्वर अत्यंत प्रसन्न हो गया और उसे अपना सेनापति नियत करके विमलादेवीका उसके साथ लग्न कर दिया ।

यह युग्म सर्व प्रकारसे योग्य था; इसमें प्रतिदिन प्रीति बढ़ने लगी जिससे एक दूस-रेको अपने प्राणसे भी अधिक चाहते थे। विमला अपने पतिके सुख दुःखमें सदैव साथ देती थी। यह दम्पती आनंदसे राज्य सुख भोगते थे। विमला पातिव्रत्यधर्मानु-सार पतिको अति उपयोगी हो गयी थी; वह पतिको सब प्रकारसे संतोष देती थी। इस समय गुर्जर देश पूर्ण कलाको प्राप्त हो रहा था । उसकी मनुष्यसंख्या और समृद्धिकी कीर्ति देशदेशोंमें प्रख्यात हो रही थी; किन्तु अस्तोदयका कालचक्र किसीको भी नहीं छोड़ता; ईश्वरकी माया अपार है। गुर्जर देशकोभी अस्त होनेका

समय आ पहुंचा। शंकर कविकी प्रशंसा परसे कल्याणी नगरीके राजा भुवड़ने पंचासर-पर अपने सेनापति मीरको चढाई करनेके लिये भेजा; किन्तु वीर सुरपालने उसे संग्राममें हरा दिया; जिसके कारण वह अपने देशमें लौट गया। जब राजा भुवड़को यह वृतांत विदित हुये तब उसने निश्चय किया कि, 'जब तक गुर्जरमें सुरपाल है तब तक उस देशको अपने आधीन करना असम्भव है' यह सोचकर उसने मीरसे एक घूंस—पत्र लिखाकर सुरपालके पास भेजा। जिस समय सुरपालके पास उस पत्रको लेकर दूत पहुंचा उस समय सुरपाल विमलादेवीके पास बैठा हुवा भोजन कर रहा था। दूतने उस गुप्त पत्रको केसर और कुंकुमकी पुड़ियामें रखकर सुरपालको दिया। सुरपालने दूतको ड्योढीमें बैठनेकी आज्ञा दी। विमलाने उस पत्रको पतिके पाससे ले लिया और रसोइयाको भोजन परोसनेकी आज्ञा देकर वह पत्र पढ़कर पतिको सुनाने लगी। उस पत्रमें सुरपालके लिये बहुत घूंस देनेकी बात लिखि थी। इस पत्रके पढ़नेसे विमला और सुरपालके क्रोधकी सीमा न रही। विमलाने उस पत्रको पृथ्वीपर फेंक दिया। सुरपालने उस पत्रको कुंकुम और केसरकी पुड़िया सहित जला-कर दूतके मस्तकपर डाम देनेकी आज्ञादी की; किन्तु विमलाने उसे ऐसा करनेसे मना किया। सुरपालने पेटभर भोजन नहीं किया था; वैसेही खाना छोड़कर उठ खड़ा हो गया, स्त्री-पुरुषको इस पत्रसे अत्यंत दुःख हुआ। सुरपाल नेत्र बंद करके सोचने लगा और अपनी स्त्रीकी परीक्षा करनेके लिये कहने लगा, "प्यारि! क्या तुम महारानी बनना चाहती हो? क्या अपने शिरपर मुकुट धारण करना चाहती हो? तुम अपने भावी पुत्रका भविष्यमें भला करना चाहती हो? या नीतिका पालन करना चाहती हो?" विमलाने इस पेंचीले मतलबको न जानकर पतिसे कहा कि, "मैंने आपके सद्गुण, पराक्रम आदिपर मोहित होकर विवाह किया है। अब आपके हृदयमें कलियुगका वास हो गया है; मैं कदापि इस दुष्कर्मको स्वीकार नहीं करूंगी। मेरा भावी पुत्र भीख मांगेगा; किन्तु आपके घूंसके पैसेका स्पर्श, घूंसकी जागीरका सुख, विश्वासघातके राज्यशासनका सुख नहीं भोगेगा। इस प्रकार कपटसे प्राप्त हुयी गादीपर मैं नहीं बैठूंगी। मैं इस दगाबाजीके मुकुटको नहीं पहिनना चाहती। मैं पतिव्रता स्त्री हूं तथापि ईश्वरको बड़ा मानती हूं। मैं इस पाप-कर्मको करके ईश्वरके कोपको अपने शिरपर नहीं लेना चाहती। घूंसखोर, लोभी, लुच्चे और पापीकी साथी नहीं हूं और न होऊंगी। प्रपंची-खूनोंका साथ मैं कदापि न करूंगी"।

सुरपाल अपनी स्त्रीके ऐसे वचन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रेमसे आलिं-गन करके बोला, "धन्य है मेरी प्यारि! तुझे धन्य है, तेरे माता-पिताको धन्य है!

हे ईश्वर ! इस देशमें गृह २ ऐसी ही स्त्रियोंको उत्पन्न कर ! प्यारि ! मैंने ऐसा कहकर केवल तेरी परीक्षा ही की थी। तेरे इन वचनोंसे मैं बडा प्रसन्न हूं। अच्छा आओ हम दोनों प्रेमसे भोजन करके इस पत्रका उत्तर लिखेंगे"। भोजनके पीछे विमलादेवीकी सलाहके अनुसार तिरस्कारसे भरा पत्र लिखा। पत्रमें यह लिखा था कि, "आपका नीच पत्र पढ़कर अत्यंत खेद हुवा। पूर्वकालमें धर्म-युद्ध करके राज्यको जीतनेकी प्रथा थी; किन्तु आपने उस प्रथाको त्याग कर इस पाप-कर्मकी शरण ली है। निःसंदेह आप अधर्मी हैं। अपने स्वार्थके लिये मैं नरकगामी नहीं बनता, आपको ही वह नरक प्राप्त हो" आदिके अनेक कटुशब्दोंसे पत्रको पूर्ण करके राजाके पास उसी दूतके द्वारा उत्तर भेज दिया।

इस पत्रको मीरने पढ़कर सब वृत्तांत कल्याणी नरेशको कह सुनाया। पत्रोत्तर सुनते ही राजाका मुख फीका पड़ गया; किन्तु राजाने युद्धका पूर्ण प्रबंध कर स्वयं जाकर लड़ने लगा। इस युद्धमें जयशिखरने अपना विजय होते न देखकर अपनी स्त्री रूपसुंदरी जो गर्भवती थी और विमला दोनोंको किसी जंगलमें रक्षित रहनेके लिये सुरपालको छोड़ आनेके लिये कहा। सुरपाल इन दोनोंको लेकर एक जंगलमें पहुंचा। वहां गुर्जर सवारों और भीलोंको रक्षार्थ रखकर स्वयं रणक्षेत्रकी ओर लौटा। ईश्वर इच्छासे सुरपालकी गैरहाजरीमें भुवड़ने पंचासरको चहुंओरसे घेर लिया और बडे क्रोधसे लड़कर विजय प्राप्त किया। भुवड़की सेना किलेमें घुस पडी और लूट मार करके उसपर अपना अधिकार कर लिया। इस युद्धमें जयशिखर भी मारा गया।

भुवड़ पंचासरमें था और उसका लडका करण सुरपालके पीछे २ गया था; किन्तु लौटती समय सुरपाल दूसरे मार्गसे आया था, इस कारण उसकी भेंट न हुई। भुवड़का पुत्र जहां रूपसुंदरी और विमला थी वहां आया। स्त्रियोंका यह स्वभाव है कि कैसे ही संकटके समय महावीरके समान होती है। इस समय विमलाने बहुत धैर्य और हिम्मत रक्खी। उसने एक भीलसे कहा कि, "शत्रु बहुत है इस लिये पहिले रूपसुंदरीको इस नालेके उस पार किसी गुप्त स्थानमें पहुंचा दे फिर पीछे उसी स्थानपर मुझे ले जाना। भीलने रूपसुंदरीको ले जाकर एक वृक्षके नीचेकी गुफामें छिपा दिया। इसी समय गुर्जर सवारोंपर शत्रुने एकदम आक्रमण कर दिया। इस आक्रमणसे गुर्जर सवारोंका नाश हो गया। विमला यह देखकर घबरा गयी। उसे क्या करना चाहिये ? यह नहीं सूझ पडा। वह पछताने लगी और सोचने लगी कि हाय ! इस समय मेरे पास कोई हथियार भी नहीं है। मेरे धर्मकी रक्षा कैसे हो सकेगी ? हाय ! मुझे कोई मारभी नहीं डालता, आदि सोचते सोचते वह

मूर्छित हो पृथ्वीपर गीर पड़ी उसी समय करण उसके पास जा पहुंचा। उसे मूर्छा-वस्थामें देखकर उसके स्वरूपपर मोहित हो गया। करणने उसके मुखपर पानीकी अंजली डालकर उसको सचेत किया; किन्तु सचेत होते ही वह रोने लगी। यद्यपि उसके रुदनसे जंगलके पशु-पक्षी उदास और दुःखी हुये, किन्तु करणको कुछ भी दया नहीं आई; विमला रोती हुई कहने लगी, "हे प्राणनाथ! आकर मेरी रक्षा कीजिये! आप मुझे इस संकटमें छोड़कर कहां चले गये? हे ईश्वर! मेरा सर्वस्व नाश हो गया फिर तू मुझे क्यों जीवित रखता है?" ऐसा कहकर नालेकी ओर डूब मरनेके लिये दौड़ी; किन्तु करणने उसे पकड़ लिया। विमलाने उसका हाथ झटककर कहा, "दुष्ट! तू यहांसे दूर हो, मैं तेरे प्रपंचमें नहीं फंस सकती।" करणने एक भी बात नहीं सुनी और टीटोड़ीके समान रोती हुई विमलाको घोड़ेपर बिठलाकर चल दिया। उस समय विमला उच्चस्वरसे रोने लगी। "हे प्राणनाथ; इस दासीकी रक्षा करो! इस दुष्ट दैत्यको मारो, मेरी रक्षा करो! कृपालु ईश्वर! तू मेरी पुकार सुन, मेरी रक्षा कर! हे प्रभु! मैंने कोन पाप-कर्म किया है जो आज इस दुष्टके फंदेमें फंस गई हूं," आदि कहती रुदन करती हुई केश नोचने लगी। दुष्ट करण विमलाको इसी स्थितिमें अपनी छावनीमें ले गया और घोड़ेपरसे उतार कर कोमल शय्यापर बिठाना चाहा; किन्तु वह भूमि परही बैठी और जैसे विना जलके मीन तलफता है उस प्रकार तलफने लगी। उसने सिवाय रोनेके करणकी एक भी बात नहीं सुनी। उसके रुदनको सुनकर सुननेवालोंके हृदयमें दया आने लगी और ये लोग सोचने लगे कि, "यह स्त्री अपने धर्मको प्राणसे अधिक जानती है" यदि इससे बलात्कार किया जायगा तो यह जीवित नहीं रहेगी। अब तो करणको भी उसपर दया आई और उसने गंगाजल हाथमें लेकर शपथ लिया कि विना तेरी आज्ञाके मैं तेरे विरुद्ध कोई कार्य नहीं करूंगा. ऐसा कहकर उससे दूर रहने लगा।

करणने सोचा था कि कुछ समयमें यह सब भूल जायगी और मेरे वशमें हो जायगी; किन्तु ऐसा सोचना उसकी मूर्खता थी। उसे यह नहीं मालूम था कि, "जो स्त्री पतिव्रता होती है उसके धर्मका कोई भी नाश करनेवाला संसारमें उत्पन्न नहीं हुवा। वह कुछ समयके पश्चात् साध्वी विमलाको लेकर सोरठकी ओर चल निकला। मार्गमें इसने अनेक प्रकारका लोभ भयादि दिखाया; किन्तु उसने अपनी टेक नहीं छोड़ी। करण निराश हो गया; क्योंकि विमला कभी उसके मुंहकी ओर भी नहीं देखती थी और निर्भयतासे उसे धिक्कारती थी। वह सदैव भूमिपर एक

साधारण वस्त्र बिछाकर शयन करती थी। इस प्रकार उसने अपने माता-पिता और पतिके कुलको कलंक नहीं लगने दिया।

राजकुमार करणका मन विमलामें फंसा हुआ था; जिसके कारण उसे रात्रिमें निद्रा नहीं आती थी। उसके एक मित्रने कहा कि, "जब तक सुरपाल जीवित रहेगा तब तक वह कदापि तुम्हारे वशमें नहीं होगी; वह साधारण स्त्री नहीं है; किन्तु वह पतिव्रता है। आप सुरपालके मरनेकी झूठी खबर उसके पास भेजिये; जिससे वह निराश होकर तुम्हारी आज्ञाका पालन करेगी। करणने अपने पक्षमें आये हुए एक ठाकुरको उसके पास इस बातके कहनेके लिये भेजा। बिचारी विमला यह नहीं जानती थी कि यह ठाकुर सिखाया हुआ है। उस दुष्टने आकर विमलासे कहा, "बाई साहब! एक बात कहनेको मेरा मुख नहीं खुलता किन्तु बिना कहे ठीक भी नहीं है। सुरपाल आपको खोजते वनमें घूम रहे थे इतनेमें उन्हें विषधर सर्पने काटा जिसके कारण उनकी तत्काल मृत्यु हो गई" इतना कहते ही उस दुष्टने अपनी सूरत का रोनेकी चेष्टा जैसी बना ली। बिचारी विमला यह हृदयवेधक खबर सुनते ही घबरा उठी और कहने लगी, "हाय! तू यह क्या कह रहा है! यह जुल्म कब हुआ? क्या ईश्वरका हम लोगोंपर ऐसा कोप है! अरे! मैं अविश्वासु कैसे हो गई, मैंने ईश्वरका भरोसा क्यों छोड़ा? क्या मुझे कलजुगने भुलावा दिया है? किन्तु हाय! स्वामिन्! जो होना था सो हो गया; परन्तु मैं भी आपकी सेवामें आती हूं" ऐसा कहकर उठ खड़ी हुई। प्राचीन सतियोंके समान आवेशमें आकर गरम हो गई, उसके नेत्र लाल हो गये। जय अंबे! जय अंबे! ऐसा कह कर उस ठाकुरसे कहा कि, "मैं सती होऊंगी, मेरे लिये चिता तैयार करो" यह समाचार पाते ही करण और उसके मित्रने आकर कहा, "हम लोग यह भली भांति जानते हैं कि तुम सती-पतिव्रता हो; किन्तु शास्त्रमें पतिकी मृत्युके पीछे वैधव्य पालना, पुनर्लग्न करना और मरना (सती होना) ये तीन धर्म लिखे हैं। इस लिये एक वर्षके पीछे तुम जो उचित समझो उसे करना" यह सुनकर विमलाने उत्तर दिया, "जिसे संसारमें रहनेकी इच्छा हो वह भले ही जो भावे सो करे। मुझे अब इस संसारमें कुछ काम नहीं है केवल एक मृत्युकी शरण ही लेना है" करणने उसे ऐसा करनेके लिये रोका। तब विमलाने कहा, "यदि तुम मुझे जीवित नहीं जलने दोगे तो तुम लोगोंको मेरे मृतक शरीरको अवश्य जलाना पड़ेगा। मैं अपने इस शरीरको नहीं रक्खूंगी। तुम सतियोंके प्रतापको नहीं जानते; सतियोंको दुःख देनेसे दुष्टोंका नाश हो जाता है।"

"सती सीताको दुःख देनेसे रावणका, द्रौपदीसे कौरवोंका और कीचकका इत्यादि अनेक इतिहासोंसे विदित होता है कि पतिव्रताको दुःख देनेसे नाश हो जाता है। हे अज्ञान! तू हठ मतकर; नहीं तो तेरा नाश हो जायगा। मैंने कभी परपुरुषकी इच्छा नहीं की और न इच्छा रखती हूं। हे नराधम! तू विवाहित स्त्रीसे क्यों विवाहकी इच्छा रखता है? यह आर्यक्षत्रियोंका धर्म नहीं है। तू अपने योग्य स्त्रीको ढूंढकर विवाह कर"। राजकुमार करणको ये शब्द बाणोंके समान लगे; किन्तु कुछ कर न सका; क्योंकि उसके साथियोंको उसकी आकृतिपरसे भली भांति विदित हो गया कि यह निःसंदेह सती साध्वी स्त्री है। इसलिये उन लोगोंने उसे समझाकर शांत किया। निदान निराश होकर राजकुमारने उसे सती होनेकी आज्ञा दे दी। विमला "जय प्रभु!" कहती हुई तंबूके बाहर निकली। राजकुमारने एक ऊंचे टेकरेपर उसकी चिता तैयार कराकर उसके चहुंओर हथियारबंद सिपाहियोंका पहरा लगा दिया। आसपासके ग्रामनिवासी उसके दर्शनको आये और घंटा नौबत-आदि वाद्य बजने लगे। विमलाकी जयजयकार होने लगी।

सुरपाल रूपसुंदरी और विमलाको जिस स्थानपर छोड़ गया था वहां आया; किन्तु वहां उसे कोई भी न मिला। तब उसने सोचकर एक भीलसे पूछा कि, "क्या यहां शत्रु आये थे?" भीलने उत्तर दिया, "हां आये थे, आपके गुर्जर सवार और अन्य रक्षक भील मारे गये। रूपसुंदरीको एक रक्षित स्थानमें छिपा दिया है किन्तु वह स्थान मुझे मालूम नहीं है। यह आप सत्य मानीये कि हम भील लोग कभी विश्वासघात नहीं करते। परन्तु विमलाको".......................। भील इतना कहकर चुप हो गया। सुरपालने पूछा कि, "क्या शत्रुने उसे मारडाला? वह तो मरनेके लीये तैयार ही थी और मैं भी उससे स्वर्गमें जा मिलूंगा। प्रिये विमला........"इतना कहते ही उसकी आंखोसे आंसू गीरने लगे। भीलने कहा, "वह जीवित है, उसे आपका शत्रु करण हर ले गया। बाईसाहबके रुदनसे पूर्ण जंगल शोकातुर हो गया; किन्तु हम लोग क्या कर सक्ते थे? निदान वह दुष्ट ले गया"। इतना सुनते ही सुरपालके क्रोधकी सीमा न रही। उसके नेत्र लाल हो गये, पांवसे शिरतक क्रोधाग्नि जलने लगा, वह कहने लगा, "हाय! मैंने उसे रण-क्षेत्रमें एक वार बचा दिया (जीवित छोड़ दिया) क्या यह उसीका प्रतिफल है? तू मुझे बता, वह दुष्ट इस समय कहां है! यदि विमला जीवित होगी तो मैं उसे छुड़ा लाऊंगा" यह सुनकर कई भील उसके साथ हो गये और करणकी छावनीके पास आ पहुंचे। वहां सुरपाल शत्रुओंपर छापा मारनेका उपाय सोचने लगा; किन्तु सेना

अधिक और सचेत थी। इतनेमें उसे विमलाकी ३ बजे सती होनेकी खबर मिली। सुरपालने सोचा कि, " विमला यदि अकालमृत्युसे मरेगी तो मुझे स्वर्गमें भी मिलना असम्भव है "। इस विचारसे उसे अत्यंत खेद हुआ; किन्तु उसने धैर्य धरकर विमलाको छुड़ानेका दृढ़ निश्चय कर लिया और अपने साथियोंको सचेत कर ठीक प्रबन्ध कर लिया।

विमला ईश्वर-प्रार्थना करती हुई चिताकी ओर चली। करणके साथी उसको प्रणाम करने और क्षमा मांगने लगे। यह देखकर दुष्ट करणका हृदय भी पिघलने लगा। वह आकर हाथ जोड़ने लगा और क्षमा करनेके लिये प्रार्थना करने लगा। विमलाने कहा, " तू अपने पापका पश्चात्ताप कर और प्रभुसे प्रार्थना कर कि हे ईश्वर ! मुझे सुबुद्धि दे जिससे मैं भविष्यमें कोई दुष्कर्म न करूं। इस संसारके स्वप्नवत् सुख और प्रतापका कभी अभिमान न करना; किन्तु अपनी आत्माका कल्याण हो उसके साधन करना; अब तू अपने देशको लौट जा "। इतना सुनते ही करणने प्रणाम किया; किन्तु लज्जाके कारण एक शब्द भी न कह सका। विमला चिताकी ओर बढ़ी। दर्शकगण पुष्पवर्षा करने लगे। विमला चिताके पास आकर " जय अंबे !" कहकर चितापर चढ़ गयी और हाथसे चितामें अग्नि लगानेकी चेष्टा करने लगी। उस समय इतना गुलाल और अबीर उड़ने लगा कि एक दूसरेको नहीं पहिचान सक्ता था ऐसेही सुअवसरमें सुरपालने विमलाको उठाकर चल दिया। जैसे शेर बकरीको उठाकर भाग जाता है और किसीको ले जाते समय खबर नहीं होती वैसे ही सुरपाल और विमलाकी किसीको खबर नहीं हुई। जब गुलाल व अबीरकी वर्षा कम हुई तो विमला का पता भी न लगा। करणने चहुं ओर ढुंढवाई; किन्तु कुछ पता न लगा। निदान निराश होकर पछताता रह गया।

सुरपालने विमलाको लेजाकर थोड़ी दूरपर खड़े हुये घोड़ेपर बिठाकर अपने साथियों सहित चल दिया। विमलाने अपने दोनों हाथोंसे अपने नेत्र बंद किये थे जिससे सुरपालको नहीं पहिचान कर सोचने लगी, " हाय ! जितना दुःख भोगना रह गया वह अब एकदम आ पड़ा। हे प्रभु ! मेरी रक्षा करो "। यह सोचते हुये उसने अपनी आंखे खोली और सामने सुरपालको खड़ा देखकर आश्चर्यसे स्तब्ध हो गई। सुरपालने कहा, " हे प्यारि ! मैं जीवत हूं, शत्रुओंने झूठी खबर उड़ाई है, तू अपने मनमें मत डर, इस समय शत्रुओंके आनेका भय है इसलिये जल्दी चलना चाहिये आगे किसी निर्भय स्थानपर सब वृत्तांत सुनाऊंगा। उसको पहिचानते ही विमलाके नेत्रोंसे हर्षके आंसू गिरने लगे, किन्तु कुसमय जान मौन धारण कर घोड़ाको आगे बढाने

लगी। कई पर्वत और घोर जंगलोंको पार करके एक गुप्त स्थानपर आ पहुंचे। सुरपालने विमलाको घोड़ेसे उतार लिया और दोनो परस्पर हर्षके आंसु बहाते हुये अपनी विरहाग्निको ठंडी करने लगे। इन दोनोंके इस अपूर्व मिलनकी खुशी लिखनेकी शक्ति कलममें नहीं है। विमलाके दुःखकी कहानी सुनकर और उसकी उपस्थित दुर्बलता देख कर उसे बड़ा दुःख हुआ। अपनी स्त्रीको हृदयसे लगा लिया। साथियोंने भोजन तैयार कर लिये इससे दोनों स्नान कर भोजन करने लगे। भोजन करते समय सुरपालने उसे बचानेका सब वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी कहा कि रूपसुंदरी जीवत है। यह सुनकर विमला अत्यंत प्रसन्न हुई। इस प्रकार विमला प्रसन्न हो पतिके साथ उस जगलमें रहने लगी। सुरपालने कई वार शत्रुओंपर धावा करके उनके गर्वका नाश किया और द्रव्य लूटा था।

एक दिन एक भीलने सुरपालको समाचार दिये के रूपसुंदरी रक्षित स्थानपर है और उसको पुत्र उत्पन्न हुआ है। यह सुनते ही दोनों प्रसन्न हो गये। यद्यपि मार्ग अति अगम था; किन्तु विमला अपने पतिके साथ जानेके लिये तैयार हो गयी। इन दोनोंने अपना भेष बदल लिया। वहां पहुंचते ही इसने राजकुमार और रूपसुंदरीको देखा। रूपसुंदरीने इनको नहीं पहिचाना; किन्तु परिचय पाते ही हर्षकी सीमा न रही; सब प्रेमके आंसू बहाने लगे। इस प्रकार ये सब शत्रुओंके भयसे अपना भेष बदलकर उस घोर जंगलमें अपना मन मारकर रहने लगे। विमला राजकुमारको छातीसे लगाती थी और कहती थी कि, "वनराज! तू अमर हो, तूही मेरे भाईके वंशको चलानेवाला है।" कुछ दिन पीछे विमलाको जंगलका पानी अनुकूल न पड़नेसे उसका शरीर अशक्त होने लगा। बहुत उपाय करने पर भी उसका रोग असाध्य हो गया। निदान उसकी पवित्र आत्मा अपनी अपूर्व कीर्ति छोड़ कर और इस नाशवान् शरीरका त्यागकर ईश्वरके शरण हुई। धन्य है इस साध्वी स्त्रीको! हे परमात्मन्! हमारे देशमें फिर ऐसी ही सती स्त्रियां हों यही हमारी प्रार्थना है।

वीर सतीयां।

सती संयुक्ता।

यह साध्वी कन्नोज नरेश जयचंद राठोड़की कन्या थी। इसका जन्म ई० स० ११७० में हुआ था। यह स्वरूपमें अद्वितीय, असाधारण उदारतावाली और सद्गुण सम्पन्न थी। कवि चंदने उसे कन्नोजकी लक्ष्मी कहकर वर्णन किया है। दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान और कन्नोज नरेश जयचंदमें परस्पर विरोध था। पृथ्वीराजने अश्वमेघ यज्ञ किया यह देखकर जयचंदको अत्यंत खेद हुआ। उसने अपनी प्रशंसा बढानेके लिये राजसूय यज्ञ प्रारंभ किया। इस यज्ञमें पृथ्वीराज नहीं आया था। जयचंदने उसका अपमान करनेके लिये एक सुवर्णकी मूर्ति पृथ्वीराजके समान बनाकर द्वारपालके स्थानपर खड़ी करा दी। यह वृत्तान्त पृथ्वीराजको मालूम हुये; जिसके कारण उसे अत्यंत क्रोध उत्पन्न हुआ। पृथ्वीराजने कन्नोजपर चढाइ करके जयचंदको हरा दिया; इसी अवसरमें संयुक्ताने पृथ्वीराजको देखा था। यद्यपि यह पिताका शत्रु था; तथापि उसके गुण, प्रशंसा, वीरत्व, बलादि देखकर अपने चित्तसे उसे अपना भावि पति बना चुकी। यज्ञ होनेके पश्चात् कन्नोज नरेशने संयुक्ताके लिये स्वयंवर रचा। देश २से बड़े २ योधा, क्षत्रीय वीर उस स्वयंवरमें सम्मिलित हुये थे। संयुक्ता हाथमें पुष्पमाला लेकर अपनी सखियोंके साथ स्वयंम्वरमें आई। और किसी भी राजाकी ओर न देखकर वह माला उन उत्तम मूर्तिके गलेमें डाल दी। जयचंद अपनी कन्याका यह कार्य देखकर धबरा गया। राजा लोग भी अपने मनमें लाज्जित हो गये। यह समाचार पृथ्वीराजको मालूम होते ही वह कन्नोजपर चढ़ आया और युद्ध करके इ० स० ११९० में सयुक्ताको हर ले गया। संयुक्ताको पाकर वह इतना सुखी हुआ कि स्वर्ग-सुख भी तुच्छ मानता था। वह महाराज पृथ्वीराजकी प्रिय भार्या हो गयी। संयुक्ता पातिव्रत्यके धर्मानुसार अपने सौभाग्य कालको निर्गमन करने लगी। पृथ्वीराज इसपर ऐसा आसक्त हो गया कि उसे एक क्षण विना उसके काटना कठिन प्रतीत होता था। जिस समय शहाबुद्दीन गोरी भारतवर्षपर चढ़कर आया उस समय सती संयुक्ताने प्रेम वचन कहकर वीरत्व

बढ़ानेवाले जोशीले वचन कहे कि, "हे चौहान वंशके सूर्य! तुम्हारे समान आज दिन कोई भी शूर नहीं, आपके समान किसीने सुख नहीं भोगा। मरना यह तो मनुष्य शरीरका धर्म है, इस संसारमें एक दिन अवश्य ही मरना है जब मरना ही है तो अपने नामको अमर करके मरना चाहिये। आप अपने कुलकी कीर्तिकी ओर देखकर रणक्षेत्रमें शत्रुओंके रुधिरकी नदी बहाइये। आपकी चतुरंगनी सेना "हर हर" कहती हुई चहुं ओरसे शत्रुपर टूट पड़ेगी। इस महान् महत्त्वके कार्यमें किसी प्रकारका भय करना उचित नहीं। हिम्मत, धैर्य और यत्नसे स्वदेशकी रक्षा कीजिये। यदि संग्राम भूमिमें मृत्यु होगी तो यह दासी स्वर्गमें भी आपके चरणोंकी सेवाके लिये हाजिर होवेगी"। वीर-बाला क्षत्राणी संयुक्ताके मुखसे इन बचनोंको सुनकर पृथ्वीराजका अंतःकरण उत्साहसे उभड़ आया और अपने योद्धाओंको आज्ञा देकर युद्धकी तैयारी करने लगा। यह समाचार पाते ही भारतवर्षके कई वीर योद्धा आ पहुंचे और सैन्यमें सम्मिलित हो रणक्षेत्रपर चलनेको तैयार हुये। तैयारी होनेपर पृथ्वीराज संयुक्ताके पास आया और सलाह लेने लगा; "प्यारि! अमुक कार्यमें तेरी क्या सलाह है व अमुकमें क्या?" उसने विनीत स्वरसे उत्तर दिया कि;— "राजन्! हम अबला युद्धके विषयमें क्या जानें? संसार कहता है कि स्त्रियोंकी बुद्धि ओछी होती है। यदि स्त्री कभी उचित सलाह देवे तो संसारी मनुष्य उसे सुनते ही नहीं। तो भी महाराज! मैं आपकी आज्ञानुसार अपनी सलाह देती हूं"। यह कहकर उसने अपनी सलाह बतायी।

महाराज पृथ्वीराजकी आज्ञा पाते ही वीरगण "हर हर" कहते हुये रणक्षेत्रको चले। वहां पृथ्वीराजने तिरोही क्षेत्रमें घोर युद्ध किया। क्षत्रियोंके पराक्रमको देखकर शहाबुद्दीन गौरीके छक्के छूट गये। वह रणक्षेत्रको छोड़कर भाग गया। उसका सब सामान—युद्धके शस्त्र, बावटा आदि महाराज पृथ्वीराजको मिले। पृथ्वीराजकी जय जयकार होने लगी। दो वर्ष बीतनेपर फिर शहाबुद्दीन गौरी अपनी बड़ी सेना एकत्र करके रणक्षेत्रमें चढकर आ गया। इस समय भी पहिलेके अनुसार बहुत, महाराज पृथ्वीराजकी सेनामें, सम्मिलित हो गये। यह समाचार पाते ही संयुक्ताने अपने पतिको रणमें जानेके लिये कहा। उसने बहुत जल्दी अपने हाथसे पतिको वीर योद्धाओंके समान वस्त्र और बख्तर आदि पहिना दिये और हथियार लाकर सामने रख दिये। उसका सर्वांग कवचसे ढक गया, ऊपर पीठपर ढाल लगा दी। कमरमें तलवार लटका दी; किन्तु उस समय उसको कुछ अमंगल सूचक लक्षण भी समझमें आने लगे। उसका हृदय व्याकुल होनेके कारण कपालपर प्रस्वेदके बिंदु

दिखाने लगे। तो भी उसने महाराज पृथ्वीसिंहको धैर्य देकर विदा किया। पृथ्वीराज संयुक्ताके प्रेममें वहां बहुत देर तक खड़ा रहा। महाराज पृथ्वीराजके जाते ही संयुक्ताने प्रण कर लिया कि, "जबतक महाराजके फिर दर्शन नहीं करूंगी तब तक अपना जीवन केवल जल पीकर ही निर्गमन करूंगी। हाय! मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मैं अपने प्राणपतिसे इस दिल्लीमें नहीं मिल सकुंगी; किन्तु स्वर्गमें अवश्य ही मिलूंगी।" उसकी यह धारणा सत्य ही निकली। समाचार सुननेमें आया कि पृथ्वीराज रणक्षेत्रमें मारे गये। यह सुनकर उसने शबको मंगवाया और चिता बनवाकर शबके साथ सती हो गयी।

निःसंदेह देवी संयुक्ता देवी ही के समान थी। सीता, सावित्री, और दमयन्ती आदि पवित्र सती स्त्रियोंकी श्रेणीमें गिनने योग्य वह रानी संयुक्ता थी। उसके गुणोंसे वह संसारमें अपनी अखंड कीर्ति रख गयी है।

विदुला।

इस वीर माताका जन्म शाश्वत वंशमें हुआ था। इस वंशके पुरुष रणमें शत्रुको पीठ बताना नहीं जानते थे ऐसे ही उत्तम कुलमें इसका जन्म हुआ था। उसका विवाह सौवीर नामक राजाके साथ हुआ था। यह पतिव्रता और धार्मिक थी। मारवाड़के दक्षिणमें प्राचीनकालमें सौवीर राजाका राज्य था। सौवीरके मरने पर विदुला विधवा हो गयी थी। राज्यका कार्य उसके पुत्र संजयके हाथमें था; किन्तु बालराजा राज्यनीतिसे अजान था। यही कारण है कि उसका राज्य तितर वितर होने लगा। अर्थात् प्रजा प्रबल होकर दुर्बलोंको दुःख देने लगी। उस समय सिंधु देशके राजाका बल अधिक था। उसने संजयको निर्बल जानकर उसके राज्यपर चढाई की। इस भयंकर समाचारको सुनकर विदुला घबरा गयी। उसने अपने पुत्रकी शोचनीय स्थिति देखकर स्वयं शस्त्र ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा कि। उसने धैर्य धरकर अपने पुत्रको उपदेश देना आरंभ किया; क्योंकि उसने सोचा कि यही सर्वोत्तम समय है; ऐसा समय फिर हाथ आना असंभव है। निःसंदेह यह विदुलादेवीके ही सदृश था। वह बड़ी तेजस्वी थी। वह जानती थी कि, "सतीत्वसे प्राणकी प्रदवी बड़ी नहीं है"। उसने संजयसे कहा, "पुत्र! शत्रुके सामने कभी भी अपनी हीनता नहीं स्वीकार करना।

कीड़े जो अपने पगमें कचराते हैं वेही हीनता स्वीकार करते है, किन्तु नर-जन्म लेकर कभी भी हीनता नहीं स्वीकार करना । हम क्षत्रिय हैं; एवं अपना जन्म प्रसिद्ध शाश्वत वंशमें हुआ है । अपने कुलमें कभी किसीने शत्रुके सन्मुख पीठ नहीं की है । इसलिये तू भी इस निष्कलंक कुलमें कलंक मत लगाना । तू पुरुष है इसलिये पुरुषत्व दिखाकर नाम प्रख्यात करना । संसारमें मनुष्य तो असंख्य गीनती के हैं; किन्तु उनमें महत्त्व कितनोंका है? इस संसारमें कितने हो गये किन्तु उनमेंसे कितने मनुष्योंका नाम अमर है? ये बातें सब सोचने योग्य हैं । जिसका नाम इस संसारमें नहीं है वे मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है । मरने पर पशु पक्षियोंका नाम नहीं रहता, कीड़े, मकोडेंके जन्मकी गणना नहीं होती । इसलिये पुत्र ! तू मनुष्य है, अपने नामको अमर करनेका यत्न कर ! इस बातको तू भूल मत जाना" आदि अनेक वीरत्व बढ़ानेवाले वचन समझाये । फिर कहने लगी, "अब तू जल्दी जा और युद्धकी तैयारी कर; क्योंकि इस समय तू राजा है । नहीं तो तू दो दिन पीछे राजा कहलाने योग्य नहीं रहेगा" ।

बिदुलाके ऐसे वचन सुनते ही उसके हृदयमें वीररस उभड़ आया । वह तुरंत ही लड़नेके लिये तैयार हो गया । वह रणक्षेत्रमें अपनी सेना सहित पहुंचा । वहां पर युद्धका आरंभ हो गया; किन्तु वह बालक तो था ही; निदान उसने रुधिरकी नदी बहती देख धैर्य छोड़ दिया । उसके मनमें भय उत्पन्न हो आया इससे वह अपने जीवको बचाकर रणक्षेत्रसे निकल भागा । जिससे सम्पूर्ण वीरगण घबरा गये । संजय घरमें आकर गुपचुप शयनागारमें जाकर सो गया । उसने सोचा कि, "जो भाग्यमें होगा वेंही होगा" यह सोचकर निश्चिंत हो गया । यह समाचार माता बिदुलाको मिले । "हाय ! यह प्राण किस लिये हैं? जो प्राण माताकी रक्षा करने योग्य नहीं उस प्राणकी कोई महत्त्वता नहीं है" । किन्तु उसने अपने लडके पर क्रोध न करके सोचा कि, "समय तो गया, जो कार्य थोड़े परिश्रमसे हो सक्ता था वह अब अधिक परिश्रमसे हो सकेगा" । ऐसा सोचकर वह निश्चिंत नहीं बैठी; किन्तु घबराती हुयीं अपने उत्साहको द्विगुण करके फिरसे कार्य सिद्ध करनेंका प्रयत्न करने लगी । उसने अपनी बुद्धिबलसे शत्रुओंको पराजय करनेकी युक्ति सोची; क्योंकि उसका हृदय स्वाधीनतामय था । वह अपनी दुर्दशा किस प्रकार देख सक्ती है? वह पराधीनताको धिक्कारती थी । क्या वह जीवित दूसरेकी सेवा करेगी? नहीं ऐसा करनेसे मरना हजार गुणा उत्तम है । वह किसीके आगे नहीं नमी, दूसरेही उसको

नमन करते थे। उसने किसीसे भीख नहीं मांगी; वह दूसरोंको भीख दिया करती थी वह अपनी कीर्तिको बढावेगी; किन्तु उसमें दाग नहीं लगने देवेगी। यद्यपि उसको (संजय) एकही पुत्र था; तथापि वह शत्रु भयसे घरमें छिपाना उचित नहीं जानती थी। उसने संजयको बुलाया और कहा कि, "पुत्र! तू शत्रुके हर्षकी वृद्धि मत-कर; क्योंकि आज शत्रुओंके राज्य ले लेनेसे कलही तुझे गली कुचीमें भिखारी बन-कर भीख मांगनी पड़ेगी। इसलिये हाथकी सम्पत्तिको भयसे क्यों खोता है? अग्निमें जलानेकी शक्ति है, वह सम्पूर्ण पृथ्वीको जलाकर भस्म कर सक्ता है। तो तू अग्नि–व्यवहारको क्यों छोड़ता है? शत्रु चाहे कितनाही बलवान क्यों न हो, उससे जीतनेकी आशा न भी हो, तो भी भयसे भयभीत नहीं होना चाहिये; क्योंकि आगेसे डरनेवालेका जीना व्यर्थ ही है। पुत्र! एकवार जीवकी आशा छोड़-कर शत्रुओंको मार अथवा स्वयं मर! तू इसी मंत्रकी साधना कर! अब तू विलम्ब मत कर! देशकी रक्षाके लिये प्राणको मत छुपा! तुच्छ जीवनके लिये कर्तव्यका त्याग नहीं कर"। इतना कहनेपर भी संजयको कुछ असर नहीं हुई। वह माताके चरणोंको प्रणाम कर विनय करने लगा "माता! मेरा शरीर शत्रुके बाणसे घायल हो गया है। मेरा प्राण इस शरीरको त्यागनेकी तैयारी कर रहा है। यदि इस समय मैं रणक्षेत्रमें जाऊंगा तो तुम्हारे फिर दर्शन नहीं मिल सकेंगे। तुमको पुत्र प्यारा है कि राज्य? यदि तुमको राज्य प्यारा हो तो मैं अब लड़ाईमें नहीं जाऊंगा। मैं आपकी शरण हूं। मुझे पुत्र जान इस समय अपनी शरणसे अलग मत करो"। ऐसे वचनोंसे माता कैसी भी वीर क्यों न हो; किन्तु उसका हृदय विना पिघले नहीं रह सक्ता; किन्तु विदुलाको इन वाक्योंकी कुछ भी असर नहीं हुयी। उसने अ-पने लड़केका मत फेरनेका फिर यत्न किया। उसने कहा कि, "संजय! यह सत्य है कि पुत्र–स्नेह बड़ा प्रबल है; किन्तु कर्तव्यके आगे नहीं। मैं जिस प्रकार पुत्र स्नेहको समझती हूं उसी प्रकार कर्तव्य भी समझती हूं। जब तक मेरा प्राण है तब तक तुझे खाने के लिये दूसरेके सन्मुख भीख मांगते देखना उचित नहीं समझती। तू सौवीर वंशमें कायरपन करेगा; वह मैं कदापि नहीं सुन सक्ती। तू यत्न करेगा तो तेरा मनोरथ सिद्ध होगा। इस संसारमें श्रमके आगे कुछ भी असाध्य नहीं है। देख! श्रीरामचंद्रजीने केवल कपियोंकी सहायतासे महान् समुद्रका पूल बांध लिया था। परिश्रमसे ही परशुरामजीने इक्कीसवार पृथ्वीको विना क्षत्रियोंके कर दी थी। पुत्र! तू क्यों डरता है? शरीर, प्राण, हाथोंका बल, सैन्यके योद्धा आदि होनेपर भी तेरा बैठ रहना उचित नहीं है। ऐसे समयमें बैठ रहना यह क्षत्रियधर्म नहीं

है। वीर पुरुषके मुखसे कभी "नहीं" शब्दका उच्चारण नहीं होता। तू क्यों "नहीं" शब्दको बोलकर अपने कुलको कलंक लगाता है? पुत्र! उद्यम कर, रणक्षेत्रमें शरीर त्याग करनेकी तैयारी कर। यह शरीर सदैव स्थिर रहनेवाला नहीं है। यदि तू आज इसकी रक्षा करेगा तो भी यह दो दिन पीछे नाश हो जायगा। पुत्र! रणभूमिमें मरनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है। नहीं तो नरकका कीडा बनना पड़ता है। यह रूप कभी स्थिर रहनेवाला नहीं है। अकेला आया है और अंतमें भी अकेलेही जाना पड़ेगा। इसलिये अभी रणक्षेत्रमें शरीर त्यागनेकी तैयारी कर।" अहा! वीर माताके वचनोंके धन्य है!!

माता विदुलाके मुखसे ऐसे वचन सुनकर किसका हृदय स्थिर रह सक्ता है? ऐसा कोन कायर पुरुष होगाकि जिसको ऐसे वचनोंकी असर न हो? संजयका भय दूर हो गया। उसने जाना कि "**कीर्ति ही मनुष्यका मनुष्यत्व है**" उसने अपनी मातासे कहा, "माता! प्राण चाहे चले जाय, किन्तु अब आपकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सक्ता!" यह कहकर मातासे आज्ञा मांगी। माताने आशीर्वाद देकर कहा, "संजय! यदि तू अपने प्राणोंका भय नहीं करेगा तो तेरा अवश्य जय होगा"। संजयको आता देखकर मानो मृतक सेनामें प्राण आ गये। सब योद्धाओंके हृदय प्रफुल्लित हो गये। वे लोग बड़ी वीरतासे अपना पराक्रम दिखाने लगे। सौरव वंशका पराक्रम देखकर शत्रुओंके छक्के छूट गये। वे लोग भयभीत हो गये। भयही पराजयका मूल है। एक वार भी भय उत्पन्न हो तो कार्यके पूर्ण होनेकी आशा नहीं रहती। शत्रुओंने धैर्य त्याग दिया और रणक्षेत्र छोड़कर भागने लगे। संजयकी जय जयकार होने लगी। पहिलीवार कृष्णमुख किये गुपचुप आकर सो गया था; किन्तु अब दूसरी वार संजयने हंसते हुये मुख आकर माताके चरणोंमें प्रणाम किया। माताने हर्षित हो हृदयसे लगाकर उसकी पीठ ठोकी। "भाग्यमें होगा सो होगा" यह विचार बिलकुल मूर्खोंका है। यह केवल आलसियोंका भूषण है और पापियोंको पाप-कर्म करनेका सुगम मार्ग है। परिश्रमसे ही सर्व कार्योंकी सिद्धि होती है। उद्यमसे ही सौवीरके राज्यकी कीर्ति हुई। यह सब वीर-माता विदुलाका ही प्रताप है। आहा! धन्य है ऐसी माताकोकि जिसने अपने पुत्रके सच्चा—धर्म बताया।

कर्मदेवी ।

यह महाशक्तिरूपिणी कर्मदेवी मेवाड़के अधिपति पराक्रमी राजा समरसिंहकी पतिव्रता पत्नी थी। यह पतिव्रता धर्मानुसार पतिको उचित सलाह तथा सहायता देती थी। इन दोनोंमे परस्पर बड़ा प्रेम था। वह कभी अपने पतिकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करती थी। सत् समागम और धर्म दानादि करती थी। उसकी धर्मशास्त्र पढने और सुननेमें बड़ी प्रीति थी। उसको अपने धर्मपर बड़ा प्रेम था। वह कभी अपना अपमान सहन नहीं कर सक्ती थी। स्वदेशरक्षाके लिये दिल्लीपति पृथ्वीराज तथा मेवाड़के पराक्रमी राजा समरसिंहने अफघानोंको भारतवर्षमेंसे निकालनेको शहाबुद्दीन गौरीके साथमें ई० स० ११९३में युद्ध किया था। उस युद्धमें योद्धाओंका नाश हो गया। इससे यवनोंका बल बहुत बढ़ गया था। उन्होंने दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया था। महावीर समरसिंहके मरनेसे यह देश शोकसागरमें डूबकर अंधकारमें पड़ गया था। उसी समय शहाबुद्दीनने राजपुताने पर चढाई करदी। प्रत्येक स्थान पर रक्तकी नदियां बहने लगी। जहां देखो तहां पराजय ही होता था। तेज, पतिव्रत, और स्वाधीनता आदिका नाश होने लगा। पवित्र भारतभूमि यवनोंके जुल्मसे स्मशानभूमि बनने लगी, ऐसे सभयमें मेवाड़पतिकी कीर्ति बढ़ानेके लिये योद्धाओंमें फिरसे वीररसकी उत्पत्ति हो गई। योद्धागण उत्साहसे संग्राम करनेको तैयार हो गये। मेवाड़पति समरसिंहके मरनेपर उसका सुकुमार बालक गादीपर बैठाया गया था वह अपनी बाल्यावस्थामेंही शत्रुओंके पैरके नीचे पड़ेगा। यह फूलने वाली कली जल्दी ही मुरझा जायगी। ऐसा सोचकर पतिकी कीर्तिको बढानेवाली कर्मदेवीने वीररूप बननेके लिये शस्त्र धारण किये। उसने अपने शरीरपर कवचको धारण किया और हाथमें तीक्ष्ण तलवार लेकर यवनोंको देशमेंसे निकालनेके लिये तैयार हो गयी। उसके साथ बहुत योद्धागण आ गये।

शहाबुद्दीनके पुत्र कुतबुद्दीनने वीरयुवती कर्मदेवीको आकर घेर लिया। अब तो रणक्षेत्रमें वीरबालाने अपना वीरत्व बताना आरंभ कर दिया। वह घोड़ेपर सवार हो अपने वीरोंको वीरत्व भरे वचनोंको कहकर आगे बढने और उन्हे ललकारने लगी। अपनी तलवारसे शत्रुदलका नाश करना प्रारंभ किया। उसने संग्राममें यवन दलका बड़ा नाश किया; जिसके कारण शत्रुओंकी हिम्मत टूट गयी। कुतबु-

हीन कर्मदेवीके भयंकर कर्मको देखकर कंपने लगा उसने जयकी आशा छोड़ दी, क्योंकि वह स्वयं भी घायल हो चुका था। वह अपनी जान लेकर रणक्षेत्रसे भाग गया। वीरबाला कर्मदेवीने जय प्राप्त करके अपने देश और कीर्तिकी रक्षा की। उसका दिनर तेज प्रख्यात होने लगा। इस प्रकार इस वीरबाला मेवाड़की कीर्ति बढाकर अपना नाम इस संसारमें अमर कर गई।

कलावती।

यह तेजस्वी पतिप्राणा सती राजपुतानेके एक छोटे राज्यके अधिपति करणसिंहकी स्त्री थी। इस राज्यपर दिल्लीपति यवन बादशाह अल्ला-उद्दीनने चढाई की तब यह राजा भी अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये लड़नेको तैयार हुआ और इसके साथ कलावती भी मर्दके भेष धारण कर रणक्षेत्रमें सशस्त्र चलनेको तैयार हुई। उसके सामने घोर संग्राम होने लगा। कलावती करणसिंहके समीपमें रहकर समयर सहायता भी करती थी। युद्धभूमिमें शत्रुओंके दलमेंसे एक आदमीन करणसिंहपर धोकेसे आक्रमण किया; किन्तु कलावतीकी दृष्टि उस धूर्तपर पड़ गई। वह तलवार लिये आ रहाथा इतनेमें कलावतीने उसके पीछेसे आकर उसे यम लोकको पहुंचा दिया। इस प्रकार उसने अपने पतिकी प्राणरक्षा की। करणसिंह और कलावतीने अपने बाहु—बल तथा बुद्धिबलसे शत्रुओंके सेनका अधिकांश नाश कर दिया। अब तो शत्रुओंने अपने जीवनकी आशा छोड़ दी और घोर संग्राम होने लगा। इसवार करणसिंहको तलवारका एक भारी घाव लगा। यह देखते ही कलावती देवीका भयंकर रूप धारणकर पड़े क्रोधसे शत्रु—दलपर शस्त्र प्रहार करने लगी। इस वीर—बालाके सन्मुख शत्रुओंकी फोजके पांव उखड़ गये। उस दलके अनेक योद्धाओंका नाश हो गया। निदान यवनदल रणक्षेत्र छोडकर भाग गया। इस प्रकार जयका डंका बजाती हुई कलावती अपने पतिके साथ मेवाड़ राज्यमें लौट आई। करणसिंह के घावमें बडी पीड़ा होने लगी। चतुर वैद्य बुलाये गये। उस घावको देखकर वैद्योंने कहाकि यह एक जहरीली तलवारका घाव है इसलिये जब तक शरीरमें प्रवेश किये विषका नाश न होगा तब तक घावका अच्छा होना असंभव है। विषका नाश करनेके लिये किसी मनुष्यको विष चूसनेके लिये कहिये। करणसिंहने अपने प्राणकी रक्षाके लिये विष चुसाकर दूसरे

व्यक्तिकी जान लेना अनुचित समझा; किन्तु कलावती पतिके दुःखको न सहन कर सकी। उसके कोमल हृदयमें वेदना होने लगी। जब करणसिंह निद्रावश हुआ उस समय कलावतीने पतिकी रक्षाके लिये उसके घावसे विष चूसना प्रारंभ कर दिया, उसने ऐसी युक्तिसे उसके घावसे विष चूसा था कि उसे कुछ भी खबर न हुई। निदान करणसिंह तो अच्छा हो गया, किन्तु कलावती सदैवके लिये इस संसारमें अपना नाम अमर करके मृत्युकी गोदमें शयन करने लगी। यह हाल देखकर करणसिंह बड़ा दुःखी हुवा। उसने उसके वियोगमें अपना शेष जीवन विना स्त्रीके ही व्यतीत किया था। धन्य! ऐसे प्रेमी पति—पत्नीको!

दुर्गावती।

यह चंदन नामक राजाकी कन्या और गढ़ मंडलके राजा संग्रामसिंहकी पतिव्रता स्त्री थी। उस समय उसके समान अन्य सुंदरी नहीं थी। जैसी वह स्वरूपवती थी वैसी ही तेजस्वी भी थी। और वैसी ही पतिव्रता व धैर्यवान थी। वह सदैव पतिव्रत धर्मानुसार चलती और पतिको सुख देनेमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं होने देती थी। पतिके सहवासमें सुखपूर्वक कितनेक वर्ष आनंदमें व्यतीत हुये किन्तु कालचक्रमें पड़कर उसके पातिकी मृत्यु हो गई और वह विधवा हो गई। उसका १८ वर्षका वीरवल्लभ नामक पुत्र गद्दीपर बैठाया गया। वह स्वयं राज्यनीतिमें कुशल थी। इसलिये राज्य—कार्य उत्तमतासे चलाने लगी और प्रजाको अनेक प्रकारका सुख देती थी। प्रजा भी उसे रक्षा कर्त्री देवी समझकर श्रद्धा और भक्तिसे चाहती थी। गढ़मंडल नर्मदा नदीके किनारे जबलपूरके पास है। यह राज्य उत्तम, अपनी स्वतंत्रतासे अन्य राज्योंको कुछ नहीं गिनता था। उस समय हिन्दुस्थानका राज्य अकबर बादशाहके अधिकारमें था। वह छोटे राज्यों को अपने राज्यके अधिकारमें मिलानेका प्रयत्न कर रहा था; किन्तु जगत् प्रसिद्ध महाराणा प्रतापसिंह और रानी दुर्गावती ये दोनों उसके आधीन नहीं हुए थे। इसलिये ई० स० १५६४ में गढ़मंडलपर अभिमानी आसफखां सेनापतिने छ हजार सवार और बारह हजार प्यादे—पैदल लश्कर लेकर चढाई की। वह इस राज्यकी समृद्धि देखकर मोहित हो गया और उसे अपने आधीन करनेका प्रयत्न करने लगा। यह समाचार पाते ही गढ़मंडलके निवासियोंमें खलबल हो गई; किन्तु

रानी दुर्गावतीके हृदयमें कुछ भी भय नहीं हुआ। वह आठ हजार सवार, डेढ हजार हाथी और बहुतसा पेदल सैन्य लेकर शत्रुके सन्मुख रणक्षेत्रमें आ पहुंची। उसने अपने शिरपर राजमुकुट धारण किया था, शरीरपर बख्तर धारण किया था, एक हाथमें तलवार और दूसरे में धनुष लेकर हाथीपर सवार हुई थी। उसका नवयुवक कुमार वीरवल्लभ भी शूरवीरोंके समान वस्त्र और हथियार धारणकर रणक्षेत्रमें आया था। महा घोर संग्राम होना प्रारंभ हो गया। इस समय रानी दुर्गावतीकी मूर्ति साक्षात् देवी चंडिकाके समान हो रही थी। वह गंभीर स्वरसे अपने सैन्यको उत्साह भरे वचनोंसे ललकारती और शत्रुपर आक्रमण करती थी। वीरबाला दुर्गावतीके इस पराक्रमको देखकर मुसलमानोंका धैर्य भाग गया। रानी दुर्गावतीने उन लोगोंको दो बार रणक्षेत्रमें परास्त कर दिया। इस युद्धमें शत्रुओंके छैसौ घोडे मारे गये। इस कारण शत्रु दल भयभीत हो गया। आसफखाने कई युद्धमें विजय पाकर अपने नामको बढाया था किन्तु यहां हारनेसे वह अत्यंत लज्जित हुआ। वह वीर रानी दुर्गावतीके तेजके सामने थर २ कंपने लगा। वह भागनेके लिये उद्यत हो गया और दुर्गावतीने अति क्रोधसे शत्र दलपर आक्रमण करके उसे यमलोक भेजना प्रारंभ किया। अब संध्या समय जानकर उसने लड़ना अनुचित जानकर विश्राम किया। उसने अपने योद्धाओंसे कहा कि विश्रामके पश्चात् प्रातःकालही शत्रुदलपर फिर आक्रमण करना चाहिये। किन्तु आसफखांने जब वे लोग विश्राम कर रहे थे तब अपने सैन्यको लेकर उनपर आक्षेप कर दिया। जिसके कारण दुर्गावतीको अपने सैन्य लेकर एक पहाड़ के संकीर्ण स्थान में छिपना पड़ा। तो भी यवन दल वहां पहुचंकर संग्राम करने लगा। इस समय बालकुमार वीरवल्लभ अपने अतुल पराक्रमको दिखाने लगा। शत्रुओंपर इस बालकुमारका ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनकी हिम्मत टूट गई किन्तु बालकुमार वीरवल्लभ बहुत घायल हो रहा था। दुर्गावती अपने इकलौते पुत्रके इस संकटको नहीं देख सकी वह स्वयं रणक्षेत्रमें आकर अपना बल और पराक्रम दिखाने लगी। शत्रुदलका अच्छी प्रकार दमन किया। इस संग्राममें वह भी दो तीन तीरोंके लगनेसे घायल हो गई थी तो भी वह नहीं घबराकर बराबर उत्साहसे शत्रुओंपर आक्रमण करती रही। उसने शरीरमें जीव रहते तक शत्रुको पीठ नहीं बतानेका निश्चय कर लिया। उसके घावोंसे रुधिर वह रहा था इसलिये उसे यह भी निश्चय हो गया कि मैं जीवित नहीं रह सकूंगा इससे उसने अपनी तीक्ष्ण कटारको पेटमें मार ली और सदैव के लिये अपना नाम अमर कर गई। धन्य है! ऐसी वीरांगनाको कि जिसने देश रक्षा और अपने कर्तव्य पालनके लिये अपने जीवकी कुछ भी परवाह नहीं की।

मरीची।

यह पवित्र मनकी साध्वी स्त्री सिकिम देशकी सेनाके ऊपरी यशलाल-सिंहकी पुत्री थी। यशलालसिंहका जन्म लेपचा वंशमें हुआ था। यह जाति सौन्दर्यके लिये प्रसिद्ध है। वे स्वभावसे प्रेमी व नम्र रहते हैं। उनका हृदय प्रेमसे परिपूर्ण एवं मन सदैव प्रफुल्लित रहता है। उनके जीवनका उत्तम महत्त्व यही है कि वे परस्पर क्लेश नहीं कर प्रीतिपूर्वक साथमें रहते हैं। वे भूखें मरना स्वीकार करते हैं; किन्तु स्वतंत्रता बेचना नहीं चाहते। ऐसे उत्तम गुणवाले वंशमें मरीचीका जन्म हुआ था। वह अत्यंत स्वरूपवती थी। उसकी उमर २० वर्षकी थी। वह प्रेमी तथा पवित्र मनकी थी। पापसे अस्पृष्ट बुद्धदेवके मंदिरमें जाकर वह देवसेवा किया करती थी। उसके पिता यशलालसिं-हने उसको बाल्यावस्थासे उत्तम शिक्षा दी थी। वह उसके स्वभावकी स्वाभाविक सुन्दर गतिमें बाधा नहीं देता था। उसने अपनी इच्छासे मन्दिरकी कुमारीकाश्रेणीमें इस कन्याको रक्खी थी। मंदिरका लामा (बौद्धगुरु) हिन्दु धर्मशास्त्रका एक संन्यासीके पास अध्ययन करता था। उस संन्यासीके पाससे मरीचीने भी संस्कृत और हिन्दी भाषाका अध्ययन कर लिया। वनलता मरीचीको उसका पिता बहुत चहाता था। वह कभी भी उसके विचारसे विरुद्ध आचरण नहीं करता था। उसको पूर्ण विश्वास था कि मेरी पुत्री कोई भी असत्य कार्यका आचरण या विचार नहीं करेगी। उसने अपनी कन्याकी कईवार परीक्षा की थी। उस पर्वतीय प्रदेशमें ऐसी प्रथा है कि कन्या योग्य उमरकी होनेपर वह अपनी इच्छानुसार आचरण करनेको स्वतन्त्र है। उसमें उसके मातापिता अन्तराय नहीं कर सकते; किन्तु वह विचार नीतिके नियमानुसार होना चाहिये। मरीचीका हृदय प्रेमसे पूर्ण एवं सरल था। वह पर्वतके निवासके कारण सांसारिक प्रपञ्चोंसे दूर रही थी। वह स्वभावतः ब्रह्म-चारिणी थी। पर्वतीय लोग किसी प्रकारके जूलमको सहन नहीं कर सकते। उस देशका स्वाभाविक धर्म है कि अनाहारसे मरना श्रेष्ठ है किन्तु स्वतंत्रताका त्याग नहीं करना। वे किसीसे लडना नहीं चाहते; किन्तु अपनेपर जूल्म करनेवालोंके प्राण लेनेमें वे कुछ भी विचार या बिलम्ब नहीं करते। मरीचीने भी अपने ऊपर पापदृष्टि करनेवाले पांच पापियोंके अपनी छूरीसे चीर डालेथे। उस देशकी विवाहित स्त्रियोंके पास प्रायः ऐसी छुरीयां नहीं रहती है किन्तु मन्दिरमें रहनेवाली कुमारिकायें

अपने धर्मकी रक्षाके लिये एक२ छुरी अपनी जटामें रखती हैं। एक दिन मरीची अपनी बहिनके साथ फिरनेके लिये गयी थी। फिरकर घरपर आयी तो एक साहब आकर उसके द्वारके पास घुम रहा था। उसकी बहिन तो थक गयी थी जिससे वह घरमें चली गयी। मरीचीको साहबने अपने पास बुलायी, वह निर्भयतासे उसके पास गयी जिससे साहब अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मरीचीने उसको मन्दिर लूटानेके पहिले एकवार देखा था। साहबने मरीचीसे कहाकि "हम इस देशके राजा होंगे। तू साथ चल। मैं तुझे बहुत ही सुखी करुंगा" इत्यादि वचनोंसे उसे समझाने व भय दिखाने लगा; किन्तु मरीची कुछ भी नहीं बोली। तब साहब उसके पास आने लगा। मरीची उससे दूर हटने लगी; किन्तु साहबने उसे यकायक पकड़ लिया। मरीची उसका हाथ छुड़ाकर फिर दूर हट गई; फिर भी उस दुष्टने उसका पीछा नहीं छोड़ा। तब मरीचीने क्रोध करके कहाकि, "हे दुष्ट! यदि तू मेरे शरीरका स्पर्श करेगा तो अभी ही मैं उसका फल चखाउंगी!" साहब उन्मत्त होकर बोलाकि, "हे सुन्दरि! अभी तू निःसहाय है, इस समय तेरी रक्षा कौन करेगा?" इतना कहकर उसने मरीची को पकड़ लिया। मरीचीने बहुत बल किया; किन्तु उसे छुड़ा नहीं सकी। आखिर उसने धर्मकी रक्षाके लिये जिस छुरीको अपनी जटामें रक्खी थी उसे युक्तिसे निकालकर जोरसे उसे साहबकी छातीमें मार दिया। जिससे वह नराधम चील्लाकर पृथ्वीपर गिर गया और वह निर्भयतासे घरमें चली गयी।

हे वीर कन्ये! तुझे धन्य है कि तूने अपनी बहादुरीसे अपने धर्मकी रक्षा की!!

स्त्रियोंके लिये सतीत्वके समान और कोई आदरकी वस्तु नहीं हैं। जो स्त्री अपने सतीत्वकी रक्षा करती है उसीको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। सतीत्वकी रक्षाके लिये प्राणोंका नाश करना यह अन्याय किम्वा पाप नहीं है ऐसा अनेक धर्मशास्त्रोंमें कहा है। इस समय पर्यन्त अनेक सती स्त्रियोंने अपने सतीत्वकी रक्षा की है। इस लिये मरीचीने सतीत्वकी रक्षाके लिये जो कुछ किया वह उत्तम ही किया था। इस कार्यके लिये उसे धन्यवाद है! इसके बाद दूसरे दिन अंग्रेजोने सिकिमको अपने कब्जेमें करनेके लिये प्रपंच रचने शुरू किये। वहांका मंदिर लूटा लिया जिसका वैर लेनेके लिये कई स्त्रियां हथियार बांधकर अंग्रेजोके साथ लडनेको तैयार हुई; जिनमें मरीची भी गयी थी। अंग्रेज सेनापति घोडेपर बैठकर लडाईके मैदानमें गया जहां उसने अपने सैन्यके बहुतसे सिपाहियोंके मुरदे पड़े हुए देखे। ज्यों २ आगे बढने लगा त्यों२ अधिक मुरदे दिखायी देने लगे। यह देखकर उसे आश्चर्य मालूम हुआ और घोडा आगे बढाया; किन्तु घोडेका पांव फीसक जानेसे वह नीचे कूद

पड़ा। थोडी देरमें उसके पांवमें आकर एक तीर लगा जिससे वह एक पांव पर तलवार हाथमें ले खड़ा हुआ और इधर उधर देखने लगा इतनेमें एक युवती कि जिसने लड़ाईका पोषाक धारण किया था वह दोड़कर पीछे आपहुंची। उसके एक हाथमें धनुष्य और दूसरे हाथमें कटार थी। इस प्रकार उसको आती हुई देखकर साहबको अत्यन्त आश्चर्य हुआ और अपने हाथकी तलवारको दूर डालकर बोलने लगा कि, "वीरकन्ये! जखमी हुए सिपाहीके ऊपर शस्त्र मत उठाना। देखो मैंने इस शस्त्रको छोड़ दिया है"। युवतीने कहाकि, "जुल्मगार! तू उस दिनकी बातको याद कर! पाखंडी! तूने किस अपराधसे मंदिरके धर्मयाचकोंके ऊपर जूल्म किया था?" ऐसा कहकर जोरसे वह रमणी उसके पास आ पहुंची। सेनापतिने आत्मसमर्पण कर कहाकि, "वीर कन्ये! हम नारकी हैं, आप कृपाकर मुझे बचाइये। अब कभीभी मैं ऐसा खराब कार्य नहीं करूंगा"! युवतीने कहाकि," अब मैं तुझे नहीं छोड़ना चाहती अभी इस कटारसे तेरी छातीको चीर डालूंगी!" सेनापतिने कहाकि, "आप छातीको चीरनेके लिये स्वतन्त्र है, किन्तु मैं एक भिक्षा मांगता हूं।" युवतीने कहा कि, "क्या मांगते हो? तेरे सहस्रों अपराधोंको भूलकर मैं भिक्षा देना स्वीकार करूंगी।" सेनापतिने कहा कि, "आजकी लड़ाई किसने की? आप किसकी पुत्री हैं? और आपका नाम क्या है?" युवतीने कहाकि मंदिरमें रहनेवाली स्त्रियोंके द्वारा तुम्हारे सैन्यका नाश हुआ है। मैं यशलालसिंहकी पुत्री हूं, मेरा नाम मरीची है।" सेनापतिने कहाकि, "अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिये!" यह सुनकर मरीचीके हृदयमें दया आयी और हाथकी कटारीको छोडकर कहाकि, "अब आप जासक्ते हैं। मैं आपको क्षमा करती हूं। इस प्रदेशमें फिर कभी मत आना।" साहब अपनी तलवारको हाथमें ले मरीचीको प्रणामकर वहांसे विदा हुआ और मरीची मंदिरमें आकर सबसे मीली। उसकी इस वीरताको देखकर सब कोई प्रसन्न हुए। मरीचि! तेरी वीरता व तेरे साहसके लिये तुझे सहस्रों धन्यवाद है! तूने अपने शौर्यसे अपने धर्मकी रक्षा की और देशको पराधीनतासे बचाया। क्या भारतमें फिर ऐसी सतियां उत्पन्न नहीं होंगी?

वीरभद्रा ।

यह वीर सती अरन्ती नगरके राजा मानिकरावकी पुत्री थी। वह गुण व सौन्दर्यसे पूर्ण थी। उसका प्रथम सम्बन्ध उसके पिताने राठोड वंशके मंदोर राजकुंवर अरण्यकमलके साथ करनेका विचार किया था। वीरभद्राकी इच्छा उसके साथ विवाह करनेकी नहीं थी। उसने जेसलमीरके समीपके पुगल राजकुमार साधुके अतुल वीरत्व और हिम्मतकी बातें सुनी थी इस लिये उसके साथ विवाह करनेका विचार किया था। उसने अपने ये विचार साधुसे कहे। उसने उसे स्वीकार किया। जिससे मानिकरावने वीरभद्राका उसके साथ विवाह करवा दिया। साधु स्नेहसहित वीरभद्राको लेकर अपनी राजधानीमें आनेके लिये निकला। मार्गमें चलते चन्दन नामके स्थानपर विश्राम किया। ये समाचार उस अरण्यकमलको मिले। वह वैर लेनेके लिये राठोड़ोंका सैन्य लेकर वहां पर आ पहुंचा। साधुने किसी प्रकार नहीं डरकर सामना किया। भयंकर युद्ध हुआ। दोनोंके सैन्यमें अनेक मनुष्य कट गये, वीरभद्रा अपने पतिपर इस प्रकार आपत्ति आयी जिसे देखकर कुछ चिन्तित हुयी; किन्तु धैर्य धारणकर आपने पतिको लड़नेके लिये उत्साह देने लगी। और पतिके पराक्रमको देखकर मन ही मन उसे धन्यवाद देने लगी। वीरभद्राने अपने पतिसे कहाकि, "स्वामिन्! मैं आपके युद्ध चातुर्यको देखुंगी। यदि आप रणमें पड़ेंगे तो मैं आपके साथ आवुंगी"। साधु अपनी पत्नीकी इस तेजस्विताको देखकर प्रसन्न हुआ। दोनों क्षत्रीय वीरोंने द्वन्द्व युद्ध करनेका निश्चय किया। इस युद्धमें दोनों बेशुद्ध हो रणमें गिरे। वीरभद्रा अपने प्राणधनके गुम हो जानेसे कुछ भी अधीर नहीं हुयी और युद्ध क्षेत्रमें ही चिता तैयार कराके प्राणपतिके शबको गोदमें ले शान्तभावसे जलकर भस्म हो गयी। इस प्रकार वीरभद्रा अपूर्व पतिभक्ति दिखाकर संसारमें अमर हो गयी है।

सती प्रभा ।

यह सती गन्नोरके राजाकी पत्नी थी। वह रूप, गुण और लावण्यतामें श्रेष्ट थी। इसकी सुंदरताकी प्रशंसा सुनकर यवन बादशाहने गनोर पर चढाई की। इस समय रानीने घोर युद्ध किया था; किन्तु रानीकी

सेना बहुत थोड़ी थी तो भी अपना पराक्रम बताकर यवनोंको अचम्भित कर दिया। निदान यवनोंकी सैना अधिक थी इससे शत्रुओंने किलेपर अपना अधिकार कर लिया। इस कारण उसको धबराकर केवल युद्धमें मरनेके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा। वह नर्मदा नदीके तटपर किलेमें जानेके लिये नौकामें बैठी कि इतने ही में यवन योद्धाओंने चहुं ओर से उसे घेर लिया तथापि वह अपनी वीरता और चतुराईसे किले भीतर हो गई और दरवाजा बंद कराने लगी परन्तु यवनगण किलेकी भीतर घुस गये । यहां वीर राजपूतोंने यवनोंको परास्त करनेके लिये अपने जीवन की आशा छोडकर घोर युद्ध किया। किन्तु यवन-दल की संख्या अधिक थी निदान इस किलेपर भी यवनों का अधिकार हो गया! अधिकार होते ही बादशाहने रानीके पास खबर भेजी,"सुंदरि! तुम अपना राज्य पीछे लेना चाहो तो हमसे निकाह पढालो, मैं तुम्हारा दास होकर रहूंगा"। इस संदेशसे रानी सती प्रभाके क्रोधकी सीमा नहीं रही; किन्तु अब वह क्या कर सक्ती है? फिर भी उसने विचार करके उत्तरमें कहला भेजा कि," यदि आप मुझे दो घंटेकी आज्ञा दें तो मैं विवाहके योग्य कपड़े पहिनकर तैयार हो जाऊं"। यवनराजने प्रसन्नतासहित उसकी बात स्वीकार करली। रानी भी वस्त्रादि पहिनकर अपनी बैठकमें जा बैठी और एक उत्तम पोशाक कामाग्निसे व्याकुल यवनराजके पास भेज दिया और कहला भेजा कि आप इस पोशाक को पहिनकर विवाहके लिये पधारें। यवनराज बड़ी प्रसन्नतासे उस पोशाक पहिनकर तुरंत रानीके महलकी ओर आ गया। रानीने अपनी बैठक में बुलाया। थोड़ी देर तक साधारण बातचीत होती रही; फिर इकाइक यवन-बादशाह कहने लगा "अरर! मेरा शरीर जला जाता है" यह सुनकर सतीने कहाकि, "आपकी आयुष्य पूर्ण हो गई आजही मेरे और आपके लग्न और आज ही दोनोंकी मृत्यु है क्योंकि आपके अपवित्र व्यवहारमें सतियोंके सतीत्व धनकी रक्षाका अन्य उपाय न देखकर यह विषैली पोशाक भेजी थी"। इतना कह कर महलके ऊपरसे गिर पड़ी और इस शरीरको त्यागकर उसकी पवित्र आत्मा स्वर्गको चली गई। यवनराज भी तड़फड़ा कर मर गया। धन्य है! ऐसी सतीको जिसने अपने धर्मकी रक्षाके लिये और अन्य रमणियों के धर्मकी रक्षा के लिये कामी यवन बादशाहका नाश किया। इस प्रकार इसकी कीर्ति सदैव विख्यात रहेगी।

वीरबाला ।

यह साध्वी राजपुतानेके रूपनगरके राजा अमरसिंहकी कन्या थी। यह धैर्यवान, सुन्दर, धार्मिक और नीतिवान थी। राजपुतानेके बहुतेरे राजाओंने दिल्लीके बादशाहको अपनीर लड़कियां ब्याहकर कृपा सम्पादन की थी यह बात साध्वी वीरबालाको अप्रिय थी और जिनने धर्मभ्रष्ट होकर यह कार्य किया था उनको धिक्कारती थी। उसकी इच्छा वीर, विद्यावान, शील और स्वरुपवान क्षत्रियके साथ विवाह करनेकी थी। "यदि उपरोक्त गुणवाला कोई न मिलेगा तो यावत्जीवन कुमारी रहकर और उत्तमोत्तम ग्रंथ पढ़कर व नीतिसे रहकर मुक्तिदाता परमात्माका भजन करूंगी"। इस प्रकारका उसने अपने चित्तसे दृढ़ संकल्प कर लिया था। उसकी बड़ी बहिन केसरबाईको पिताने दिल्लीपति औरंगजेब बादशाहको ब्याही थी। वह एकबार २२ वर्ष पीछे रुपनगरमें अपने माता-पितासे मिलने आई थी; किन्तु वीरबाला उससे नहीं मिली। यद्यपि उसकी माता कौमारदेवी आदिने उसे बहुत समझायी तथापि वह उससे नहीं मिली। एक दिन वीरबाला शिव-पूजन करके शिवजीकी स्तुतिकर रही थी कि, "हे भोला शंभु! कृपासागर! आपका ध्यान मेरे हृदयमें दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जावे, मेरे हृदयसे क्षत्रियोंकी नीति और धर्मका अभाव न हो, यही मुझे आशीर्वाद दीजिये। सती सीताके समान मेरे हृदयमें भी सतीत्व उत्पन्न हो। मुझे दुःखमें सहायता देकर सद्बुद्धि दीजिये। मुझे क्षत्रिय वीरसे विवाह होनेका आशीर्वाद दीजिये। मेरा शरीर चाहे नष्ट हो जाय; किन्तु मेरी टेक नष्ट न हो। मेरा प्रेम आपके चरणोंमें दिनर बढ़ता जाय। हेभोला! मुझे यही आशीर्वाद दीजिये"। इस प्रकार शिवजीकी प्रेम और श्रद्धासे स्तुति कर रही थी, इतनेमें उसकी बहिन केशरबाई स्वयं आ पहुंची। वह शिवपूजनकी निंदा करने लगी। सुनते ही वीरबाला क्षत्रिय स्वभावसे क्रोधित हो कर बोली "तू क्या बकती है? तू राठोड़की पुत्री नहीं रही, तू दिल्लीके बादशाहकी बेगम होकर धर्मभ्रष्ट हो गयी है इससे तुझे क्षत्रिय नारी-धर्मकी क्या खबर है? तेरा शरीर यवनोंके अन्नपानसे अशुद्ध हो गया है। तेरा दर्शन मुझे नहीं भाता वरन् तुझे देखकर मेरे शरीरसे विष-ज्वाला उत्पन्न होती है। यद्यपि पिताने, दिल्लीके बादशाहके अधिकारमें होकर, तुझे उस यवनके साथ विवाह दिया तथापि तुझे विवाहित होकर दिल्ली जाना उचित नहीं था वरन् अपने शरीरका त्याग करना उचित था;

किन्तु तुझ समान स्त्रीको इतना ज्ञान ही कहां ? तू शूरा करणको दोष लगाने वाली कौलारानीके समान है। हाय ! तुझे वीर—माता राणकदेवी भी स्मरण न आई। तूने राठोड़ वंशको लज्जित किया। तेरी यवनोंके समागमसे बुद्धि भ्रष्ट हो गयी; तुझे बादशाही आनन्दका अनुभव हो गया, जिसके कारण हिन्दुशास्त्र और पुराणोंके महत्वको तू नहीं जानती। तुझे धिक्कार है ! " यह तिरस्कार सुनते ही केशरबाई बोली " अच्छा ! धैर्य धर मैं तो मुगल बादशाहकी बेगम होकर धर्म—भ्रष्ट हो गयी हूं; किन्तु तेरी इस टेकको भी नष्ट भ्रष्ट कराती हूं। तेरा किसी गुलामके साथ विवाह कराऊंगी, जब तू मियांके पैर दाबेगी तब ही तेरे इस अपमानका उत्तर मिलेगा। जब तक मैं ऐसा नहीं करूंगी तब तक अन्नजल ग्रहण करना हराम है। तेरे इन दुर्वचनोंसे मेरे रोमर से क्रोधाग्नि प्रगट हो रहा है। अब मैं प्रतिज्ञा करके दिल्ली जाती हूं, वहां सब वृत्तान्त बादशाहसे कहूंगी "। इतनेमें कई दासियां आ पहुंची और दोनों बहिनोंको समझाने लगी।

केशरबाईके जानेपर वीरबालाने अपनी मातासे सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। कौसारदेवी बोली, " पुत्रि ! तुझे धन्य है तूने यह कहकर अपना जन्म सार्थक किया। असलसे क्षत्रीय नारीका धर्म यही है जो तूने उससे कहा "। फिर वीरबालाने माता पितासे अपनी की हुयी प्रतिज्ञा प्रगट की कि, " मैं सिवाय क्षत्रियपुत्रके अन्य किसीके साथ विवाह नहीं करूंगी। चाहे आप या कोई भी मेरे शरीरके टुकड़ेर कर डाले किन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोडूंगी। चाहे मेरु पर्वत अपना स्थान छोड़ दे, ध्रुवमंडल अपना स्थान परिवर्तन करे, समुद्र मर्यादा त्याग दे, व अन्य असम्भव बात सम्भव हो जाय; किन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोडूंगी। सर्पकी मणी-को पानेवाले, जीवित सिंहकी मूंछ लानेवाले, सतीके सतको नष्ट करनेवाले इस संसारमें कौन जीवित हैं ? करण बाधेला, और राणा प्रतापसिंहने बड़ेर दुःख सहन किये हैं; किन्तु दिल्लीपति यवन बादशाहकी शरण नहीं गये। उसी प्रकार मैं भी कभी मुगलसे विवाह नहीं करूंगी।" पुत्रीके ऐसे वचन सुनकर वे अत्यंत प्रसन्न हुए। उनने स्वयं भी प्रतिज्ञा की कि, ' चाहे शरीर भले ही नष्ट हो किन्तु वीरबालाको ऐसे क्षत्रिय पुत्रके साथ विवाह करेंगे जो मुगल बादशाहसे न डरता हो। " यह प्रतिज्ञा करके ऐसे क्षत्रियको प्राप्त करनेका प्रयत्न भी आरंभ कर दिया; क्योंकि भविष्यमें वैर बढ़नेकी सम्भावना है।

केसरबाईके दिल्ली पहुंचते ही उसने औरंगजेबसे अपना सम्पूर्ण तिरस्कार कह सुनाया। औरंगजेबके क्रोधकी सीमा नहीं रही। केसरबाईको धैर्य देकर बोला "तू

चिंता मत कर, मैं रूपनगर जाकर उसे पकड़ लाऊंगा और तेरी लौंडी बनाऊंगा; यदि ऐसा न करुं तो मैं मुगल नहीं" ऐसा कहकर रुपनगरको पत्र लिखा। पत्रमें वीरबालाका अपने साथ विवाह करनेकी बात लिखी थी। पत्रके पढ़ते ही अमरसिंह थर २ कांपने लगा। उसकी हिम्मत टूट गई, निराश होकर उसने विवाह करना स्वीकार कर लिया। यह समाचार पाते ही वीरवालाने माता-पितासे गुप्त एक -विनयपत्र राणा प्रतापसिंहके पौत्र राजसिंहको लिख भेजा। "श्रीमान् राणाजी! इस पत्रको पढ़कर दासीकी रक्षा कीजिये। मैं राठोड़ वंशकी कन्या आपके चरणोंमें अपना शरीर अर्पण करती हूं। पिताने मुगल सम्राटके भयसे पत्रोत्तर लिख दिया है; किन्तु मैं हृदयसे मुगल सम्राटसे नहीं डरती। अब मैं केवल आपकी दर्शनाभिलाषी हूं। आपको मेरी प्रतिज्ञाकी लाज है। पिताने वसंतपंचमीका दिन लग्नके लिये रक्खा है। उसी दिन आकर आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं भी आज रुक्मिणीके समान यह विनयपत्र सेवामें भेजती हूं। आप ही मेरे कृष्ण हो। मैं सम्पूर्ण पृथ्वी वीर रहित देखती हूं, मुझे केवल आप ही देख पड़ते हैं। मैं यवनकी पत्नी होनेसे मृत्युको उत्तम जानती हूं। यदि आप आकर रक्षा न करेंगे तो मैं अपना प्राण त्याग करूंगी और आप दोषके भागी होंगे। हे राजसिंह रढियाला! आप ही महाराणा प्रतापसिंहके कुलमें भानु हो; मैं आपके चरणोंमें सर्वस्व अर्पण करती हूं। इससे अधिक और क्या लिखू? मैं अपना तन मन आपको अर्पण कर चुकी हूं। अब आप मेरी रक्षा करके अपनी लज्जा रखिये।"

राणा राजसिंह इस पत्रको पढते ही राजकुमारी वीरबालाको शरण देनेके लिये अत्यंत आतुर हुआ। और कहने लगा, "हाय! क्या यह क्षत्रियोंका धर्म है? ऐसे क्षत्रियों को धिक्कार है! उनकी नीति और जीवनको भी धिक्कार है! हाय! तुम मुगलोंको अपनी बेटियां देकर अन्न गृहण करते हो, तुम्हारे अन्न खानेके लिये धिक्कार है! तुम्हारी वीरता कहां गई? अरे! यवन बादशाह तुम्हारे शिरपर आनंद करें और तुम अपनी आंखोंसे देखो! क्या तुम भारतवर्षके पूर्व रहनेवाले अपने पूर्वजोंके चरित्रोंको भूल गये? यदि मैं लव-वंशका सच्चा वीर हूं तो मैं यवनोंको उनके इस दुष्कर्मका फल दिये विना नहीं रहुंगा।" राणा राजसिंहके ऐसे वचन सुनकर उसकी स्त्री वीरकला बोली, "प्राणपति! ये विचार आप किसलिये कर रहे हैं? आप स्वयं बुद्धिमान हो ऐसे अवसरको हाथसे कदापि जाने नहीं दीजिये। आप मेरे सुख-दुःखकी ओर बिलकुल दृष्टि न कीजिये; क्योंकि इसमें मेरी प्रीतिमें कलंक लगेगा। हे सुयोग्य पति! शूरवीर!! स्त्रियोंमें अयोग्य आसक्ति नहीं रक्खनी चाहिये यद्यपि इस

संसारमें प्राणी मात्र स्त्री सुख भोगते हैं, किन्तु धर्म और कीर्तिकी वृद्धि करनेका समय वारंवार नहीं मिलता। देखिये ! महाभारतमें जब अभिमन्यु रणक्षेत्रमें जाने लगा तब उत्तरा से बिलकुल प्रीति हटाली थी। रामाश्वमेधके समय वीरसेनका विचार कीजिये; उसकी कीर्ति और नाम आज दिन भी अमर है। आप जहां जायंगे मैं आपके साथ ही हूं। यदि आपको इस सुअवसरपर कामबुद्धिसे रोकूं तो मुझे धिक्कार है। मैं हाडा कुलकी कन्या हूं मैं ऐसा कलंक लगाने योग्य कार्य नहीं करूंगी" अपनी स्त्रीके ऐसे वीरत्व उत्पन्न करनेवाले वचनोंको सुनकर राजसिंह अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी मातासे जाकर सब वृतान्त कह सुनाया। माता वीरमती बोली, "पुत्र ! यदि तू शरणागतको शरण देने में संकल्प विकल्प करके समय चुकावेगा तो कुलको कलंक लगेगा। वीरबाला स्वयं ही लिख रही है तब अब विलम्ब करनेका क्या कारण है? मैं आज्ञा देती हूं कि तू इसी समय तैयार हो, रणमें प्रेम कर। ऐसे उत्तम अवसरको हाथसे नहीं जाने देना चाहिये। पुत्र ! विलंब मत कर अन्यथा वीरबाला प्राण त्याग कर देगी"। यह सुनते ही राजसिंहने वीरबालाको पत्रोत्तरमें लिख दिया कि, "श्रीमति वीरबाला ! आप धैर्य धारण करें, मैं निःसंदेह वसंतपंचमीको पहुंचकर तुम्हारी रक्षा समबन्धी सेवामें हाजिर होऊंगा।"

केशरबाई तथा औरंगजेब निश्चित दिन पर कुछ सैन्य लेकर रुपनगर आ पहुंचे। अमरसिंहने अपनी पुत्री वीरबालाके पास दासीके द्वारा यह संदेशा भेजा कि, "तुमको केशरबाईके पास मिलनेको जाना पड़ेगा"। यह सुनकर वीरबाला सोचने लगी, "हे प्राणनाथ ! आप अबतक नहीं आये। मेरे माता–पिता शत्रु हो रहे हैं। हे शंभु ! हे भोला ! मैं आपकी शरण हूं" उसने निश्चय करलिया कि यदि राजसिंह न आवेगा तो मैं अपना शरीरको त्याग कर दूंगी। उसकी दासियांने उसे धैर्य दिया और वस्त्राभूषण पहिनाकर तैयार कर दिया इतनेमें एक दासीकी सहायतासे राजसिंह आ पहुंचे। वीरबालाने बड़े स्नेह तथा प्रीतिसे लज्जा सहित उनका सत्कार किया और बड़ी प्रशंसा की। राणाजीने कहा, "वीरबाला मैंने क्षत्रिय धर्मसे बढ़कर इस प्रशंसा योग्य कोई कार्य नहीं किया; क्योंकि शीशोदिया वंशमें आज तक किसीने क्षत्रिय धर्मका उलंघन नहीं किया। हे प्यारि ! जब तक मेरे इस शरीरपर शिर रहे तब तक तू किसी प्रकारकी चिंता मत कर। यह शरीर किस दिन काम आवेगा? हाय ! यह औरंगजेब क्षत्रियोंके धर्मका नाश कर रहा है। यदि मैंने उसके दुष्कर्मका उचित उत्तर न दिया तो मेरे जीवनको धिक्कार है ! हाय ! क्या राजहंसनी तुरकके घरमें जा सकेगी? क्या यवन क्षत्रियकी बालासे विवाह करेगा? नहीं कदापि नहीं !

जब तक मैं राजसिंह जीवित हूं, कदापि इस अनुचित कार्यको अपने नेत्रोंसे नहीं देखूंगा"। ऐसे वचन कहकर उसे धैर्य दिया। वीरबालाने राणाको भोजन कराकर स्वयं भोजन किया। पीछे राणाने उसका हाथ ग्रहण किया और उसे अपने साथ ले चले। चलते२ जब यवन-दलके पास आये तब वीरबाला डरने लगी। तब राणाने कहा क्या हमारा वीरत्व नष्ट हो गया? जिससे हम अबलाको गुप्त रूपसे हरण करें! तू धैर्य धर; चिंता मत कर। अंतमें दोनों घोड़ों पर सवार हो मुगल सैन्यके सामनेसे चल निकले। मुगल-सैन्य देखकर चकित हो गया और अपने घोड़ेसवार इनके पीछे दौड़ाये; परन्तु वे लोग इन्हें न पा सके। दोपहरको एक वृक्षकी छायामें अति श्रमित होनेके कारण विश्राम लेनेके लिये उतरे। तब राणाने कहा, "प्यारि! तुम बहुत थक गयी हो?" यह सुनकर वीरबाला बोली, "प्राणनाथ! आप मेरे साथ हैं इस दशामें मुझे नाम मात्रका भी थकान नहीं है। आपके मुखके वारम्वार दर्शन होनेसे मेरे हर्षकी सीमा नहीं है। मेरी जैसी इच्छा थी उसी इच्छानुसार आप मेरे हृदयके हार, शिरके मुकुट मिल गये हैं। मेरे अहो भाग्य है जो आपके समान पति मुझे-दासीको प्राप्त हुए हैं। प्राणनाथ! मैं उदैपुर पहुंचकर पतिव्रत्त धर्मानुसार आपके चरणोंकी सेवा करूंगी यही मेरी आंतरिक इच्छा है।" इतनी बातचीत हो ही रही थी इतनेमें अजयलाल नामक एक भील औरंगजेबके सैन्यमेंसे केशरबाईको हरण कर ले आया और एक पर्वतकी कंदरामें बलात्कार करनेकी चेष्टा करने लगा। यह देखकर केशरबाई उच्चस्वरसे रक्षा करो! कोई दया करो!! ऐसा पुकारने लगी। यह हृदयविदारक शब्द राणाजीके कानमें आये। सुनते ही राणाजी सशस्त्र वहां जा पहुंचे। केशरबाई इन्हें देखते ही रुदन करने लगी। राणाजीने उसके धर्मकी रक्षा की और उसके फंदेसे मुक्त कर दी। केशरबाई अति लज्जित होकर उनके पैरोंपर गिर पड़ी और कहने लगी, "मैंने बिना सोचे विचारे इस उपद्रवको उत्पन्न किया है; राणाजी! मैं आपकी अपराधी हूं, आप मेरे अपराधको क्षमा करें, मैं आपके शत्रुकी स्त्री आपके सामने क्षमाकी भिक्षा मांगती हूं, आप इस समय चाहें तो मार सक्ते हैं या जीवनदान दे सक्ते हैं, मैने वीरबालाको अकारण दुःख पहुंचाया है।" राणाजीने उत्तर दिया, "केशरबाई! आप घबराइये नहीं, आपने क्षत्रिय पुरुषोंके पानीको देखा? मुझे तुमसे शत्रुता नहीं है; किन्तु तुम्हारी ही कृपासे वीरबाला मुझे प्राप्त हुई है। तुम अब मेरी शरण हो, किसी प्रकारकी चिंता मत करो।" वीरबाला बोली, "बहिन केशरबाई! तुम लज्जित मत हो आपकी इच्छानुसार राणाजी व्यवहार करेंगे। केशरबाई! मेरे पास आकर इस उत्पातका कारण कहिये।" ऐसे अति

मृदुल शब्दोंसे उसे धैर्य दिया " । फिर केशरबाई कहने लगी, " बहिन ! राणाजीने धन्य है ! मेरी जाती हुई लज्जाकी रक्षा की है । यदि राणाजी ऐसा न करते तो मुझे प्राण त्यागना पड़ता । बहिन ! तुमको मेरी बातोंसे अत्यंत दुःख हुवा होगा, अब मैं बादशाहके पास जाकर उन्हें समझाकर यहां लाती हूं । हाय मैंने तुम्हारा बड़ा अपराध किया है इसलिये मेरे मनमें बड़ा खेद है, मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं इस लज्जाकी अपेक्षा यहां मृत्यु पा जाऊं तो अति सुखी होऊं । बहिन ! तूने मुझे देवता के निकट जो वचन कहे थे उन्हें तैंने सत्यकर दिखाये । तैंने अपनी टेक रक्खी; तुझे धन्य है ।" ऐसा कहकर लज्जित हो रुदन करने लगी । उसने राणाजीका बड़ा उपकार माना । पीछे राणाजीकी आज्ञानुसार केशरबाई बादशाहके समीप रक्षित भेजी गयी । राणाजी और वीरबाला अपने सैन्य सहित निर्विघ्न उदयपुरमें आगये । वीरबालाके माता–पिता इस समाचारसे अत्यंत प्रसन्न हुए । केशरबाईने बादशाहसे सब वृत्तान्त कह सुनाया; जिससे औरंगजेब राणापर बड़ी प्रीति रखने लगा । वह अपने मुखसे बारंवार राणाजीकी प्रशंसा किया करता था । वीरबाला पतिव्रतधर्मानुसार अपने दिन सुखसे निर्गमन करने लगी । धन्य है । वीरबाला तुझे, तूने अपनी टेक को बड़ी चतुरतासे निबाहा । तेरी कीर्ति जब तक यह संसार है तब तक रहेगी ।

वीरनारी चंदा ।

यह वीरनारी पंजाबकेसरी रणजीतसिंहकी पत्नी थी । यह महा वीर, धीर, तेजस्विनी, पतिव्रता और धार्मिक थी । जिस दिनसे महाराज रणजीतसिंहके साथ विवाह होकर सहधर्मिणी रूपसे अंतःपुरमें आयी थी तब ही से वह कोहनूरके समान शोभाको प्राप्त होकर लाहोरके दरबारमें राज्यनीति कार्यमें कुशलता पूर्वक पतिको उचित सलाह और सहायता देने लगी । इतना ही नहीं, किन्तु वह पातिव्रत्य धर्मानुसार चलकर पतिको अनेक प्रकारसे सुख देती थी । महाराज रणजीतसिंहका भी उसपर अत्यंत प्रेम था । ये युगल–दम्पती परम सुखी थे, इन दोनोंको परमार्थ और स्वतंत्रता अति प्रिय थी । जिससे दान, धर्ममें अपना अधिक द्रव्य खर्च करते थे । रणजीतसिंहकी मृत्युके पश्चात् दिलीपसिंह नामक युवराज बालक था । चंदा ही सब राज–कार्य स्वतंत्रतासे चलाती थी । वह अंग्रेजोंको वणिक प्रकृति कहकर उपहास करती थी; किंतु अंग्रेज उस तेजस्वी

हृदयके कठिन आवरणको भेदनेमें असमर्थ थे। चंदाने अंग्रेजोंको अपने देशसे निकालनेका प्रयत्न किया जिससे अंग्रेजोके अंतःकरणमें धक्का लगा। पंजाव देशमें चंदाकी कीर्ति फैल रही थी, उसे सम्पूर्ण पंजाव मस्तक नमाता था और दरवारी लोग भी उससे सहानुभूति रखते थे। प्रजा उसे माताके समान अपनी रक्षक समझती थी। जवसे पंजावकी गदीपर दिलीपसिंह बैठा तबसे उसका तेज अधिक फैलने लगा। इतने दिन तक पंजाव ही में उसकी प्रसिद्धि थी; किन्तु अब खानके भीतरसे मणिके समान निकलकर उसकी चहुं ओर कीर्तिकी प्रसिद्धि होने लगी। ऐसे ही समय में पंजाव देशमें हलचल उठी। दिलीपसिंहकी अवस्था छोटी होनेके कारण वह राज्य-कार्यसे अनभिज्ञ था। चंदा नित्य दरवारमें बैठकर राज्यपर विशेष रूपसे लक्ष रखती थी। वह अपना राज्य निष्कंटक और निरुपद्रव करनेके लिये चेष्टा करती थी; उसने अपने राज्यकी हलचलको अपनी बुद्धिके अनुसार शांत कर दी और सब लोगोंमें परस्पर प्रेम बढ़ने लगा। यह चंदाके ही तेजका प्रताप था।

चंदा जब पंजावकी गदीपर थी उन दिनोंमें अंग्रेजोंने खालसा सैन्यको अपने विरुद्ध देखकर अपने राज्यकी रक्षाके लिये सीमापर अपना सैन्य भेजा। ब्रिटिश गवर्नमेन्टके इस उद्योगसे खालसा सैन्य तथा चंदाके चित्तमें शंकाकी तरंगे उठने लगी। वे सोचने लगे कि अंग्रेजोंने जिस कुशलताका अनुसरण करके अन्य स्वतंत्र राज्य अपने अधिकारमें कर लिये हैं व जिस कुशलतासे मुसलमान, मरहठा, राजपूतों आदिको अपने आधीन कर लोहेकी सांकलसे वांध दिये हैं, उसी नीतिसे अव हमारे पंजाव देशको लेकर हम लोगोंको अपने आधीन करनेके लिये यह सेना आई है। इस आशंकासे चंदाने युद्धकी तैयारी प्रारंभ की और खालसा सेना मतवाले हाथीके समान निर्भय होकर ब्रिटिश सैन्यके सामने जा पहुंची, उस सेनामें चंदाने उत्साहसे बड़ा श्रम लिया था; किन्तु लालसिंह और तेजसिंह नामक सरदारोंके विश्वासघातसे उसका पराजय हुआ तो भी चंदाका हृदय ब्रिटिश सरकारके तेजके सामने पराभूत नहीं हुआ। वह अपने राज्यमें अन्य धर्मावलम्बियोंको देखकर और उनके राज्य-शासनसे अति अप्रसन्न हुई व उसके कोमल हृदयको अति खेद हुआ। उसका हृदय अपमान विषकी ज्वालासे जलने लगा। रेसीडेन्ट हेनरीलारेन्स चंदाकी प्रकृति जानता था उसने सोचा कि यह वीर नारी यदि यहां रहेगी तो अपने अपमानको सहन नहीं कर सकेगी। इसी विश्वासके कारण रेसीडेन्टने उसे लाहोरमें से सेखपूरमें और वहांसे रेसीडेन्ट फ्रेनरिकारकी सलाहसे बनारसमें भेज दिया; किन्तु चंदाको इससे कुछ भी विकार उत्पन्न नहीं हुआ; इस वीरनारीने अटल प्रभावसे अपने देशका त्याग

किया था। यह जिस समय लाहोरका सिंहासनपर बैठकर चहुं ओर अपनी प्रभुत्व शक्ति को फैला रही थी और जैसी उसकी स्थिति थी वैसी ही स्थिति पंजाब छोड़नेपर भी थी।

पंजाबकी प्रजा चंदाके प्रति अपूर्वश्रद्धा, भक्ति, और प्रीति रखती थी। वह अपनी प्रीतिपात्रकी इस शोचनीय दशाको शांतभावसे नहीं देख सक्ती थी। पंजाबके निवासी उसे देवी समान मानते और भक्ति तथा श्रद्धा रखते थे उसका देश–निकाल देखकर प्रजाका हृदय उग्र हलाहलसे जल रहा था। प्रजा स्वयं हृदयके दुःखके कारण क्रोधित होकर दूसरा भयानक युद्ध करने लगी। इस युद्धका नाम **चिनियावाला** युद्ध पड़ा है। इस युद्धमें सिक्खोंने अपनी वीरताको पूर्ण रीतिसे दिखाकर गवर्नमेन्टको भयभीत कर दिया था। इस **चिनियावाले** युद्धका नाम इतिहासमें सुवर्णके अक्षरोंसे अंकित है। धन्य! चंदा तेजस्वी नारीके अद्वितीय दृष्टांतकी और अटलता की मूर्ति थी। यद्यपि वह कोमलांगी थी, उसका हृदय दयालु होनेपर भी भीम गुणान्वित तेजस्वी था। इस वीरनारीके अतिरिक्त उन्नीसवीं सदीमें किसी भी नारीने अंग्रेजोंके समान प्रबल जातिके सन्मुख ऐसी तेजस्विता नहीं दिखायी।

विदेशी सतीयां।

सारामार्टिन।

सारामार्टिनका जन्म सन १७८१ में इग्लेंडके कईसार नामक ग्राममें हुआ था। यह दुःखियोंके दुःख और दुराचारीके दुर्गुण दूर करनेका प्रयत्न करती थी। सारामार्टिनका पिता साधारण व्यापारसे अपनी आजीवका चलाता था। वह अपनी पुत्री सारामार्टिनको बाल्यावस्थामें ही छोड़कर परलोक सिधारा। उसकी माताने उसे पालन पोषणकर बडी की थी। उसे बाल्यावस्थासे ही कुदरतकी मनोहर रचनाओंको देखने पर अत्यंत प्रेम था; वह वनमें वृक्षके नीचे बैठकर पक्षियोंके मधुर गानको श्रवण करके अत्यंत प्रसन्न होती थी। उसकी झोपड़ीके पास चित्तमें ग्लानि उत्पन्न करनेके योग्य कोई भी खराब पदार्थ नहीं थे; किन्तु उसके पास पेट भरनेका कोई साधन न होनेके कारण उसे पाठशाला छोड़कर दर्जीके कामको सीखना पड़ा और इस कार्यसे जो द्रव्य उपार्जन

होता उससे अपने पेटकी अग्निको शांत करती थी; किन्तु उसकी वृत्ति कुदरतके अपूर्व दृष्यकी ओरसे नहीं हटी। यारमाउथ नामक नगरमें अपराधी लोग नरकके समान दुःख भोगते थे और उनपर अत्यंत अत्याचार होता था। ईश्वरने मनुष्यको इस संसारमें जिस हेतुसे उत्पन्न किया है उसको वे लोग नहीं जानते थे और न उसके जाननेकी वे चेष्टा ही करते थे। सन् १८१९में एक अपराधी स्त्रीको कैद-खानेकी शिक्षा हुई थी। वहां उस हतभागिनीको पुत्र उत्पन्न हुवा, किन्तु उस बाल-कपर उस स्त्रीका निर्मल प्रेम नहीं था। वह दुष्टा उसे स्तनपान नहीं कराकर मारती थी। उस दुष्टाके ईस कृत्यको देखकर दयालु सारामार्टिनके हृदयमें बड़ी दया उत्पन्न हुई। उसकी इस दुर्बुद्धिको सुधारनेके लिये उसने धर्मोपदेश ही अच्छा धर्म सोचा। वह कैदखानेके अधिकारीकी आज्ञा लेकर उस मुर्खा स्त्रीके पास गई। वह अबला इसे देखकर खड़ी होगई और रुदन करने लगी; किन्तु मुखसे एक शब्द भी नहीं बोली। सारामार्टिनने कहा, हाय! तूने कैसा अपराध किया है? उसके लिये ईश्वरसे क्षमा मांगनेकी प्रार्थना करनी चाहिये, इत्यादि वचनोंसे उसे समझाया।

वह स्त्री अपने पापकर्मको सोचकर अधीर हो जोरसे रोने लगी और इस परोपकारी साराको धन्यवाद देने लगी। इसके उपदेशसे उस स्त्रीने अपने बालकपर दया करने और स्तन-पान कराने लगी। इस कार्यमें साराको सफलता प्राप्त होते ही वह दूसरे काम पर तत्पर हुई। वह नित्य अपने बनाये वस्त्र बेचकर अपराधियोंके पास धर्म-ग्रंथ पढने लगी। वे अपराधी बिलकुल अज्ञानी थे; किन्तु साराके उपदेशसे नियमपूर्वक धर्म-ग्रंथ सुनने और सीखने लगे। वह प्रत्येक सप्ताहके ६ दिन अपने पेटके व्यवसायमें और सातवा दिन धर्म ग्रंथ पढानेमें व उपदेशमें व्यतीत करती थी। उसने एक स्थानपर लिखा है कि, "सप्ताहमें १ दिन सिलाईके कार्यको छोड़-कर अपराधियोंकी चाकरी करना यह मुझे अत्यंत प्रिय है और इस रीतिसे यद्यपि मुझे हानि है किन्तु इस उपदेशके सामने उस द्रव्यकी कुछ भी परवाह नहीं। मैं ईश्वरकी आज्ञाओंका प्रचार करनेमें द्रव्यसे बढकर संतोष मानती हूं।" सन् १८२६ में उसकी वृद्ध माताका देहांत हो गया। उसे अपनी जन्मभूमिमें रहनेसे कई २ प्रका-रकी असुविधायें थी, जीससे उसने यारमाउथमें रहना स्वीकार किया। यारमाउथमें एक स्त्रीने साराके इस परोपकार्यको देखकर सप्ताहके एक दिन अपने हाथसे सिलाई करके द्रव्य देनेकी सहायता अंगीकार की। धीरे २ अन्य बहुतसे धार्मिक मनुष्य उसे प्रति ३ रे मासमें सवा रुप्या भेट करने लगे। सारा उन रुप्योंसे धर्म-ग्रंथ लेती थी और उस द्रव्यमेंसे उसे खानेके लिये एक पैसा भी नहीं बचता था। वह धर्म-ग्रंथ लेकर उन अपराधियोंको शिक्षा प्राप्त करनेके लिये दे देती थीं।

धीरे २ उसने अपना अधिकांश समय कैदखानेमें व्यतीत करनेका प्रारंभ कर दिया। वह शिलाईका केवल इतनाही कार्य करती थी कि जिससे घरका भाड़ा देने योग्य द्रव्य प्राप्त होता था। उसके पास खानेके लिये कुछ भी नहीं रहनेसे वह अत्यंत दुःखित होने लगी। उसने एक स्थानपर लिखा है कि, "जब मैं शिलाईका कार्य करती थी तब मुझे बहुत कुछ सोचना पड़ता था और जब मेरा यह व्यापार बंद हुआ तब मेरे विचार भी बंद हुए। मैंने धर्म-ग्रंथोंमें पढा है कि," ईश्वर निरुपायकी रक्षा करता है। ईश्वर हमारा मालिक है, यह अपने आज्ञाकारी सेवकोंको नहीं भूलता" तब मैंने सोचा, ईश्वर मेरा पिता है वह मेरी परीक्षाके लिये ही यह दुःख दे रहा है"। धन्य है! सारामार्टिन तेरे पवित्र हृदयको।

सारामार्टिनके उपदेशसे अपराधी लोक सुशील, विनयी और कोमलहृदयवाले बन गये। उन्होंने निर्वाह साधनमें अत्यंत उपयोगी हो ऐसे साराने उन्हें कई प्रकारके उत्तम व्यवसाय भी सिखाये थे। वह प्रत्येक रविवारको उनसे ईश्वर-प्रार्थना कराती थी। फिर धीरे २ वे स्वयं ईश्वरमें श्रद्धा और प्रेम रखने लगे। इस प्रकार वे अल्पकालमें ही ईश्वरके प्रेमी और नाना प्रकारकी कारीगीरियां सीख गये। साराके इस परोपकारी कार्यसे नगर निवासी उसे आदरकी दृष्टिसे देखने लगे। सारा सरल स्वभाव और अपने मधुर वचनोंसे सबको नीति सिखाती थी। वह अपने नगर निवासियोंके दुःखमें दुःखी और सुखमें सुखी रहती थी; दुर्बलको बलिष्ट बननेकी हिम्मत देती थी, नीचवृत्तिवालोंको सद्‌गुण-युक्त बनाती थी और दुःखीको सुखी बननेका सीधा मार्ग बताती थी। वह मजूरोंकी विद्याशालामें जाती थी और उन्हें परिश्रमका सुगम मार्ग बताती थी, कन्याशालामें कन्याओंको नीतिकी कविता सिखलाती थी; उसके घरपर दिनमें ४०—५० युवतियां सद्‌गुण सीखनेको आती थीं। और सारा भी उन्हें बातोंमें ही अच्छे गुण सिखा देती थी। संध्याकालमें रोगियोंके गृह जाती और उन्हें रोग निवारणार्थ अनेक सरल उपाय बताकर उनकी सेवा करती थी। सारा जिस गृहमें जाती उस घरमें आनंदकी सीमा नहीं रहती थी सब कोई उसका सत्कार करते और श्रद्धापूर्वक उसकी आज्ञाका पालन करते थे। वह सर्व साधारणमें उन अपराधियोंके हाथकी बनी हुई वस्तुयें दिखाती थी और वैसे शिल्प-कार्यके सीखनेमें उत्साही बनाती थी। लोग जिस वस्तुको निकम्मी जानते थे उसे सारा मांग लेती थी और उस वस्तुको अच्छे उपयोगमें लानेका मार्ग दिखलाती थी। घरमें प्रेम-प्रीतिकी वृद्धि हो इस लिये घरमें अनेक प्रकारके उपदेश देती थी। उसकी आत्मा सदैव ईश्वरके प्रेममें मग्न रहती थी। दुखियोंको संकटमें सहायता देकर पवित्रता और संतोषसागरमें मग्न रहती थी। निर्जन स्थानमें बैठकर दयालु पर-

मात्माकी स्तुति किया करती थी। सन् १८४७ में निर्जन स्थानमें ही उसने अपने जीवनको पूर्ण कर सुख शांतिसे सदैवके लिये इस संसारको छोड़कर अपनी कीर्ति अमर कर गई है। वह अपने कार्यमें कभी गर्व नहीं करती थी। उसका मुख सदैव नम्रता और शीतलतासे सुशोभित होता था। वह किसी भी कार्यको अपूर्ण नहीं छोड़ती थी। कभी किसीको पक्षपात नहीं करती थी। इन्हीं सद्गुणोंसे यह स्त्री सर्व संसारमें प्रसिद्ध हो गई है।

मरियम।

यह साध्वी इसुख्रीस्तकी माता थी। उसका विवाह युसुफ नामक व्यक्तिके साथ हुआ था। उसको एक दैवी दूतने आकर कहा "तू ईश्वरकी कृपापात्र है, तू सदैव सुखी रहेगी, तुझे धन्य है"। मरियम उस दूतके इन वचनोंको सुनकर घबरा गई और विचार करने लगी कि क्या यह सत्य होगा? फिर दूतने कहा "ओ मरियम! तू भयभीत मत हो, तुझपर ईश्वरकी असीम कृपा है, तेरे पेटमें जो गर्भ है वह पवित्र आत्मा है, तेरा जो बालक होगा तू उसका नाम ईसु रखना"। मरियमने कहा "यह कैसे हो सकेगा?" दूतने उत्तर दिया कि परमात्मा अपनी शक्तिका प्रताप तेरे द्वारा बतानेवाले हैं, इसी लिये तेरे गर्भका बालक जो जन्मेगा वह उसका पुत्र कहा जायगा। मरियमने उत्तर दिया कि मैं प्रभुकी दासी हूं। अच्छी बात है जो आपकी बात सत्य हो। यह सुनकर दूत प्रसन्न होकर चला गया। मरियमका पति युसुफ न्यायी था उसने अपनी स्त्रीको दूर रखनेका विचार किया। दूतने उसे दर्शन देकर कहा, "ओ युसुफ! अपनी स्त्री मरियमका त्याग करनेसे व उसको दुःख देनेसे तेरा कल्यान नहीं होगा; क्योंकि उसके पेटमें जो गर्भ है वह पवित्र आत्माकी कृपाका फल है। जब उसका जन्म हो तब तू उसका नाम इसु रखना।" पीछे यूसुफ निद्रा भंग होनेपर उस दूतकी आज्ञानुसार अपनी स्त्री मरियमका अंगीकार करके पालन करने लगा। मरियम यूदा नामक शहरमें जांखरियोंके घर गई। उसकी स्त्री एलीसाबने उसकी क्षेम कुशल पूछकर मालूम किया कि उसे गर्भ है और पवित्र आत्मा जन्म लेगा। यह सुनकर उसने कहा कि, "मरियम! तुझे धन्य है, तू मेरे पास आ! मरियम उसके पास गई तो उसको एलीसाबान प्रेमसे मिली। मरियमने कहा, "मेरा चित्त प्रभुके चरणोंमें लगा है, व उसीकी कृपासे मेरी आत्माको अत्यंत हर्ष होता है। उस दयालु परमात्माने अपनी दासी पर दया की है, अब मैं अपने कुलमें

धन्यवादकी पात्र होउंगी, परमात्मा उसपर अत्यंत दयालु रहता है जो उससे डरते हैं और उसकी आज्ञाका पालन करते हैं। वह अभिमानियोंका शत्रु है। वह अपनी आज्ञाके विरुद्ध चलनेवाले श्रीमंतोंका द्रव्य कंगालोंको देकर उसे कंगाल बना देता है।"

मरियम और एलीसाबान दोनों तीन मास तक साथ रही थी पीछे वे थेलहेम आगये, वहां उसको २५ दिसम्बरको ईसुका जन्म हुआ था। ईसुका जन्म सुनकर यहूदियोंके राजा हीरोडने उसको मारडालनेका प्रयत्न किया; उसकी इस दुष्टताको समझकर मरियम अपने पति और पुत्र सहित ईजिप्तमें चली गई; जब हीरोडका देहान्त हो गया, तब वे अपने देशमें लौट आये।

ईसु १२ बर्षका था, तब एक समय पर्वतके ऊपर जेरूसालममें वे सब आये थे। जितने दिन वहां रहनेका विचार था उतने दिन वहां रहकर पीछे घर आनेके लिये वहांसे निकले। मरियमने समझा था कि ईसु हमारे पीछे पीछे अन्य साथियोंके सहित चला आ रहा है। वह एक मंजल आकर अपने आत्मीय व परिचितोंके घर ठहरी; किन्तु ईसु वहां नहीं आया। जिससे मरियम व उसका पति यूसुफ लौटकर जेरूसालममें पहुंचे। वहां जाकर देखा तो ईसु बहुतसे मनुष्योंके मध्यमें उनको उपदेश दे रहा है। मरियमने कहा, "पुत्र ईसु! तू हमारे साथ क्यों नहीं आया? हम लोगोंको तेरे ढूंढनेमें अति कष्ट सहन करना पड़ा"। ईसुने उत्तर दिया "आप लोगोंने मेरी शोध क्यों किया? क्या आप नहीं जानते कि मुझे मेरा काम करना है?"। इस उत्तरको उसके माता, पिता नहीं समझे। इस कारण उसे अपने साथ ले गये। ईसु उनकी आज्ञामें रहने लगा। मरियमका स्त्री पुरुष प्रति ऐसा उपदेश है कि, "स्त्रियो! जैसे तुम प्रभुके अधीन रहना जानती हो, वैसे ही पतिके अधीन रहना चाहिये; क्योंकि पति स्त्रीका शिर है। पुरुषो! तुम अपनी स्त्रीपर प्रेम करो। उनको बुरी व हीन मत समझो। जैसे तुम अपने शरीरकी रक्षा करते हो वैसेही अपनी अर्धांगनाकी भी रक्षा करो! जो अपनी स्त्री पर प्रेम करते हैं वह स्वयं अपने ऊपर प्रेम करनेके बराबर है। स्त्रियोंको अपने पतिकी मर्यादा रखनी चाहिये। बालको! तुम अपने माता-पिताको परमात्माके समान जानो, तुम माता-पिताको आदरकी दृष्टिसे देखो। इन नियमोंके पालन करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा और तुम्हारी दीर्घायु होगी। मातापिता! तुम अपने बालकोंको दुःख नहीं देना, उनको ईश्वरमें प्रेम प्राप्त करनेकी शीक्षा दो।" धन्य है! आहा! कैसा उपदेश है! मरियम अपने पवित्र आचरणसे इस संसारमें देवीके तुल्य पूजनीय है और इन्हीं सद्गुणोंसे वह संसारमें प्रसिद्ध हो गई है।

आमेना।

यह पतिव्रता स्त्री मदिनाके निवासी अब्दुल्लाकी पत्नी थी। वह स्वरूपवती, विवेकी, नम्र और सुशील थी। उसको अपने पति पर बड़ा स्नेह था। अब्दुल्लाकी आयु जब २५ वर्षकी थी, तब वह गाजा शहरसें व्यापार करके लौटते समय मार्गमें बीमार होनेके कारण मृत्युको प्राप्त हो गया। आमेना पतिके स्वर्गवाससे दुःखसागरमें डूब गई। पतिके विना यह संसार उसे सूना देख पड़ा, उसको कभी२ मूर्छा आजाती व कभी२ चित्त स्थिर होनेपर व्याकुल होकर रोने लगती थी। शोकरूपी अग्निने उसकी सुंदरताको जला दिया और शोकके भयंकर अंधकारमें उसके समस्त सुख खो गये। निदान उसका मन संसारसे उठ गया और इस नाशवान शरीरको छोड़नेके लिये वह उद्यत हो गई; किन्तु इतनेमें उसका गर्भ पूर्णावस्थाका हो जानेसे उसके उदरसे एक स्वरूपवान पुत्र उत्पन्न हुवा, जिससे दुःखसागरमें डूबते हुए उसको कुछ थाह मिली। वह अपने पुत्रको लेकर काबतुल्ला गई। वहां पर उसने अपने पुत्रका नाम मुहम्मद रक्खा। आमेनाका शरीर शोकसे इतना दुर्बल हो गया था कि उसे दूध पिलाना भी कठिन था। उसको एक स्त्री स्तन-पान करनेके लिये रखनेकी अत्यन्त आवश्यकता हुई; किन्तु पतिकी मृत्युके पश्चात् उसकी शोकावस्थामें सर्वस्व नाश हो गया था जिसके कारण उसे अपना उदरपोषण करना भी कठिन हो गया था। निदान उसने मुहम्मदको हलीमा नामक स्त्रीको रक्षार्थ दे दिया। हलीमा एक पर्वतके नीचे मरुस्थलमें रहती थी, वह मुहम्मदको वहीं ले गई। स्वच्छ वायु और दूध पीनेसे हजरत मुहम्मदका शरीर हृष्ट पुष्ट और लावण्यवाला हो गया। उसने दो वर्षके पश्चात् स्तन-पान छोड़ दिया। हलीमा मक्के गई और मुहम्मदको आमेनाको सुपर्द कर दिया। किन्तु आमेनाने उसे विनयपूर्वक और भी थोड़े दिन पालनेकी प्रार्थना की। अन्तमें मुहम्मदका पालन उसने २ वर्ष और किया। जब मुहम्मद ५ वर्षका हो गया, तब हलीमाने आमेनाको सौंप दिया। आमेना उसका मुख देखकर प्रसन्न होती थी।

कुछ दिनके पश्चात् आमेना पुत्रको लेकर मदीनामें आ गई और अपने स्वामीके घरमें रहने लगी। वह अपने पतिकी कबरपर जाती थी और आंसुओंसे उस कबरको भिजाती थी। मुहम्मद अपनी माताका रुदन सुनकर अपने कोमल हाथसे उसके गलेको पकड़कर रोने लगता था और पूछता था, " मां! तू प्रतिदिन इस प्रकार क्यों विलाप करती है?" माताने उसे कई दिन तक उत्तर नहीं दिया; किन्तु एक दिन उसके अति आग्रह करने पर उसने कहा, "तेरे पिताके लिये!" यह कहकर

वह अत्यंत व्याकुल हो गई और अपने दोनों हाथ ऊंचा करके आकाशकी ओर संकेत किया। मुहम्मदने समझ लिया कि पिताका देवलोक हो गया है। इस प्रकार एक मासके पश्चात् आमेना मुहम्मदको लेकर मदीनासे मक्काको चली; किन्तु मार्गमें ही मुहम्मदको अनाथ छोड़कर इस संसारको सदैवके लिये त्याग गई। मुहम्मद अपनी माताकी कबर बनवाकर उसके पास सदैव शोकसे रहने लगे। ६ वर्षके बालकको माता-पिताके विना यह संसार सूना दीखने लगा। इस प्रकार योग्य अवस्था होनेपर उसने ईश्वरपर प्रेम करके तथा उसकी कृपासे "पैगम्बर" उपाधिको प्राप्त होकर 'इस्लामी' धर्मका प्रादुर्भाव किया। यह सब आमेना जैसी दयालु माताकाही प्रताप था। धन्य है। आमेना तुझे और तेरे पति प्रेमको!!

पोरशीया।

यह सुप्रसिद्ध पतिव्रता स्त्री **रोमनगरमें** रहती थी, उसके पतिका नांव **मार्कसब्रुटस** था। वह स्वतंत्र एवं देशहितैषी पुरुष था। पोरशिया अत्यन्त कुलवती, स्वरूपवती, गुणवती, विदुषी व साहसी थी। इस पतिपत्नीमें अत्यन्त प्रेम व संप था। ब्रुटस कोईभी बात अपनी स्त्रीसे गुप्त नहीं रखता था। पोराशिया अपने पतिके कार्यमें सहायता व सलाह देती थी। **रोममें** प्रथम प्रजासत्ताक राज्य था उसके बदले राजासत्ताक राज्य स्थापन करनेका विचार **जुलियर सिझर** नांवके सरदारने किया। यह विचार स्वतंत्रताके पक्षपाती सरदारोंको स्वीकार नहीं था, जिससे सबने मिलकर उस सरदारको मार डालनेका विचार किया। इस कार्यमें देशाभिमानी **ब्रुटस भी** सामील था। कहा जाता है कि सिझरने ब्रुटसके ऊपर अनेक उपकार किये थे फिर भी वह उस भयंकर कार्यमें सामील हुआ। इसका यही कारण था कि वह अपने देशकी प्राचीन नीति व स्वतंत्रताको हृदयसे चाहता था। सिझरके समान स्वार्थी व लोभी मनुष्यको मारकरके भी अपने देशवासियोंको स्वतंत्र रहने देनेकी बातको पसंद करता था। इस कार्यमें वह अपने मित्रोंसे विचार कर रहा था; उसकी स्त्रीको मालूम हुआ कि वह अपने विचारमें बहुत ही चिन्तातुर रहता है। किसी २ समय वह निद्रामेंसे जागृत हो जाता था और दूसरे कार्य करनेके समय भी वही ध्यान किया करता था। पोरशियाने विचार किया कि मेरा पति मुझसे कोई बात गुप्त नहीं रखता है वह इस समय जो विचार व चिन्ता कर रहा है उस सम्बन्धमें मुझसे क्यों कोई बात चित नहीं करता? प्रथम पतिके विचारको जाननेकी उसकी इच्छा हुयी,

परन्तु पति ऐसे विचारका था कि स्त्रीके पास राजनैतिक गुप्त बात नहीं करनी चाहिये जिससे पतिको पूछनेका विचार बंद कर अपनेमें कोई बात गुप्त रखने की योग्यता है कि नहीं इस बातकी परीक्षा करनेके लिये उसने कोई जानने न पावे उस प्रकार अपनी जंघामें छुरीसे एक घाव किया, जिससे वह बीमार हो गयी। बीमारी होनेका कारण उसके पति व अन्य लोगोंने पूछा किन्तु इसने कोई खुलासा नहीं किया। एक दिन ब्रुटस बीमारीके कारणको जाननेके लिये अत्यंत आग्रह व चिन्ता करने लगा, तब पोरशियाने उसके विचार व चिन्ताकी बात जाननेकी इच्छा की। ब्रुटसने कहा कि, "कुछ ऐसी बातें है जो स्त्रीको नहीं कहनी चाहिये"। तब पोरशियाने कहा कि, "मैं भी अपनी बीमारीका कारण आपसे नहीं कह सकती"। यह सुनकर ब्रुटस अत्यन्त आतुर हुआ वह अपनी स्त्रीकी बीमारीका कारण जाननेको अत्यंत अधीर हो गया। अब पोरशियाने विचार किया कि वे कुछ राहपर आये हैं ऐसा समझकर उसने अपने पतिसे कहा कि, "प्राणेश्वर! आपने मुझको अपने समस्त सुख दुःखोंकी हिस्सेदारिन बनानेके लिये विवाह किया है। यदि आप मुझसे कोई बात गुप्त रक्खेंगे तो मैं आपको सलाह व सहायता कैसे कर सकुंगी? और आपकी बात गुप्त रख सकुंगी इस बातका आपको विश्वास कैसे करा सकती हूं! यद्यपि स्त्री जातिका विश्वास करना उचित नहीं हैं किन्तु आप जानते हैं कि उत्तम शिक्षा व उत्तम समागमसे स्त्रीजातिका सामान्य दोष नष्ट हो जाता है। मैं **केटोके** समान योग्य पिताकी पुत्री हूं और सुशिक्षित हूं। आप इस बातको जानकर आश्चर्यान्वित होंगे कि मैंने आपके विचारको गुप्त रखनेकी अपनी योग्यताकी परीक्षा करनेके लिये अपनी जंघामें जखम किया है। मैरी इस उत्कंठा व मैरे धैर्यको देखकर भी आप अपनी बातको गुप्त रक्खेंगे?" ब्रुटसने अपना समस्त विचार अपनी स्त्रीसे कहा। पोरशिया उस भयंकर विचारको जानकर दुःखित हुयी; किन्तु उस बातको गुप्त रखनेका वचन दे चूकी थी, जिससे शांत रही।

सिझरको मारनेके लिये ब्रुटस तलवार लेकर बाहर जाने लगा, उस समय पतिव्रता पोरशिया अधीरसी बन गयी थी, फिर भी उसने अपने हृदयका भाव दूसरेको प्रकट नहीं किया। सिझरको ब्रुटसने मार डाला, सिझरके मित्रोंने खूनीकी शोध की, ब्रुटस उन लोगोंके सामने लड़ा, किन्तु अंतमें पराजित हो दुश्मनोंका कैदी हुआ। ब्रुटसने शत्रुओंके द्वारा मरनेके बदले आत्महत्या करना उत्तम समझकर प्राण त्यागा। पतिव्रता पोरशिया यह समाचार जानकर मरनेको तैयार हुयी। अन्य कोई उपाय हाथ न आनेसे अग्निके अंगारे मुखमें डालकर उसने आत्महत्या कर अपने पतिके साथ परलोक गमन किया। ऐसी सतियोंको सहस्र धन्यवाद है!

सतिगुणप्रशंसा ।

दोहा.

" कौशल्या माता भई, जगमें परम अनूप ।
तासु पुत्र श्रीरामजू, भये आर्य कुल भूप ॥ १ ॥
सीता सुमति सुशीलता, सब जगमें विख्यात ।
जिहिं चरित्र उपमा लिखत, कविजन मन सकुचात ॥२॥
देवहुति विद्याधरी अनसूया गुणगेह ।
पतिव्रत धर्म शिखावती, विद्या-सहित सनेह ॥३॥
नाम गार्गी जग विदित, अति विरक्त संसार ।
ब्रह्मचारिणी परम दृढ, विद्या-सिंधु अपार ॥४॥
सभा बीच गर्जत रहीं, वेद शास्त्र मुख द्वार ।
नामी पण्डित जय किये, हो सभी मन मार ॥५॥
ज्ञानवती मंदालसा, परम शील सन्तोष ।
विद्या बुद्धि सुसभ्यता धर्म धैर्य धन कोष ॥६॥
गान्धारी शुभ कुलवती, पतिव्रत धर्म्मागार ।
सुखमें सुख दुःखमें दुःखी, रही स्वपति अनुसार ॥७॥
श्री पटरानी रुक्मिणी, पतिव्रत धर्म-निकेत ।
तन मन धन अर्पण कियो, पति-प्रेमके हेत ॥८॥
पार्वती शुभ गुणवती, पति श्रेय आधार ।
जिहिं गुण सुन शिक्षा लहे, सब कुलवन्ती नार ॥९॥
विद्या निधि लीलावती, भारत जीवन प्राण ।
तासु रचित पुस्तक सुभग, मानत सभी प्रमाण ॥१०॥
दमयन्तिके चरित सुन, बहत नयनसे नीर ।
जिहि न होय रोमाञ्च तन, को जगमें अस धीर ॥११॥
पतिव्रता कोटिन भयीं, गिनै सबन अस कौन ।
जिहि चरित सुन होति है, सभी कवीश्वर मौन ॥१२॥
पहिले बाला जो भयीं, सब विद्याकी खानि ।
हाय आज अक्षर पढ़त, अबला करत गलानि ॥१३॥
एक दिवस भारत हतो, सुख सम्पति भरपूर ।
भयी नारी विद्या रहित कीनो चकना चूर " ॥१४॥

द्वितीय-दर्शन.

स्त्रीपुरुषके धर्म ।

स्त्रीका पतिके प्रति धर्म ।

इस सृष्टिमें स्त्री व पुरुष दोनोंसे गृह निर्माण होता है व चलता है; किन्तु दोनोंकी स्थिति, शरीरकी रचना, स्वाभाविक मनका बल, शक्ति व नीति प्रभृतिके ऊपर विचार करनेपर पुरुष बुद्धि, नीति, इत्यादिमें श्रेष्ठ होनेके कारण उसके ऊपर घरकी श्रेष्टताका व स्त्रीके भरण, पोषण व रक्षणका सम्पूर्ण आधार रहा हुआ है। पुरुष भरण पोषण करनेके कारण **भर्त्ता**, पालन करनेके कारण **पति**, कामना पूर्ण करनेके कारण **कान्त**, प्रीति दान करनेसे **प्रिय**, शरीरका मालिक होनेसे **स्वामी**, प्राणका आधार होनेसे **प्राणनाथ** व ऐश्वर्य देनेके कारण **ईश** कहलाता है। ऐसा जो ईश–पति कि, जो इस संसारमें अन्न, वस्त्राभूषण प्रभृति पदार्थोंको पूर्ण करके रक्षा करनेका, बुद्धिसे अभिमान रखता है और जिसको माता पिताओंने देव, अग्नि और सहस्रों मनुष्योंके सामने अर्पण की है उस पुरुषको प्रिय जानकर उसकी सेवा करना यह स्त्रीका परम धर्म है। स्त्रीके लिये सच्चा धर्मका स्वरूप पति ही होनेसे उसके ऊपर निर्मल प्रेम रखना, उसके विचारोंको जानकर उसकी आज्ञाका पालन करना यही सेवा है। इस प्रकार जो स्त्री समस्त इन्द्रियोंको वश रखकर तन, मन व कर्मसे सेवा करनेके सिवाय और कुछ भी नहीं चाहती वही पतिव्रता–साध्वी–सती कहलाती है। इस सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति व लयके करनेवाले परमात्माको इस लोग सन्मान देकर पूजते हैं, उसकी सेवा, भक्ति व आराधना करते हैं; वैसे ही इस गृह–संसारमें स्त्रीका भरण, पोषण व रक्षण प्रभृतिका कर्ता पति होनेसे उस प्रभुसे दूसरे दरजेपर मान्य, सेव्य, एवं आराधना तैथा भक्ति करने योग्य है; भगवान् मनुजी आज्ञा करते हैं कि,

"**उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत् पतिः**" साध्वी स्त्रीने पतिकी देवके समान परिचर्या करनी चाहिये,' इस प्रकारके शास्त्रोंके वचनोंके अनुसार स्त्रीके

लिये पति यही संसारमें सच्चा साथी है, उसकी सेवा उसके लिये कामदुधा है, वही उसके लिये चिन्तामणि है, वही उसके लिये प्रिय एवं हितकारी है, वही उसका कल्याण दाता है; ऐसा जो अपना पति है उसकी सेवा ही स्त्रीको उत्तम फल देने वाली है, विना पतिकी आज्ञा व्रत, दान, तीर्थ प्रभृति शुभ कार्यभी स्त्रीने नहीं करने चाहिये। साध्वी स्त्रीका पति जो शुभ कर्म या धर्म करता है उसके फलमेंसे उसकी सेवा के प्रभावसे आधा हिस्सा स्त्रिको मिलता है। महाभारतमें कहा है कि,

पतिव्रता पतिप्राणा सा नारी धर्मभागिनी।
शुश्रूषां परिचर्य्यां च करोत्यविमनाः सदा॥

जो स्त्री पतिव्रता और पतिप्राणा होकर सर्वदा प्रसन्नतासे स्वामीकी सेवा शुश्रूषा करती है वह धर्मभागिनी होती है। माता अनसूयाजीने कहा है कि स्त्री स्वामीकी सेवासे ही इच्छित लोकको प्राप्त होती है। जिसका चित्त स्वामीको प्रसन्न करनेमें है वह स्त्री स्वामीके पुण्यका आधा हिस्सा पाती है। इस प्रकार स्त्रीको स्वामीकी सेवासे ही उत्तम फल मिलता है। उसके लिये पति यही गुप्त धन है। उसीके द्वारा वह अनेक प्रकारके वैभवोंको भोग सक्ती है, उसीके द्वारा उसका शृंगार शोभा पाता है, उसीके द्वारा उसका सौभाग्य अखण्ड रहता है, उसीके द्वारा उसको पुत्ररत्नकी प्राप्ति होती है और उसीके द्वारा उसे इस लोकमें सुख व परलोकमें परम सद्गति मिलती है। उसके लिये इस संसारमें पति ही गुरुके समान सन्मार्ग बतानेवाला, पिताके समान हित करनेवाला, माताके समान ममत्व रखनेवाला एवं सब प्रकारसे सुख देनेवाला है। इस लिये सदैव स्त्रीने पतिकी सेवा करनी चाहिये, उसकी मर्यादा रखकर प्रेमसे पूजा करनी चाहिये, उसका तिरस्कार किम्वा अपमान नहीं करना चाहिये। वह जब बाहरसे घर आजाय तब खड़े होकर उनको आसन व जलपात्र देकर उसका सत्कार करना चाहिये। पति वस्त्र उतारकर दे उसे निश्चित स्थानपर रखना व जब मांगे तब देना। ठीक समयपर पतिकी रुचिको देखकर भोजन बनाना। व्ययकी बातें नहीं कर कुछ कामकी या पतिके मनको रंजन करनेवाली बातें करना। यदि किसी कारणसे पति रुष्ट हो तो धैर्यपूर्वक वचनामृतोंसे शान्त करना, वादविवाद नहीं करना, उसकी भूल हो तो भी क्रोधसे नहीं कहकर धैर्य रखकर शान्तिसे युक्ति पूर्वक समझा कर कहना। विना कारण क्रोध करके मनमें आवे ऐसा नहीं बोलना, विश्वासघात नहीं करना; क्यों कि ऐसा करनेसे स्त्रीकी दुर्गति होती है। उसके मनमें दुःख हो ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिये उसके साथ उच्चस्वरसे नहीं बोलना, हास्यविनोदसे आनन्द देना, विपत्तिमें धैर्य रखकर दुःखमें भाग लेना, अपनी

भूल हुई हो तो उसे नहीं छुपाकर पासमें जा स्वीकार कर क्षमा मांगनी। मिथ्या भाषण कर उसे ठगना नहीं, उसकी आज्ञाके आधीन होना, ईश्वर भक्ति, व्यवहार कार्य प्रभृतिमें सहायता देना, उसको सब प्रकारसे सन्तुष्ट रखना और निर्मल अन्तः-करण रखकर विश्वासके पात्र बनना। जो स्त्री अपने धर्मको समझकर पतिसे कहेगी कि, प्रिय! आप जो २ आज्ञा करेंगे उसे मैं प्रेमसे करूंगी। ईश्वरने ऐसा ही नियम किया है कि माता पिताके द्वारा उत्पन्न हो बाल्यावस्थामें उनके साथ रहना; किन्तु जीवन तो आपके ही साथ व्यतीत करनेका है। इस लिये आपका ही सम्बन्ध सच्चा है। कदापि आप स्वयं मुझे दुःख दें या अपने ऊपर दुःख आवे फिरभी मैं आपकी ही हूं। जहांतक मैं आपकी प्रेम भाजन नहीं हुई वहांतक मेरे वस्त्रालंकार, मेरी बुद्धिमत्ता, मेरी चतुरता, मेरे गुण व मेरी सुन्दरता ये सब कुछभी मूल्य के नहीं है ऐसा समझने वाली सुघड़, प्रेमी व पतिको प्रसन्न करनेवाली जो स्त्री होगी वह पतिको पसंद क्यों न होगी? अवश्य होगी। पतिप्राणा स्त्रीने अपने स्वामीकी आज्ञा के विना कोई कार्य नहीं करना चाहिये, एवं उसकी आज्ञाके विना कहीं भी नहीं जाना चाहिये। विज्ञ स्त्रीने अपने विवाह होनेके पूर्वमें जितना विचार करना हो उतना करलेना चाहिये; किन्तु विवाह होजानेके पश्चात् चाहे वह रोगी, अपंग, मूर्ख व खराब हो जाय तो भी उसके ऊपर प्रेम रखकर उसकी सेवा करनी ही चाहिये। स्त्रियोंका यही सनातन धर्म है और यही उसको उत्तम सुखकी प्राप्ति करानेवाला है। पति-व्रता स्त्रियोंके लक्षणोंके सम्बन्धमें कहा गया है कि,

पति ही सूं प्रेम होई पति ही सूं नेम होई,
पति ही सूं क्षेम होई पति ही सूं रत है;
पति ही है यज्ञ योग पति ही है रस भोग,
पति ही सूं मिटे सोग पति ही कौवत है.
पति ही है ज्ञान ध्यान पतिही है पुण्यदान,
पति ही है तीर्थस्नान पति ही को मत है;
पति विन पति नहीं पति विन गति नहीं,
सुन्दर सकल विधि एक पति व्रत है ॥

इस गृहसंसारमें स्त्री पुरुषमें पुरुष यह गृहका राजा है और स्त्री यह गृहका मन्त्री है; इस लिये मंत्रीने राजाके आधीनमें रहकर उसकी सेवा करनी चाहिये और उसके हितके लिये चिन्ता करनी चाहिये। महाभारतमें कहा है कि,

एतद्वा परमं नार्याः कार्यं लोके सनातनं ।
प्राणानपि परित्यज्य यद्भर्तृहितमाचरेत् ॥

इस लोकमें स्त्रियोंका यही सनातन धर्म है कि प्राणका भी परित्यागकर स्वामीका हित करना । इन्हीं वचनोंके अनुसार सती तारामतीने अपने धर्म स्वरूप हरिश्चन्द्रके साथ शरीरकी छाया बनकर उसके हितके लिये पराये घर बिक जाना स्वीकार किया था । पतिका वियोग हुआ, अनेक दुःख भोगे, पुत्रका मरण हुआ, उसकी अन्तिम क्रिया करनेके निमित्त स्मशानमें देनेका कर भी पास नहीं ऐसी दुःख-जनक स्थिति होजानेपर भी उसने अपने पतिके उपरसे अपना प्रेम कम नहीं किया। उसने अपने पतिव्रत धर्मका उत्तम प्रकारसे पालन किया, अन्तमें पतिके हाथसे ही मरनेका अवसर आया तो भी अधीर नहीं बनकर पूर्ण प्रेम बताकर बोली कि,– "प्राणेश्वर ! आपके हाथसे मेरे गलेपर पडनेवाली तलवार भी मुझे मोतियोंके हारके समान मालूम होगी । इसलिये चिन्ता नहीं करके तुरन्त घाव कीजिये" । अहा ! कैसा पति-प्रेम ! महाभारतमें कहा है कि;–स्त्रीके लिये पति ही प्राण है, पतिके वियोगमें पति-व्रता स्त्री जीवित नहीं रह सक्ती । इस बातके लिये जयदेव कविकी पत्नी पद्मावती प्रत्यक्ष उदाहरण है । सती सीताको पतिका वियोग हुआ, उसका पतिकी ओरसे तिरस्कार किया गया, अनेक दुःख पड़े; फिर भी उसने पति प्रेममें न्यूनता नहीं की । सगर्भावस्थामें तिरस्कार हुआ, उसे पतिने भयंकर जंगलमें निकाल दिया; फिर भी उसने अपना प्रेम दिखलाकर कहलाया कि,–"हे स्वामिन् ! मैं आपकी दासी हूं । आप जिस प्रकार समस्त प्राणियोंकी रक्षा करते है उसी प्रकार मेरी भी रक्षा करेंगे । आप ही मेरे लिये सर्वस्व है, मैं आपकी सुकीर्तिको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न रहूंगी" क्या उसकी यह महत्ता और उसका यह प्रेम कम है ? धन्य है ऐसी पतिप्राणा स्त्रीको कि जिसने पतिकी भक्तिमें अपना जीवन व्यतीत कर सुकीर्तिको सम्पादन किया । उसी प्रकार अनेक साध्वी स्त्रियोंने पतिके प्राणकी रक्षाके लिये अपना प्राण अर्पण किया है, पतिके प्राणकी रक्षाके लिये युद्ध किये है और प्राण जाने पर्यन्त पतिपर पूर्ण प्रेम रखकर अपने धर्मकी रक्षा की है । पतिके वचनको पालन करनेके लिये अनके दुःख सहन किये है । यह सब सतियोंके चरित्रोंके पढनेसे मालूम होता है । वास्तविकमें जिस स्त्रीमें पति प्रेम रूपी उत्तम गुण नहीं हैं उसे स्त्रीका नाम नहीं देना चाहिये । जो स्त्री अपने पतिके साथ कपट करती है या विवाहके समयमें की हुई प्रतिज्ञाओंका भंग करती है उसके ऊपर परमेश्वर अप्रसन्न होते हैं । पति चाहे कैसी भी स्थितिमें क्यों न आपड़े उसे एक भावसे भजना चाहिये । अपनी इच्छासे या मातापिताओंकी इच्छाओंसे

जिसके साथ पाणिग्रहण हुआ उसके साथ यावज्जीवन तन मनसे रहकर उसकी सेवा करनी चाहिये, ऐसा करनेसे परमेश्वर प्रसन्न हो सुखी बनाते हैं। जो स्त्री अपने स्वामीके साथमें रहकर आनन्द लेना चाहे वह प्रेमसे पतिकी आज्ञाका पालन करे। इस संसारमें अपने पतिका स्नेह ही सच्चा स्नेह है दूसरोंका मिथ्या समझना चाहिये।

अपने पतिकी सेवा करना यह स्त्रियोंका सनातन धर्म है इस बातको केवल अपने ही धर्मशास्त्र नहीं कहते; किन्तु पृथ्वी के समस्त धर्मवालोंका यही कथन है। देखिये ! इसाईयोंके धर्मग्रन्थोंमें एक स्थानपर ईसुकी माता मरियम कहती है कि,— "स्त्रियां जिस प्रकार प्रभुके आधीन रहती हैं उसी प्रकार अपने पतिके भी आधीनमें रहें, क्योंकि पति यह स्त्रीका शिर है"। फिर पारसियोंके धर्मग्रन्थ जिन्दावस्थामें कहा है कि, "सुशिक्षित स्त्री अपने पतिको सरदार व बादशाह समझती है"। वैसेही जर्मन विद्वान् मि. टेलरने कहा है कि, "स्त्रीने अपने पतिके आधीन रहना चाहिये। उन्हें आनन्द व सुख देना, उसकी सेवा करना व उसको सदैव प्रसन्न रखना, उसका सन्मानकर उसके मनको राजी रखनेके लिये यत्न करना। जिस स्त्रीमें वफादारीके जुस्सेने घर किया होगा वह पतिको अपने प्रेमका परिचय देनेके लिये उसका अत्यन्त आदर करेगी। जो समझदार स्त्री होगी, वह अपने पतिको स्वयं सलाह व सहायता देनेके लिये तैयार होगी, स्त्रीने पुरुषके सुखमें ही अपने सुखका विचार करना चाहिये"। अहा ! कैसे अमूल्य वचन हैं ! जिस स्त्रीमें पतिके प्रति इस प्रकारका वर्तन करनेकी बुद्धि उत्पन्न नहीं हुई हैं उसने दुःख भोगनेके लिये ही जन्म लिया है। जो विज्ञ स्त्री है उसने अपने पतिको देवके समान परमपूज्य मानकर उसके ऊपर ही सदैव प्रेम रखना चाहिये। उसकी ही सेवामें तत्पर रहना और उसीके वचनोंके अधीन होना, यही उसके लिये परम श्रेयस्कर है। याज्ञवल्क्य स्मृतिमें कहा है कि, "स्त्रीने अपने स्वामीकी आज्ञाको मानना यह उसका प्रधान धर्म है। अपने धर्मोंके पालनसे स्त्रियोंको स्वर्गरूप फलकी प्राप्ति होती है"। क्या इस महात्माका यह उपदेश कम लाभकारी है? अहा ! स्त्रीको जिसकी सेवासे ही स्वर्गकी प्राप्तिके समान श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति होती है ऐसे फल देनेवाले प्यारे पतिके ऊपर प्रेम रखनेसे कौनसी स्त्री विमुख रहेगी? सुज्ञ स्त्रीको चाहिये कि वह निर्मलान्तःकरणसे पतिके ऊपर प्रेम करे। उसके कार्यमें शक्तिके अनुसार सहायता करे। उसकी ओरसे अन्न, वस्त्र, आभूषण प्रभृति मिलनेवाले पदार्थोंको भोगकर उसमें सन्तोष रक्खे। पतिके सिवाय अन्य पुरुष चाहे वैसा पृथ्वीपति हो, स्वरूपवान् हो, बुद्धिवान् हो, व युवा हो एवं चाहे वैसा हो, उसकी ओरसे पृथ्वीका सम्पूर्ण वैभव मिलता हो; तथापि उसको काक-

विष्ठाके समान तुच्छ समझें। उसके सामने दृष्टितक नहीं करना, क्योंकि परपुरुषको भजनेसे स्त्रीको नरकमें जाना पड़ता है। मनुस्मृतिमें कहा है कि;

पाणी ग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।
पतिलोकमभिप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥

साध्वी स्त्रीने पाणि ग्रहण करनेवाला जो अपना पति वह जबतक जीवे तबतक और मरनेके पश्चात् भी पतिलोकको प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाली स्त्रीने कुछ भी उसको अप्रिय हो ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये। पतिव्रता स्त्रीने अपने प्राण पर्यन्त भी अपने एकपतिव्रतको नहीं छोड़ना चाहिये। इस संसारके दृश्यमान समस्त पदार्थ नाशवन्त हैं। इससे वे समस्त तुच्छ हैं। केवल एक धर्म ही अचल सुखको देनेवाला है। जिससे वह महान् है। उस महान् धर्मका पालन करना यही पतिव्रता स्त्रीका कर्तव्य है; क्योंकि मरणके समय संसारके दृश्यमान समस्त मोहक वैभव यहांपर ही पड़े रहते हैं। केवल धर्माधर्म जो किये हों वे ही साथमें जाते हैं। उसमें अधर्म नरकमें डालकर दुःख देता है और धर्म स्वर्गका अविनाशी सुख देता है। अतएव सुज्ञ स्त्रीने अधर्मको त्याग कर धर्मको ही बढाना चाहिये। स्त्रीके लिये पति ही ईश्वरसे दूसरे पदपर पूज्य है। इस लिये उसकी तन मनसे सदैव प्रेमपूर्वक सेवा करनी चाहिये उत्तम वस्त्रालंकारोंको धारणकर पतिको मोहित करनेकी अपेक्षा उसे अपने सद्गुणोंके द्वारा मोहित करनेकी इच्छा रखनी चाहिये। स्वामीका चित्त सद्गुणोंके विना रूप, शृंगारादिसे नहीं आकर्षित होता। विना गुणका आडम्बर निन्दाके पात्र बनाकर कलंकित करता है। इसलिये जिस प्रकार होसके उस प्रकार सद्गुणोंके ऊपर स्नेह रखकर उसके द्वारा पतिको मोहित करनेका यत्न करना। स्त्रीने अपने जीवनहार और देवतुल्य पूज्य पतिके साथ कभी भी कपट नहीं करना। यदि आप उससे कपट करेंगी तो आपके लिये उसके समान और कौन है? कि जिसके साथ सत्यतासे चलकर सुखी होंगी! कोई भी उसकी समानता नहीं कर सक्ते। आपके लिये पति ही सर्वस्व है, पति ही मित्र है व सुख दुःख तथा भव संसारका साथी भी वही एक है। अतएव उसके ऊपर ही श्रद्धा रखकर उसके ऊपर प्रेम रखना और उसीको अन्तःकरणसे चाहना यही आपके लिये परम कर्तव्य है।

वर्तमान समयमें बहुत स्त्रियां पतिके प्रति अपना क्या धर्म है? इस बातको नहीं जाननेसे मनमें आवे वैसा पतिसे बोलती हैं, उसका अपमान करती हैं, अपशब्द कहती हैं, सामने होती हैं, बाहरसे परिश्रम करके घरमें आने पर उसको कुटुम्ब क्लेशकी बातें कर कष्ट देती है। समयपर भोजन तैयार नहीं करती व पतिके पास

धरका कितना ही कार्य कराती हैं। पतिकी शक्ति नहीं होने पर भी दूसरोंके उत्तम २ आभूषण वस्त्र प्रभृतिको देखकर "मुझे यह चाहिये" ऐसा कहकर क्लेश करती हैं व पतिको ऋणी बनाकर अपनी इच्छाको पूर्ण करती हैं। पतिको किसी कार्यमें सहायता नहीं करती। समस्त गृह व्यवहारका भार उसके अकेले पर ही डाल देती हैं। उसकी दुःखी स्थितिको नहीं जानती। पतिको नाम मात्रका समझकर पातिव्रत्यके धर्मोंका पालन नहीं करती। जब ऐसी स्त्रियोंको अपने पतिकी ओरसे तृष्णाकी तृप्ति नहीं होती तब अनेक नहीं करने योग्य कार्योंको भी करती हैं। फिर जब उन कार्योंसे सुखके बदले दुःख मिलता हैं और लोगोंमें निन्दा होती है तब पश्चात्ताप करती हैं और अपना जीवन दुःखसे व्यतीत करती हैं। ऐसी स्त्रियां स्त्रीके धर्मसे विपरीत कार्योंको करके पापोंका संचय करती हैं। ऐसी स्त्रीयोंको स्त्री नहीं किन्तु राक्षसी समझनी चाहिये। ऐसी अधर्मी स्त्रियोंको धिक्कार है व धिक्कार है उसके माता पिताओंके कि जिन्होंने ऐसी दुष्ट कन्याको उत्पन्न किया। उसकी अपेक्षा पशु, पक्षी व वन वृक्षके अवतार भी उत्तम हैं कि जिनको परमात्माने जिस स्वाभाविक धर्म-नियममें सृजा है, वे उसी धर्मके प्रमाणसे सदैव रहकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। उसकी अपेक्षा ऐसी स्त्रीका अवतार तो व्यर्थ हो समझना चाहिये। जो स्त्री ईश्वर रचित धर्म-नियमानुसार नहीं चलती वह व्यर्थ पृथ्वीके ऊपर भारके समान हो रही है, उसका अवतार निरर्थक है। ईश्वरके नियम विरुद्ध आचार विचार और नीतिको रखकर आचरण रखनेवाली स्त्रीने विचार करना चाहिये कि पापकर्मका सुख थोड़े समयका है। उन कुकर्मासे ईश्वर अप्रसन्न होकर पापका फल नरकका महादुःख देगें उसे भोगना पड़ेगा। इस विषय पर अच्छी तरहसे विचार करना चाहिये। विज्ञ स्त्रीको चाहिये कि पतिकी ओरसे जो मिले उसीमें संतोष रक्खे, उसीसें उसकी कीर्ति, उसीसे उसकी शोभा और सुख है। जो स्त्री ईश्वरका भय रखकर पतिकी इच्छानुसार मन, वचन और कायाको वशमें रखकर पातिव्रत्य-धर्मानुसार चलती हैं उसे धन्य है और धन्य है उसके माता-पिताको कि जिन्होंने ऐसी पुत्री रत्नको उत्पन्न किया। जो कुलीन स्त्री होती है वह कभी भी अपनी इच्छानुसार स्वतंत्रतासे नहीं चलती। स्त्रियोंके विषयमें भगवान् मनुजी आज्ञा करते हैं कि;—

स्त्री बाल्यावस्थामें माता-पिताकी आज्ञामें रहे, तरुणावस्थामें पतिकी आज्ञामें रहे, और वृद्धावस्थामें पुत्रकी आज्ञामें रहे। स्त्रीको कभीभी स्वतंत्र नहीं रहना चाहिये। जो स्त्री स्वतंत्र रहकर अपनी इच्छानुसार आचरण करती है वह कभी भी कुलीन स्त्री नहीं है। जो कुलीन स्त्री होती है वह कभी भी पतिसे स्वतंत्र होनेकी

इच्छा नहीं रखती। वह जो दान, धर्म, तीर्थ, और देवपूजन प्रभृति करती हैं उन-सबमें परमेश्वरके पास ऐसाही मांगती है कि "मेरे सौभाग्य अखंड रहे" स्त्रियोंके लिये सौभाग्य ही सर्वस्व है। इसलिये सौभाग्यकी रक्षाके लिये स्त्रीको चाहिये कि वह अपने पतिके आधीन रहे। वह यदि अपने कार्य व्यवसायोंसे उत्साहहीन हो तो उसका मन शांतकर उसे धैर्य देना। विपत्तिके समयमें पति जैसी स्थितिमें हो वैसी स्थितिमें स्वयं रहकर संतोष रखना। उसके साथ क्लेश नहीं करना, जैसे पुरुषको अपने पिताके नामसे प्रसिद्ध हो अपना परिचय देना उचित है; वैसे स्त्रीको अपने पतिके नामसे प्रसिद्ध हो अपना परिचय देना चाहिये। लोगोंमें निन्दा हो ऐसा कोई भी कार्य नहीं कर एवं पतिके विषयमें किसी प्रकारकी शंका नहीं करना। कोई मनुष्य पतिपत्नीके प्रेमको देखकर उसे उड़ानेके लिये कहे कि तेरा पति असत्य—पथपर चलता है तेरे ऊपर पूर्ण प्रेम नहीं रखता, वह अन्य स्त्रीको चाहता है इत्यादि कहकर मनको फिराना चाहे; किन्तु कच्चेकान रखकर उसे सुनना नहीं। उस कहनेवालेके विषयमें विचार करना कि, "वह ऐसा क्यों कह रहा है?" उसे यह भी कह देना कि, "मेरा पति कभी भी ऐसा नहीं करसक्ता।" किसीके कहने परसे अपने पतिपर शंका नहीं करना। पतिके ऊपर बार २ शंका करनेसे स्नेह टूट जायगा स्नेह टूटनेसे गृहस्थाश्रम बिगड़ कर संसार दुःखरूप होगा, इसलिये किसीके ऊपर विश्वास नहीं रखकर केवल अपने पतिके ऊपर ही पूर्ण विश्वास रखना चाहिये। कदापि कर्म योगसे वह संपति शून्य निकला तो भी उससे संतोष रखना; जिस कुलमें पति भार्यासे और भार्या पतिसे सदैव संतुष्ट रहते हैं उस कुलमें सदैव कल्याण रहता है। अतएव कल्याणकी इच्छावालीको अपने पतिमें संतोष रखना चाहिये।

धर्म शास्त्रकी नीतिके अनुसार विवाह किया जाता है उसका मुख्य कारण यही है कि परस्परके हृदय प्रेमरूपी रेशमकी गांठसे इतना दृढ बंधे कि कितना भी दुःख पड़े तो भी वह छूट न सके। वह गांठ इतनी दृढ बंधती हैं कि जो पतिको प्रिय हैं वेही अपनेको प्रिय और जो पतिको प्रतिकूल, अनुकूल होते है वही अपनेको प्रतिकूल अनुकूल होते है। महासती पार्वतीजीके पिताने शिवजीसे द्वेष किया था, यह देख कर पार्वतीजीने अपने पिता दक्ष प्रजापतिसे कहा कि," आप मेरे पति शिवजीका द्वेष करते हैं इस लिये आपसे उत्पन्न होनेवाले इस कलेवरका कोई काम नहीं। मै उसे छोड़ देती हूं। खराब अन्न भूलसे खानेमें आगया हो तो उसे क्षय कर निकाल देना उचित है।" इस प्रकार कह कर अपने शरीरका त्याग किया उसीका नाम प्रेम है। ऐसा प्रेम जिस घरमें हो उसे स्वर्ग ही कहना चाहिये। क्योंकि ऐसे प्रेमी दम्पती

जहांपर रहते हैं वहां दुःखके होनेपर भी स्वर्गके समान सुख मिलता है । जो स्त्री निष्कपट प्रेम रखकर शुद्धाचरणसे चलती है उसका पति कभी भी खराब मार्गपर नहीं चल सक्ता । वह तो यही समझता है कि मेरे घरमें ऐसा अमूल्य रत्न है; इस विचारसे वह अपनी स्त्रीपर आदर और प्रेम करता है । इस लिये स्त्रीने अपने पतिके ऊपर ही अखंड प्रेम रखकर उसकी सेवा करना चाहिये । दूसरोंपर प्रेम रखनेकी अपेक्षा अपने पतिपर प्रेम रखकर उसके साथ विनोद करना व उसीको स्वर्गकी गति देनेवाला और संसारका साथी समझ कर मन, वचनसे सेवा करना । इस प्रकार जो स्त्री अपना जीवन निर्वाह करती है वह साध्वी सती है । वह सती अपने तीनों कुलोंकी कीर्ति को बढ़ा कर प्रभुको प्रिय होती है और धन्यवादको प्राप्त करती है ॥

पतिका स्त्रीके प्रति धर्म.

स्त्रियो देव्यो गृहश्रियः । स्त्री देवी वह घरकी लक्ष्मी स्वरूप हैं । घर यही घर नहीं है किन्तु गृहिणी—घरकी स्त्री यही घर है । स्त्रीके विना घर अरण्य के समान लगता है । जिस कुलमें स्त्रियां दुःखी होती हैं उस कुलका शीघ्र ही नाश होता हैं । उसकी सम्पत्ति नष्ट होकर कल्याणका नाश होता है । पुरुषके सर्व सुखोंका आधार स्त्रीके ऊपर है । सम्पत्ति, सुख, वंश, और कल्यानकी वृद्धि करनेवाली अपनी स्त्रीको पुरुषने अन्न वस्त्राभूषणादिसे संतुष्ट रखना, उसका सब प्रकारसे आदर करना, उसकी रक्षा करना, उसपर स्नेह रखना, उसका हित करना, उसपर विश्वास रखना, उसका भूल कर अनादर या तिरस्कार नहीं करना, उसे लौंडी न समझकर घरकी मालकिन, लक्ष्मी व संसार—सागरको पार करनेकी संगी समझना, उसके पास कोई भी कार्य बलात् नहीं कराकर उसकी शक्तिके अनुसार उसे कार्य सोंपना । स्त्री अर्धांगना—पुरुषका आधा अंग है इसलिये जिस प्रकार अपने शरीरको सुशोभित करनेकी व सुखी करने की चेष्टा करते हैं उसी प्रकार उसे भी सुशोभित बनाकर सुखी रखना; जैसे आधा शरीर अच्छा नहीं रहने पर समस्त व्यवहार रुक जाता है वैसे ही यदि स्त्री अयोग्य व दुःखी होगी तो पुरुष कभी भी सुखी नहीं हो सक्ता । इसलिये तन, मन व कर्मसे उसे अपने प्राणोंके समान समझना क्योंकि पुरुषके लिये इस संसारमें वास्तव में संगी या मित्र स्त्री ही है । महाभारतमें कहा है कि,—

नास्ति भार्यासमो बंधुः नास्ति भार्यासमा गतिः
नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसंग्रहे ॥

पुरुषके लिये भार्याके समान दूसरा मित्र नहीं है, भार्याके समान दूसरी गति नहीं है और इस लोकमें मार्याके समान धर्म संग्रह करनेमें दूसरा कोईभी सहायक नहीं है। भारत मार्तंड पण्डित श्री गट्टुलालजीने अपनी गुजराती कवितामें कहाहै कि,–

टाळे दुःख, पाळे घर सघळुं, संभाळे शुभ नारः
पुण्य सहाय, प्रजा उपजावे, पोषण करे अपार ।

दुःखका नाश करना यह मित्रका परम धर्म है। इस धर्मको स्त्री दुःखके समय भली भांति समझती है। जब पतिके ऊपर संसारमें अनेक प्रकारकी आपत्तियां आ पडती हैं उस समयपर उसे कुछ भी नहीं सूझता तब स्त्रियोंमें धैर्य, बुद्धिमत्ता, हिम्मत प्रभृति अनेक गुण गुप्त रहे हुए हैं वे प्रकाशित होते हैं और पतिको धैर्य व हिम्मत देकर कर्तव्यका मार्ग दिखलाती है। पतिको दुःख–सुखमें आनन्द देनेवाली केवल स्त्री ही है। ऐसी आनन्द देनेवाली अर्धांगनाको सुखी रखना यह पतिका परम धर्म है। कितनेक अज्ञानी और अविचार पुरुष स्त्रीको दुःख देते हैं और स्वयं असत् मार्गपर चलते हैं ऐसे पुरुषोंके पापकी ओर विचार करनेपर उन्हें पतित्व कभी भी घट नहीं सक्ता। ऐसे पापी पुरुष अपने पापोंके कारण स्त्रीहीन होते हैं और अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं। शास्त्रमें कहा है कि,–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

स्त्रियां जिस घरमें आदर पाती हैं उस घरमें देवगण क्रीडा करते हैं। स्त्रीके आंसुओंसे जिस घरकी भूमि आर्द्र होती है उस घरमें श्रेय नहीं होता। वास्तविकमें स्त्रीके प्रसन्न मुखकी शोभा ही घरके अन्धकारको दूर करती है। इसलिये स्त्रियोंको संतुष्ट व प्रसन्न रखना यह कुलीन पुरुषोंका धर्म है। कुलीन पुरुषने अपनी धर्म–पत्नी के ऊपर ही सच्ची प्रीति रखना चाहिये, उसे ही अपना जीवन सर्वस्व समझना चाहिये। चाहे वह लंगडी हो, कानी हो, बहिरी हो, मूक हो, अंधी हो या कुरूप हो किन्तु जिसका हाथ देव, अग्नि और ब्राह्मणोंके सामने प्रतिज्ञा लेकर गृहण किया है उसका यावत् जीवन प्रेमपूर्वक पालन करना यह धर्म है। विवाह के समय प्रतिज्ञा की है कि,–

"धर्मार्थकामेषु सहचरेयं सहचरेयं सहचरेयंम्"। धर्ममें, अर्थमें और सुखोंमें मैं इस अपनी धर्म पत्नीको साथमें रक्खूंगा, साथमें रक्खूंगा, साथमें रक्खूंगा। इस मंत्रको कहकर बचन दिया है। जो इस बचनका उलंघन करते हैं वे ईश्वरके अपराधी हैं। जो ज्ञाता व कुलीन पुरुष हैं वह अपने प्राणोंके जाने पर्यंत अपने बचनका भंग नहीं करते और अपनी धर्म पत्नीके सिवाय दूसरी स्त्रीपर अपना

मन नही लाते। जैसे स्त्रीको अपने पतिके सिवाय दूसरे पुरुषका मुख नहीं देखना चाहिये उसी तरह पतिको भी अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रीकी ओर नहीं देखना चाहिये। जैसे स्त्रीको चाहिये कि अपने पतिको रूप गुण व शीलसे उत्तम समझें वैसे ही पुरुषको भी यह चाहिये कि वह अपनी धर्म पत्नी को रूप गुण व शीलमें उत्तम समझें। जिस प्रकार शास्त्र स्त्रीके लिये पतिव्रत धर्मका उपदेश करता है उसी तरह पुरुषको पत्नीव्रतका उपदेश करता है। जैसे पतिका स्त्रीके ऊपर अधिकार है वैसे ही स्त्रीका पतिके ऊपर भी अधिकार है। जैसे पतिके साथ चलनेके लिये स्त्रियोंको कठिन धर्मका उपदेश किया है वैसे ही स्त्रीके साथ चलनेको पतिके लिये भी कठिन धर्मका उपदेश किया गया है। जो पुरुष इस कठिन धर्मका त्याग कर अपनी पत्नीको अकारण दुःख देता है उसे विपरीत फल मिलता है। महर्षि मारकंडेयने कहा है कि महाराजा विपश्चितने अपनी स्त्रीका अकारण त्याग किया था जिससे उसे नरकमें असहनीय पीड़ा भोगनी पड़ी थी।

स्त्री पुरुषके बीचमें क्लेश होनेसे किसीका कभी भी भला नहीं हुवा क्योंकि स्त्री यह संसारका सर्वस्व है और वही संसारका नूर है। वह नूर क्लेशके कारण घरमेंसे चला जाता है। सम्पत्ति नष्ट होकर सर्वत्र दुःख ही दुःख दिखाई देते हैं। जहांपर क्लेश रहता है वह देवका निवास न होकर भूतका निवास होता है। जगत्पिता ब्रह्माजी के पास पत्न नामके एक भयंकर भूतने अपने रहनेके लिये स्थान मांगा और कहा कि मैं कहां रहूं? तब ब्रह्माजीने कहा कि जहां स्त्री पुरुषका परस्पर क्लेश रहता है वहां सदैवके लिये निवास करना। इस परसे मालूम होगा कि जहां स्त्री–पुरुषके बीच क्लेश रहता है वहां पर सब प्रकारके सुखोंका नाश होता है। स्त्रीका लालन पालन करनेसे वह घरकी लक्ष्मी रूप होती है अर्थात् लक्ष्मी बढती है। उसे दुःख देने या मारनेसे वह घरकी समस्त सम्पत्तिका नाश करती है। व्यासजीने स्पष्टही कहा है कि;--

लालिता सैव लक्ष्मी स्यात् ताडिता सैव चंडिका।

अपनी धर्म–पत्नीका लालन करनेसे वह घरकी लक्ष्मी स्वरुप होती है और ताड़न करनेसे चंडिका रूप होती है। पितामह भीष्मने युधिष्ठिरके प्रति भी यही कहा है कि स्त्रियोंका प्रेम पूर्वक लालन, पालन करनेसे वे लक्ष्मी स्वरुप होती हैं और वैसा नहीं करनेसे वेही स्त्रियां अलक्ष्मी रूप होती है। भगवान् मनु भी यही कहते है कि जिस कुलमें स्त्रियां दुःखसे शोकाकूल रहती है उस कुलका शीघ्र ही नाश होता है और जिस कुलमें स्त्रियां प्रसन्न रहती है उस कुलकी सदैव अभिवृद्धि होती है।

इस लिये इन महात्माओंके वचनोंका स्मरण कर समझदार पुरुषोंने अपनी धर्म-पत्नीको किसी तरह दुःख न देकर उन्हें सब प्रकार सुखी रखना। यदि उससे कोई अपराध हो जाय तो उसे अबला समझकर क्षमा करना और दूसरी बार अपराध न करे ऐसा उपदेश देना। जो कार्य प्रेमसे हो सक्ता है वह भयसे नहीं हो सक्ता। इस लिये जहां तक हो भयकी अपेक्षा प्रेमको उत्तम समझ कर उसकी अभिवृद्धि करना। बहुतसे लोग कहते हैं कि विना भयके प्रीति नहीं होती। यह सत्य है किन्तु केवल भय भयंकर हानि करता है। भय बताकर प्रेम करनेकी अपेक्षा उसके साथ सहानुभूति व प्रीति की जाती है वह प्राण जाने पर्यंत स्थायी रहती है। ऐसे प्रेमसे जो दम्पतीको सुख मिलता है वह उत्तम है। इस लिये सुज्ञ पुरुषने अपनी धर्म-पत्नीके साथ सच्चा प्रेम रखकर अपने पति–धर्मका पालन करना। देखिये राजा ऋतुध्वज अपनी प्रिया मदालसा के वियोगसे शोकातुर हो अनेक देश, तीर्थ, नदी व पर्वतोंमें भ्रमण करता हुवा, प्रिये मदालसे! प्रिये मदालसे! ऐसा स्मरण करने लगा। अन्न जलका त्याग कर योगी हुवा; उसके माता-पिताने मदालसाके समान रूप, गुण युक्त अन्य सहस्रों स्त्रियोंके साथ विवाह करने के लिये कहा; किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। उसने वियोगावस्थामें अनेक दुःख सहन किये; अंतमें जब दैव कृपासे मदालसा मिली तब योगी के भेषको त्याग कर अन्न जल लिया।

वैसे ही जगत्पिता शिवजीने सती पार्वतीके देह त्याग करनेपर उसकी पुनः प्राप्तिके लिये तप किया था। अहा! कैसा निर्मल प्रेम है। वास्तविकमें इसीका नाम प्रेम व एक पत्नीव्रत हैं। इसके सिवाय श्री रामचंद्र, नल, हरिश्चंद्र प्रभृति अनेक महापुरुष इस भारत भूमिपर एक पत्नीव्रतके कारण प्रसिद्ध हो गये हैं।

एक पत्नीव्रतका पालन करना यह पुरुषके लिये यश व उन्नतिका देनेवाला है इसलिये कुलीन पुरुषोंको चाहिये कि वे अपनी ही धर्म-पत्नीके ऊपर निर्मल प्रेम रखकर विवाहके समय की हुई पवित्र प्रतिज्ञाओंका पालन करें। उनकी निन्दा हो ऐसा कोई भी कार्य न करें। घरके दास, दासी और बालकोंके सामने उसका तिरस्कार कभी न करें। क्रोध और भय न दिखावें। ऐसा करना यह गृहिणीके पदसे उसे पतित करनेके समान है। इसलिये जो कुछ कहना हो वह एकान्त स्थानमें जाकर शांतिसे कहना। जो कुछ कहना वह विवेक पूर्वक मधुरतासे कहना। गालियां देकर कठोर वचन कहना उचित नहीं। यदि वह ज्ञानहीन हो तो उसे ज्ञान देनेके लिये यत्न करना, उसके साथ किसी प्रकारका विश्वासघात नहींकर सदैव आनन्द और

संतोषी रहना। पतिके गुण--दोष सहवासमें रहनेवाली सखारुप स्त्रीको थोड़े बहुत आये विना नहीं रहते। जब नदी समुद्रमें मिलती है तब समुद्रके गुण नदीमें आही जाते हैं। शास्त्रोक्त विधिसे जिस पुरुषके साथ स्त्रीका विवाह होता है उस पुरुषके गुण प्रायः स्त्रीमें आजाया करते हैं। अक्षमाला नीच कुलकी स्त्री थी किन्तु वशिष्ठ ऋषिके साथ विवाह होनेके पश्चात् उनके सहवाससे उसमें भी उत्तम गुण आगये जिसके कारण वह उत्तम व पूज्य पदवीको प्राप्त हुई थी; वैसेही सारंगी नामक स्त्रीका मंदपालके साथ विवाह हुआ था। सारंगीमें उत्तम गुण नहीं थे; किन्तु मंदपालके समान गुण-वान पतिके समागमसे उसमें उत्तम सद्‌गुण आये थे, जिससे वह भी उत्तम पूज्य पद्वीको प्राप्त हुई थी। इसलिये जो पुरुष इस संसारमें सुख सम्पतिको प्राप्तकर परम सद्गतिको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं उन्होंने अपने में उत्तम गुणोंका संग्रह करना कि जो अपनी स्त्रीमें भी आसके। वैसे ही जिस स्त्रीके साथ अपना विवाह हुवा हो उसमें ज्ञान व बुद्धिकी न्यूनता हो तो उसे बढाने के लिये विद्या, धर्म, नीति व व्यावहारिक ज्ञानकी शिक्षा देकर श्रेष्ठ बनाना। देखिये प्राचीन समयमें पार्वतीजी, लक्ष्मीजी, अनसूयाजी, लोपामुद्रा मैत्रेयी और देवहुती प्रभृति स्त्रियां कैसी साध्वी थी। यह किसका प्रताप था? उनके पतिके प्रयत्नका ही प्रताप था। ऐसा उनके चरित्रोंपरसे विदित होता है। अपनी अर्धाङ्गना स्वरूप पत्नीको सुधारना यह दोनोंके लिये लाभकारी है। इस संसारमें अपना सच्चा सखारूप स्त्रीको जंगलीके समान रखना या दुःख देना यह अपनेको, अपने कुटुम्बको और समस्त देशको जंगली व दुःखी रखने के समान है। जिस कुटुम्बमें या जिस देशमें स्त्रियोंकी स्थिति अच्छी रहती है वह कुटुम्ब या वह देश सब प्रकारसे श्रेष्ठ और सुखसम्पत्तियुक्त बनते हैं और जहां स्त्रियोंकी स्थिति खराब रहती है वह कुटुम्ब और वह देश नष्ट होकर जंगली दशाको प्राप्त होता है। देखिये साइविरिया, कामश्चाटका, लापलाण्ड, ग्रीनलाण्ड, और आफ्रिका प्रभृति जंगली देशोंकी स्त्रियोंकी स्थिति अत्यंत खराब है। वहांपर स्त्रियोंको अनेक प्रकारसे दुःख देते हैं और उन्हें गुलाम समझकर सब प्रकारके कठिन कार्य उनसे कराये जाते है। गर्भावस्था के समान कठिन स्थितिमें भी उसके साथ सहानुभूति नहीं रख कर उन्हें अपवित्र समझकर झोपड़े के बाहर ठंडी या धूपमें निकाल देते हैं इससे वे अनेक प्रकारके कष्टोंको भोगती हैं जिससे वह देश भी बहुत ही खराब स्थितिमें पडा है। ऐसे सुधरे हुए समयमें भी वे लोग पशुवत् स्थितिमें अपना समय व्यतीत करते हैं। इंगलाण्ड, जर्मनी, फ्रांस और अमरिका प्रभृति देशोंमें स्त्रियोंकी स्थिति अत्यंत उत्तम है जिसके कारण उन

देशोंकी स्थिति भी श्रेष्ठ हो रही है। वहांकी स्त्रियोंको सब प्रकारसे आदर और सन्मान मिलता है। वहां स्त्रियोंका अधिकार अत्यंत उत्तम समझा जाता है। उन्हें सब प्रकारसे सुखी रखनेके लिये यथासाध्य यत्न करते हैं। यही कारण है कि वह देश सब प्रकारकी सम्पत्तियुक्त एवं सुखी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि स्त्रियोंकी स्थितिको सुधारनेसे सब प्रकार श्रेय होता है। एक विद्वानने कहा है कि, "पशु वही है जो स्त्रीसे कहता है कि मेरी सेवा के लिये तुझे लाया हूं, मनुष्य वही है जो कहता है कि मेरे सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी करनेके लिये तुझे लाया हूं, और देवता वही है जो स्त्रीसे कहता है कि निःस्वार्थ प्रेम रखना और तुझे सुखी बनाकर स्वर्गमें जानेके लिये तुझे लाया हूं"। उत्तम गतिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषने भी अपनी धर्म–पत्नीके ऊपर ही निःस्वार्थ प्रेम रखना और उसे सुखी बनाना, साथही उसे वंश वृद्धिका मूल समझ कर उसकी पवित्रताकी रक्षा करनी चाहिये।

स्त्रीको जंगली व दुःखी रखनेसे घरकी शांतिका नाश होता है। संसारकी श्री चली जाती है। बालकोंको नरकमें डालनेका बीचारोपण किया जाता है। पुरुषोंकी उन्नतिके समस्त द्वार बंद होते है और कुटुम्बकी शांतिका भी नाश होजाता है। जैसे निमकके विना अन्न स्वादहीन लगता है वैसे स्त्रीहीन संसार स्वादशून्य बन जाता है। यदि सच्च कहा जायतो स्त्रियोंके द्वारा ही संसारके समस्त सुखोंकी प्राप्ति होती है। इसलिये उसे सब प्रकारसे प्रसन्न रखना; उसका त्याग नहीं करना, उसे घूमनेकी उचित छूट देना जिससे अन्य सुचरित्रा स्त्रियोंके समागमसे अनेक प्रकारके लाभ होंगे। स्त्रीका हृदय व प्रेम ये गृहस्थाश्रमके लिये परम सुखकर हैं। अच्छी स्त्रियोंके समागमसे इन गुणोंकी अभिवृद्धि होती है। प्राचीन समयमें आर्यगण उच्चकुल, उच्चस्वभाव, उच्चवृति और उच्च विचारोंमें प्रसिद्ध थे। जिसकी समानता अभीतक कोईभी देश नहीं कर सका है। एक वह समय था जिस समय स्त्रियां अपने पतिके साथ सभाओंमें जाती थी और यात्रा करती थी उस समय पर्दाकी प्रथा नहीं थी यह प्रथा यवनोंके भारतवर्षमें आनेके पश्चात् हुई है। प्राचीन समयमें स्त्रियोंकी अच्छी तरहसे प्रतिष्ठा की जाती थी। उन्हें पुरुष श्रेष्ठ समझते थे। उस समय वैवाहिक संवंध छूट नहीं सक्ता था क्योंकि यह दूसरी वस्तुओंके समान साधारण व्यापार नहीं था। यही दैवी पवित्र लेख है। इस समय कितनेक अविचारी पुरुष अपनी स्त्रीसे साधारण अतवनार होनेपर उससे संबंध छोडनेको तैयार होते हैं यहांतक कि अन्य स्त्रीसे संबंध करलेते हैं वह अत्यंत लज्जाकी वात है। ऐसा करना बिलकुल पशुवत् कार्य करना है। जो अनेकके साथ व्यवहार बांधकर छोडते हैं वे स्त्री–पुरुष

मनुष्य कहलाने योग्य नहीं हैं; जब पशुके समान ही यह कार्य है तो पशुमें और उनमें क्या भेद है ? सर्वज्ञ पुरुषने अपनी धर्म–पत्नीके साथ ही समस्त व्यवहार रखकर उसे ही सब भांति सुखी करना चाहिये । पुरुषके लिये यही परम कर्तव्य है और यही प्राचीन सुखकर स्थितिमें लानेवाली प्रथा है । अस्तु ।

पतिव्रताके लक्षण.

पतिव्रता स्त्री सदैव अपनी समस्त इन्द्रियोंको अपने वशमें रखती है । पतिके ऊपर निर्मल प्रेम रखकर उसकी आज्ञानुसार चलती है । इस प्रकार तन मन और कर्मसे उसकी सेवा करनेके सिवाय अन्य कोई इच्छा नहीं रखती । अपने घरको सुंदर व स्वच्छ रखती है । अपने पतिको सुख–दुःखमें साथी समझकर उसकी आ-ज्ञाके विना अपने घरको नहीं छोडती । पतिव्रता स्त्री अधिक रजोगुण व चटक मटक नहीं दिखाती। अपनी सासको माताके समान और स्वशुरको पिताके समान समझकर उनकी तन, मनसे सेवा करती है । ननंदको बहिनके समान मानती है । पतिके सोनेके पश्चात् सोती व उसके उठनेके पहिले उठती है और पवित्रतासे गृहकार्य करती है । अपने प्रियतमको नियमानुसार भोजन कराकर पीछे अन्न ग्रहण करती है । गृहकार्यसे निवृत्त होकर ज्ञान ग्रहण करनेके लिये यत्न करती है । यदि पति किसी कारणसे शोकातुर हो तो अपने हास्य वदनसे उसके शोकका शमन करती है। पतिके वियोगको नहीं सह सक्ती । जैसे मीन जलके वियोगमें अपने प्राणोंको त्याग करती हैं वैसे ही सती स्त्री अपने पति–वियोगमें प्राण त्याग करती है। पतिके प्रिय जनोंका सत्कार करती है । पति, सास, ननंद, या सखीके विना अकेली कहीं नहीं जाती है और नीचे दृष्टिको रखकर चलती है। पतिके सुखको सुख और दुःखको दुःख समझकर उसे दुःखमें भी सुखी रखती है । पतिके मनको प्रसन्न रखनेके लिये प्रिय व मधुर वचन बोलती है । पर पुरुषके साथ बात नहीं करती । लज्जा रखकर किसी मनुष्यसे क्रोध व उच्चस्वरसे नहीं बोलती । पतिके समस्त श्रेयोंको चाहती है व उससे कोईभी कार्य गुप्त नहीं करती । सत्यशास्त्र और सद्गुरुके उत्तम उपदेशको सुनकर उसके अनुसार आचरण करती है । पतिको धर्म और व्यावहारिक कार्योंमें उत्साह एवं हिम्मत देकर तन, मनसे उसकी सहायता करती है । बालकोंका प्रेमसे पालन करती है और उन्हें धीर, वीर, धार्मिक व विद्वान बनानेका यत्न करती

है। कुछ भी अशुभ आचरण नहीं करती। पति घरमें जो कुछ लाकर देता है उसको सम्हालकर योग्य उपयोग करती है। पतिका मन अप्रसन्न हो ऐसा कोई कार्य नहीं करती, यदि कोई पुरुष कामेच्छासे सामने देखे और प्रिय वचनोंसे अपने वशमें करना चाहे तो भी मनमें किसी प्रकारके विकारको स्थान नहीं देती। पर पुरुषके सामने दृष्टि लगा कर नहीं देखती। यदि उनसे बातचीत करनेकी आवश्यक्ता हो तो उन्हें भ्राता व पिता समान समझ कर और नीची दृष्टि रखकर उनसे बातचीत करती है। देव दर्शनका निमत्त कर या और कोई निमत्त कर बाहर भ्रमण न करे। घरहीमें बैठकर प्रेमसे ईश्वरका भजन करे। पति रोगी, दुर्गुणी या कैसा भी प्राप्त क्यों न हो उसे देवके समान समझ कर संतुष्ट रहती है। अपने पतिके सिवाय दूसरेकी कुछ भी परवाह नहीं रखती। कोई द्रव्यादिका लोभ दिखावे तो भी मनको चलायमान नहीं करती। कामी पुरुष दुराभिलाषासे समझावे या बलात् अपने आधीन करना चाहे, वस्त्रादिका लोभ दिखावे, वह चाहे देव गांधर्व के समान स्वरूपवान हो, तो भी उसकी परवाह नहीं कर उसका तिरस्कार करती है। पतिके सिवाय दूसरेको कुछ भी नहीं समझती। परपुरुषका अपने शरीरके साथ स्पर्श नहीं होने देती। मर्यादाका भंग हो ऐसे वस्त्र नहीं धारन करती। शरीरके समस्त अवयव अच्छी तरह आच्छादित हों उस प्रकारका वस्त्र धारण करती हैं। विना वस्त्र धारण किये स्नान नहीं करती। धीरे २ चलती है। मुखको सदैव हर्षमें रखती हैं। उच्चस्वरसे हास्य नहीं करती। अन्य स्त्री–पुरुषोंकी चेष्टाको नहीं देखती। शोभाका वर्धक शृंगार धारण करती है। शरीरको उत्तम वस्त्रालंकारसे सुशोभित करनेकी अपेक्षा उसे सद्गुणोंसे शोभित करनेकी इच्छा रखती है। शरीर नाशवान् है ऐसा समझ कर दान, पुन्यादि अच्छे कार्य करके कीर्तिको सम्पादन करती है। शीलकी रक्षा करती है, सत्य बोलती है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर और तृष्णा इन् विकारोंको शत्रुवत् समझ कर त्याग करती है। संतोष, समानता, क्षमा प्रभृति सद्गुणोंका स्नेहसे संग्रह करती हैं। पतिकी ओरसे जो कुछ मिले उसीमें संतुष्ट रहती है। विद्या, विनय तथा विवेकको धारण करती है और उदार, चतुर एवं परोपकारी, कार्यों करनेमें प्रेम रखती है। धर्म, नीति, व्यवहार और कला कौशल्यकी शिक्षा लेकर अपने आत्मीय और दूसरोंको सिखाती है, वैसे उन्हें उपदेश देकर उन्हे सन्मार्ग ले जानेकी चेष्टा करती है। किसीको दुःख हो ऐसा कोई कार्य नहीं करती। किसीके साथ रंज नहीं करती, हर्षको सुख, दुःखमें समान रखती है। पतिकी आज्ञा लेकर सौभाग्य बढाने वाले यत्न व नियमादि करती है। स्वधर्मपर स्नेह रखती है। ज्येष्ठको स्वशुर के समान, जिठानीको सासके

समान देवरको पुत्रके समान व देवरानीको पुत्रीके समान और उनके बालकोंको अपने बालकोंके समान समझती है। शास्त्रोंको पढती और सुनती है. किसीकी निन्दा नहीं करती, नीच स्त्रियोंका सहवास नहीं कर कुलीन व सत्पात्र स्त्रियोंका समागम करती है। समस्त दुर्गुणोंसे दूर रहती हैं। स्वयं सद्गुणी बनकर दूसरी स्त्रियोंको अपने समान बनानेकी चेष्टा करती है किसीको कटु वचन नहीं कहती। आवश्यक्तानुसार बोलनेका अभ्यास रखती है। पतिका अपमान स्वयं न करके अन्य कोई भी अपमान करे उसे सहन नहीं कर सक्ती। वैद्य, वृद्ध और सद्गुरु के साथ ही आवश्यक्तानुसार थोड़ा ही बोलती है। पिहरमें अधिक समय तक नहीं रहती। संसारमें जन्म सार्थक कैसे हो? इस विषयपर सदैव विचार किया करती है। संकटोंको सहनकर धर्मकी रक्षा करती है। आपत्तिको और भयको देखकर नहीं डरती। ये समस्त लक्षण सती–पतिव्रता स्त्रियोंमें रहते हैं। ऐसे लक्षणोंको धारण करने वाली सती पार्वती, द्रौपदी, नर्मदा, अनसूया, पद्मिनी प्रभृति सतियोंको अनेक कष्ट भोगने पड़े हैं। उन सबने कष्टको सहन कर अपने पतिव्रतधर्मकी रक्षा की थी। यही कारण था कि उन्हें सतीके समान महान् उपाधि प्राप्त हुई थी। "सती" इस दो अक्षरोंकी उपाधिको प्राप्त करना साधारण बात नहीं। जिसके ऊपर परमेश्वरकी दया रहती है वही इस कठिन धर्मका पालन कर सक्ती हैं। धैर्य रखनेसे ईश्वर स्वयं सहायता करते हैं।

अर्वाचीन समयमें सती किसको कहना और उसके लक्षण कैसे होते हैं? यह सब अज्ञानसे आवृत्त हो गया है, यही कारण है कि आज उत्तम या अधम स्त्रीको पहिचाननेका कोई उपाय नहीं रहा। लोग साधारण गुण धारण करनेवाली स्त्रीको भी सती कहते हैं। हमारी समझके अनुसार सतीकी पदवी धारण करना कोई साधारण बात नहीं हैं। सती होने के लिये अनेक सद्गुणोंको धारण करना पड़ता है और अनेक प्रकारके दुःखोंको सहन करना पड़ता है। प्रियभगिनीगण। यदि आप जीवनको सार्थक बनाना चाहें तो सद्गुणोंको समझकर उनका अनुकरण कीजिये। प्राचीन समयमें स्त्रियां तन, मन व धनसे पति परायणा रहती थी। आज कलकी स्त्रियोंके समान केवल इन्द्रियोंको तृप्त करना अपना कर्तव्य नहीं समझती थी। मनुष्य जन्म वारंवार नहीं मिलता। इसलिये आप प्रमाद और अज्ञानताको त्यागकर स्त्रीधर्मको समझिये, उसका पालन कीजिये और सतीत्व प्राप्त कर जीवनको सार्थक बनाइये आपका यही कर्तव्य और धर्म है।

पतिके परदेश जानेपर स्त्रियोंको किस प्रकार रहना चाहिये ?

इस संसारमें स्त्रीपुरुषमें प्रेम यही उनके जीवनका प्रधान कर्तव्य है । यदि यह दृढ न हो तो उनका संसार सरलतासे नहीं चल सक्ता । वेदमें कहा है कि, " दोनोंके हृदय समान होकर एक हो जावो " । परस्परके हृदय एकत्र करनेके लिये प्रेम रूपी मजबूत बंधनके सिवाय अन्य कोई साधन नहीं है । उस साधनसे गृहस्थाश्रमकी सार्थकता होती है । जिसके साथ हृदय प्रेमबंधनसे बंधा है उसके प्राण उसीमें रहते है । जिस प्रकार मत्स्य जलके साथ प्रेमसे बंधा है । उसे यदि दूधके समान उत्तम वस्तुमें रक्खा जावे तो भी वह नहीं जी सक्ता । उसी प्रकार प्रेमी व्यक्तिका जिसके साथ प्रेम बंधा है उसकी अपेक्षा कोई अधिक गुणादि युक्त हो तो भी उसकी दृष्टि उसके ऊपर नहीं जमती । ऐसे प्रेमी–दम्पती कदापि देखनेमें दुःखी प्रतीत हो, उन्हें रहनेको घर और सौनेको पलंग न हो फिर भी वह प्रेमी–दम्पती अपनी दुःखी दशामें अपनेको सुखी समझते है । वे एक झोपड़ीको महलसे भी श्रेष्ट समझते हैं और तृणशय्याको भी श्रेष्ठ समझते हैं । एक समय श्रीराम और सीता वनमें भ्रमण करते हुए गोदावरी नदीके तीरपर सो रहे थे उस स्थलको सीताजीने दूसरी बार देखा और प्रथमके समय के आनन्दकी बातको स्मरण करके कहा कि, " प्राणेश्वर ! हम लोग इस स्थलपर इस शिलाके उपर तृण–शय्यापर आलिंगन करके सोये थे । शीतल मंद २ वायु चल रहा था, साधारण वार्तालाप हो रहा था उसी वार्तालापमें इतने मग्न हो गये कि आनंदमें सम्पूर्ण रात व्यतीत होकर प्रभात हो गया तो भी अपनी बात पूर्ण नहीं हुई थी । अहा ! ऐसी दुःखद अवस्थामें भी विदेशमें साथमें रहे हुय दम्पती कैसे सुखी रहते है । वैसे प्रेमी गृहस्थाश्रमकी कहां तक प्रशंसाकी जावे । ऐसी साध्वी स्त्रियां पतिको विदेशमें विपत्ति के समयमें भी सुख देनेवाली होती हैं । अतएव अपनी प्रियाको जहांतक हो विदेशमें भी साथ हो रखना चाहिये । पतिप्राणा प्रेमी स्त्री अपने प्रेमी–सौभाग्यका सूर्य और बालक तथा गृहकी उत्तम स्थितिका आधाररूप पति–उसके विदेश विदा होनेसे वियोगको कभी भी सहन नहीं कर सक्ती । जब श्रीराम वनमें जानेको तैय्यार हुये तब सीताजीको वर मांगनेके लिये कहा उस समय सीताजीने कहा कि, " मुझे श्रीरामचंद्रजीका वियोग न हो " यही मांगा और अंतमें उनके साथ ही गई । साहित्यमें भी एकस्थानमें कहा है कि, " एक स्त्रीका पति जब विदेश जाने लगा तब उसने अपनी स्त्रीसे कहा

कि 'मैं विदेश जाता हूं' ये शब्द सुनते ही वह स्त्री वियोग विरहके दुःखसे एकदम दुर्बल (दुबली) हो गई जिससे उसके हाथके आगेका कंकन निकल पड़ा। पतिने जब यह हाल देखा तब उसने कहा कि 'मैं नहीं जाता' फिर ये शब्द सुनते वही स्त्री एकदम रहनेके संयोग-सुखमें मग्न हो गई। उसके इस प्रकार आनन्दसे प्रफुल्लित होनेके कारण उसके हाथके दूसरे कंकन टूटकर गिर पड़े। तात्पर्य यह कि "मैं नहीं जाता" यह सुनते ही उसका शरीर आनन्दसे एकदम पुष्ट हो गया यही कारण है कि उसके हाथके शेष रहे हुए कंकन एकदम टूटकर गिर पड़े। वास्तविकमें पतिप्राणा स्त्रीको पतिके समागमसे जैसा आनंद होता है वैसा आनंद अन्य किसी प्रकारसे नहीं होता और वियोग विरहके समान उसके लिये दूसरा कोई दुःख नहीं है। यहां तक कि पतिके वियोगसे अपने प्राणोंको सती स्त्रियां त्याग देती हैं। सती पद्मिनीने अपने पति जयदेवके मरणके समाचारको सुनकर तुरंत ही अपने प्राण छोड़ दिये थे। वैसा ही एक उदाहरण देते हुये एक कवि ने कहा है किः—

ठाड़ि होइ पटको ग्रह्यो सुनि प्रभात पिय जान।
छूटत २ यों छुट्यो उत पट औ इत प्रान॥

एक प्रेमी स्त्री अपना पति आज प्रातःकाल विदेश जानेवाला है ऐसा सुनकर खड़ी हुई और चलनेको तैय्यार हुये पतिका वस्त्र पकड़ा कुछ आवश्यक कार्य होनेसे पतिने उसे समझाया और वस्त्र छुड़ा लिया उस वस्त्रके छूटते ही उसके प्राण भी छूट गये। अहा! प्रेमकी रीति कैसी अलौकिक है! प्रेम प्राशसे बँधे हुये दम्पतीमें इस प्रकार हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है! सती स्त्रियोंका प्राण पति ही में लगा रहता है! जब पति परदेशमें जावे तब उसकी आज्ञा होतो साथमें जाना और यदि वह साथमें लेजाना उचित न समझे तो किसी प्रकारसे आग्रह नहीं करना। वह जब परदेशमें जानेको तैय्यार होवे तब अपशकुन हो ऐसा कोई वचन नहीं बोलना चाहिये और रुदन भी नहीं करना चाहिये। उसकी आज्ञानुसार अपने घरके सास स्वशुर व बड़ोंकी आज्ञानुसार उनके आधीन में रहना। सास ननंद प्रभृति आत्मीय स्त्रियोंके साथ शयन करना। पतिके आने पर्यंत व्रत नियम आदिका पालन करना तथा पतिका शुभ चिंतन करना। पतिकी उपस्थितिमें उसके मनको प्रसन्न करनेके लिये जैसे वस्त्रा-लंकार सजकर वैभव भोगे जाते हैं वैसे उसकी अनुपस्थितिमें नहीं भोगना चाहिये। स्त्री उत्तम वस्त्रालंकार केवल अपने पतिको प्रसन्न रखनेके लिये ही धारन करती है। जब उसका पति विदेश गया है तो उसे कभी भी धारन नहीं करना चाहिये क्यों कि इससे हानि होनेकी संभावना है।

२५२ पतिके परदेश जानेपर स्त्रियोंको किस प्रकार रहना चाहिये ?

यह स्वाभाविक नियम है कि सांसारिक उपभोगोंसे इन्द्रियां और मनकी उत्कंठायें जाग्रित होती हैं। उन्हें वशमें रखनेके नियमोंका पालन करना आवश्यक है। अतएव सांसारिक वैभवके पदार्थोंसे विरक्त रहना। साधारण पोशाक धारण करना। सौभाग्य दर्शक हाथमें कंकन और मस्तकमें कुंकुमकी टिपकी अवश्य रखना। पतिको चाहिये कि अपनी स्त्रीके भरण पोषणका प्रबंध करके विदेश जावे। कदापि वह प्रबंध न कर जावे तो स्त्रीको चाहिये कि पतिके आने पर्यंत कोई निर्दोष कार्य करके करकसरसे अपना निर्वाह करे। पतिने घरमें जिसकी रक्षा करनेके लिये कहा हो उसकी यत्नसे रक्षा करे। आयकी अपेक्षा व्यय अधिक नहीं करना, कर्ज नहीं करना और सास स्वशुर व अन्य आप्तियोंके साथ पतिकी उपस्थितिमें जैसा आचरण किया जाता हो वैसा ही अनुपस्थितिमें भी करना चाहिये। कोई भी निंदित कार्य नहीं करना, स्नान करना वह भी शरीर पर तैल मर्दन करके या अन्य कोई पदार्थ लगाकर नहीं करना। नेत्र में अंजन नहीं लगाना, चन्दन तथा पुष्पका त्याग करना, किसी प्रकारकी क्रीडा नहीं करना, उच्चस्वरसे नही हँसना। अन्य स्त्री–पुरुषोंकी चेष्टाको नहीं देखना। इन्द्रियों और मनको विकार उत्पन्न हो ऐसा कुछ भी काम नहीं करना, जहां तहां जाना नहीं। सास ननंद प्रभृतिके समागमके सिवाय दूसरेके घरपर नहीं जाना। एक वस्त्र पहिन कर फिरना नहीं। अन्य पुरुषके शरीरका स्पर्श नहीं होने देना। मर्यादाको अच्छी तरहसे पालनकर परमात्माकी आराधना करते रहना। पतिके कुशल समाचारकी सदैव प्रतीक्षा करते रहना। ये सब धर्म जिस स्त्रीका पति परदेश गया हो उसके लिये आवश्यक हैं। इस धर्मका पालन करनेवाली स्त्री पति, सास, स्वशुर प्रभृतिको प्रिय होती है। लोगोमें उसकी प्रशंसा होती है और ईश्वर भी उसके ऊपर कृपा दृष्टि करते हैं। इस समय कितनीक स्त्रियां अपने पतिके विदेशमें जानेके समय अपनी धर्म रक्षा किस प्रकार करना ? वह नहीं जानती जिससे अनेक प्रकारके कष्ट व कलंकको प्राप्त होती हैं। केवल साधारण सुखके लिये अपने पतिका अनिष्ट करती हैं और पति व परमेश्वरको अप्रिय होनेके साथ साथ समाजमें निंदाको प्राप्त होती हैं। अतएव विज्ञ स्त्रियोंको चाहिये कि अपने जीवनके सुखकी मुख्य नींव जो प्रेम उस प्रेमको पतिके समागममें या वियोगमें अखंडित रक्खें। पतिके आने पर्यंत उपरोक्त नियमोंका पालन करे। इसी प्रकार आचरण करनेसे पति पत्नीमें अखंड प्रेम रहनेकी संभावना है और यही उनके लिये सदैव सुखदायक है।

रजोदर्शन ।

रजोदर्शन–रजोदर्शन यह स्त्रीके युवावस्थाका प्रधान चिन्ह है। रजोदर्शन यह स्त्रीके गर्भाशयसे प्रतिमासमें नियमित समयपर होनेवाला एक प्रकारका रक्त–स्राव है। इस रक्त–स्रावको रजोदर्शन, ऋतुस्राव, दूर बैठना, और दस्तान कहते हैं।

रजोदर्शनसे होनेवाले शरीरमें परिवर्तन–उस समय स्त्रीका शरीर गोल व भरा हुवा मालूम होता है। शरीरके भिन्न २ भागोमें चर्बी बढती है। उसके मनकी शक्ति बढती हैं। शरीरके भाग मोटे व पुष्ट होते हैं। कमर मोटी होती है। मुख व चहेरेका रंग फिर जाता है। नेत्र अधिक चपल होते हैं। लज्जा बढती है। संतति उत्पन्न करनेके योग्य बनती है और ईश्वरने उसे जिस कार्यके करनेके लिये उत्पन्न की है उसका उसे ज्ञान होता है, यह बात उसके चहेरेपरसे मालूम होती है। रजो–दर्शनके समय स्त्रीके शरीरमें इसी प्रकारका परिवर्तन होता है।

रजोदर्शन होनेका समय–रजोदर्शनका विलंब या शीघ्रतासे आना यह हवा और समागम इन दोनों ही पर अधिक आधार रखता है। इंगलांड, जर्मनी, फ्रांस और रूस प्रभृति यूरोप तथा एशिया खंडके ठंडे देशोंकी कन्याओंको ठंडी हवाके कारण और अच्छे समागमके कारण उन्हें १६–२० वर्षकी उमर होने पर रजोदर्शन होता है, किंतु अपने गर्म देशकी गर्म प्रकृतिके कारण व ऐसे ही अनेक कारणोंसे विशेष करके १२–१४ वर्षकी उमरमें ही रजोदर्शन होता है और ४०–५० वर्षकी उमरमें बंद हो जाता है। तो भी कितनीक स्त्रियोंको २ वर्ष आगे पीछे भी आता है व बंद होता है। परिश्रमी व उद्योगी स्त्रियोंकी अपेक्षा प्रमादी स्त्रियोंका, नाटक व उपन्यास पढनेवाली स्त्रियोंका, प्यारकी बात करनेवाली इश्कबाज स्त्रियोंका, समागम करनेवालियोंका, विलम्ब किम्वा अनियमित समयपर सोने, खानेवाली स्त्रियोंका गर्भाशय शीघ्रतासे सतेज बनकर उनको रजोदर्शन शीघ्र आनेकी सम्भावना है। वैसे ही गांवकी परिश्रम करनेवाली व सादा खुराक खानेवाली स्त्रियोंकी अपेक्षा नगरकी स्त्रियोंको ऋतु शीघ्र आता है। जैसा ऋतु विलंबसे आता है वैसे ही स्त्रियोंका शरीर अधिक दृढ होता है और उन्हें बुढापा भी विलंबसे आता है। इन्हीं कारणोंसे गांवकी स्त्रियां नगरकी स्त्रियोंकी अपेक्षा मजबूत रहती हैं।

रक्तस्राव–स्त्रीको रक्तस्राव साधारण रीतिसे प्रतिमास या २८ दिनमें होता है। कितनीक स्त्रियोंको नियमित रीतिसे ३–४ दिन दिखाई देता है किसी

समय किसी स्त्रीको १–२ दिन न्यूनाधिक भी दिखाई देता है।

नियमित रजोदर्शन–स्त्रियोंको प्रथम जब रजोदर्शन शुरू होता है तब वह नियमित नहीं होता। प्रथम कितनेक मास तक चढ जाता है, फिर पीछे आता है ऐसे कुछ दिन अनियमितता चलती है किन्तु आगे चलकर नियमित रूपसे होने लगता है। अनियमित समयमें जिस स्त्रीको ऋतुधर्म होता हो उसे गर्भ रहनेकी सम्भावना नहीं है। वंध्या स्त्रीको रजोदर्शन विशेष करके अनियमित समयपर आता है। इस प्रकार जिनको रजोदर्शन अनियमित रीतिसे होता हो उन्हे उसके कारणोंसे दूर रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये। गर्भाधान होनेके लिये रजोदर्शन नियमित समय पर आना चाहिये। कितनीक स्त्रियोंको रजोदर्शन नियमित समयपर होता है, इतना ही नहीं किन्तु रजोदर्शन होनेके चिन्ह, रजोदर्शनकी अंतर स्थिति और उसका दिखाई देना या बंद होना यह सब नियमित होते हैं ऐसा होनेसे ही गर्भ रहनेकी सम्भावना है। नवीन वधूका रजोदर्शन होनेके पश्चात् ३---४ वर्षके भीतर गर्भ रहता है कितनीक स्त्रियोंको विलंबसे भी रहता है।

रजोदर्शन आनेके प्रथम होनेवाले चिन्ह–स्त्रीको जब मासिक धर्म आनेवाला हो तब प्रथम हीसे कमरमें दर्द होता है, पेडू भारी रहता है और इसमें भी साधारण दर्द होता है। शरीरमें कुछ गहरी वेदना हो ऐसा मालूम होने लगता है, शरीरमें सुस्ती मालूम होती है। साधारण कार्यमें भी थक जाती है और कार्यमें भी मन नहीं लगता तथा लेटे रहने ही को मन चाहता है। शरीर भारी रहता है, समयपर दस्तकी कबजियत रहती है। किसीका सिर दर्द करने लगता है। रजोदर्शन होनेके समय मन अत्यंत तीव्र होता है। इन चिन्होमेंसे भिन्न २ स्त्रियोंको भिन्न २ चिन्ह मालूम होते हैं। उपरोक्त चिन्ह रजोदर्शनके पश्चात् हलके पडजाते हैं या बिलकुल ही नहीं रहते। कितनेक कारणोंसे रजोदर्शन होनेके पश्चात् भी एकदो दिनतक नियमित रूपसे अधिकवार दस्त जाना पड़ता है।

योग्य उमर होनेपर भी रजोदर्शन नहीं होनेसे होनेवाली हानि–स्त्रीको जिस उमरमें रजोदर्शन होना चाहिये उस उमरमें उसे प्रति मास रजोदर्शन होनेके पूर्वके चिन्ह मालूम होते है किन्तु वे सब दो तीन दिनमें बंद हो जाते हैं। ऐसा प्रति मास हुवा करता है किन्तु रजोदर्शन नहीं होता। इससे कुछ समय के लिये सिरमें दर्द होता है और दस्त साफ नहीं आता और धीरे धीरे शरीरकी दशा भी बिगड़ती जाती है। परिणाम यह होता है कि उसे हिस्टीरिया, क्षय प्रभृति रोग हो जाते हैं।

रजोदर्शन न होनेके कारण–अधिक सुखमें रहनेसे, दिन भर बैठे रहनेसे,

उत्तम खुराक अधिक खानेसे, खुली हवामें नहीं जानेसे, अधिक सोनेसे, मनमें चिंता, भय रखनेसे, क्रोध रखनेसे, अधिक हवा व आर्द्र भूमिमें रहनेसे, शर्दी लगे इस प्रकारका व्यवहार करनेसे, निर्बलता उत्पन्न होनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। इस लिये इस रोगवाली स्त्रियोंने चतुर वैद्य व डाक्टरकी सलाह लेकर दवा करना।

रजोदर्शन बंद करनेसे होनेवाली हानियां-कितनीक स्त्रियां विवाहमें शामिल होनेकी इच्छासे व अन्य कारणोंसे दवाकर या लगाकर रजोदर्शनको बंद करती हैं या रजोदर्शन न हो ऐसी दवा खा लेती हैं जिससे रजोदर्शन बंद हो जाते है। इस प्रकार बंद करनेसे गर्भस्थान किंवां दूसरे भागोंमें सोजा किम्वा दर्द उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार कुदरती नियमोंके उलंघन करनेसे सम्पूर्ण जिन्दगी पर्यंत उसके अनिष्ट फलको भोगना पड़ता है। अतएव इस प्रकार रजोदर्शनको रोकनेकी कोई भी दवा नहीं करना चाहिये। वह योग्य उमर होनेपर कुदरती रीतिसे बंद हो जाय यही उत्तम है।

रजोदर्शनके समयकी आवश्यक सूचनायें-स्त्रीको जब ऋतुदर्शन हो तब एक घायल मनुष्यके समान सम्हाल करनी चाहिये। रजस्वला स्त्रीको खुराक बहुत ही सादा लेना चाहिये, क्योंकि खुराकके परिवर्तनकी ऋतुके ऊपर बहुत असर होती है। खुराक ठंडा और भारी लेनेसे पेटमें चूंक व अजीर्ण उत्पन्न होता है। गर्म व मसालेदार वस्तु के खानेसे दाह उत्पन्न होता है। कई स्त्रियां उद्धत बनकर छाछ, दही, नीबू, इमली व कोकम प्रभृति खटाई वाली वस्तुयें और चीनी प्रभृति हानि-कारक वस्तुओंको खाती हैं। ऐसे खुराकसे रजोदर्शन बंद हो जाता है जिससे ज्वर आता है और शिर व कमरमें दर्द होता है। समयपर आंचकी हो जाती है तथा खांसी आदि कई रोग उत्पन्न होते हैं। कदापि भूलसे ऐसा हो गया हो तो तुरंत ही इसका उपाय करना और फिर इसप्रकार न हो इसका ध्यान रखना चाहिये। स्त्रियोंको चाहिये कि रजोदर्शनके समय केवल रोटी, दाल, भात, पूरी, तरकारी दूध प्रभृति सादा व हलका खुराक लेना चाहिये। अजीर्ण हो, ऐसा खुराक नहीं लेना चाहिये। अशिक्त न हो इनके लिये पौष्टिक खुराकको भी लेना आवश्यक है। चाहिये जितने गर्म कपड़े पहिनना; किन्तु तंग-कुशा नहीं पहिनना चाहिये। ठंडीकी ऋतुमें भी कपड़े धोनेकी आलससे कई स्त्रियां चाहिये उतने कपड़े अपने पास नहीं रखती। यह बहुत ही अनुचित है कई बार केवल चूनाकी जगह, गंदकी वाली जगहमें बैठी रहती हैं। चूनेकी बनी भूमिपर बैठनेसे, शरीरपर ठंडा पवन लेनेसे, नंगेपैर ओदी जमीनपर बैठने और ओदे कपड़े पहिननेसे शरीरमें शर्दी लग जाती है और ऋतुका होना बंद

हो जाता है। साथही गर्भाशयमें सूजन होनेकी भी संम्भावना है। शर्दी होनेसे ऋतुका रक्त गर्भमें जम जाता है; पेड़ूमें पीड़ा होती है। इस प्रकार गर्भाशयके बिगड़नेसे गर्भ रहनेमें बाधा पहुंचती है। इस लिये उपरोक्त बातोंसे बचना चाहिये; वैसे ही अधिक समयतक खड़े रहनेसे, पाचन न हो ऐसा खुराक लेनेसे, थकावट हो ऐसा परिश्रम करनेसे, अधिक चिन्ता व क्रोध करनेसे और भारी जुलाब लेनेसे ऋतुमें विघ्न उपस्थित होता है। अतएव जहांपर जोरसे ठंडा पवन आ रहा हो वहां पर बैठना या सोना नहीं। वैसे ही ओदी जमीनपर भी बैठना या सोना नहीं चाहिये; इसके सिवाय स्नान, शौच, मान, रुदन, हंसना, तैल लगाना, दिनकी निद्रा, जुवा, नेत्रमें अंजन, लेपन, गाड़ी प्रभृति वाहन पर बैठना; अधिक बोलना या सुनना, पति समागम, देव पूजन या दर्शन, भूमि खोदना, भगिनी या अन्य किसी रजस्वला स्त्रीका स्पर्श, दांत घिसना, पृथ्वी पर लकीर खींचना, हाथसे या लोहेके तथा ताम्र पात्रसे जल पीना, बाहर गांव जाना, चंदन लगाना, पुष्पमाला धारण करना, ताम्बूल खाना, पटेके ऊपर बैठना इन सबका त्याग करना और प्रसूती वाली स्त्रीका स्पर्श, ढेड़, चमार, मुर्गी, कुत्ता, असुर, कौवे और शव इनका स्पर्श नहीं करना। इन सूचनाओंके अनुसार नहीं चलनेसे बहुत हानि होती हैं।

रजोदर्शनके समय सावधानी नहीं रखनेसे गर्भाशयमें होनेवाली व्याधियां—रजोदर्शनके समय ठीक सावधानी न रखनेसे गर्भ रहनेकी सम्भावना नहीं है, कदापि रहता है तो भी अपूर्ण समयमें उसके गिरनेका भय रहता है। कितनीक स्त्रियां फीकी और सुस्त देखनेमें आती हैं। इसका कारण ऋतु दोषही है। ऐसी स्त्रियां यदि कोई अधिक कार्य करती है या सीढी चढती हैं तो भी थक जाती हैं और उनके शिरमें चक्कर आ जाता हैं व नेत्रोंमें अंधेरी छा जाती है। इस लिये ऋतु-दर्शनके समय बहुत ही सावधानी रखनी चाहिये। ऋतुके समय हिन्दु पारसी प्रभृति सभ्यजातियोंमें स्त्रियोंको पृथक् रखनेकी प्रथा बहुत ही उत्तम है। यदि यह प्रथा न होती तो अनेक आवश्यक नियमोंको स्त्रियां पालन नहीं कर सक्ती, रजस्वला स्त्रियोंको उत्तम स्वच्छ हवा प्रकाश वाली जगहमें रहना चाहिये। उनको चाहिये कि अपने वस्त्र स्वच्छ रक्खें। हाथ पांव सूखे व गर्म रक्खे। ओदी जमीनपर नहीं चलना व खुराक पवित्र व ताजा लेना, मन निर्मल रखना। रजोदर्शन के ३ दिनतक पतिका समागम नहीं करना। अशौच वा ऐसाही कोई आवश्यकीय औसर उपस्थित हो और स्नान करना ही पड़े तो जलमें बैठकर स्नान नहीं करना किन्तु एक पात्रमें गर्म जल भरके स्नान करना चाहिये। और

पवनसे बचनेके लिये तुरंत ही वस्त्र पहिन लेना चाहिये। इसके सिवाय कभी भी स्नान नहीं करना चाहिये।

रजोदर्शनके समय योग्य नियमोंको नहीं पालन करनेसे बालकके ऊपर होने वाली असर—रजस्वला स्त्री दिनमें शयन करती है और उस समय जो गर्भ रहता है वह अतिनिद्रा वाला होता है। अञ्जन लगानेसे अन्धा, रोनेसे नेत्र विकार वाला तथा दुःखी, तेल मर्दन करनेसे कोढी, हंसनेसे उत्पन्न होनेवाले बालकके हौंठ, दांत, जिव्हा व तालू ये काले होते हैं। अधिक बोलनेसे बालक बकवादी, अधिक सुननेसे बहिरा, जमीन खोदनेसे आलसी, पवनके अधिक सेवनसे पागल और अधिक परिश्रम करनेसे एकाद अंगकी अपूर्णतावाला होता है। नख उतारनेसे खराब नखवाला, पत्तिसे जल पीनेके कारण उन्मत्त और छोटे पात्रसे जलपीनेके कारण ठिंगना होता है।

रजस्वला स्त्री कब शुद्ध होती है ?—रजस्वला स्त्रीको चाहिये कि ३ दिनतक किसी पुरुषको मुख न बतावे। चौथे दिन दांत घिसकर सूर्योदय होनेके पश्चात् स्नान करना। उस दिन पतिसेवाके और पांचवे दिन ईश्वर सेवाके योग्य होती है। चौथे दिन स्नान करके प्रथम पतिका मुख देखना चाहिये, क्योंकि वैद्यक शास्त्रमें कहा है कि रजस्वला स्त्री स्नान करने के पश्चात् जैसे पुरुषका मुख देखती है वैसी ही प्रकृति और कीर्तिवाला बालक उत्पन्न होता है। इससे स्त्रीको चाहिये कि प्रथम अपने पतिका मुख-दर्शन करे। यदि पति बाहर गया हो तो सूर्यका ही दर्शन करना चाहिये। इसमें जो जो नियम लिखे गये हैं उन्हें अच्छी तरहसे स्मरण कर उनके अनुसार आचरण करना। ऐसा आचरण करनेसे स्त्रीको उत्तम संतति प्राप्त होती है।

सगर्भा स्त्रियोंके कर्तव्य।

जिसदिन स्त्रीको गर्भ रहता है उस दिन होने वाले चिन्ह—गर्भके रहनेसे शरीर अधिक श्रमसे थक गया हो ऐसा मालूम होता है शरीरमें ग्लानि होती है। जलकी तृषा लगती है। पांवकी पिंडलियोंमें दर्द होता है। प्रसवस्थान फड़कता है, रोंम खड़े होते हैं, सुगंधी चीजें दुर्गंधवाली मालूम होती हैं और नेत्रोंके पलक चिपक जाते हैं ये सब चिन्ह होते हैं। गर्भाधान होनेको एक मास जब होता है तब शरीरमें बहुतसा परिवर्तन हो जाता है। प्रथम रजोदर्शन बंद हो जाता है, किन्तु

नवीन गर्भ धारण करनेवाली स्त्रीको चाहिये कि इस एकही चिन्ह होनेसे गर्भ होनेकी आशा न करे। जिस स्त्रीको एकाधवार संतति हो गई हो और पीछे नियमित होने वाला रजोधर्म बंद होता है तब स्त्री समझ लेती है कि गर्भ रहा। पीछे उकारी आती है, कय होती है; रजोदर्शन बंद होनेके समाचारको वह एक महिनेमें जानती है, किन्तु उकारी और कय कितनीक स्त्रियोंको तुरंत ही और कितनीक स्त्रियोंको मास, डेढ मास चढनेके पश्चात् होते हैं। वे एकदो मास होकर स्वयं बंद हो जाते हैं। समयपर किसी २ को ७ मास तक चलते हैं। गर्भिणी स्त्रीको जो कय होती है वह अन्य कयके समान कष्ट नहीं देती। इसलिये दवा करनेकी कुछ भी जरूरत नहीं। यदि बहुत कष्ट हो तो कोई सरल उपाय करना। जिस गर्भिणी स्त्रीको उकारी व कय होते हैं उसे प्रसूतीके समान अधिक कष्ट नहीं होता। गर्भ रहने के प्रारंभमें मुखसे जल छूटता है व कुछ दिनके पश्चात् स्वयं बंद हो जाता है। क्रमशः स्तन, मुखके आसपासका समस्त भाग प्रथम फीका व पीछे श्याम हो जाता है। स्तनपर प्रस्वेद छूटता है। प्रथम स्तनको दाबनेसे पानीके जैसा व कुछ समयके पश्चात् दूधके समान पदार्थ निकलता है।

रुचि और अरुचि–तीसरे या चौथे महीनेमें रुचि व अरुचि होती है। किसी समय एकाध मास आगे पीछे भी होती है। गर्भाशयका मगजके ज्ञानतंतुके साथ घनिष्ट सम्बध है जिससे गर्भाशयकी असर मगजके ऊपर होती है। यही कारण है कि गर्भिणी स्त्रियोंको भिन्न २ वस्तुओंके खानेका मन होता है। जिस वस्तुको खानेका कभी भी उसका मन नहीं होता हो उसी वस्तुको खानेका मन होता है। जिस वस्तुमें कुछ भी सुगंध न हो उसमें भी उसे सुगंधि मालूम होती है। बेर, इमली, राख, मिट्टी, कंकर, कोयले इत्यादिमें उसे सुगंध मालूम होती है और उसे खानेकी इच्छा होती है। किसी २ स्त्रीको उत्तम २ वस्त्र पहिननेका मन होता है। किसी स्त्रीको उत्तम उत्तम बातें करने और सुननेका मन होता है, और किसी २ को उत्तम पदार्थ देखने की इच्छा होती है।

पेटमें बालकका फिरना व पेटका बढना—चौथे या पांचवें मासमें गर्भ कुछ फिरता है; क्योंकि गर्भ बड़ा होनेसे उसकी गति मालूम होती है। जब तक वह छोटा रहता है तब तक उसकी गति मालूम नहीं होती। उपरोक्त समस्त चिन्ह स्त्रीसे पूछने व देखनेसे मालूम हो सक्ते हैं; किन्तु पेटका बढना प्रत्यक्ष मालूम हो सक्ता है। प्रथम दो तीन मासतक पेट बढा हुवा नहीं मालूम होता; किन्तु ३ मास के पश्चात् बढता है। केवल पेटके बढनेसे ही गर्भ रहा है यह निश्चय नहीं करसक्ते

इसलिये दूसरे चिन्ह जो यहां कहे गये हैं वे होने चाहिये, क्योंकि कभी २ प्लीहा व जलोदरसे भी पेट बढता है ।

गर्भकी पूर्णावस्थाके चिन्ह—जब गर्भिणी स्त्रीके दिन पूर्ण होनेको आते हैं तब बहुमूत्रता, अर्थात् वारम्वार पिशाब होता है । इसमें किसी प्रकारका दर्द नहीं होता । किसीके प्रारंभमें भी बहुमूत्रता होती है उस समय उसे कुछ वेदना होती है। वारम्वार पिशाब होनेका कारण यह है कि गर्भाशय व मूत्राशय ये दोनों समीप हैं जिससे गर्भाशयकी वृद्धि होनेसे मूत्राशयको दबाव होता है यही कारण है कि उसे वारम्वार पिशाब करनेकी जरूरत होती है। यह स्वयं बंद पड़ जाती है। इसके सिवाय गर्भिणीका चहरा प्रफुल्लित रहता है और कितनीक दुर्बल भी होती है ।

प्रतिमासमें गर्भकी स्थिति और उसमें ध्यान देने योग्य बातें—१ प्रथम मासमें स्त्री पुरुषके समस्त अंग एकत्र होते हैं इसलिये उस मासमें मधुर, शीतवीर्य और नरम आहारका अधिक उपयोग करना। २ दूसरे मासमें शीत, बाफ और पवनसे मिले हुये पंच महाभूतोंका समागम होता है इसलिये इस मासमें भी उपरोक्त आहार करना। ३ तीसरे मासमें दो हाथ दो पांव और एक मस्तक इस प्रकार पांच अवययोंका पिंडके समान आकार होता है । उस समय दूसरे अवयव सूक्ष्म रहते हैं। इस समय भी उपरोक्त आहारके सिवाय साठी चावल दूधमें देते रहना। ४ चौथे मासमें गर्भिणीका शरीर भारी हो जाता हैं, गर्भ स्थिर होता है और उसके समस्त अंग खुले दिखायी देते हैं और हृदय उत्पन्न होता है। गर्भ फड़कने लगता है और समस्त अंग उत्पन्न होते हैं। इन पांचों इन्द्रियोंमें ज्ञानशक्ति उत्पन्न होकर उसके विषयोंकी इच्छा होती है। जब गर्भको हृदय उत्पन्न होता है तब अरुचि, शरीरका भारीपन, अन्नकी अनिच्छा, अच्छे बुरे पदार्थोंकी इच्छा होती हैं, स्तनमें दूधकी उत्पत्ति, नेत्रकी शिथिलता, और होंठ तथा स्तन काले होते हैं। पांवपर सोजा मालूम होता है और मुखमें पानी छूटनेके जैसे चिन्ह होते हैं। गर्भका हृदय माताके हृदयके साथ सम्बंध रखता है, इससे माताके हृदयमें रहे हुए रसको बहानेवाली नाड़ीसे गर्भका पोषण होता है। इस समय गर्भिणीको विविध पदार्थ खानेकी इच्छा होती है। उसकी इच्छानुसार वस्तुयें देनेसे बालक वीर्यवान व दीर्घायुवाला होता है। एवं जिन पदार्थोंकी इच्छा होती है उन्हीं पदार्थोंके गुणवाला बालक होता है। यदि उसकी इच्छानुसार पदार्थ न दिये जावें तो बालक अनेक अपूर्णतावाला उत्पन्न होता है। खराब व भयंकर वस्तुओंको देखनेसे खराब लक्षणवाला होता हैं। अतएव जिस प्रकार उत्तम वस्तुओंकी इच्छा हो, और उत्तम वस्तु देखनेमें आवे उस प्रकारका प्रबंध करना चा-

हिये। विकारवाले पदार्थ गर्भका नाश करते है, इसलिये इन पदार्थोंका त्याग करना चाहिये। ५ पांचवें मासमें गर्भाशयमें बालकको संकल्प विकल्प करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है। मांस व रुधिरकी अभिवृद्धि होती है जिससे गर्भिणीका शरीर अत्यंत दुर्बल हो जाता है। उस समय स्त्रीको घृत व दूध खानेके साथ देते रहना चाहिये। ६ छट्ठे मासमें बालकको निश्चय करनेकी शक्ति होती है और उसके शरीरके बल तथा वर्णकी वृद्धि होती हैं। इस समय उसे कांजीके साथ घृत तथा दूधका खुराक देना चाहिये। ७ सातवें मासमें बालकके अंग खुले दिखायी देते हैं उसके अंग पुष्ट होते है जिससे गर्भिणी दुर्बल होती है। इस समय भी उपरोक्त रीतिसे खुराक लेना चाहिये। आठवें मासमें ओजधातु स्थिर होता है। गर्भके साथ सम्बन्ध रखनेवाली नाड़ीसे माता गर्भका और गर्भ माताका ओज वारम्वार गृहण करता है। इससे गर्भिणी किसी समय हर्षयुक्त और किसी समय हर्षरहित होती है! ओजकी स्थिरताके अभावके कारण इस मासमें गर्भ अत्यंत पीड़ाको प्राप्त होता है। अतएव इस समय गर्भिणीको चाहिये कि भातके साथ घृत व दूध मिलाकर खाया करे। ९–१० मासमें गर्भमें रहा हुवा बालक उदरमें ही ओज सहित स्थिर होकर रहता हैं। इससे पुष्टिके लिये घृत व दूध जैसे उत्तम पदार्थोंका खाना आवश्यक है, इससे गर्भकी अभिवृद्धि होती है।

त्याग करने योग्य विपरीत पदार्थ—विपरीत पदार्थोंके खानेसे उदरमें गर्भका नाश होता है व बहुत दिनके पश्चात् जन्म होता है। इससे गर्भिणीके प्राण जानेकी सम्भावना है। इसलिये विपरीत पदार्थ नहीं खाने चाहिये। गर्भिणी नवमें या दसमें मासमें प्रसूती होती है। इसके अतिरिक्त और भी कई बातें ध्यान देने योग्य हैं जिनका वर्णन नीचे किया जाता हैं।

गर्भिणी स्त्रीके लिये आवश्यक सूचनायें---स्त्रीको जितने दर्द देनेवाले कारण साधारण अवस्थामें असर करते हैं उससे दसगुणी असर गर्भावस्थामें करते हैं। इसलिये गर्भिणीको स्वच्छ खुली हुइ हवाकी आवश्यक्ता है। सघन और गंदी वस्तीकी जगहसे उसे बचाना चाहिये। प्रतिदिन खुली हवामें चलने फिरनेकी आदत्त रखनी चाहिये जिससे अंग हल्का रहे और प्रसूतिमें दुःख न हो। इसके सिवाय गृहकार्य भी अवश्य करना चाहिये. आलसमें दिन नहीं व्यतीत करना चाहिये। आलसी बनकर पड़े रहनेसे प्रसव–कालमें बहुत दुःख होता है। परन्तु जिसमें थकावट हो ऐसा काम भी नहीं करना चाहिये। बांके होकर काम–काज नहीं करना और न कोई भारी बोझ ही उठाना चाहिये। पेटको दबाव पड़े ऐसा कोई काम नहीं करना अथवा बोझ नहीं उठाना। घरमें पड़े रहनेसे, फुरती तथा परि-

श्रम न करनेसे और खुली हवा नहीं लेनेसे गर्भिणी स्त्रीको अनेक प्रकारके दर्द उत्पन्न होनेकी सम्भावना है और उससे रोगी बालककी उत्पत्ति होती है। गर्भिणी स्त्रीको खाने-पीनेका विशेष ध्यान रखना चाहिये। भारी और अजीर्ण होनेवाले पदार्थ त्याग देना चाहिये। मिष्टान्न पदार्थ भी नहीं खाना चाहिये। स्त्री सगर्भा है इसलिये उसे अधिक खाना चाहिये, ऐसा विचार भूल है। गर्भारंभमें स्त्रीको ज्वर आता है, कय होती है यह प्रायः अधिक भोजन करनेका ही परिणाम है। ऐसे समय गर्भिणीको विशेष विचारसे रहना चाहिये; क्योंकि अजीर्ण होने अथवा वारम्वार दस्त होनेसे गर्भको हानि पहुंचनेकी सम्भावना है इतना ही नहीं; किन्तु उसके गिर जानेका भी भय रहता है। वासी भोजन नहीं करना, यदि खानेमें आ जावे तो पेटमें वायु उत्पन्न होकर पीड़ा होती है। तेलसे छौंके हुये और अधिक मिरचींवाले सागको नहीं खाना चाहिये, क्यों कि उससे खांसी होती है। साधारण स्त्रीकी अपेक्षा गर्भिणी स्त्रीको बीमार होनेमें कोई देर नहीं होती। इसलिये हजम होसके वैसा और उतना ही भोजन करना चाहिये। पौष्टिक खुराककी बहुत आवश्यक्ता है, परन्तु जिससे पेटपर दवाव पड़े और कुपच हो इतना नहीं खाना चाहिये। उपवास करनेसे गर्भके बालक और माता दोनोंको हानि है; क्योंकि पोषण न होनेसे बालककी गति बंद पड़ जाती है और सुस्त पड़ जाता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि गर्भ जितना साधारण दिनोंमें फडकता है उतना उपवासके दिनमें नहीं फड़कता है; क्योंकि पोषण न मिलनेसे घबराकर सुस्त हो जाता है। इसलिये गर्भिणी स्त्रीको उपवास नहीं करना चाहिये। खुराक अनियमित रीतिसे नहीं लेना और भाव कुभावको मनमें दाबे रहना चाहिये। जिस वस्तुसे हानि नहीं है उसी वस्तुको खाना चाहिये। जो जीमें आवे उसे खानेसे सिवाय हानिके लाभ नहीं होता। हलका भोजन करना चाहिये। जिस स्त्रीका शरीर बलवान और रुधिरपूर्ण हो उसे जहां तक हो सके कांजी, दूध, घृत और वनस्पतिका हल्का भोजन लेना चाहिये, गरम भोजन नहीं करना, खटाई, कच्चे फल, अतिखारा, अति तीखा, रूखा, ठंडा, अति कडुवा, बिगड़ा हुवा, बासमारनेवाला, वादी पदार्थ, सड़ी वस्तु, सुपारी, मट्टी, धूल, कंकड, राख, कोयला आदि विकारी वस्तुयें हैं। इस लिये इन चीजोंको मनके चाहनेपर भी नहीं खाना चाहिये। गर्भिणी स्त्रीको तीव्र जुलाब नहीं लेना चाहिये। यदि कोई दर्द हो तो स्वयं अपने मनसे औषधि न करके किसी निपुण वैद्य अथवा डाक्टरसे सलाह लेकर दर्दका नाश करना चाहिये। उसे बढने नहीं देना चाहिये।

शरदीसे शरीरको बचाना। जागरण नहीं करना। शीघ्र सोना और प्रातःकाल

जल्दी उठना। चिन्ता, शोक प्रभृतिको दूर रखना। भयंकर दृश्य नहीं देखना। भयंकर अकस्मातोंके पास खड़े नहीं रहना। गर्भिणीके प्रसवके समय उसके पास नहीं जाना। प्रकृतिको शान्त रखना। नापसंद बातें नहीं करना। उत्तमोत्तम बातोंसे मनको प्रसन्न करना। धर्म व नीतिकी बातोंको सुनकर मनको दृढ बनाना। मनको हिम्मत देना। जिन बातोंके सुननेसे भय व ग्लानि उत्पन्न हो ऐसी बातें नहीं सुनना, नियमसे रहना। अलंकार धारण करना। सावधानीसे पतिके प्रियमें प्रेम रखना। अपने धर्ममें प्रेम रखना। पवित्रतासे रहना मधुर वचन धैर्यसे बोलना। ईश्वर-भक्तिमें चित रखना। मनको धर्म व नीतिमें रखनेके लिये उत्तम २ पुस्तकें पढना। पुष्पकी माला पहिनना। सुगंधित चंदनका लेप करना। स्वच्छ घरमें रहना। परोपकारमें रुचि रखना। सास स्वशुर व गुरुजन पडोसीकी मर्यादा रखकर उनकी सेवा करना। मस्तकमें कुंकुमकी बिंदी व नेत्रमें अंजन प्रभृति सौभाग्यसूचक चिन्ह धारण करना। कोमल व स्वच्छ वस्त्रादिसे आच्छादित शय्याके ऊपर सोना व बैठना। उत्तम गुणवाली वस्तुओं पर भाव रखना। धार्मिक, नीतिवान, पराक्रमी, बलवान, इत्यादि गुणवाले स्त्री-पुरुषोंके चरित्रका मनन करना और ऐसे ही उत्तम गुण सम्पन्न तथा स्वरूपवान अपना गर्भ हो ऐसी मनमें भावना रखना। अवतारी व उत्तम चरित्र-वाले प्रसिद्ध स्त्रीपुरुष, मनोहर पशु, पक्षी व उत्तम वृक्षोंके सुंदर सुशोभित चित्र इत्यादिसे अपने सोने बैठनेके कमरेको सजाकर मन प्रसन्न रहे इस भांति रहना सुंदर व मनोरञ्जन गीत गाकर और सुनकर मनको सदैव आनन्दित रखना। मनमें उद्वेग, अतिहर्ष और शोक उत्पन्न हो ऐसा देखना, सुनना या करना नहीं। पश्चात्ताप न करना और जहांतक हो पश्चात्ताप हो ऐसा कोई काम नहीं करना। मलीन नहीं रहना। विवादका त्याग करना। दुर्गुणसे दूर रहना। लूले, लंगड़े, काने, बहरे, और मूक मनुष्य तथा रोगी मनुष्यका स्पर्श नहीं करना और उन्हें देखना भी नहीं। घरमें अकेली रहना, स्मशानका आश्रय, क्रोध, ऊंचे चढना, गाड़ी घोड़ा आदि वाहन पर बैठना, उच्चस्वरसे बोलना, नशा करना, शीघ्रतासे चलना, दौड़ना, कूदना, दिनका सोना, मैथुन, जलमें डुबकी मारना, शून्य घरमें रहना, वृक्षके नीचे बैठना, क्लेश करना, खून निकालना, नखसे पृथ्वीमें लकीरें खींचना, अमंगल व अपशब्द बोलना, अधिक हंसना, केश छूटे रखना, वैर, विरोध, द्वेष, छल, कपट चोपड़, जुवा, मिथ्यावाद, हिंसा और कुसंग इन सबका त्याग करना; क्योंकि ये सब गर्भिणी स्त्री व उसके गर्भको हानि करनेवाले हैं! गर्भके उत्तम व कनिष्ठ होनेका सम्पूर्ण आधार स्त्रीका आचरण है। इस विषयमें और भी कई बातें हैं जैसे कि बालक स्वरूपवान, गुणवान, बुद्धिवान और

अंगोंसे सुशोभित किस प्रकार हो? यह विस्तारसे कहा जायगा। अतएव गर्भिणी स्त्रीको चाहिये कि उन नियमोंका उत्तम प्रकारसे पालन करे।

शिक्षित स्त्रीसे लाभ।

भूपति भूसुर भामिनी, जब लौं हैं अज्ञान।
तब लग भारतवर्षका, कबहूं न हैं कल्यान॥

जिस प्रकार इस संसारमें स्त्री यह घरका शृंगार हैं उसी प्रकार शिक्षित स्त्री सम्पूर्ण देशका शृंगार हैं। बालकोंकी शिक्षा स्त्रीके हाथमें है। बालक जन्म लेता है और जब तक कुछ समझदार नहीं होता तब तक अधिकांश समय मांके पासही व्यतीत करता है। जैसे माताके बुद्धि, आचार, आचरण, ज्ञान, विचार और नीति होते है, उसी प्रकार बालकमें भी ये गुण आते हैं। जिस प्रमाणमें माता हृदय, बुद्धि आदिसे शिक्षित हो उसी भांति उसका बालक भी होगा। केवल इतना ही नहीं, किन्तु व्यव हारसे क्लेशित हुए अपने पतिको अपने सौंदर्य और मधुरवचनोंके द्वारा प्रसन्न करती है और सहायता कर उसकी शक्ति की अभिवृद्धि करती है। मित्ररूपसे उसकी सुख दुःखकी बातें सुनती है, गृह राज्यको चलाती है। इससे पतिको घरकी कोई भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। वह अपने अन्य कार्योंको अच्छी तरह कर सक्ता है। शिक्षित स्त्री घरों घर प्रेम, एकता और देश भक्तिका प्रचार करती है। इस प्रकार शिक्षित स्त्री देश व समाजको बहुत कुछ लाभ पहुंचा सक्ती है, जिसके उदाहरण पृथ्वीपर अनेक मिल सक्ते हैं। पढी–लिखी स्त्रीको देखकर मूढ मनुष्यको भी लिखने पढनेकी इच्छा होती है। बालक शिक्षित माताके पाससे उत्तम रक्षा व शिक्षाको पाकर भविष्यमें देशके लिये भूषणरूप होते हैं। ऐसे बालकोंसे देशकी पूर्णोन्नति होती है। पृथ्वीमें किसी भी देशकी स्थितिका अनुमान उस देशकी स्त्रियोंकी स्थितिपरसे किया जा सक्ता है। संसारकी स्थितिका प्रधान आधार स्त्रियोंके ऊपर रहा हुआ है। वास्तवमें उत्तम स्त्रियोंकी सत्ता यही सुधारका प्रधान लक्षण है। अत एव जहांतक स्त्रीजाति शिक्षित होकर नहीं सुधरेगी वहां तक पुरुषका सुधार व ज्ञान कुछ कामका नहीं। जब स्त्री पुरुष सुधरकर परस्परके कर्तव्यका पालन करेंगे तभी प्रेमका रंग जमेगा। तभी सब प्रकारसे सुख व सम्पत्ति मिलेंगे। जहां पुरुष शिक्षित व स्त्री अशिक्षित है वहां मनका मिलना असंभव है। जहांतक दोनोंके गुणोंमें समा-

नता नहीं है वहां सब प्रकारसे दुःख ही समझना चाहिये। एक साधारण नियम है कि स्त्री अशिक्षित हो और पुरुष शिक्षित या स्त्री शिक्षित और पुरुष अशिक्षित हो तो उन दोनोंका मन कभी नहीं मिल सक्ता। जब मन ही नहीं मिलते तो संसारके सुखोंका सम्पादन करना असंभव है। एक कविने कहा कि **समाने शोभते प्रीतिः।** समान स्वभाववालोंमें ही प्रीति हो सक्ती है। फिर भी एक कवि कहता है कि: **रक्तमेक विरक्तं च ततो दुःखतरं नु किम्॥** स्त्री पुरुषमेंसे एक आशक्त और दूसरा विरक्त हो तो उससे दूसरा अधिक दुःख क्या हो सक्ता है? संसारमें मनुष्यके ऊपर जितने दुःख पड़ते है उसे कर्मका दोष कहकर सहनकर सक्ते है; किन्तु कुभार्याके समागमका दुःख असह्य है। जिसके घरमें अशिक्षित, मूर्ख, प्रमादी स्त्री है उसके पुरुषका संसार बिगड़ता है व नष्ट हो जाता है। बालक खराब उत्पन्न होते हैं कुटुम्बमेंसे सुख, सहानुभूति एकता और सम्पत्ति इन सबका नाश हो जाता है। शिक्षित स्त्री अपने योग्य कर्तव्यका पालन करती है, उसे कर्तव्यके पालन करनेके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यक्ता ही नहीं होती। जिस प्रकार नेत्रमें रज-कण गिरनेको आते हैं और उसको जैसे पलक रोक लेते हैं उसी प्रकार स्त्री स्वयं समझकर व्यवहार करती हैं। परस्पर सदैव स्त्री—पुरुष संतुष्ट रहते हैं और एक दूस-रेको देखकर सदैव आनंदित रहते हैं। जिस प्रकार चकोरी चन्द्रको देखकर प्रसन्न होती है, उसी प्रकार सज्जन मनुष्य सज्जनको देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

शिक्षित व सद्गुणी स्त्री ससुरगृह आते ही पतिसे कहती है कि, "प्राणेश्वर! आजसे मैं आपकी सुख दुःखकी हिस्सेदारिन हूं। आपकी इच्छासे विपरीत नहीं च-लूंगी। आप मेरे प्रियतम—पति व सच्चे मित्र हैं। मैं आपकी सदैवकी साथी व विश्वास पात्र दासी हूं। मेरा तन, मन व धन सब कुछ आप ही हैं मेरे लिये आप साक्षात् ईश्वर हैं मैं आपकी सदैव आराधना करती रहूंगी। आपके साथ रहकर सदैव इस प्रकार आचरण करूंगी कि जिससे अपना यश हो और अपनी संततिका श्रेय हो। हम दोनों मिलकर ऐसा यत्न करेंगे कि जिससे हमें परमेश्वरकी प्रसन्नता और परम सुखकी प्राप्ति हो"। अहा! ऐसे वचन शिक्षित स्त्रीके अंतःकरणके सिवाय दूसरे किसीके अंतःकरणसे निकल सक्ते?! कहावत भी है कि, "दुनियांका अंत घर और घरका अंत स्त्री" यह सत्य ही है। परन्तु अशिक्षित, अज्ञान और मूर्ख स्त्रीवाले घर भयंकर सिंह, व्याघ्रादिसे भरे हुए जंगलके समान है। शिक्षित, सद्गुणी स्त्री घर-को स्वर्ग समान सुखदायी बनाती है। इस प्रकारकी बातें विचारने योग्य स्त्रियोंको बनानेके लिये उन्हें शिक्षित बनाना बहुत आवश्यकीय है। स्त्रियोंके शिक्षित होनेसे

अनेक प्रकारके उत्तम फल प्राप्त होते हैं। जैसे पृथ्वीके उत्तम बननेसे श्रेष्ठ अन्न प्राप्त होता है उसी प्रकार स्त्री शिक्षिता होनेसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। स्त्रीकी शोभाकी वृद्धि करनेके लिये उसे अवश्य शिक्षा देनी चाहिये।

कितनेक मनुष्योंका मत है कि, "स्त्रियोंको शिक्षा देनेसे वे स्वतंत्र बन जाती हैं, लिखने पढनेसे वे कुकर्म करेंगी; क्या उनको कहीं कमानेके लिये जाना पड़ता है?" इस प्रकार कहना मूर्ख मनुष्योंका काम है; क्योंकि शिक्षिता स्त्री अवगुणोंको त्यागनेवाली होती है फिर उसमें ऐसे दोष कहांसे आ सक्ते हैं? जो स्त्रियां बिगड़ती हैं इसमें शिक्षाका कोई दोष नहीं हैं; किन्तु स्त्रियोंके स्वभावका ही दोष है। जिसका स्वभाव जन्मसे ही खराब रहता है और फिर खराब समागम मिलता है साथ ही उसको अपूर्ण शिक्षा मिलती है जिससे शिक्षाकी असर उसपर नहीं होती ऐसे कारणोंसे यदि कोई पढी लिखी खराब निकले तो इसमें शिक्षाका क्या दोष है? विद्या सदैव पवित्र है। क्या अशिक्षित स्त्रियां दुराचारी नहीं होती? दुराचार करनेके साथ पढने लिखनेका कुछ भी संबंध नहीं। जिस स्त्रीको धर्म, नीतिका बोध नहीं है, वह स्त्री खराब समागममें पड़कर कुकर्म करती है। जिस स्त्रीको धर्म व नीतिकी शिक्षा मिली है वह कभी भी अपने शिलव्रतका भंग नहीं कर सकती। जो स्त्री पढ लिखकर भी दुराचार करती है उसे हम शिक्षित स्त्री नहीं कह सक्ते। दुराचार और शिक्षासे कोई सम्बंध नहीं है। स्त्रीको नोकरी करनेके लिये ही शिक्षा नहीं दी जाती; किन्तु शिक्षाका उपयोग गृहकार्य, व्यवहार चलाना, बालकोंकी रक्षा करना व शिक्षा देकर उन्हें मानवरत्न बनाना, पतिकी सहायक बननेके लिये और जीवनका सच्चा सार्थक करनेके लिये ही शिक्षा उपयोगी है। स्त्रीका मन पुरुषकी अपेक्षा कोमल है इसलिये बालापनहीसे उत्तम समागम और नीतिशिक्षा आदिके उसके अंतःकरणमें अंकुर उत्पन्न करनेसे फिर वह जीवन पर्यंत अपने स्वभावका परिवर्तन नहीं कर सकती। स्त्रियां यदि विद्या पढनेसे ही खराब होती हैं तो वैसी स्त्रियां जिन्होंने इस संसारमें अद्भुत पराक्रम और अपने यशकी वृद्धि की है कहांसे हो सक्ती थी? प्राचीन कालमें स्त्रियोंको विद्या पढानेका विशेष रुपसे ध्यान दिया जाता था। आजकलके समान मूर्ख नहीं रक्खी जाती थीं। सती पार्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गार्गी, मैत्रेयी, सरस्वती, कपिला, चिरधारिणी, जटिला, केशिनी, लीलावती, सुलभा, शकुंतला, दमयंती, द्रौपदी, तारामती आदि स्त्रियां शिक्षिता थी; इतना ही नहीं, किन्तु उन्होंने अपनी कीर्तिको अमर किया है। गार्गी तत्ववेत्ता और भड़ली भविष्यवेत्ताके लिये प्रसिद्ध हो गयी हैं। लीलावतीने लीलावती नामक गणितके गहन ग्रंथका निर्माण किया है। सरस्वतीने अंकसंज्ञा और अक्षररचना करके भाषाकी

उत्पत्ति की है। सुलभा रसशास्त्रमें श्रेष्ठ गिनी जाती थी। इत्यादि स्त्रियोंने अपनी विद्वत्ताका चमत्कार बतलाया है। क्या यह बात झुठ है? जिस स्त्रीने उत्तम शिक्षा प्राप्त की है वह अन्य कुमार्गगामिनी स्त्रियोंको सुबुद्धि देकर उनके आचरणका परिवर्तन कर सक्ती है, तो इस दशामें उसकी मतिको कौन भंग कर सक्ता है? अर्थात् कोई नहीं। गुसांई तुलसीदासजीने कहा है कि;—

तुलसी उत्तम प्रकृतिको, कहा कर सकत कुसंग।
चन्दन विष लागे नहीं, लिपटे रहत भुजंग॥

जैसे रत्न दीपकको वायु बुझा नहीं सक्ता उसी प्रकार शिक्षित और शील-गुणादिसे सम्पन्न स्त्रीकी मतिको कोई भी चलायमान नहीं कर सक्ता।

सीताजीको रावणके समान दुर्मतिने अनेक कष्ट दिये थे; किन्तु उसने अपने शील और धर्मका त्याग नहीं किया। अश्विनीकुमारने सुकन्याकी परीक्षा लेनेके लिये अनेक प्रकारसे समझायी परन्तु उसने अपने शीलका भंग नहीं होने दिया। उसी प्रकार मैत्रेयी, गार्गी आदि सुशिक्षिता स्त्रियोंने विद्वानोंकी सभामें जाकर शास्त्रार्थसे अपनी कीर्तिकी स्थापना की है, किन्तु अपने शील, धर्मसे कभी चलायमान नहीं हुई। विद्वानोंने उनका सादर सन्मान किया है। इस प्रकार जो स्त्रियां उत्तम शिक्षाको प्राप्त होती हैं वे कदापि कुमार्गमें भूलकर भी पैर नहीं धरतीं। उनका प्रताप ही अलौकिक है। इसलिये स्त्रियोंको अपने धर्म, नीति, व्यवहारादिमें अनुकूल होनेके लिये शिक्षा अवश्य देनी चाहिये। इतना ही नहीं वरन् उन्हें बालापनाहीसे उत्तम संगति और सती स्त्रियोंके चरित्रोंकी ओर आकर्षित करना चाहिये। स्त्री—धर्म समझाना चाहिये। गृहकार्य व्यवहारादिमें निपुण व उपयोगी बननेके लिये शिक्षा देनी चाहिये। इस प्रकार शिक्षा देनेसे वे स्त्रियां भविष्यमें उत्तम और सद्गुणी बनेंगी और अपने घर तथा कुलको दीपकके समान उज्वल करके देशमें यशका विस्तार करेंगी।

वर्तमान समयकी स्त्री-शिक्षा।

उस देशके बड़े ही दुर्भाग्य हैं कि स्त्रियोंको भी पुरुषके समान शिक्षा दी जाती है। यूरोपके अनुकरणपर शिक्षा देनेसे कुछ भी लाभ न होकर हानि ही होनेकी सम्भावना है। आप देखिये कि पाठशालाओंमें स्त्रियोंको जो शिक्षा दी जाती है क्या वह आर्यधर्म्मकी नीति रीतिके अनुसार है? क्या शिक्षा देनेवाले स्वयं शिक्षा

देने योग्य हैं? और शिक्षा देनेके अन्य साधन चाहिये वे क्या इस समय उपस्थित हैं? वर्तमान समयमें सुकुमार कन्याओंके कोमल हृदयको ग्लानि देनेवाले अनेक विषय सिखाये जाते हैं और उनमें कई विषय ऐसे भी हैं जो केवल पुरुषोंके लिये उपयोगी हैं। फिर अमुक विषयोंको १ ही वर्षमें याद करके परीक्षामें उत्तीर्ण होना चाहिये। इस प्रकार परीक्षामें उत्तीर्ण होनेकी लोलुपतासे कन्याओंको शिक्षणीय विषयोंका पूर्ण ज्ञान न देकर ऊपरी भावसे याद करानेकी कोशिस की जाती है। परीक्षाकी इस प्रकार लोलुपता रहनेके कारण कन्याओंके मनके ऊपर अवधिके उपरान्त बोझा आपड़ता है जिससे उनके तन व मन निर्बल हो जाते हैं और उनकी वास्तविक स्थिति नष्ट हो जाती हैं। फिर वह अचिरस्थायी दिया हुआ ज्ञान उनके विद्यालय छोड़नेके पश्चात् कुछ भी काम नहीं आता। गृह-कार्य, गृह-व्यवस्था, बाल-रक्षा, बाल-शिक्षा, पतिके समयपर उपयोगी हो ऐसा ज्ञान, व स्त्रीधर्म नीति प्रभृतिके विषय जो उसे बड़ी उमरमें काम आने वाले हैं, जिन विषयोंके उपरसे उसे जीवनमें बहुत कुछ नया सीखना चाहिये और जो विषय लोगोंकी सांसारिक स्थितिमें उपयोगी हैं उन विषयोंको छोड़कर केवल व्यर्थके विषयोंको सिखाकर सुकुमार कन्याओंको आलसी व कायर बनाते हैं। जिससे इस देशके लोगोंकी अवस्था, रीति, रिवाज आदिपर ध्यान देते हुए उनके किसी प्रकार उत्तम चिन्ह दृष्टिमें नहीं आते। यदि यही पद्धति चालू रही तो भविष्यमें उत्तम फल होनेकी सम्भावना नहीं। इस समय जो शिक्षा हमारे देशकी स्त्रियोंको दी जाती है वह इस प्रकारकी है कि जिससे स्त्री जातिकी स्वाभाविक कोमलता मर्यादा प्रभृतिका प्रायः नाश हो रहा है। इस समयकी शिक्षित स्त्रियोंको अपना गृहकार्य पसंद नहीं है; साथ ही वे पुरुषोंके साथ इधर उधर हवा खानेके लिये जानेको आतुर रहती हैं। शिक्षाका फल यह होना चाहिये कि स्त्रियां शील, संतोष, शांति, दया, क्षमा, धैर्य, मर्यादा, सभ्यता, सत्य, पतिव्रत, नम्रता, विनय, विवेक, बड़ोंकी सेवा, गृहकार्य, बालरक्षा व परोपकार प्रभृति सद्गुण युक्त बने। वर्तमान समयकी स्त्रीशिक्षा द्वारा कुछ विपरीत ही हो रहा है।

यदि यूरोपकी शिक्षाको आदर्श मानकर इस देशकी स्त्रियोंको शिक्षा दी जायगी तो इस देशके लिये वेही भयानक दिन आवेंगे कि जो इस समय उस देशके लिये उपस्थित हैं। स्त्रियोंको शिक्षा देकर पुरुषके समान बनानेकी चेष्टा करना यह बहुत ही बड़ी भूल है। ऐसी शिक्षासे देशका उदय न होकर उसका अस्त ही होगा। स्त्रियोंको पुरुषोंके समान शिक्षा देनेका परम विरोधी डाक्टर स्माइलस कहता है कि, "स्त्री-शिक्षा व स्त्री सुधारसे प्रत्येक प्रजाके आचरण उत्तम होते हैं यह बात ठीक

है; किन्तु राजनैतिक व व्यावहारिक जैसे महान् कार्यमें पुरुषोंके साथ स्त्रियोंको लगादी जायगी तो कुछ भी लाभ नहीं होगा। स्त्रियोंका खास कार्य जिस प्रकार पुरुष नहीं कर सक्ते, उसी प्रकार पुरुषोंके खास कार्य स्त्रियां नहीं कर सक्ती। जहांपर स्त्रियोंको गृहकार्यसे हटाकर बाहरी कार्योंमें प्रविष्ट होने दी है वहांपर अत्यंत अनर्थ हुवा है"। इस विद्वान्का कथन अक्षरशः सत्य है। फ्रांसमें जो महान् उपद्रव हुवा था इस बातको कौन नहीं जानता? आज इगलेण्ड भी इसका स्वाद ले रहा है। सहस्रों बालक माताओंसे पृथक् हो इधर उधर मारे २ फिरते हैं और उनमेंसे कई मृत्युके शरण होते हैं। कितनेक पुरुष अपने घर संसारके सुखोंका अनुभव नहीं करने पाते इसका परिणाम क्या आवेगा? वह हम नहीं कह सक्ते। वहांके विद्वान् इस स्थितिको देखकर अत्यंत अधीर हो गये हैं। अब स्त्रियोंको पुरुषोंके समान शिक्षा देनेसे यह अनिष्ट हुवा है। इस बातको जाननेपर भी अब उसका वे प्रतिकार करनेमें असमर्थसे बनरहे हैं। जब वहांकी यह दशा है तब हम उन्हींके अनुकरणपर अपनी कन्याओंको शिक्षा देनेको क्यों तैयार हो रहे हैं? स्त्री और पुरुषको समान शिक्षा देना यह तन मनकी रचनाको देखकर कहना पड़ता है कि यह कार्य विपरीत है। ईश्वरने दोनोंकी प्रकृतिमें बहुत कुछ भेद रक्खा है। पुरुषका हृदय कठिन है; उसमें साहस, धैर्य, हिम्मत, बुद्धिके गुण व विचार शक्तिका अंश अधिक है। वह न्यायमें, बलमें, परिश्रम करनेमें और बाहरी कार्य करनेके योग्य हैं। स्त्रीकी प्रकृतिमें कोमलताका अंश अधिक है वैसे ही उसके हृदयके गुण और ही प्रकारके हैं। स्त्री स्वभावतः अधीर, निर्बल, मनकी कमजोर, दयालु, प्रेमी, उत्साही, लावण्यता, इत्यादि गुणयुक्त है। इस प्रकार दोनोंकी प्रकृतिमें भेद देखा जाता है। पुरुषने शीत धूप और वर्षा सहनकर परिश्रम करनेका कार्य अपने सिरपर लिया है और स्त्रीको घर सम्हालनेका और बालकोंकी रक्षा व शिक्षा देनेका कार्य सौंपा है। यह व्यवस्था यथार्थ है। इस व्यवस्थामें उपयोगी हो सके ऐसी ही उसे शिक्षा देनी चाहिये। फिर स्त्रियोंको भी पुरुषके समान कठिन व अनुपयोगी शिक्षा दे पुरुषके समान कार्य करने योग्य बनाना यह अत्यंत शोचनीय है। इस देशमें यूरोपके अनुकरणपर शिक्षा देनेसे कुछ भी लाभ नहीं होगा। इस समय जो शिक्षा स्त्रियोंको दीजारही है उससे कुछ भी लाभ हुआ हो ऐसा उदाहरण एक भी नहीं है। इस समय जो स्त्रियां शिक्षित कहलाती हैं उनका आचरण हमारे देशवाशियोंको कहां तक रुचिकर हुवा है इसको पाठक स्वयं ही समझ सक्ते हैं। वर्तमान समयकी शिक्षा जो यूरोपके अनुकरणपर दी जाती है वह स्त्रियोंको स्वतंत्र बनाती है। वहांके धर्म, नीति व आचार

व्यवहार एवं गुण पृथक् हैं; यहां स्त्रियां अपने यहांके सामाजिक नियमानुसार स्वतंत्र नहीं हैं साथ ही इस देशकी अन्य प्रथायें व गुण यूरोपसे पृथक् हैं। हमारे देशकी स्त्रियोंको यूरोपके अनुकरणपर शिक्षा देनेके चारों ओरसे आन्दोलन खड़ा हुआ है। स्त्री पुरुषकी स्थिति, रचना, स्वाभाविक मनका बल व शक्तिका विचार करनेसे स्त्री पुरुषकी समानता कर सके इस योग्य ईश्वरने उसे नहीं बनाई; साथ ही स्वतंत्र व्यवसाय कर वह अपना निर्वाह करनेके लिये असमर्थ है फिर भी उन्हें कई व्यर्थके विषय तैय्यार करानेकी लोलुपताने कोमल अंगोपर अभ्यासका बोझा अधिक रखदिया है। इसका परिणाम भी बहुत बुरा होगा। इस प्रकार स्त्रियोंको शिक्षा देनेसे उनके कोमल अंग शिथिल होकर अनेक रोगोंके शरण होंगे; जिससे उसका जीवन व्यर्थ हो जायगा।

हरबर्ट स्पेन्सर नामक विद्वान् कहता है कि, "पुत्रीको अधिक सुंदर और मनोहर बनाना हो तो उसे अनुपयोगी अधिक शिक्षा नहीं दे। उसके मनपर अधिक बोझा रखना उचित नहीं है। पुरुषको प्रसन्न करनेवाला गुण, शिक्षा नहीं किन्तु उसकी सुंदरता, चपलबुद्धि व उसका उत्तम स्वभाव है। इतिहास, भूगोल, गणित, संस्कृतभाषा, रसायनशास्त्र प्रभृतिके अधिक ज्ञानसे कोई पुरुष स्त्रीपर मोहित नहीं होगा; किन्तु उसमें उसकी सुंदरता, उसका हँसमुख व उसके चंचलनेत्र ही उसको मोहित करने वाले हैं। यदि उपरोक्त गुण न हों और वह विदुषी भी हो फिर भी उसके साथ कोई विवाह नहीं करना चाहता। शरीरके उत्तम रहनेसे ही स्त्रियोंमें चंचलता व सुंदरता रहती है और उसका स्वभाव भी आनंदी रहता है। ये गुण अधिक अध्ययनसे नहीं आसक्ते। इसलिये स्त्रियोंके शरीरकी रक्षा करके ही उन्हें शिक्षा देनी चाहिये। कोई ऐसा कहेंगे कि इन बातोंसे वृत्ति विपरीत हो जाती है, किन्तु ऐसे कहनेवाले मनुष्य कुदरतकी योजना व खूबी नहीं समझ सक्ते। कुदरतकी यही इच्छा है कि प्रजा सुखी रहे।" ऐसे २ विद्वानोंके विचारोंके देखनेसे मालूम होता है कि वर्तमान समयमें जो स्त्रियोंको शिक्षा दी जाती है वह उपयोगी नहीं है। वर्तमान समयकी शिक्षामें परिवर्तन करनेके लिये प्रस्ताव हो रहे हैं। गुजरातके विद्वान् कवि नर्मदाशंकर कहते हैं कि, "वर्तमान समयकी शिक्षाको प्राप्त करके कोई भी स्त्री उत्तम विदुषी मानने योग्य नहीं है। बहुत समयके अनुभवसे हमने इस बातको समझलिया है कि कई लडकियोंनें अपने लिखने पढनेका दुरुपयोग किया है। लडकियोंको योग्य शिक्षा नहीं दी जाती। जो अध्यापिकाका कार्य करती हैं उस में भी आजतक कोई आदर्शनीय नहीं हैं। कुछ सुधारक दलके लोग अपने कुटुम्बकी स्त्रियोंको पढानेका आग्रह रखते हैं और कई पुराने विचारके मनुष्य शिक्षित स्त्रियोंको आश्चर्यकी दृष्टिसे

देखते हैं। कुछ स्त्रियां अपनेको शिक्षित व सुधरी हुई समझनेका अभिमान करती हैं; किन्तु अभीतक जिसे हम आदर्श–माता कहकर पुकारें ऐसी स्त्रियां तैयार नहीं हुयी " हम अपने गृहस्थाश्रमको आदर्श बनाना चाहते हैं; किन्तु इस बातका हम आग्रह रखते हैं कि हमारा आदर्श वही पुराना भारत हो। हम यूरोपकी शिक्षाकी निंदा नहीं करना चाहते; किन्तु हम अपनी कन्याओंको वह शिक्षा दिलाना नहीं चाहते। हम स्त्रियोंको पढने लिखने योग्य बनाना चाहते हैं; किन्तु साथ ही उन्हें अन्य गृहोपयोगी–शिक्षा देना चाहते हैं। ऐसी शिक्षाकी आवश्यक्ता है कि जिससे स्त्रियोंकी शारीरिक सम्पत्ति बढनेके साथ २ स्मरण शक्तिकी भी अभिवृद्धि हो। वर्तमान समयकी शिक्षा स्त्रियोंके लिये विशेष उपयोगी नहीं है; क्योंकि वह स्त्रियोंको गृह–राज्यकी रक्षाका व पातिव्रत्य पालन करनेका और वैसे ही अन्य सद्गुण सिखलानेका उचित कार्य नहीं कर उन्हें फेशनेबल बनाती है। जहांतक आर्यधर्म नीतिके अनुसार शिक्षा देनेका प्रबंध न किया जावेगा वहांतक वे कभी भी गृह–राज्यके लिये योग्य अधिकारिन नहीं बन सकेंगी। इसलिये वर्तमान समयमें जो शिक्षा दी जा रही है उसमें परिवर्तन करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

स्त्रियोंको क्या क्या सिखाना चाहिये?

इस सृष्टिमें ईश्वरने स्त्री पुरुषको एकत्र रहकर परस्पर सहायता करनेके लिये उत्पन्न किये हैं। स्त्रियोंकी आकृति व स्वभाव अत्यंत कोमल व नम्र हैं फिर उनके जीवनमें कई बार गर्भावस्था प्राप्त होती है और प्रतिमास रजोदर्शन होता है। उस समयमें उनकी प्रकृति और भी नाजुक बनती है इत्यादि कारणोंसे स्त्री अधिक परिश्रम करने योग्य नहीं है। वह घरकी शीतल छायामें बैठेकर थोड़े परिश्रमके कार्य करनेके लिये उत्पन्न हुई है। उसे पुरुषके समान कठिन शिक्षा देकर बाहरी कार्योंमें लगानेका विचार करना यह अत्यंत अनिष्ट है। यदि स्त्रीको संसारमें सच्ची सहायक व उपयोगी बनानेकी इच्छा हो तो उसे गृह–शिक्षा व गृह–कार्यके लिये धार्मिक व नैतिक शिक्षा देनेके साथ २ व्यवहारोपयोगी शिक्षा देनेका उपाय करना चाहिये। शुद्ध पढ लिख सके ऐसा भाषाका साधारण ज्ञान, उपयोगी भूगोल, इतिहास, व्याकरण, गणित, घरके आय–व्ययका हिसाब लिखने योग्य नामा, इन विषयोंकी उसे शिक्षा देनी। विशेष ज्ञानमें आरोग्य विद्या, रसायन शास्त्र, पाकशास्त्रका अनुभवसिद्ध

शास्त्रीय ज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अर्थशास्त्र, वनस्पति शास्त्र, रोगी परिचर्या, गृह कुटुम्बमें उपयोगी ऐसा वैद्यक शास्त्र, बालरक्षा, बालशिक्षा, गृहव्यवस्था, वस्त्र सीना, कसीदा काढना, मौजे तथा गलेबंध बनाना, इत्यादि की शिक्षा देनी चाहिये और रजोदर्शन, गर्भावस्था व प्रसूती समयके उपयोगी नियमोंका ज्ञान, साधारण संगीत, व जीवनके प्रधान कर्तव्योंके मूल तत्त्वज्ञानकी शिक्षा देनी चाहिये ।

उपरोक्त विषयोंकी शिक्षा स्त्रीको विद्यालयमें व घरमें देनी चाहिये । ये समस्त विषय स्त्रीकी बुद्धि व उसकी शरीर सम्पत्तिको देखकर सिखलाना चाहिये । इन समस्त विषयोंपर पृथक् २ उपदेश विस्तारसे करनेकी जरूरत है; किन्तु हम इनमें-से कई आवश्यक विषयोंके सम्बधमें कुछ २ निवेदन करेंगे । स्त्रियोंको निम्न बातें आनी ही चाहिये । पातिव्रत्यकी रक्षा करना । अतिथिका सत्कार करना । नोकरके साथ उचित वर्ताव करना । पतिको वशमें करना । पतिके विदेश जानेपर किस प्रकार रहना । रंग मंडपकी रचना करना । सन्मान करना । दूसरेके कपटकी परीक्षा करना । सज्जन–दुर्जनको पहिचानना । संक्रामिक रोगोंसे कुटुम्बकी रक्षा करना, माता–पिता, सास, स्वशुर, भ्राता, देवर, ज्येष्ट, ननंद प्रभृति आत्मियोंके साथ उत्तम आचरण करना । दुराचारी पतिको सुधारना । पीनेके लिये प्रवाही पदार्थ बनाना । अनेक प्रकारके सुगंधित तैल बनाना । बालोपदेश करना, ससुरालमें जानेवाली पुत्रीको उपदेश देना । सती स्त्रियोंके जीवनचरित्र पढकर उनमेंसे सद्‌गुण ग्रहण करना । अपनी उत्तमता दर्शाना । पतिकी अनुपस्थितिमें लेन-देनका कार्य करना व रुप्ये पैसेके खोटे खरेकी परख करना ! तोता मैना पढाना । सचरित्राओंके साथ मधुरस्वरसे गाना । ऐसे वस्त्र धारण करना कि जिसमें लज्जा और शीलकी मर्यादा रहे । बालकोंके खेलनेके लिये खिलौना बनाना । पाखंडियोंकी पहिचान करना । अन्य पुरुषके वचनोंसे सार निकाल लेना । सौभाग्यसूचक चिन्ह धारण करना । ईश्वर और पतिमें प्रेम करना । दूसरी स्त्रियोंसे बहिनपनेका सम्बंध करने पहिले उसकी विद्या, बुद्धि, लक्षण, कीर्ति, ज्ञानादि सद्‌गुणोंको देखना । अन्य मनुष्योंकी आकृति देखते ही उसकी आंतरिक इच्छाओंका जान लेना । कितनीक स्त्रियां अपने पतिके मित्रसे हंसी करने लगती हैं जिससे प्रायः इसका परिणाम अच्छा नहीं होता, इसलिये अपने मनको वशमें रखकर उचित उत्तर देना । अपने महत्त्वकी ओर देखकर नोकरोंसे घनिष्ट सम्बंध नहीं करना । मुसाफिरी या अन्य अवसरपर पर–पुरुषसे हर्ष या घबराहटसे या छूटसे नहीं बोलना । विदेशमें हर किसीपर भरोसा नहीं करना । विदेशमें सावधान रहना । मंगन, साधुभेष हरामी, कुटिला, दुराचारिणी, मग बतानेवाली आदि स्त्रियोंके कपटमें नहीं फंसना ।

मनकी वृत्तिको दूसरी ओर नहीं लगाना। घरकी स्वच्छता आदि सद्गुण स्त्रियोंमें अवश्य ही होने चाहिये। मनुस्मृतिमें है कि;—

स्त्रिया रत्नान्यथो विद्या सत्य शौच सुभाषितं।
विविधानि च शिल्पानि समाधेयानि सर्वतः॥

स्त्रियोंको रत्न, विद्या, सत्य, पवित्रता, सुभाषण और नाना प्रकारकी कलाओंको सीखना चाहिये। उपरोक्त वचन स्त्रियोंने सदैव स्मरण रखना चाहिये। **शृंगारकी सोलह कला**—चोली, साड़ी पहिनना, मंजन, टिपकी, मांग भरना, वेणीगूंथन, नेत्रांजन, शरीरपर सुगंधि लगाना, पान खाना, वेणी तथा कानोंपर पुष्प धारण करना, नाकमें नथ पहिनना, हाथमें कंकन, गलेमें माला आदि अलंकार धारण करना, कटिमेखला पहिनना, कुचोंपर चंदन लगाना (जिन देशोंमें कंचुकी पहिननेकी रीति न हो वैसे काश्मीर और दक्षिण देशमें) पैरमें लंगर तोड़ा आदि, नेत्र चंचल होने पर भी स्थिर रखना और चतुरता प्रगट करना। **अंगकी सोलह कला**—हसंगति, पगके पैजनोंकी झनकार, भौंरेके समान काले बाल, कहीं गोरापन और कहीं श्यामता दिखाना, दांतोंको अनारके दाने या मोतीके समान रखना, नितंब भारी, नख साफ चमकीले, हाथोंका कोमलपन, गालोंका कोमलपन, पैर स्वच्छ रखना, गाल और ओष्टपर तिल बनाना और शरीरको मध्यस्थितिमें रखना। **पतिको रंजन करनेकी सोलह कला**—प्रसन्न मुख, मंद २ मुसकुराकर बोलना, पतिके घर आनेपर सत्कार करना, रसोई बनाना और परोसना, मुख सुगंधित करना, शृंगार करना, कविता और पुस्तक पढना पतिको रुचिकर क्रीड़ा करना, गायन, मधुर भाषण, क्रूर, कठिनवचनोंका त्याग, पतिके दोष नहीं गिनना, प्रत्येक कार्यमें पतिको उचित सलाह, पर-पुरुषसे हास्य रहित भाषण, पतिको दोष बताना हो तो विनय पूर्वक, क्रोधका त्याग और रतिविलासमें संतोष देना। **गृहकार्यकी आठ कला**—करकसर करना, पराये धर अपने घरके दोष नहीं कहना, निर्धनता नहीं बताना, धर संपत्ति शुद्ध रखना, पात्र और गृह स्वच्छ रखना, वस्त्रालंकार सम्हालना, बाल बढाना और बालशिक्षा। **स्वाभाविक आठ कला**—विनय, विवेक रखना, लज्जा रखना, शीलका पालन, पतिमें प्रीति, पिताके घरमें अधिक प्रीति नहीं रखना, मेला, नाटकादिमें अकले नहीं जाना, अपनेसे बड़ोंकी आज्ञाका पालन करना, स्वतंत्रता नहीं बताना (स्त्रीको बालापनमें माता—पिता यौवनावस्थामें पति और वृद्धावस्थामें पुत्रके आधीन रहनेकी शास्त्रमें आज्ञा है।) सिवाय इन ६४ कलाओंके भीतरी शृंगारकी सोलह कला और कहते हैं; सुघड़ता, चतुरता बुद्धिमत्ता, चपलता, पातिव्रत्य, उदारता, क्षमा, दया, संतोष, उद्योग, विद्या, सत्य, लज्जा,

ईश्वर-प्रेम, धैर्य, और कार्यदक्षता यह सोलह कलावाली स्त्री जिस पुरुषको प्राप्त होती है उसके धन्य भाग हैं। स्त्रियोंमें पाप-पुण्यादिका सारासार जानने तथा धर्म, नीतिका ज्ञान होनेके लिये, धर्मशास्त्रके पढने योग्य विद्या होनी ही चाहिये। अपनी प्रचलित भाषाके ज्ञानके साथ हिन्दुस्त्रियोंको संस्कृत, पारसियोंको झंद या पेहेलवी भाषा और मुसलमान-स्त्रियोंको फारसी या अरबी भाषाका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। तथा कुटुम्बके धर्मका पालन, कुटुम्ब और जाति बिरादरीमें उत्तम व्यवहार रखकर अपनी कीर्तिको विस्तारना, पड़ोसियोंके साथ उचित व्यवहार करना, पतिको प्राणके समान समझकर उसकी प्रीतिका सम्पादन करना तथा उसकी इच्छानुसार चलकर संसारमें पातिव्रत्यधर्मकी शोभा बढना चाहिये। संदेहका त्याग करना, एकता और सम्पत्तिको बढाना, गंभीरता रखना, यह शरीर क्षणभंगुर है ऐसा जानकर धर्म और परोपकार्य करके अपनी कीर्तिको बढाना। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, आदि शत्रुओंको दमन करना और आहार, निद्रा और मैथुन ये तीनों नियमित रखना, इत्यादि गुण स्त्रियोंको बालापनसे ही सीखना चाहिये। जो स्त्री अपने विद्या, सद्‌गुण, प्रेम, प्रीति और, सुघड़तासे अपने पतिको प्रसन्न रख सक्ती है उसकी प्रशंसा क्यों नहीं होनी चाहिये ?! अर्थात्, होनी ही चाहिये ! फिर इन सद्‌गुणोंके प्राप्त करनेके लिये यत्न क्यों नहीं करना चाहिये ? अवश्य करना चाहिये। उपरोक्त गुणोंमें अधिकांश गुण पाठशालाओंमें नहीं सिखाये जाते। इसलिये पाठशालामें जितना ज्ञान प्राप्त हो सके उतना सीखकर शेष अपने पीहरमें माता-पितासे और ससुरालमें पति, सास-स्वशुर प्रभृतिसे अवश्य सीखना चाहिये। अपने अमूल्य समयको नष्ट नहीं करना चाहिये अर्थात् गृहकार्यसे बचे हुए समयको व्यर्थ नहीं जाने देना। ईश्वर भक्ति, नीति, धर्मादि जानने योग्य विषयोंके लिये उन्हीं विषयोंके ग्रंथोंका अवलोकन करके सार ग्रहण करना चाहिये। जिससे विचारशक्ति प्रबल हो और जगत्तत्त्व, ईश्वरतत्त्व और धर्मतत्त्व आदिका ज्ञान प्राप्त हो।

हम लोगोंकी प्रकृति प्रधानतः सत्त्वगुणी है और इग्लांड निवासियोंकी राजसी प्रकृति मानी जाती है तो भी इग्लांड देशमेंसे भी कितनीक उत्तम स्त्रियां सत्त्वगुणवाली निकल सक्ती हैं; यद्यपि अर्वाचीन कालमें भी वहांकी स्त्रियोंमें राजसी गुण प्रधान है, तथापि वहां कई स्त्रियां अपने उत्तमोत्तम गुणोंसे सुशोभित है। वे अपना गृहकार्य स्वयं अपने हाथसे करती हैं जिससे उनके पतियोंको गृहकी कुछ भी चिंता नहीं रहती, वह यहां तक कि यदि वस्त्रमें किञ्चित् धब्बा लगजाय, मैले हों या कहींसे फट गये हों तो विना पतिके कहे ही स्वयं दुरुस्त कर लेती है। यदि किसी समा-

जमें किसी पुरुषके वस्त्र मैले, धब्बे लगे हुए अथवा फटे हों तो सब लोग सोचते हैं कि, "इसकी स्त्री खराब है" इतना ही नहीं; किन्तु वहांके गृहस्थकी स्त्रियोंको अधिक विवेक रखनेकी जरूरत पडती है। पुरुषकी अपेक्षा उन्हें बोलने चलनेमें और पर पुरुषके साथ हास्यादि करनेमें मर्यादा रखनी पड़ती हैं। उन्हें पढना, लिखना जरूरी है। साथ ही चित्र निकालना, सीना, पिरोना, बालरक्षा, बालशिक्षा, वनस्पति शास्त्र रसायन शास्त्र, गृहोपयोगी वैद्यक शास्त्र, घरका हिसाब लिखना, गाना-बजाना व नाचना इत्यादि उपयोगी ज्ञानके मूलतत्त्व उनको जानना पड़ता है। जब तक वह गुण न हो तब तक उनकी गृहस्थ-पंक्तिमें गणना नहीं होती। उनको ऐसे गुण-युक्त बनानेके लिये उनके माता-पिता बाल्यावस्थासे ही प्रयत्न करते हैं। वर्तमान समयके अपने माता-पिता ऐसा यत्न कब करेंगे कि जब स्त्रियां अपने घरके समस्त कार्य भारको अपने शिरपर ले ले। पूर्व समयमें क्या अपने देशमें ऐसी स्त्रियां उत्पन्न नहीं हुई थी? अनेक हो गई हैं। पार्वती, सीता, द्रौपदी, गार्गी, मैत्रेयी, दमयन्ती, सुभद्रा और सावित्री प्रभृति अनेक सद्गुणी स्त्रियां अन्य देशोंकी स्त्रियोंसे श्रेष्ट हो गयी है। इस भूमिमें ऐसे स्त्रीरत्न उत्पन्न हुए हैं, क्या हमारे लिये यह कम सौभाग्यकी बात है? अभी तक आर्यभूमिकी बालाओंके रक्तमें उन गुणोंके रज-कण उपस्थित हैं। यदि उन्हें आर्यधर्मके रीति नीतिके अनुसार शिक्षा दीजावे तो वे गुण पुनः प्रकाशित हो सक्ते हैं।

बालरक्षा।

परम कृपालु सृष्टिकर्ता ईश्वरने मनुष्यको संतान रूपी एक महान् पदार्थ दिया है। जब पति-पत्नीका अंतःकरणसे एक दूसरेपर अत्यंत प्रेम होता है तब ही संतान रूपी इनाम परमात्मा देता है। संतान माता-पिताके लिये आनन्द और सुखका समुद्र है। संतति यह दम्पतीके प्रेमका बंधन है तथा संतोष और शांतिको देनेवाली है इसके कारण संसार आनन्दरूप प्रतीत होता हैं। घर और कुटुम्बकी शोभा है। माता-पिताके मुखके ऊपर सुख और आनन्दकी छाया पड़ती है, उससे दम्पतीके मुख शोभायमान प्रतीत होते हैं। बालकोंके समान स्त्री-पुरुषको आनन्द देनेवाला अन्य कोई पदार्थ नहीं है। संततिका निरोगी, सुघड़, सुशिक्षित, सुन्दरता आदि गुणोंसे युक्त होना वह माता-पिताके ऊपर निर्भर है। जैसे अच्छे बीजसे अच्छे वृक्ष उत्पन्न होता हैं

उसी प्रकार निरोगी माता पितासे निरोगी संतति उत्पन्न होती है। मनुष्योंकी आरोग्यता और आयुका आधार उनकी बाल्यावस्थापर निर्भर है; किन्तु यह बाल्यावस्था उसके माता--पिता पर निर्भर है। जो माता अपने बालकोंको अच्छी चतुराईके साथ नियमानुसार उसका पालन करती है उसकी संतति निरोगी और सुखी होती है। उसके मरने, जीनेका आधार भी बाल्यावस्थामें सावधानी रखनेके ऊपर निर्भर है। इसलिये बालकोंका शारीरिक, मानसिक और नैतिक नियमोंके आधारपर पालन पोषणादि करना चाहिये।

वर्तमानकालमें इन नियमोंके जाने विना हो जिसे जो पसंद आता है उसीके अनुसार बालकका पालन करते हैं। यही कारण है कि सहस्रों बालक मृत्युवश होते हैं। जो जीवित रहते हैं उनके शरीर निर्बल हो जाते हैं। संसारमें जीवनको सफल करनेके लिये योग्य बननेकी आवश्यक्ता है। यदि सम्पूर्ण प्रजाकी उन्नति करना है तो उन्हें उत्तम प्राणी बनाना चाहिये; किन्तु वर्तमान समयमें इससे विपरीत ही देख पड़ता है। घोडा, बैल इत्यादि पशुओंकी संतति उत्तम, चालाक, बलिष्ट और सुन्दर कान्तिवान होती है; किन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है कि मनुष्योंकी संतति जो सुख, और शांतिकी देनेवाली है तथा जिस मनुष्यजाति पर सम्पूर्ण देशके हित अहितका आधार है उसपर किसी प्रकारका ध्यान ही नहीं दिया जाता। जब इसपर ध्यान देकर स्त्रियोंको विद्याके शोधका व सामान्य नियमोंका ज्ञान दिया जायगा और जब उसके अनुसार बालकोंका रक्षण तथा पोषण किया जायगा तभी बालक आरोग्य, सुखी, चतुर, बलवान, तेजस्वी, पराक्रमी व दीर्घायुषी होंगे। इस विषयमें स्त्रियोंको ज्ञान देनेकी कितनी आवश्यक्ता है इसे हर एक मनुष्य सहज हीमें सोच सक्ता है। इस विषयमें कुछ नियम नीचे दिये जाते हैं।

१ **नाल**–गर्भस्थानमें बालकका पोषण नालके द्वारा होता है। बालक जब उत्पन्न होता है तब नालकी एक शिरा ओरके साथ लगी रहती है। नालको नाभीसे २–२½ इंच दूरपर चारों ओरसे रूई या और कोमल वस्तु लगाकर एक धागेसे मजबूत बांध देना पीछे ओरकी तरफका नालके छेड़ेको काट देना चाहिये। अब जो २½–३ इंचका नालका बंधा टुकड़ा शेष रहगया है उसे पेटके ऊपर रखकर उसके ऊपर कोमल कपड़ेका पट्टा बांधदेना। ऐसा करनेसे नालकी अच्छी तरह सम्हाल होती है। फिर पेटपर पट्टी रहनेसे पेटमें वायुकी अभिवृद्धि नहीं होती और पेटको सहारा मिल जाता है। नालके चहुंओर कपड़ा लगाकर उसे धागेसे बांधदेनेसे बालकके शरीरमें जो खून फिरता है वह नालके द्वारा बाहर नहीं निकल सक्ता। खून यही बालकका प्राण है।

यदि खून ही चला जाय तो बालकके मरनेकी सम्भावना है। कदाचित् नालको प्रमादसे ढीला बांधा जाय और खून बहता मालूम हो तो तुरंत ही युक्तिसे हल्के हाथसे बांध देना चाहिये। नालपर घाव पड़नेसे खून निकलता हो तो उसके ऊपर कत्था महीन पीसकर या चनेका आटा लेकर लगाना या मकड़ीके सफेद जाल (घर) दबा देना। कई लोग नालको बांधकर उसकी डोरी बालकके गलेमें रखते हैं उसमें कदापि बालकका हाथ आडा आनेपर फस जाता है उससे बड़ी पीड़ा होती है। समय पर वह पक जाता है या टूट जाता है और समयपर बालक मर भी जाता है। अतः गलेमें डोरी नहीं रखकर पेटके साथ नालपर पट्टीबांध देना यह अति उत्तम है। नाल स्वयं ५–७ दिनमें या २–३ दिन अधिक होनेपर गिर जाता है, उसे खींचकर नहीं निकालना। जहांतक वह गिरजाय वहांतक उसी प्रकार रहने देना। यदि नाल पक जाय तो उसके ऊपर कोई दवा लगाना, यदि सूजन हो तो तेलमें अफीम घिसकर लगाना उसके ऊपर पोस्ते (अफीमके डोडुए) पीसके धरना।

२ स्नान कराना—उपरोक्त कथनानुसार नालछेदन करनेके पश्चात् बालकको फलालेन, कम्मल या बनातके समान किसी गरम कपड़ेपर और ठंडी–ऋतु न हो तो मुलायम कपड़ा ओढाकर खटोली पर सुलाना। इस प्रकार बालकको सुलाकर उसकी माताकी सम्हाल करना। पीछे बालकके शरीरपर सफेद चर्बीके समान चिकना पदार्थ लगा हो, उसे साफ करनेके लिये प्रथम शरीरपर तेल मलना पीछे किञ्चित् गरम जलसे हलके हाथ उसे स्नान कराना उसमें उसके नेत्रमें तेल या पानी न जाय उसकी सम्हाल रखना। प्रसूति–कालमें जनानेवाली दाई बालकको स्नान करावे; किन्तु फिर उसकी मा नित्य स्नान करावे। स्नान करानेके लिये सुबहका समय उत्तम है। स्नान करानेके पहिले तैल अवश्य लगाना चाहिये। पीछे उसके शिरपर पानी डालकर उसके शिरको धोना चाहिये। फिर पीछे किञ्चित् गरम जलमें थोड़ा साबुन घोलकर उसके अन्य अंगोंपर डालना व उसी जलमें उसे बैठाना; किन्तु स्मरण रहे कि बालककी स्थितिके अनुसार ही गरम जल करना चाहिये, अधिक गरम जल नहीं करना। बहुत गरम जलमें ठंडे पानीको मिलाकर स्नान नहीं कराना चाहिये। जलको गरम करते समय ही ध्यान रखना चाहिये तथा इसी प्रकार भविष्यमें ध्यान रखना चाहिये। शरीरके किसीभी अंगमें मैल न रहने देना चाहिये। मस्तकपर जलकी धार डालनेसे मस्तक ठंडा रहता है। मगजकी वृद्धि होकर प्रकृति साधारण बनती है। जहांतक हो सके मस्तकपर गरम जल न गिरे इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। माथेपर तो ठंडा पानी ही डालना उत्तम है। यदि ठंडा जल सहन न हो सके तो किञ्चित् गरम

लेना। बालकको पांच मिनीटमें स्नान कराना व अधिकसे अधिक १० मिनीट हो इससे अधिक समय कदापि न लगाना चाहिये। भींगे हुवे शरीरको बहुत देर तक नहीं रखना चाहिये उसे तुरंत मुलायम वस्त्रसे पोंछ डालना चाहिये। ऐसा कपड़ा पोछने- के उपयोगमें न लेना चाहिये कि जिससे उसकी चमड़ी घिस जावे। फिर उसके ऊपर तुरंत ही स्वच्छ वस्त्र उढा देना, उसके शरीरको खुला नहीं रखना चाहिये। शरीरको नंगा रखकर वस्त्रके पहिरानेमें देर करनेसे उसे शरदी, जूकाम, व खांसी आदि व्या- धियोंके होनेका भय है। बालकका शरीर नाजुक होता है, इसलिये दूसरे मासमें जलमें थोड़ा निमक डालकर स्नान कराना चाहिये। इससे बलकी वृद्धि होती है। उस स्थानमें जहां ठंडी पवन आ रही हो बालकको स्नान नहीं कराना चाहिये घरमें जहां हवा न लगे स्नान कराना चाहिये। पुत्रके बाल नित्य और कन्याके बाल ७—८ दिन धोना चाहिये, बालकको स्नान कराते समय उलटा सुलटा न होने देना चाहिये। ३—४ वर्षकी अवस्था होनेपर ठंडे जलसे स्नान करानेसे भय है। शीतकालमें, शरी- रमें पीड़ा हो, तथा ठंडा पानी हानिकारक हो तो कुनकुने जलसे स्नान कराना उत्तम है। गरम जलसे शरीर अधिक स्वच्छ होता है सही; किन्तु शरीरमें फुरती व उष्णता तुरंत नहीं आती। गरम पानीसे शरीर सुस्त होता है। ठंडे जलसे शरीरमें फुरती और गर्मी आती है, बलकी वृद्धि होती है तथा शरीर दृढ होता है। बालापनहीसे बालको स्नान करानेसे बड़ी अवस्थामें भी उसकी यह आदत नहीं छूटती है। जिससे शरीरमें अनेक प्रकारकी होनेवाली व्याधियोंका नाश होता है और शरीर निरोगी रहकर दृढ होता है।

३ वस्त्र—बालकको तीनों ऋतुओंमें अनुकूल वस्त्र पहिराना चाहिये। शीत- कालमें गरम, उष्णकालमें सूती महीन कपड़ा पहिराना चाहिये। जो ऋतुके प्रमा- णसे वस्त्र नहीं पहिराते उनके बालकोंकी आरोग्यताको हानि पहुंचता है। वस्त्रके तंग पहिरानेसे शरीरका खून चल फिर नहीं सक्ता, जिससे अनेक प्रकारकी व्याधियां होती हैं व शरीरके अवयव भी नहीं बढ सक्ते। इसलिये कपड़ा ढीला पहिराना चाहि- ये। बालकका सम्पूर्ण अंग वस्त्रसे ढंका हुवा रहना चाहिये। वस्त्र चाहे उत्तम न होकर फटा हो; किन्तु उसे धोकर स्वच्छ करके पहिराना चाहिये। कभी भूलकर भी मैले कपड़ेको नहीं पहिराना चाहिये। बालकके शरीर तथा कपड़े पर हीसे हरकोई अनुमान कर सक्ता है कि "इसकी माता सुघड़ है" यदि इसके विरुद्ध होगा तो वह स्त्री फूहड समझी जायगी। हम लोगोंकी स्त्रियोंकी अपेक्षा दक्षिणी और पारसियोंकी स्त्रियां अधिक चतुर और सुघड़ होती हैं ऐसा हमने उनके बालकोंकी स्वच्छतापरसे

विदित होता है। जब बालकको स्वच्छ वायुके सेवनार्थ हवामें ले जाना हो तब उसे फलालेनादि गरम वस्त्र पहिराना चाहिये। फलालेनादि गरम वस्त्रसे बालकको शर्दी होनेका भय नहीं रहता क्योंकि उससे शरीरकी गरमी निकलकर बाहरकी शर्दी नहीं लगती। बालकोंको शीतकालमें कनटोपा और मौजा अवश्य पहिराना चाहिये, यदि मौजा न हो तो उसके पैरमें वस्त्र ही लपेट देना चाहिये। कनटोपा और मौजा ऊनी हों तो बहुत ही अच्छा। मल मूत्र व लालसे भीगे हुये वस्त्रको तुरंत बदल देना चाहिय, ऐसा न करनेसे शरदी व कफ होनेका भय रहता है। शीतकाल व वर्षाकालमें बाहरमें घुमानेको ले जाना होतो सिवाय मुंहके अन्य अंग गरम वस्त्रसे ढंके हुये रहना चाहिये। लाल गिरती हो तो उस जगह रूमाल व अन्य कपड़ा रखना। पैर, छाती और पेट ये नरम रखना, इन्हें कभी ठंडे नहीं रखना चाहिये। इन बातोंकी ओर ध्यान देकर बालकोंको वस्त्र पहिराना चाहिये। उपरोक्त नियमानुसार न चलनेसे बहुत कुछ हानि होनेकी सम्भावना है; किन्तु ऐसा भी नहीं करना कि बालकको पसीना आजाय और वह घबराने लगे। उष्णकालमें पसीना आजाय ऐसे कपड़े नहीं पहिराना; उष्ण कालमें महीन वस्त्र पहिराना उपयोगी है। अधिक पसीना निकलनेसे शरीर निर्बल हो जाता है, बालकोंकी चमडी बहुत मुलायम होती है इस लिये भी मुलायम और ढीला पहिराना चाहिये। नील रंगमें सोमलका विष रहता है, इस लिये बालकोंको नीले रंगके वस्त्र कदापि नहीं पहिराना चाहिये; क्योंकि वे उसे मुखमें देवेंगे तो हानि होनेकी सम्भावना है। जहां तक हो अधिक फेशनके ऊपर नहीं मोहित होकर सुखदायी कपड़े पहिराना चाहिये। शीतकालमें बालकको नंगे शरीर व महीन वस्त्र पहिरा कर बाहर नहीं लेजाना चाहिये जो ऐसा करते हैं उसका परिणाम यह होता है कि बालक ठिगना और क्रोधी होता है। बालकका शरीर काला होता है, लू लगती है और अनेक बीमारियोंके होनेका भय रहता है। वर्षाकालमें नंगे शरीर रहनेसे शरीर काला पड़ता है व शर्दी होनेका भय रहता है। शीत, वर्षा और उष्णकालमें नंगे शरीर रखनेसे शरीरके दृढ होनेकी आशा नहीं रखनी चाहिये; उससे शरीरके अवयवोंको अनेक प्रकारकी व्याधियां घेर लेती हैं। उनके शरीर पर सूर्यका प्रकाश पड़ना चाहिये; उन्हें घरमें छुपा कर नहीं रखना। शरीरमें जितनी उष्णता रखनेकी आवश्यक्ता हो उसी प्रमाणसे वस्त्र पहिराना चाहिये, ऐसा करना उष्णताकी खुराक देनेके बराबर है। शरीरपर चाहिये उतने कपड़े पहिरानेसे शरीरकी उष्णता बाहर नहीं जाने पाती और उष्णता कायम रहनेसे अन्यान्य खर्चोंसे बच सक्ते हैं। बालकोंको ऋतुके अनुसार, जो माता पिता द्रव्यका लोभ करके, वस्त्र नहीं पहिराते व उन्हें नंगे

शरीर घूमने देते हैं जिससे उनके शरीरकी उष्णता घट जाती है । उष्णता के घटनेसे उसे पूर्ण करनेके लिये अधिक भोजनकी आवश्यक्ता होती है । इस लिये वस्त्रका बचा हुवा खर्च भोजनमें खर्च हो जाता है; इस हिसाबसे खर्च बराबर ही रहता है; और उलटा शरीरको हानिका पहुंचना यह नफेमें मिलता है । इसी लिये बालकोंको ऋतुके अनुसार वस्त्र पहिराना चाहिये ।

४ स्तनपान कराना—बालकको जन्मते ही स्तन-पान नहीं कराना चाहिये । जब ३—४ घंटेमें उसका कष्ट कुछ शांत हो तब स्तन-पान कराना चाहिये । कोई २ बालकको १—२ दिन स्तन-पान नहीं कराकर गुड़थुथी चटाते हैं, किन्तु यह रीति खराब है । बालकको उसकी माताके दूधके समान अन्य कोई वस्तु उपयोगी नहीं है। बालकके जन्म लेनेके ३—४ घंटे पीछे स्तन-पान करानेसे बहुत लाभ है । माताके दूधका प्रथम भाग रेचक होता है, जिससे गर्भस्थानमें बालकके पेटकी आंतोमें भरा हुवा मल दूर होता है फिर उसकी माताको रक्त प्रवाह होनेकी संभावना कम रहती है । बालकको १—२ दिन स्तन-पान नहीं करानेसे पीछे वह स्तन-पान नहीं करता और जिससे स्तन दूधसे भरजानेके कारण पक जाते हैं। इस लिये प्रथमसे ही स्तन-पान कराना उत्तम हैं। स्तन-पान कराने पर स्तनमें दूध न हो तो भी वह आने लगता है । कदापि दूध न आता हो तो गऊका दूध, व उससे आधा कुछ गरम किया हुआ जल मिश्रित कर उसमें थोड़ी शक्कर मिलाकर बालकको पिलाना। गरम जल और शक्कर एकत्र करके पीछे उसमें दूधका मिलाना अच्छा है। वह दूध बालकको २—२ घंटेके पीछे थोड़ा २ करके पिलाना; किन्तु जब स्तनमें दूध आने लगे, तब उसको स्तन ही पान कराना चाहिये। दोनों स्तनोंसे हेरफेरसे पान कराना चाहिये अन्यथा स्तनपर सूजन आनेका भय है ।

५ स्तनके दूधकी परीक्षा—दूधको पानीमें डालनेसे मिल जाय, फेन न दीखाई देवे, तंतु रहित हो, ऊपर मलाइ न आवे, फट न जाय, शीतल निर्मल पतला व शंखके समान शफेद हो तो उसे स्वच्छ समझना चाहिये ।

६ स्तनपान करानेका समय—बालकको वारंवार स्तन-पान नहीं कराना, नियमानुसार स्तनपान कराना चाहिये। वार २ स्तनपानसे प्रथमका दूध नहीं पचकर दूसरी वारके दूधके पहुंचनेसे अजीर्ण हो जाता है या कभी कय भी होजाती है। यदि दूध कय होकर न निकल जाय तो अजीर्ण होनेके कारण अन्य रोगोंकी सम्भावना है। इसके अतिरिक्त पेटमें अधिक दूधके पहुंचनेसे बालकका पेट तन जाता है जिससे बालक रोता है; पीछे उसके रोनेका यथार्थ कारण न समझ कर उसके मुखमें स्तन

देदिया जाता है । इसी प्रकार बालकको वारवार दूध पिलाकर उसे रोगी बना देते हैं, इतनाही नहीं किन्तु वारम्वार स्तन-पानसे दूध भी कम आने लगता है जिससे माता भी हैरान हो जाती है । इसी प्रकार माता और बालक दोनों निर्बल हो जाते हैं । बालकके मुखमें स्तन देकर उसे ऊंघने नहीं देना चाहिये और न स्वयं भी ऊंघना चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेसे स्तन और बालकके मुंहमें घाव पड़ जाते हैं ।

७ स्तनपानका समय—बालकको प्रथम मासमें डेढ २ घंटेमें, दूसरे मासमें दो २ घंटेमें, तीसरे मासमें अढाई २ घंटेमें और चौथे मासमें तीन २ घंटेमें स्तन-पान कराना चाहिये। इसी प्रकार प्रत्येक मासमें आधे २ घंटेका अंतर देकर समय बढाते जाना चाहिये। जब बालक ७—८ मासका हो तब ३—४ वार स्तन-पान करानेका नियम कर लेना चाहिये। बहुधा स्त्रियां १२—१३ मास तक स्तन-पान कराती हैं इससे बालकको हानि होती है । बालकके जन्मके पीछे स्त्रीको ९ मास तक ऋतु दर्शन नहीं होता और तब ही तकका दूध भी पुष्टिकारक होता है इस लिये बालकको ७—९ मासतक स्तनपान कराना उपयोगी है; जब मासिक धर्म होना प्रारंभ हो जाता है तब उसके दूधके गुणमें भी परिवर्तन होता है; इसलिये धीरे २ स्तनपान कम कर उसके बदले हल्का भोजन खिलानेका आरंभ करना चाहिये । स्तनपानके पश्चात् स्तनको पोंछकर साफ करलेनेसे घाव पड़नेका भय नहीं रहता ।

८ स्तनपान करानेके समयकी आवश्यकीय सूचनायें—माताने बालकको स्तनपान करानेके प्रथम अपने मनमें धैर्य, उमंग, शांति और आनंद धारण करके उसके सामने देखना । पीछे उसे हंसाना खिलाना और स्तनमेंसे थोड़ा दूध निकालना; उसके पीछे बालकके मस्तकपर हाथ फेरकर, स्तनपान कराना चाहिये यही उत्तम रीति है । मारना पीटना क्रोध करना अथवा भय दिखाकर स्तनपान नहीं कराना; क्योंकि जिस समय मनमें शोक, भय, क्रोध और निराशा होती है उस समयका दूध हानिकारक होता है और बालकको भी हानि पहुंचती है । कदाचित् किसी समय ऐसा प्रसंग आ जाय तो उस समय बालकको स्तन-पान नहीं कराना। जब उपरोक्त कहे हुए आनन्दरुप चित हो तब स्तनपान कराना चाहिये । माताकी दुःखित अवस्थामें बालकको कभी भी दूध नहीं पीने देना चाहिये ।

९ यदि स्तनपानसे पूरा न हो तो क्या करना ? बालकको माताके दूध ऊपर आधार रखना यही उत्तम है । माताके प्यार व यत्नके सामने धाइके पास रखना यह तुच्छ है । माताका शरीर निर्बल हो या स्तनमें दूध न हो या कम हो तो भी बालकको ७—८ महिने तक स्तन-पान करानेकी आवश्यकता है इस लिये अन्य

कोई उपाय नहीं होनेसे ही धाई रखनी चाहिये.

१० **धाई कैसी रखना चाहिये ?**—अपनी जातिवाली जो गांवकी निवासी हो वह सर्वोत्तम है । अपने बालकके समान प्यार करनेवाली, निरोगी, बालककी माता, मध्यम शरीरवाली, सहचारिणी, सद्गुणी और हृष्टपुष्ट धाई होनी चाहिये अथवा सदैव एक ही तनदुरस्त गायका दूधपान कराना चाहिये । दूधसे आधा कुछ गरम किया हुवा जल और शक्कर ये तीनों प्रथम कही हुई रीत्यनुसार मिश्रित करना । यह मिश्रित दूध भी नियमानुसार ही पान कराना चाहिये । दूध तांबे पीतलके पात्रमें नहीं पिलाना, केवल माटी अथवा काचके पात्रका उपयोग करना और दूधको ऐसे ही पात्रमें रखना चाहिये । दूधको उबालना नहीं; बहुधा स्त्रियां गाय, भैस अथवा बकरीके दूधको उबालकर उसमें शक्कर, इलायची, जायफल, आदि डालकर पीलाती हैं, इस प्रकारका दूध नन्हे बालकको भारी पड़ता है, उसका पाचन ठीक नहीं होता जिससे लाभकी अपेक्षा हानि अर्थात् दस्त, क्षय, ज्वरादि रोग उत्पन्न होते हैं । इसलिये ऐसे दुधका उपयोग नहीं करना । माताके दूधकी समानता करनेवाला बालकको अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है । जब किसी भी प्रकारका उपाय न चले तब धाई अथवा इस मिश्रित दूधका उपयोग करना चाहिये ।

११ **खुराक**—बालकको ताजा, हलका, किञ्चित् गरम और उसकी प्रकृतिके अनुसार पौष्टिक खुराक देना तथा उसके साथ ताजा, उत्तम गायका दूध भी देते रहना चाहिये । उनको खुराकमें थोड़ा निमक देना उससे खुराक स्वादिष्ट होकर शीघ्र पच-जाता है तथा कृमि कम होते हैं । यदि बालककी रुचि हो तो दुधमें पताशा या शक्कर डालकर साधारण मिठास उत्पन्न करना; किन्तु अधिक मीठास नहीं करना । बहुत मीठास पाचनशक्तिको मंद कर देता है । जब बालक एक वर्षका हो और उसे दांत निकले तब चावल, दाल, खिचड़ी, अच्छा दहीं और मलाई आदि देना चाहिये; परन्तु अन्नके साथ गायके दूधको देना नहीं भूलना; क्योंकि उससे बालक तनदुरस्त और दृढ तथा निरोगी होता है । यदि दूधसे कबजीयत रहती हो तो उसमें जल मिलाकर खिलानेसे दस्त साफ होगा । जैसे जैसे बालककी आयु बढती जावे वैसे २ दूधकी खुराकभी अधिक देना; जब बालक दो वर्षका हो जावे तब दूधमें जल नहीं मिलाना । दूध ताजा और स्वच्छ होना चाहिये, उसमें जलका समावेश न हो; क्योंकि ऐसा दूध लाभकी अपेक्षा हानिकारक होता है । बालक ज्यों २ बडा होता जावे त्यों २ उसे शाक, भाजी, आदि ताजा खुराक देना चाहिये । उसमें निमक और मसाला भी डाला हो । मेवा, मिठाई आदि साधारण खिलाना चाहिये । कच्चे फल, कोयला, मिट्टी प्रभृति अवगुणकारी वस्तुयें

नहीं खाने देना। दिनमें ३ वार खुराक देना—सुबहमें दूध और रोटी उसके पश्चात् ४ घंटे पीछे और तीसरीवार ९ बजे रातके पहिले हल्का खुराक देना चाहिये। तीनवारके सिवाय बीचमें खानेको नहीं देना। एकवारके खाये हुए भोजनके पचनेपर जब होजरीको विश्राम मिले तब दुसरी वार देना उचित है। भूखसे अधिक नहीं खाने देना। भूखसे अधिक खानेमें खुराक नहीं पचकर बालक रोगी होता है "हाथ पैर दुर्बल और पेट बड़ा होता है"। अनार, द्राक्ष, सफरजन, बादाम, पिस्ता, केला, प्रभृति फल भी कभी २ देते रहना चाहिये। पीनेका जल स्वच्छ तथा ताजा होना। जलके ऊपर रज–कण जैसे तेरते जंतुओं आदिसे बिगड़े हुए जलके पिलानेसे बालक बड़ी अवस्थावाला हो तो भी हानिकारक है; इसलिये जलको २–३ वार छानकर पिलाना अच्छा है। शीत ऋतुमें शरीरको गर्मी उत्पन्न करे ऐसे पौष्टिक पदार्थ खिलाना; क्योंकि इस ऋतुमें गरमी उत्पन्न होनेकी बड़ी आवश्यकता है इस ऋतुमें गरमी कम होनेसे शरीरकी स्थिति खराब होती है इसलिये शरीरमें उष्णता रहे ऐसा उपाय करना चाहिये। भूख नही मारना; क्योंकि समय बीतने पर मंदाग्नि आदि रोगोंके होनेकी सम्भावना है। नियमानुसार उचित समय पर पाचन हो सके वैसा और उतना स्वच्छता पूर्वक बनाया हुआ भोजन देना चाहिये। जीवनक्रियाको चलाने योग्य जिन २ तत्वोंकी शरीरको आवश्यकता हो वे सम्पूर्ण तत्व एक प्रकारकी खुराकसे उत्पन्न नहीं होते। इसलिये खुराक एक प्रकार नहीं देकर अन्य २ प्रकारसे उसे बदलते रहना। जिस खुराकपर बालकका अभाव हो उसे खिलानेके लिये आग्रह नहीं करना। खानेमें आध घंटेकी आवश्यकता है, क्योंकि अच्छी तरह चबाकर भोजन किया जाना चाहिये। शीघ्रतासे खानेकी आदत्त नहीं होने देना। सूर्यकी धूपमेंसे आनेपर अथवा मकानपर विना विश्राम लिये भोजन नहीं देना। भोजनके समय बात करना अथवा हँसने नहीं देना। सौनेके ३ घंटे पहिले ही भोजन करा देना चाहिये, सोकर उठनेके १ घंटे पश्चात् भोजन देना। ठंड़ा, सडा, कच्चा और दुर्गन्धियुक्त भोजन खानेको नहीं देना। विना भूख लगे उसे आग्रह करके भोजन नहीं खिलाना और बालकको थोड़ा अथवा अधिक खानेके लिये भी आग्रह नहीं करना चाहिये। खुराक जितनी पुष्टिकारक हो उसीके अनुसार थोडी देना, व जैसी कम पुष्टिकारक वैसी ही अधिक देकर पुष्टताके गुणकी पूर्ति करना चाहिये। तात्पर्य यह कि बालकको थोड़ी किन्तु पुष्टिकारक खुराक देना उचित है। उपरोक्त नियमानुसार नहीं चलनेसे बालकका बल घटता है तथा बढता नहीं है।

१२ वायु—जिस प्रकार बालकको खुली और स्वच्छ वायु मिले वैसा उपाय

करना चाहिये। स्वच्छ वायुके लिये नित्य प्रातः और सायंकालमें नदी किनारे तथा खुल्ले मैदानमें व बगीचा प्रभृति स्थानोंमें वायुसेवनार्थ ले जाना। वैसा करनेसे शरीरमें रक्त शुद्ध होता है जिससे निरोगी रहता है और बालककी बुद्धि बढती है। प्रत्येक प्राणीको श्वासके लिये आक्सीजन वायुकी अत्यंत आवश्यकता है, इसलिये जिस कमरेमें ताजी और स्वच्छ वायु आती हो उसमें बालकको रखना। अंधेरे स्थानमें, चूल्हेकी गर्मीके निकट, पेशाब करनेके स्थानमें, मोरीकी दुर्गंधि आवे वैसे स्थानमें, संकीर्ण, अंधेरी और दुर्गंधि युक्त कोठरीमें और जहां बहुत मनुष्योंके कारण कार्बोनिक वायु निकलती हो वहांपर बालकको नहीं रखना चाहिये। जहां दुर्गंधि, गर्मी और पतली वायु होती है वहां आक्सीजन वायु थोड़ी होती है। ऐसे स्थानमें बालकको रखनेसे उसकी तनदुरुस्ती बिगड़ती है। इस प्रकार विचार करके सुखदाई वायुमें बालकको रखना सर्वोत्तम नियम है।

१३ **निद्रा**—बालकोंको मनुष्योंकी अपेक्षा निद्राकी अधिक आवश्यक्ता है। नींदसे बालकका शरीर पुष्ट और तनदुरुस्त होता है। बालकको कितनेक समय माताकी बगलमें सुलाना जरुरी है, उस समय माताको करवट लेती समय इस बातपर विशेषरुपसे ध्यान रखना चाहिये कि बालक चिपट न जावे या वह सिरक कर नीचे न आ जावे। इसका सर्वोत्तम और सहज उपाय यही है कि बालक और अपने बीचमें वस्त्रकी पारके समान बना लेना चाहिये। सौते २ बालकको स्तन—पान नहीं कराना। कभी २ माता सो जाती है वैसी दशामें बालककी मृत्यु हो जानेका भय है। बालकको रातके ८—९ बजे सुलाकर प्रातःकाल ५ बजे उठानेका यत्न करना चाहिये। दिनके दोपहर पीछे एक दो घंटे और रात्रिमें अधिकसे अधिक आठ घंटे निर्भय सोने देना चाहिये। बालकके जागनेपर उसे बिछौनेमें पड़ा रहने न देना क्योंकि इससे बालकके आलसी होनेकी सम्भावना है इस लिये जब जागे तब तुरंत उठा लेना चाहिये, किन्तु उसे सोये हुये कभी नहीं जगाना ऐसा करना बड़ा हानिकारक है। उसे स्वच्छ वायु और उजालेवाले कमरेमें सुलाना। खिड़की बंद करके नहीं सुलाना। उसे निद्रामें किसी प्रकारका श्रम हो ऐसा नहीं करना। बालकोंको खुराककी अपेक्षा निद्राकी अधिक आवश्यकता है। अपूर्णनिद्रामें जगानेसे बालक दुर्बल होता है; वैसे ही पालनेमें सुलाकर, मार पीटकर अथवा भय दिखाकर सुलानेसे रोगी और आलसी होनेका भय है। बालागोली व अफीमके समान विषैली वस्तुयें देकर उसे सुलाना नहीं चाहिये; क्योंकि इससे बालकका शरीर निर्बल होकर अनेक रोगोंकी सम्भावना है। उसे कुदरतके नियमानुसार नींद आवे तब ही सुलाना अच्छा है। रात्रिमें खुराक खिलानेके पीछे

२ घंटे उसे हंसाना, खिलाना, व हिरा-फिरा कर जैसे उसके शरीरको श्रम हो ऐसा यत्न करना और मधुर गानसे उसका मन रंजन करके सुलाना चाहिये ऐसा करनेसे उसे अच्छी निर्भय निद्रा आवेगी। पालनेमें सुलाकर और मधुर गान गाकर उसे सुलानेसे जो नींद आती है उससे उसका शरीर जैसा चाहिये वैसा बनता है। यदि किसी कारणसे निद्रा न आती हो तो उस कारणको जैसे पेटमें कृमि होना, पेटका दर्द प्रभृति जांचना चाहिये फिर जिस कारणसे नींद नही आती हो उसे दूर करनेका प्रयत्न करना: किन्तु जहां तक होसके निद्रा लानेके लिये किसी नसैली वस्तुका प्रयोग नहीं करना चाहिये। सोते हुये बालकको करवट बदलनेको आदत पाड़ना। उसके सोनेका बिछाना अति-कोमल या अति-कठिन नहीं होना चाहिये। झूलेमें झोलीके अंदर सुलानेकी अपेक्षा पालनेमें सुलाना अत्युत्तम है। बालकको झोलीमें सुलानेसे उसके कुबड़े होनेका भय है जिसके कारण वह बराबर चल नहीं सक्ता। वैसा पालनेमें सुलानेसे नहीं होता। झूलेकी कड़ियोंका शब्द न हो ऐसा यत्न करना चाहिये। गर्मीकी ऋतुमें झूलाके निकट अग्निकी सिकड़ी, चूल्हा और दीपक नहीं रखना। बालकके उठते ही बिछौनेको उठाना नहीं; किन्तु जब बिछौनाकी गंदी हवा उड जाय तब बिछौना उठाना चाहिये। बालकोंको मच्छड़, खटमल, जूं प्रभृतिसे बचाते रहना। उसको सुलानेका बिछौना सदैव स्वच्छ रखना चाहिये। यदि बिछौना अथवा पलना आदि या बालकके नीचेका वस्त्र उसके मल-मूत्रसे भीग जावे तो उसे तुरंत बदल कर सूखा वस्त्र उसकी जगह उपयोगमें लाना चाहिये।

१४ **व्यायाम**-बालकको खुली वायुमें जहां उसके शरीरको व्यायाम मिले ऐसा प्रबंध करना चाहिये। व्यायामसे उसके शरीरका रक्त नशोंके द्वारा एक स्थानसे दूसरेमें परिवर्तन होता है और अन्नका रस बन कर उसके शरीरका पोषण होता है। पाचनशक्ति बढती है। स्नायुकी गतिसे रक्तका मलीन पदार्थ प्रस्वेद द्वारा बाहर निकल जाता है जिससे शरीर दृढ और निरोगी बनता है, निद्रा उत्तम आती है तथा हिम्मत, फुरती, चंचलता, और शूरता आते हैं। बालकोंकी स्वाभाविक चंचलतासे ही ऐसा प्रतीत होता है कि कुदरतकी इच्छा उसे व्यायाम कराके बड़ा करनेकी है। जन्मके कुछ मास पश्चात् उसे वस्त्र पहिना कर खुली वायुमें ले जाना चाहिये। कभी २ पृथ्वी पर साधारण बिछौनेके ऊपर उसे सुलाना चाहिये, जिससे वह अपने हाथ पांव भली भांति चला सके। कभी २ उसे हंसाना, खिलाना, किसी वस्तुको फेंककर उसके पीछे दुड़वाना जिससे वह उसे हर्षके आवेगमें शीघ्रतासे जावेगा और उसके शरीरको व्यायाम मिलेगा। जब वह कुछ २ चलना प्रारंभ करे तब उसे घरमें व बाहर

खेलने देना चाहिये। उसे घरमें छिपाके रखना उचित नहीं है। उसे हानिकारक खेल जैसे पुतला, पुतलीको व्याह कराना नहीं खेलने देना चाहिये और उसी प्रकार खराब बालकोंका संग भी नहीं करने देना इसके लिये विशेष रुपसे उनपर दृष्टि रखना उचित है। बालककी जैसे २ अधिक अवस्था हो खुली वायुमें खेलनेकी छूट देना, खेलोमें ऐसे ही खेल खेलने देना कि जिनमें व्यायाम हो जैसे दौड़ना, तीर चलाना, जलमें तैरना, कुश्ती करना, फुटबॉल खेलना इत्यादि किन्तु जब हैजा, ज्वरादि रोग हो उस समय व्यायाम नहीं कराना। व्यायाम करनेके पश्चात् जब शरीरको शांति हो तब भोजन देना उचित है। उपरोक्त रीतिसे बालकोंको व्यायाम करानेकी बड़ी आवश्यकता है।

१५ दांतकी रक्षा--बालक जब ८--९ मासका होता है तब उसे दांत आना प्रारंभ होता है। कभी २ दो एक मास आगे पीछे भी आते हैं। उस समय बालकको ज्वर, वमन, खांसी, चूंक इत्यादि अनेक रोग होते हैं व इस समय बालकका स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा हो जाता है; क्योंकि उसे मसूड़ोंमें एक प्रकारकी वेदनाके कारण चेन नहीं पड़ती, वह बार २ दूध पीनेकी इच्छा प्रगट करता है, अपना अगूंठा या माताके स्तनको बार २ मुखमें लेता है सो ठीक है: किन्तु यह स्मरण रहे कि उसकी यह आदत्त भविष्यमें न पड़ी रहे उसके लिये ध्यान रखना चाहिये। यदि नित्यके प्रमाणसे २--४ बार दस्त अधिक हो तो कुछ चिन्ता नहीं, किन्तु उससे भी यदि अधिक बार होता हो तो उसका उपाय करना ही उचित है। ज्वर, वमन प्रभृति हो तो चतुर वैद्य अथवा डाक्टरकी सलाह लेना। ऐसे समय बालककी ओरसे सावधान रहना चाहिये। उसके मुखकी गिरी हुयी लालसे जो वस्त्र भीग जावे उसे बदल कर दूसरा पहिराना चाहिये; क्योंकि उससे शर्दी होनेका भय रहता है। बालकके बड़े होते ही उसके दांतको ब्रुश अथवा दांतनसे घिसवानेकी टेव पाड़ना चाहिये। दांतमें मैल नहीं रहने देना चाहिये। जलसे कुल्ली कराके मुख सदैव स्वच्छ रखना चाहिये।

१६ पैरोंकी रक्षा---पैर यह सम्पूर्ण शरीरका मूल है इसलिये उसकी अच्छी तरहसे रक्षा करनी चाहिये। पांवको सदैव गरम रखना चाहिये। यदि किसी कारणसे ठंडे प्रतीत हो तो गरम जलमें भिगोकर गरम करना। मौजे पहिराना, सौनेके समय बालकके पैर गरम रहे ऐसा प्रबंध रखना। ठंडे पैर रहनेसे अनेक व्याधियोंके होनेकी सम्भावना है। ठंडी ऋतुमें पैरमें मोजे व देशी नरम चमड़ीके जूते पहिराना। जूते ठंडी, गरमी, कांटे इत्यादिसे रक्षा करते हैं: किन्तु वे खुले होने चाहिये। छोटे जूते पहिरानेसे पांवकी पटली नहीं बढती, अंगुरियां संकुचित होकर उनमें घाव पड़

जाते हैं। बालकको चलाने व खड़े करनेकी शीघ्रता नहीं करनी; वे जब स्वयं चलनेकी या खड़े रहनेकी इच्छा करे तब उसे सहारा देकर चलाना अथवा खड़े करना चाहिये। उसको आग्रहसे चलाने और खड़े करनेमें, उनके पांवमें बल नहीं रहनेके कारण पैर शरीरका भार नहीं उठा सक्ते जिससे बालक गिर जाता है, पैर टेढे होजाते हैं और अन्यान्य प्रकारकी पैरकी व्याधियोंके होनेकी सम्भावना है। घरमें खुले पैर ही बालकको चलानेका अभ्यास कराना चाहिये जिससे पांवके तले दृढ व कठिन होते हैं और पंजे मोटे होते हैं।

१७ **मस्तक**—मस्तक सदैव ठंडा रखना चाहिये। यदि गरम हो जावे तो उसे ठंडा बनानेके लिये ठंडे जलकी धारा करना चाहिये। पीछे शिर पौंछकर ठंडा तैल डालना चाहिये। ऐसा नहीं करनेसे मस्तकमें वेदना होती है। शिरके बाल नहीं होने देना चाहिये। बालकोंके बढे हुए बालोंको कैचीसे कटवाना अच्छा है। जब लडका ४–५ वर्षका हो जावे तब उनके लिये बालका रखना अच्छा है। स्नान करानेके समय प्रथम मस्तक भिगोना और पीछे सम्पूर्ण शरीरपर जल डालकर स्नान कराना। शिरपर ठंडे जलकी धारा करनेसे मगजमें तरावट आती है। शिरपर गरम जल नहीं डालना। बालोंको मैल निकालनेवाले पदार्थोंसे धोना; पुत्रके बाल प्रतिदिन और पुत्रियोंके ७–८ दिनमें धोना चाहिये। जूं या खोड़ा हो तो किसीभी अच्छे तैलमें थोड़ा कपुर मिलाकर उसे मस्तकमें डालना जिससे जूं मर जायगी। तैलको मस्तकमें घिसकर लगानेसे मस्तकमें तरावट आती है। गरीके तैलसे बाल बढते और साफ होते हैं। बालोंको खींचकर बांधनेसे मगजकी व्याधि होती है और बाल भी गिरने लगते हैं। कंधी छोटी अथवा मस्तकमें गड़नेवाली नहीं होनी चाहिये। तैलका इतना उपयोग नहीं करना कि उससे ओढनी भीगने लगे। मस्तकमें जैसा मिला वैसा तैल अथवा साबुन नहीं लगाना; क्योंकि उससे बाल श्वेत हो जाते हैं और मगजकी व्याधि उत्पन्न होती है।

१८ **विवाह**—बाल्यावस्थामें विवाह हो जानेसे वे अच्छी तरहसे अभ्यास नहीं करसक्ते; जिससे उनके बड़े होने पर आजीविकाके लिये कठिनाई पड़ती है और संसार दुःखरूप प्रतीत होता है। फिर कच्ची वयमें अपक्व वीर्यके निकल जानेसे शरीर निर्बल हो जाता है। बाल्यावस्थामें विवाह करनेवालोंके शरीर निर्बल, शक्तिहीन और रोगी होते हैं और आयु क्षीण होती है। उनसे जो प्रजा होती है वह भी ऐसी ही निर्बल व रोगी होती है। वे किसी कार्यको उत्साहसे नहीं कर सक्ते। बाल्यावस्थामें विवाह करनेसे अनेक प्रकारकी हानियां है; इसलिये पुत्रकी अवस्था २० से २५

वर्षकी होनेके पश्चात् और पुत्रीकी अवस्था १३ से १४ वर्षकी होनेपर विवाह करना उचित है। जीवनमें वीर्यकी रक्षा करना आवश्यक है। जिनके शरीरमें वीर्यकी अधिकता वह दृढ, शूरवीर, पराक्रमी, बलवान व निरोगी रहता है और संतति भी सब प्रकारसे श्रेष्ठ होती है। इसलिये बड़ी अवस्थामें विवाह करना उत्तम है।

१९ कानकी रक्षा—बालकके कान ठंडे नहीं होने देना। यदि ठंडे हो तो कानटोपी पहिना देना। ऐसा नहीं करनेसे कान पककर बालकको पीड़ा होगी। कदापि कानमें दर्द हो तो तैल गरम करके भीतर बूंदे डालनी और कान बहता हो तो समुद्रफेनको तैलमें उकालकर उसकी बूंद डालनी, कानमें छिद्र पाड़नेसे हानि होती है। कानमें छिद्र पाड़कर अलंकार पहिराना बहुत हानिकारक है। इसलिये यह रीति अच्छी नहीं है। कानको सलाई आदिसे खोदनेमें कान पकता है व उसमें पीड़ा होने लगती है।

२० शीतलारोगमें रक्षा—बालक शीतलाके निकलनेसे अंध, लंगड़े, काने या बहिरे होजाते है और सम्पूर्ण शरीरमें दाग पड़कर चहरा बिगड़ जाता है। कभी २ इतना ही होता है; किन्तु कभी २ इससे मृत्यु भी होती है। बालकोंके लिये इस रोगके समान अन्य कोई रोगका भय नही है। यह रोग चेपी है, इसलिये जिस समय जिस स्थानमें यह रोग चल रहा हो उस समय उस स्थानमें बालकोंको नही लेजाना। यदि टीका न लगवाया हो तो ऐसे समय पर तुरंत टीका लगवा देना चाहिये। टीका लगजानेसे उपरोक्त रोगोंके होनेका भय नहीं रहता। यदि टीका दो वार लगवाया जावे तो शीतलाके निकलनेका भय भी नहीं रहता। टीकाके एकवार लगानेकी अपेक्षा यदि प्रत्येक ७ वें वर्ष लगाया जावेतो बहुत ही उत्तम है। टीका लगाते समय जिस बालकका चेप लेना हो वह फौडेज्वरादि रोगवाला नहीं होना चाहिये। किन्तु तनदुरुस्त, हृष्टपुष्ट और निरोगी होना चाहिये। यदि टीकामें रोगी बालकका चेप उपयोगमें लाया जायगा तो अन्य बालक भी उसी रोगसे पीड़ित हो जावेंगे। इसलिये तनदुरुस्त बालकोंका ही टीका लगाना लाभकारी है। ९—१० दिनमें दाना भरकर सूजन हो जाती है जिसके कारण पीड़ा होती है। फिर १—२ दिनके पश्चात् आराम होने लगता है। उसका कुछ उपाय करनेकी आवश्यक्ता नहीं होती। यदि सूजनके कारण अधिक दुःख होता हो तो उसके ऊपर घृत लगाना चाहिये। दाने फूटने पर छानेकी (उपलाकी) महीन भस्म भुर भुराना उचित है; किन्तु दाने हाथसे नहीं फोडना। हाथसे फोड़नेमें जिस लाभकी इच्छा है वह केवल भ्रम है। यदि खुजली चले तो वस्त्रसे ही उसे निवारण करना किन्तु नख नहीं लगने देना चाहिये।

बालागोली—बालकोंको बालागोली देनेकी रीति बड़ी हानिकारक है। चाहे

इससे देखनेमें लाभ दिखाता हो; किन्तु अंतमें इससे हानि ही है। वह नित्य देनेसे एक प्रकारका खुराक ही हो जाती है। इसका जब तक नशा रहता है तबही तक बालकको नींद आती है, नशा उतरनेके पश्चात् कुछ लाभ नहीं होता। नशा करानेसे जैसी नींदकी आवश्यक्ता है वैसी नींद नहीं आती। बालागोलीमें भिन्न २ प्रकारकी वस्तुयें आती हैं उनमें अफीम मुख्य है। इसे बालकके हाथ पैर पकड़कर जल अथवा दूधमें घोलकर पिलाते हैं उसके चिल्लानेपर भी निर्दयी माताको दया नहीं आती। यह रीति स्त्रियोंमें देखा देखी प्रचलित हो गई है। इससे सिवाय हानिके लाभ नहीं है; क्योंकि बालक दुर्बल होकर उसके हाथ पांव दुर्बल और पेट बड़ा हो जाता है। ऐसा करके सुलानेसे नहीं सुलानेका बराबर है। यह शत्रुवत् रक्षा करना है। नींदके लिये सर्वोत्तम उपाय यही है कि उसे व्यायामसे थकित करना पीछे सुलाना चाहिये इसलिये बालागोली नहीं देना चाहिये।

२२ **नेत्र**—बालक जब सोकर उठे तब उसके नेत्र ठंडे जलसे धोना चाहिये नेत्रका कीचड़ आदि ठंडे जलसे धोकर निकाल देनेसे उसके नेत्रकी ज्योति बढती है और नेत्रोंकी गरमी शांत होकर ठंडक पड़ती है। नेत्रको नहीं धोनेसे हानि है। नेत्रमें अंजन लगाना अति उत्तम है उससे आंख उठती नही और ज्योति बढती है। नेत्रोंके उठनेका रोग चेपी है इस लिये यदि किसीके नेत्र उठे हो तो उसके पास बालकको नहीं जाने देना। बालकके जब नेत्र उठे तब उसका उपाय तुरत करना अन्यथा नेत्रको हानि होनेकी सम्भावना है।

२३ **चेपीरोग**—चेपीरोगोंसे बालकोंकी रक्षा करनी चाहिये। जब ऐसे चेपीरोग चल रहे हों अथवा किसीको रोग हो तो बालकको उसके पास नहीं जाने देना।

बालोपदेश।

प्रिय बालको! तुम इस संसारमें पूर्वजन्मके बड़े पुण्यप्रतापसे ही मनुष्यके समान उत्तम शरीर पाकर उत्पन्न हुए हो। नरजन्म यह प्राणीमात्रमें सर्वोत्तम है; इस श्रेष्ठताकी पदवी उसे उसके उत्तम गुणोंके कारण प्राप्त हुई है; यदि ये उत्तम गुण न हों तो मनुष्य और अन्य प्राणियोंमें किसी प्रकारका अंतर नहीं है। मनुष्य उत्तम गुणोंसे **मानवरत्न** और दुर्गुणोंसे **मानवपिशाच** कहलाता है। मानवरत्न होनेसे स्वर्ग सुख, अमरकीर्ति और मोक्षफल प्राप्त होते हैं और मानव पिशाच होनेसे

नरक दुःख मिलते हैं तथा फिर चौरासीलाख योनियोंमें अवतारादि लेकर अनेक कष्ट सहन करने पड़ते है इसीलिये अखंड सुखकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको मानवरत्न इस उपाधिको प्राप्त करना उचित है। इस पदको प्राप्त होना, संसारमें किसी प्रकारका दुःख न सहनकर अपने जीवनका सार्थक करना हो, तो पूर्व पुरुषोंके चरित्र तथा उनकी आज्ञा-वचनामृतका स्मरण कर उसके अनुसार अपना जीवन सुधारना और वैसे ही आचरणकर संसारमें एक दूसरेसे परस्पर प्रीति, नीति, आदिका अनुसरण करना यही सर्वोत्तम और सरल उपाय है।

१ प्रातःकाल सूर्योदयसे प्रथम ईश्वर स्मरण करते हुए उठना, प्रातःकाल जल्दी उठनेसे शरीर निरोगी रहता है, चंचलता आती है, मन आनन्दमें रहता है और संध्या होने तक प्रत्येक कार्य पूर्ण हो जाते हैं, समय भी अधिक मिलता है जिससे कठिनसे कठिन कार्य सहज ही पूर्ण हो सक्ते हैं; जिससे लक्ष्मीका लाभ मिलता है।

२ जलसे नित्य ही स्नान करते रहना चाहिये, जलसे स्नान करनेसे शरीर सम्बन्धी अनेक व्याधियोंका नाश होता है, शरीर चंचल होता है व सुस्तीका नाश होता है और स्वच्छतासे मन अति प्रसन्न रहता है।

३ बाल्यावस्थासे ही धर्माचरण करना क्योंकि जिस प्रकार पके फलके गिरनेका भय है वैसे ही मनुष्य जीवनका भी भय है, इस लिये विज्ञ पुरुषोंको उचित है कि पापकर्मोंको त्यागकर आत्माका विचार करे।

४ प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि सबसे पहिले अपने इष्टदेव परमात्माका भजन, पूजन व ध्यान करे पीछे सांसारिक कार्य करे।

५ परमात्मा सब स्थानमें व सबके घटमें व्यापक है, मनुष्य उसे नहीं जानता किन्तु परमात्मा मनुष्यके प्रत्येक कृत्यको जानता है, उसका साक्षी आत्मा है और अपने आश्रयका स्थल है। इसलिये उसकी आज्ञाका भंग किसी भी दशामें नहीं करना चाहिये।

६ अपने कल्याणकी कांक्षासे परमेश्वरमें प्रीति करना, विश्वास रखना, और परमात्माको अच्छा प्रतीत हो वही कार्य करना चाहिये।

७ नित्य प्रातःकाल परमेश्वरका उपकार मानना, उसकी सेवामें तत्पर रहना और आत्मार्पण करके उसकी शरणमें रहना जिससे वह मोक्ष फल देवेगा।

८ परमात्मा दयालु है, वह सकल पदार्थका दाता है, वह सब संसारका न्यायकर्ता है, इसलिये यह निश्चय करलेना चाहिये कि "जो जैसा करेगा उसे उ-

सका फल अवश्य भोगना पड़ेगा " ।

९ मनुष्यको असत् संकल्प नहीं करना चाहिये, खाने पीने तथा नहाने धोनेसे पवित्रता नहीं होती; किन्तु अपने अंतःकरणको निष्कपट और निर्मल बनाना यही पवित्रता है ।

१० परमेश्वरने हमको किसलिये उत्पन्न किया है? इस विषयपर रातदिन चिन्तवन करना चाहिये व आत्मस्वरूपको पहिचानना चाहिये ।

११ परमेश्वरकी सत्तासे ही संसारमें बड़ापन है इस लिये अभिमान नहीं करना चाहिये ।

१२ देवसेवा और अपनी जिन्दगीके मुख्य कर्तव्य कर्म करनेमें लापरवाही नहीं करना चाहिये ।

१३ परमेश्वरसे दूसरे दरजे माता, पिता और गुरू सेव्य और पूजनीय है; इसलिये उनकी आज्ञाका तिरस्कार नहीं करना, उनको आनन्द और सन्तोष देना, तथा तन, मन, धन और कर्मसे उनकी सेवामें तत्पर रहना चाहिये; जिससे परमात्मा सदैव प्रसन्न रहेगा ।

१४ आचार्योंके बताये हुये मार्गपर चलना चाहिये ।

१५ किस मार्गसे जाना? यदि इस प्रकारकी शंका उत्पन्न हो तो जिस मार्ग पर उत्तम विचारवाले पुरुष जाते हो उसीपर चलना चाहिये ।

१६ यद्यपि उत्तम मनुष्यों और शास्त्रकी शिक्षा कठिन प्रतीत होती है तथापि वह हितकर है; इसलिये उसे मानना व उसके अनुसार चलना चाहिये ।

१७ किसी भी दरिद्री मनुष्यको देखकर उसका अनादर नहीं करना; क्योंकि कदाचित् कोई समय हमपर भी वैसा ही समय आ जावे ।

१८ जो कार्य अच्छे अथवा बुरे किये जाते है उनके अनुसार हम फल पाते हैं और फिर उन्हीं कर्मोंके अनुसार उत्तम, मध्यम और अधमयोनिमें जन्म लेना पड़ता है और फिर उन्हीं कर्मोंके अनुसार सुख, दुःखकी प्राप्ति होती है ।

१९ धर्मके नाश होनेसे शरीरमें रही हुई आत्माको दुःख होता है; उसका विचार करके सदैव उत्तम कर्म करना चाहिये ।

२० हम ही हमारे शत्रु व मित्र हैं इसलिये हमको हमारा कल्याण स्वयं करना चाहिये ।

२१ प्रातःकालमें उठकर जीसे परलोकमें हित होगा उसका चिंतवन करना पश्चात् अन्य कार्य करना; क्योंकि कदाचित् अकस्मात् यह शरीर छूट जावे तो फिर

कोई भी सत्कर्म नहीं हो सकेगा। मानलो कि हमारी आयु १०० वर्षकी है तो भी अति अल्प है; क्योंकि आधी आयु निद्रामें ही जाती है और आधी बाल, युवा, जरा, दुःख और शोकमें निष्फल जाती है; जिनका जीवन धर्म, अर्थकी ओर नहीं लगा है उनका जीवन व्यर्थ ही समझना।

२२ मनुष्यका मन यही बंधनका और मोक्षका कारण है, विषयके पदार्थोंसे बचे रहना; क्योंकि यही बंधनके हेतु हैं और उन पदार्थोंसे बचना यही बंधनका मोक्ष है।

२३ वस्त्रालंकारसे शरीरको सुशोभित करनेकी अपेक्षा सद्गुणोंसे सजाना अत्युत्तम है।

२४ सत्यकी ही विजय होती है असत्यकी कदापि नहीं हो सक्ती। असत्यके समान दूसरा पाप नहीं है इसलिये कभी सत्यको नहीं छोड़ना चाहिये।

२५ न्याय (धर्म) नीतिसे चलना, यदि इनका नाश होगा तो समझो सबका नाश हो गया और इनकी रक्षा होगी तो सबकी रक्षा होगी।

२६ तन, मन, धनसे सब प्राणियोंपर दया रखना। काया, वाणी और मनको अपने वशमें रखना। प्राणीमात्रको सुख मिले व कल्याण हो वैसा करना चाहिये।

२७ शत्रु अथवा मित्र किसीसे ईर्षा नहीं करना, सबका हित चाहना, क्रोधको कालके समान देखना; क्योंकि मनुष्यकी बुद्धि और चतुराई उसके उदय होते ही नष्ट हो जाती हैं; जो कार्य क्रोधसे किये जाते हैं उनसे अंतमें पछताना पड़ता है।

२८ निरुद्यमी मनुष्य किसीको प्यारा नहीं होता इसलिये आलसका त्याग कर उद्यमकी ओर झुकना चाहिये और यह स्मर्ण रखना चाहिये कि गया समय फिर नहीं मिलेगा इसलिये समयको व्यर्थ नहीं जाने देना।

२९ सबके साथ प्रेमसे रहना, अपनी हैसियतके अनुसार वस्त्र पहिरना और किसीके उत्तम वस्त्र देखकर ललचाना नहीं।

३० यदि कोई मनुष्य पंडित, विद्वान् अथवा अपनेसे बड़ी अवस्थावाला अपने घर आवे तो उठकर उसका सत्कार करना चाहिये।

३१ किसी मनुष्यके साधारण वर्तावसे उसको मूर्ख जानकर तिरस्कार नहीं करना वैसे जबतक किसी मनुष्यका स्वभाव न समझ लिया जावे तब तक उसका विश्वास करके अपने छुपे भेद नहीं बताना चाहिये।

३२ चुगलखोर मनुष्यका विश्वास भूलकर नहीं करना और उसी प्रकार स्वयंभी एककी बात दूसरेसे नहीं कहना।

३३ अभिमानी मनुष्य कठिन कष्ट भोगते हैं और वह किसीके प्रेमपात्र नहीं

हो सके; समस्त अनर्थोंका मूल अभिमान समझे जाते हैं इसलिये मिथ्याभिमान नहीं करना चाहिये ।

३४ माता-पिता, भाई, बहिन, पत्नी, पुत्रवधू और सेवक प्रभृतिके साथ विवाद नहीं करना; अपने बड़े भाईको पिताके तुल्य, बड़े भाईकी स्त्रीको माताके समान व दास, दासियोंको अपनी छायाके समान और कन्याको कृपापात्र समझकर यदि उनकी कोई भूल हुई हो तो भी सहनशक्तिको नहीं छोड़ना ।

३५ बालकोंको १६ वर्षकी अवस्था तक अपनी बुद्धिके अनुसार किसी कार्यको नहीं करना, अपने गृहमें माता-पिता व पाठशालामें गुरुकी आज्ञानुसार चलना चाहिये । उत्तम, मध्यम जो भी गुण बाल्यावस्थामें आते हैं वे जीवनपर्यंत नहीं जाते । जैसे कोमलवृक्षको जैसा चाहिये वैसा नमाया जा सक्ता है किन्तु वही बडा हो जाता है तो कैसे भी नम नहीं सक्ता । पाठशालामें जानेका समय नहीं चूकना, अपने मनमें सदैव इस बातका अभिमान रखना चाहिये कि शालाके अन्य विद्यार्थियोंकी अपेक्षा मैं शीघ्र पहुंच जाऊंगा । मार्ग में विलंब नहीं करना, बाल्यावस्थाकी सीखी हुई विद्या जीवन पर्यंत नहीं भुलती, इसलिये विद्या सीखनेमें लापरवाही नहीं करना ।

३६ किसीको भी मन, वचन व कर्मसे दुःख नहीं देना । हमें दया, धर्म, भक्ति और आराधना आदि सद्गुणोंको हृदयमें स्थान देना चाहिये । यही सद्गुण हमको सुख देनेके मूल कारण हैं ।

३७ दया यह सद्गुणी मनुष्यका सामर्थ्य है, यदि किसीने हमसे निर्दयताका व्यवहार किया तो हमको उसका बदला दयापूर्वक देना चाहिये ।

३८ जो मनुष्य कृतघ्नताका अपराध करता है वह प्रायश्चित करके भी पवित्र नहीं हो सक्ता, इस लिये कृतघ्नता नहीं करना ।

३९ परोपकारमें वृत्ति रखना, हल्के मनुष्य कहते हैं कि, "क्या यह हमारा कुटुम्बी है ?" किन्तु पवित्र मनके मनुष्य समस्त संसारको अपने कुटुम्बियोंके समान मानते हैं । जो कोई किसीका बुरा नहीं चेतकर भलेकी इच्छा रखते हैं वे अक्षय सुखको भोगते हैं इसलिये परमार्थ पर अधिक प्रीति रखना चाहिये । परमार्थ करनेसे जैसे अपने मनको संतोष होता है वैसा सुखविलास, क्रीडा इत्यादिसे नहीं होता ।

४० प्रमाणसे धन, धान्यको एकत्र करना, और जो अपने आश्रित हों उन्हें यथाशक्ति प्रेम पूर्वक देना चाहिये, लोभ नहीं करना; क्योंकि लोभ यही पापका मूल है ।

४१ स्वार्थता यह दुःखका महान् कारण है; स्वार्थता विषके समान हमारे

जीवनका शत्रु है, इसलिये भूलकर स्वार्थता नहीं करनी।

४२ मनुष्यके पुनर्जन्म धारण करनेसे माता, पिता, पत्नी, पुत्रादि सगे स्नेही कोई भी साथी नहीं होते; केवल उसके किये हुये कर्म ही उसके साथी होते हैं इसलिये सदैव अच्छे कर्म करके हमको हमारे साथी बना लेना चाहिये, सद्‌गुणका अनुसरण करनेसे अन्धकार नष्ट होता है।

४३ धर्मके तत्वोंको समझकर उनका अनुसरण करना चाहिये। दूसरेको दुःख नहीं देना, परोपकार और अपकारके बदले उपकार करना, विषय वासनाओंमें वृत्ति नहीं रखना, चोरी नहीं करना, अयोग्य लाभके प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करना, ज्ञान प्राप्त करना, पवित्रता, शील, निर्मल मन तथा मानासिक धर्मको नहीं त्यागना, ईश्वर संबंधी ज्ञानमें प्रीति रखना, क्रोध और ईर्षा नहीं करना, आदिगुणोंके अनुसरण करनेवाले मनुष्य धार्मिक कहलाते हैं।

४४ उत्तर तथा पश्चिमकी ओर शिर करके सोना न चाहिये।

४५ सत्पुरुषोंके बताये मार्गपर चलना उसके छोड़नेसे अनेक संकट सहने पड़ते हैं।

४६ अन्न यह समस्त प्राणियोंका जीवन है इस लिये अन्न दान श्रेष्ट माना गया है; अतः कोई भी अतिथि मांगनेको आवे तो उसे दानमें अन्न ही देना चाहिये।

४७ रात्रिमें निर्भय नहीं घुमना और न किसी भयंकर स्थानमें जाना।

४८ द्रव्य स्वप्नवत् है, यौवन पुष्पके समान है और आयु विजलीके समान चपल है ऐसा सोच कर अपने जीवनको सार्थिक बनानेके लिये सदैव तत्पर रहना।

४९ संकटके आनेपर भी दुराचार नहीं करना, यात्रियोंको मदद करना, धर्म सम्बंधी द्वेष नहीं करना, संतोष और नम्रताको नहीं त्यागना।

५० परिश्रमसे घबराना नहीं, मार्ग भूलेको मार्ग बताना, व्यवहारमें कुशलता रखना।

५१ किसीसे शत्रुता नहीं करना, व्यभिचार नहीं करना, त्याज्य पदार्थको उपयोगमें नहीं लाना, व्यसन नहीं करना; व्यसनका त्याग सुखका मूल है।

५२ जिसने हमपर उपकार किया हो उस पर उपकार करनेका सदैव चिंतवन करना। यदि वह ऐसी व्यक्ति हो कि हम किसी प्रकारसे उसपर उपकार नहीं कर सक्ते तो परमात्मासे उस पर दया रखने के लिये सदैव प्रार्थना करते रहना।

५३ परस्त्री पर कुदृष्टि नहीं रखनी, परद्रव्यके हरण करनेकी मनमें इच्छा नहीं रखनी, किसीसे दगा नहीं करना ।

५४ हम कैसे भी दुःखी क्यों न हो? हमपर कैसी भी विपत्तियें क्यों न पड़े किन्तु हमको अपने धर्मका त्याग नहीं करना; जहां धर्मसम्बंधी कोई कार्य आवे वहां चाहे जैसे संकटके पड़नेकी सम्भावना हो तो भी उस धर्मके कार्यसे पीछे नहीं हठना यही धर्मिष्ठ मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है ।

५५ मनुष्य जैसी संगतिमें रहता है देखनेवाले उसे वैसा ही मानते है; जैसे अच्छे सत्संगमें 'अच्छा मनुष्य' और कुसंगतिसे 'दुर्जन' कहलाता है; इस लिये सदैव सत्संगमें रहना चाहिये । सज्जनोंके सत्संगसे जो सुख होता है वह सुख किसीसे नहीं प्राप्त हो सक्ता ।

५६ मित्र अथवा सखाके साथ कपट नहीं रखना यदि उनकी औरसे हमारा किसी प्रकारका अपमान अथवा कुत्सित व्यवहार हुवा हो तो स्पष्ट कह कर भविष्यमें वैसा न हो उसका यत्न करना, उनको युक्तिसे उलाहना देना जिससें उनके चित्तमें किसी प्रकारका दुःख न हो ।

५७ सम्पूर्ण दिनमें जो २ पाप कर्म हुए हो उनका सायंकालमें एक एकका स्मरण करके पश्चात्ताप करना और ईश्वरसे क्षमा मांगना चाहिये तथा भविष्यमें वैसा पाप-कर्म न करनेकी प्रतिज्ञा करना चाहिये । ईश्वरसे प्रार्थना करके यही मांगना कि "हे जगदाधार हमको क्षमा करके सद्बुद्धि प्रदान कीजिये जिससे हम अपनी प्रतिज्ञाको पालन करसके" ।

५८ चोरी नहीं करना, यदि किसीका कोई भी पदार्थ मिले तो वह उसके मालिकको देना, उसे कपट करके छिपाना नहीं । प्रथम साधारण वस्तु छुपानेकी और फिर धीर २ बड़ी २ वस्तुयें चुरानेकी और अंतमें भयंकर चोरियां, खून आदि तक करनेकी आदत पड़जाती है । इस लिये कैसी भी साधारण वस्तु हो वह नहीं चुराकर उसके मालिकको देना चाहिये ।

५९ धन, कुटुम्ब और यौवनावस्थाका अभिमान नहीं करना; क्योंकि काल एक क्षणमें सबका नाश कर सक्ता है ।

६० सहनशील बनना चाहिये, छुकडपनका त्याग करना, प्रयोजनानुसार मधुर बचनोंसे बोलना, किसीको बुरा लगे ऐसे बचन अपने मुखसे नहीं निकालना क्योंकि उससे वैरभाव उत्पन्न होनेकी सम्भावना है ।

६१ व्यर्थ एक क्षण भी नहीं जाने देना, मान, अपमानको दबाये रखना

चाहिये और दुर्गुणसे डरते रहना।

६२ अपने वर्णाश्रमके अनुसार जो धर्म हो उसकी अपेक्षा कर कैसा भी उत्तम धर्म क्यों न हो किन्तु उसे तुच्छ समझना। अपने धर्मको पालते हुए मृत्यु प्राप्त हो तो सर्वोत्तम हैं परन्तु दूसरेका धर्म इस लोक और परलोकमें सर्वत्र भय उत्पन्न करने वाला है इस लिये अपने धर्म ही पर पूर्ण सहानुभूति रखनी।

६३ जो मनुष्य अपने वर्णाश्रमके धर्मको छोड़कर अन्य धर्मका अनुसरण करता है अथवा अपने धर्मकी निन्दा व अन्य धर्मकी स्तुति करता है उसके समान अज्ञान और पापी अन्य किसीको नहीं समझना चाहिये।

६४ अखिल ब्रह्मांड़पति परमात्मा जिसकी शक्ति और कर्तव्यका पार नहीं उसे चाहे सगुणरूपसे अथवा निर्गुणरूपसे स्मरण करो किन्तु अंन्तःकरणसे उस महान् शक्तिवानकी स्तुति करनेमें कभी भूल नहीं करना चाहिये।

६५ जैसे दर्पणमें देखनेसे हमको हमारा रूप देख पड़ता है वैसे ही धर्मशास्त्र समझनेसे हमारा इस संसारमें क्या कर्तव्य है वह स्पष्ट देख पड़ता है, इसलिये दूसरी भाषा व अन्य धर्मकी पुस्तकें देखनेके पाहिले अपनी भाषा और अने धर्म—ग्रंथोंको देखना चाहिये; जैसे विना गुरुके ज्ञान नहीं होता वैसे ही अपने धर्म—शास्त्रके विना समझे मोक्ष गतिको प्राप्त होनेका ज्ञान नहीं मिलता; स्वधर्म पालनमें और अपनी नीति षट्कर्म करनेमें सदैव पवित्रता और नीतिका पालन करना चाहिये।

६६ जैसे छप्पर घरका ढकन है वैसेही चमड़ी भी हमारे शरीर का ढकन है इसलीये चमड़ीको स्वच्छ रखकर अपनी सुघड़ता बढानी चाहिये।

६७ कच्चे कान नहीं रखना, यदि कोई आदमी किसी अन्य व्यक्तिकी हमसे आकर झुठी सच्ची बात कहे तो उसका सत्य निर्णय किये बिना उसकी बातका विश्वास नहीं करना।

६८ क्षमा यह मनुष्यका भूषण है। किसीने हमारा अपमान किया हो तो उसको दण्ड देनेकी अपेक्षा क्षमा करना चाहिये। क्षमावानका इस संसारमें कोई शत्रु नहीं होता वह महान् सुखका अधिकारी होता है। कहा भी है कि:—

क्षमा सकल गुणमें बड़ो, क्षमा पुन्यका मूल।
क्षमा जासु हिरदे रहै, तासु दैव अनुकूल॥

६९ आयसे व्यय नहीं बढना चाहिये, आय व्ययका हिसाब रखना, और कर्ज करके खर्च नहीं करना चाहिये।

७० नीचा शीर करके नहीं सौना, वैसे ही उंचा शिर करके नहीं सौना।

निद्रा अधिकसे अधिक ६–७ घंट लेना। जहांतक हो औषधका उपयोग नहीं करना। कानको लकड़ीसे नहीं खोदना।

७१ स्वाभाविक छीक, जंमाई, मल, मूत्रके वेगको नहीं रोकना। अधिक गर्मी, शीत, वायु, वर्षा इत्यादिमें नहीं चलना। सूर्य अथवा अन्य चमकीले पदार्थ व बहुत ही छोटे पदार्थ नहीं देखना।

७२ सज्जनके पक्षमें रहना, दुर्जनके पक्षमें भुलकर भी नहीं रहना; सज्जनसे सुख और दुर्जनसे दुःख प्राप्त होता है।

७३ मिताहारी रहना, अधिक खानेकी अपेक्षा थोड़ा खाना अच्छा है। नित्य ठीक समय पर भोजन करना, पौष्टिक खुराक खानी चाहिये। सादा भोजन, व्यायाम और स्वच्छ वायु यही हमारे जीवनके प्रधान सहायक है; इसलिये इनका सेवन करना चाहिये।

७४ स्त्रीको मन, वचन और कर्मसे पतिसेवा करनी चाहिये; यदि कोई दुष्ट मनुष्य द्रव्य, वैभव इत्यादि बताकर अपने वश करना चाहे तो प्राण भी चले जाय किन्तु अपने पतिका त्याग नहीं करना।

७५ विवेक और विनयसे दान करना, दान करते समय चित्तकी वृत्ति स्थिर रखनी चाहिये।

७६ मन और इन्द्रीयोंको वशमें रखना चाहिये। किसी पर अत्याचार नहीं करना और किसीको हीन भी नहीं गिनना।

७७ किस भी पदार्थको अकेले नहीं खाना, घरमें सबके साथ बैठकर उसको खाना चाहिये।

७८ मिथ्या वस्तुयोंपर प्रेम व मोह नहीं रखना; अपने धर्ममें कभी पीछे नहीं हटना और हित साधनमें भी लापरवाही नहीं करना।

७९ परोपकार और दानके प्रतिफलकी इच्छा नहीं रखना; किसी प्रकारकी इच्छा रखकर दान करना अथवा परोपकार करना, नहीं करनेके बराबर है।

८० अपने द्रव्यकी रक्षा करनी चाहिये और अन्यके द्रव्यको अपने द्रव्यमें रखनेकी इच्छा नहीं रखना चाहिये।

८१ जो मान्य स्त्री किम्वा पुरुष हो उसका अपमान नहीं करना। मुखसे कहे बचनका प्रतिपालन करना चाहिये। नहीं पालन करनेसे प्रतिष्ठा नहीं रहती।

८२ कोई भी कार्य कपटसे नहीं करना वैसा करनेसे परिणाममें हानि होती है। विद्यादाता गुरु पर हार्दिक स्नेह रखना क्योंकि वह अतःकरणसे विद्या पढाता

है और प्रेमपूर्वक विद्या पढनेमें वही विद्या उत्तम फल और अनेक प्रकारके सुखकी दाता है ।

८३ स्त्री हो किम्वा पुरुष किन्तु उसे उत्तम पुरुषकी चाकरी करनी चाहिये । चपल, लोभी और बदनाम मनुष्यकी सेवा–चाकरी नहीं करनी चाहिये ।

८४ स्त्रीके वशमें होनेसे पुरुषको सुख नहीं मिलता । स्त्रीको कोई बचन भी देनेके प्रथम उसका परिणाम सोच लेना चाहिये क्योंकि मूर्ख स्त्रीसे कभी २ प्राणोंपर संकट पड़जानेकी सम्भावना है । पानी छान कर और स्वच्छ पीना; वस्त्र साफ और स्वच्छ पहिरना चाहिये । पांव गरम और मस्तक ठंडा रखना यह सुखके देनेवाले हैं ।

आयु बढानेके उपाय ।

इस सृष्टिमें प्राणीमात्रमें मनुष्य ही श्रेष्ट माना जाता है और उसकी आयु सबसे अधिक उपयोगी है । आयु जितनी अधिक हो उतनी ही अधिक उपयोगी हो सकती है । क्या खाना, पीना, सौना और बैठ रहनेके लिये ही अधिक आयुकी आवश्यक्ता है ? नहीं, इनके अतिरिक्त जो ईश्वरने हमें बुद्धि और इन्द्रियां आदि दिये हुए हैं उन्हें अधिक उपयोगी करने, संतान, स्त्री आदिसे अधिक सुखके लेनेके लिये और स्वयं सुखी होकर अन्यको सुखी करनेके लिये परोपकार सम्बन्धी अनेक सत्कर्म करके संसारमें कीर्त्ति अमर करने और ईश्वर–भक्ति करके आवागमनके झगड़से मुक्ति प्राप्त करनेके लिये दीर्घायुकी अधिक आवश्यकता है; किन्तु वह कैसे प्राप्त हो ? विधाताने जो कुछ हमारे भाग्यमें लिख दिया है वह विना हुए कभी रुकनेवाला नहीं, फिर अनहोनी बात कैसे हो सक्ती है ? इत्यादि कितनीक तर्क करके बहुतेरे मनुष्य कल्पना करते हैं; किन्तु ऐसा सोचनेवालोंको स्वयं उनके विचारपर उन्हें भरोसा नहीं रहता; क्योंकि अर्वाचीन कालमें अनेक शोध, तपास और दृष्टांतसे सिद्ध हुआ है कि उस दयालु परमेश्वरने कितनेक ऐसे नियम बनाये हैं कि उनके अनुसार चलनेसे निःसदेह आयु बढती है । जिस वीर्यसे यह नर–जन्म होता है वह सर्वोत्तम होना चाहिये । माता–पिता यदि निरोगी है तो उनसे उत्पन्न हुआ बालक भी निरोगी होगा। वह अपने कुटुम्बके अन्य मनुष्योंकी अपेक्षा दीर्घायुवाला होगा । **टाम्सपार** नामक एक मनुष्यकी आयु १५२ वर्षकी थी उसका विवाह ५० वर्षकी आयुमें हुआ था

उससे उत्पन्न हुए लड़कोंकी आयु पहिलेकी १०९ दूसरेकी ११३ तीसरेकी १३४ वर्षकी हुई थी। इस प्रकार स्कॉटलेंडकी एक स्त्री १३० वर्षकी आयुमें भी निरोगी और शरीरसे हृष्ट पुष्ट थी, इस स्त्रीके पिताकी आयु १२० वर्ष व पितामहकी १२८ वर्षकी थी।

कीनेरा नामक एक मनुष्य इटलीका निवासी था वह मिताहार और कुदरतके नियमानुसार चलनेसे दीर्घायुषी हो गया है; यह पुरुष ४० वर्षकी आयुतक स्त्रीके विषयमें कुछ भी नहीं जानता था; यह मनुष्य कभी २ पेट व ज्वरसे भी पीड़ित होता था। एकवार उसे ज्वरके कारण इतनी अशक्ति हो गई थी कि डाक्टरोंने उसके जीवित रहनेकी आशा त्याग दी थी, केवल मिताहारके आधारपर कुछ दिन जीवित रहनेकी सम्भावना थी। उस मनुष्यने अपने जीवनके लिये यही उपाय स्थिर रक्खा, धीरे २ उसका शरीर तन्दुरस्त होने लगा और अल्पकालमें ही वह पूर्ववत् निरोगी हो गया। इस बातपरसे उसने निर्णय किया कि, "शरीरको जितने भोजनकी आवश्यक्ता हो उससे अधिक नहीं खाना" फिर उसने २० वर्षतक अर्थात् ६० वर्षकी आयुतक ३० रुप्येभर अन्न व ३५ रुप्या भर जलके अतिरिकित और कुछ भी नहीं खाया। इस नियमसे उसका शरीर और मन दोनों ठीक स्थितिमें रहे थे। वृद्धावस्थामें वह एक बड़ा भारी मुकदमा हारा था जिससे रंजके कारण उसके दो भाइयोंकी मृत्यु हो गई किन्तु वह दृढ मनके कारण वैसा ही हृष्ट पुष्ट रहा था। ५० वर्षकी आयुमें कुछ निर्बलता होनेके कारण उसके मित्रोंने उसे खुराकके बढानेकी सलाह दी थी; किन्तु वह जानता था कि शरीरके कुदरती नियमका उल्लंघन करनेसे शरीरके अवयव व पाचनशक्ति समस्त अशक्त होने लगते हैं वैसे समयमें खुराक बढानेकी अपेक्षा घटाना ही उचित है। यह सब कुछ जानने परभी मित्रोंके अधिक आग्रह करनेपर उसने ३२ रुप्याभर अन्न और ४० रुप्याभर जल लेना स्वीकार किया। वह अपने नियमको भंग करनेके कारण दस दिनमें प्रसन्न मुखको बदल उदास हो गया। बारहवें दिन उसकी बगलमें दर्द शुरु हो गया उस दिनसे ज्वर भी आरंभ हो गया इस अवस्थामें उसके ३५ दिन पूर्ण हो गये उसने अपने जीवित रहनेकी आशा त्याग दी; किन्तु ३६ वें दिनसे उसने पुर्ववत् अन्न जल लेना फिरसे आरंभ कर दिया। ईश्वरेच्छासे वह धीरे २ निरोगी होकर पहिलेके समान हृष्ट पुष्ट और निरोगी हो गया। ८१ वर्षकी आयुमें वह इतना बलिष्ट था कि विना किसीकी सहायताके घोड़ेपर चढ जाता था, यह दशा उसकी १०० वर्षकी आयुतक रही थी पीछे और कितनेक वर्षतक यह जीवित रहा था।

अमेरिका का **न्युहेरल्ड** पत्र कहता है कि, "अमेरिकामें गोरे मनुष्यकी अपेक्षा सीदी लोग अधिक आयु भोगते हैं; क्योंकि वे साधारण खुराक खाते हैं शराब नहीं पीते और घरमें व बाहर परिश्रम करते हैं"। असिकी निर्मल वायुमें रहनेवाले प्राचीन ग्रीक लोग दार्घायुषी होनेके लिये मिताहार, स्वच्छ वायु, स्नान और व्यायाम यही उपाय किया करते थे। **हीरोडीकस** नामक युनानी हकीम अपने रोगियोंको आरोग्यता प्राप्त करनेके लिये निर्मल वायुमें घूमनेकी सलाह देता था। उसका रोगी जितना अधिक बीमार (अशक्त) होता था वह उससे अधिक परिश्रम कराता था जिससे इस नियमको पालन करके कई रोगी मनुष्य दीर्घायुषी हो गये हैं। अर्वाचीन कालमें हमारे देशमें **वनराज** ११० वर्ष, **असाफखां** १०४, **उमरेठकी** एक मालन १२० वर्ष, देवगढबारियाके माली नामक ग्राममें एक कोली १२५ वर्षका हो गया है इत्यादि बहुतेरे दृष्टांत हैं। प्राचीन कालमें हमारे देशमें इससे भी अधिक आयुष्यके निवासी थे इन लोगोंमें वनको निर्मल वायु, सादी खुराक, और शरीरके बलके प्रमाणसे परिश्रम इत्यादि नियम पालनेसे ही दीर्घायुषी हो गये हैं।

प्राचीन कालमें अन्य देशनिवासी अपनी आयुके बढानेके अनेक उपाय करते थे। मिसर देशके निवासी उष्णकालमें और नाइल नदीकी बाढके दिनोंमे दो वार वमन और प्रस्वेद होनेकी औषधका सेवन करते थे। यूरोप खंडके निवासी वृद्धावस्थासे अशक्त व्यक्तियोंको शक्ति बढानेके लिये तरुण तथा छोकरोंके बीचमें रखते थे। डाक्टर **कोहोसेन्ट** एक सत्य दृष्टांत इस विषयको पुष्ट करनेके लिये देते हैं कि, "रोमकी कन्याशालाका अध्यापक नन्हीं २ बालिकाओंमें रहनेके कारण दार्घायुषी हो गया है। उपरोक्त डाक्टरकी सर्व साधारणको यही सलाह है कि, "प्रतिदिन प्रातःकाल और संध्याकालमें निर्दोष कन्याओंके साथ रहनेसे जीवन रक्षक शक्तियां दृढ होती हैं; क्योंकि निर्दोष श्वासोश्वासमें स्वच्छता अधिक रहती है"। **प्लुटार्कके** आयु बढानेके नियमोंका इस सुधरे समयमें अवश्य अनुसरण करना चाहिये; क्योंकि उन नियमोंके पालनका प्रत्यक्ष प्रमाण प्लुटार्ककी दीर्घायुका होना है। "तुम अपना मस्तक ठंडा और पैर उष्ण रक्खो, जब शरीरमें किसी प्रकारका विकार होनेकी सम्भावना हो तब औषधकी अपेक्षा उपवास करो और जैसे शरीरकी रक्षाका प्रयत्न करते हो वैसे ही मनकी रक्षाका प्रयत्न करो।" मनकी शांति, आत्मसंयम, ध्यान, साधारण खुराक, मिताहार, मनका निग्रह, विषय बासनासे बचना, शरीरको कसना, खुली और स्वच्छ वायुका सेवन, संतोष और मनको प्रसन्न रखना आदि अनेक नियमोंको पालनकर ऋषि, मुनि, साधु, योगी और तपस्वियोंने तथा तत्वज्ञानियोंने अपनी दीर्घायुका भोग किया

है। **पाल** नामक साधु गुफामें रहता था, तथापि नियमोंका पालन कर ११६ वर्षकी आयु भोगकर मृत्युको प्राप्त हुआ था। **पीथा** यद्यपि गोरखमार्गी था तथापि वह अपने मनको वशमें रखना, नियम पालना, यह अपना कर्तव्य समझता था। **आपोलिनीयस** १०० वर्षसे अधिक, और **झेनोफिलस** १०६ वर्षका था। **डेकनबर्ग** नामक डेनमार्कका एक निवासी ८१ वर्षकी आयु तक राजनाविकके पद पर नोकर था, वह तुर्कस्थानमें १५ वर्ष गुलाम करके रक्खा गया था, जब उसकी आयु १११ वर्षकी हुई तब उसने शेष जीवन शांतिसे पूर्ण करनेके लिये ६० वर्षकी एक वृद्ध स्त्रीसे अपना विवाह किया था; किन्तु वह थोड़े दिनके पश्चात् मर गयी। **डेकनबर्गने** उसके मरनेपर फिर दूसरे विवाह करनेकी इच्छा प्रगट की; किन्तु लोगोंने उसे ऐसा नहीं करने दिया। अंतमें यह पुरुष १७७२ इस्वीमें १४६ वर्षकी आयुको पूर्ण कर इस लोकसे विदा हुवा था।

पृथ्वीके स्वभाव और वायुके प्रमाणसे भी दीर्घायु होना सम्भव है। **स्वीडन नार्वे, डेन्मार्क** और **इग्लेन्ड** प्रभृति देशोंमें आज दिन भी १७०, १४०, १५० वर्षके अनेक वृद्ध पुरुषोंके दृष्टांत मिलते है; किन्तु **अति सर्वत्र वर्जयेत्** इस बचनानुसार अधिक शीत भी आयुका नाश करती है। **आइसलेन्ड, सैबिरिया,** प्रभृति अत्यन्त शीत देशोंमें ६०–७० की आयु होती है। कितनेके देशोंमें पृथ्वीके गुण और वायुके अनुसार जन्मसे लेकर मरण पर्यंत बलवान और निरोगी रहते है। **न्युझीलेन्डके** निवासी **कुकसाहेबका** कथन है कि, " मैं तथा मेरे अन्य साथी जब २ इस द्वीपमें उतरें हैं तब यहांके निवासीयोंके बाल, तरुण, वृद्ध, वनितादि की जो स्थिति देखी थीं उन्हें उसी स्थितिमें फिर भी देखा, उनमें किसीको भी रोगी नहीं देखा, उनके किसी भी अंगपर जखम होनेके चिन्ह नहीं देखे और न कोई ऐसा भी चिन्ह देखा जिससे यह प्रतीत होता कि यह पहिले जखमका चिन्ह है। यद्यपि कई लम्बी आयुवालोंमें बलकी कुछ न्यूनता हो गई थी; किन्तु उनके चहरे परसे उत्साह और प्रसन्नताकी झलक आती थी। उस समय वे लोग मदिराका सेवन करना बिलकुल नहीं जानते थे। इस प्रकार दार्घायुषी मनुष्योंके अनेक उदाहरण मिलते हैं; क्योंकि उन देशोंमें नियमोंपर विशेष रुपसे ध्यान दिया जाता है। हमारे इस गर्म देशकी अपेक्षा उस ठंडे देशके निवासीयोंकी आयु लम्बी होनी ही चाहिये तथा होती भी है। परमकृपालु परमेश्वर का यह अभिप्राय है कि, "सब प्राणी विना क्लेशके सुखसे व्यवहार करें और दीर्घायुषी होवें " किन्तु अनेक अविवेकी पुरुष स्त्रीके प्रसव कालका दृष्टांत देकर कहते हैं कि " यदि प्रभुका यही विचार है तो स्त्रीको प्रसूति

कालमें कभी दुःख न होता " उन पुरुषोंका ऐसा कहना अनुचित है; क्योंकि इस सुधरे कालमें प्रत्यक्ष प्रमाण और उदाहरण मिलते हैं कि ईश्वरके नियमोंके उल्लंघन करनेसे ही स्त्रियोंको प्रसूतिकालमें दुःख होता है। **लिसन** साहेबके कथनानुसार सने १८२० में स्कॉटलेन्डमें एबर्डिन नामक स्थानपर एक स्त्रीको पुत्र हुवा था और वह तीसरे दिन उस बालकको लेकर १४ कोस पैदल चली थी इस प्रकारके वहां अनेक उदाहरण मिलते हैं; इतनाही नहीं, वरन् कभी २ वहांकी स्त्रियां खेतोंका कठिन कार्य करती हुई थोड़ी दूर जाकर विना किसीकी सहायताके प्रसव करके पीछे संध्या तक खेतका कार्य करती हैं। उनको बहुत सूक्ष्म पीड़ा होती है, किन्तु उस पीड़ाका कुछ भी परिणाम उनको मुखाकृतिसे नहीं जान पड़ता है। बहुतेरी स्त्रियोंको मार्गमें ही प्रसव होनेके कारण ३—४ कोस तक पैदल चलना पड़ता है। अमेरिकाके आदिम नामक स्थानकी स्त्रियां अपने पतिके पीछे २ जंगलमें बराबर चलती हैं; किन्तु प्रसव कालमें पतिके थोड़े पीछे रहकर और प्रसवकर उस बालकको पीठपर बांध लेती हैं और शीघ्रतासे चलकर अपने पतिके समीप पहुंचकर फिर उसके साथ २ चलने लगती है। **लारेन्स** साहेबके कथनानुसार अमेरिकाके आदिमनिवासी, हवसी और अन्य जंगली जातिकी स्त्रियोंको बहुत थोड़ी प्रसव पीड़ा होती है। इस प्रकार होनेका कारण सामान्य हल्का खुराक और सदैव परिश्रमसे उनका शरीर बलिष्ट होना यही है। यही कारण है कि भाग्यशाली (आलसी) स्त्रियोंके समान क्लेश नहीं होता। अन्य प्रकारका साधारण श्रम करनेवाली स्त्रियोंको उपरोक्त स्त्रियोंकी अपेक्षा थोड़ा अधिक दुःख सहन करना पड़ता है। दक्षिण अमेरिकामें आरोकेनिया नामक एक देश है, वहांकी स्त्रियां प्रसव होनेपर तुरंत नदीमें जाकर स्वयं अपने शरीर तथा उस बालकके शरीरको जलसे धोती हैं और पश्चात् गृहकार्य करती हैं। इत्यादि बातें और दृष्टांत देखकर विदित होता है कि मनुष्य अपनी शारीरिक शक्ति तथा मनकी शक्तिको नियमसे रखकर ठीक स्थितिमें रखकर दीर्घायु तथा सुख भोग सक्ता है। परमेश्वरने देश २ के लिये अलग २ नियम नहीं बनाये हैं और न किसी नियममें धनवान, दरिद्री, वृद्ध, तरुण इत्यादिका ही भेद रक्खा है। मनुष्य मात्रका शरीर तथा स्वभाव समान ही हैं। वायु, प्रकाश, उष्णता और जल इत्यादी पदार्थ समान ही गुण करते हैं। परमात्माका यह अभिप्राय है कि मनुष्य जाति सम्पूर्ण आयुके भोगनेपर अपने शरीरका त्याग करे; किन्तु जो शारीरिक नियम नहीं पालते उनकी इन्द्रियां निस्तेज हो जाती हैं और अंतमें अकाल मृत्यु होती है। जो शारीरिक नियमोंको पालन करते हैं वे सुखी होकर दीर्घायुको भोगते हैं।

दीर्घायुषी होनेके नियम ।

जिस वीर्यसे उत्पन्न होते हैं वह बलिष्ट, सर्वांग सुंदर और सब प्रकार सम्पूर्ण होना चाहिये। माता–पिताका शरीर निरोगी, बलवान और सुंदर होनेसे बालक भी वैसा ही उत्पन्न होगा ।

(१) **मिताहार**—प्रतिदिन परिमित हितकारी और सादा खुराक लेना, भूखके चार भाग करके दो भागमें भोजन, एक भागमें जल और एक भाग वायुके आवागमनके लिये छोड़ देना चाहिये इस प्रमाणसे भोजन करनेसे भोज्य पदार्थ शीघ्र पचता है । बहुत मिष्टान्न, बहुत मसाला, खारा, तीखा और खट्टे पदार्थ अधिक नहीं खाना चाहिये। सादा खुराक ही आयु बढानेका प्रधान नियम है ।

(२) **जल**—ऑक्सीजनवाला जल जीवनकी शक्तिके लिये अत्यन्त जरुरी है; क्योंकि प्रवाहितत्वके बिना जीवन शक्तिका स्फुरण नहीं हो सक्ता । इसलिये पत्थरीले स्थानका, वर्षाका, और नदीयोंका स्वच्छ बहता हुआ जल पीना चाहिये । कुवा और तालावका जल उसकी समानता नहीं कर सक्ता ।

(३) **खुल्ली वायुमें परिश्रम**—करनेवाले और कुदरतके नियमानुसार अपनी सादी रीतिसे आयु भोगनेवाले माली, कवाडी सिपाही, और अन्य परिश्रमी मनुष्य दीर्घायुषी होते हैं । खान खोदनेवाले, मुनीमजी, मास्टर, उपदेशक, मुन्सीजी, कवि, चित्रकार, सौनी व्यापारी, घरमें बैठकर कार्य और मानसिक श्रम करनेवाले अल्पायुमें ही शरीरका त्याग करते हैं ।

(४) **श्रम नहीं हो एसा व्यायाम करना**—व्यायामसे शरीरका रक्त चंचल होता है । शरीरके अवयव दृढ होकर अधिक कार्य करने योग्य होते हैं तथा सर्वांग दृढ होकर दीर्घायु प्राप्त होती है । इसलिये इतना व्यायाम करना चाहिये जिससे **थकान नहीं होवे ।**

(५) **मनोवृत्ति**—शरीरके अवयवोंके साथ मगजका इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि जबतक वह सतेज और तन्दुरस्त है तब ही तक अवयवोंमें शक्ति और चंचलता है । इसलिये अपने शरीरको निरोगी सतेज बनानेके लिये मगजको निर्विकारी बनाना चाहिये । मनुष्यको शारीरिक श्रम अधिक करना व मनोवृत्तिको उसकी सीमाके अनुसार कम उपयोगमें लाना चाहिये ।

(६) **संकटमें मनकी शांति**—मगज तथा शरीर इनका ऐसा संबंध है कि

मनको जिस प्रकारका क्लेश होगा वैसी ही खराब असर उसके शरीरपर पड़ेगी। यदि कहीं दुःख अथवा अपमान हो तो उसकी असर पहिले मगजपर होगी फिर शरीरके अन्यान्य भागमें जैसे हृदय, होजरी आदिपर पड़नेसे वे अपने कार्य करनेमें शिथिल हो जाते हैं, भूख मंद पड़जाती है और धीरे २ सर्वांग क्षयको प्राप्त होता है। जब किसी प्रकारकी प्रसन्नता (खुशी) होती है तब उसकी असर हृदय, होजरी और दूसरे अवयवोंपर होकर सम्पूर्ण शरीर स्फुर्तिवाला और सुखी होता है। पाचनक्रिया बराबर होती है और समयपर भूख लगती है। निदान सम्पूर्ण शरीर सुखी होकर दीर्घायुषी होता है। इसलिये संकटमें भी मनको शांत रखना और चिंता नहीं करनी चाहिये।

(७) **विवाहित जीवन**—विवाह होनेसे दीर्घायुषी होनेमें सहायता मिलती है। जितने उदाहरण दीर्घायुषी मनुष्योंके मिलते हैं उनमें अधिकांश विवाहे हुए हैं। यह नियम स्त्रियोंको भी लागू पड़ता है। **डीलांगीवाल** नामक फ्रेंच निवासीके एकके पीछे दुसरा इस प्रकार दश विवाह हुए थे। जब उसकी आयु ६६ वर्षकी थी तब उसकी स्त्रीसे विवाह हुवा था और १०१ वर्षकी आयु होनेपर भी इस दसवीं स्त्रीसे उसे पुत्र उत्पन्न हुवा था। निदान यह ११० वर्षकी आयुमें मरा था।

(८) **शीघ्र उठना**—इस आदतके पड़नेसे दीर्घायु होनेमें बहुत सहायता मिलती है इस लिये मनुष्यको ५ बजेसे पहिले ही उठना चाहिये।

(९) **व्यसन**—मदिरा, अफीम, गांजा, तमाखू इत्यादि व्यसन आयुको नाश करते हैं, इस लिये किसी प्रकारके व्यसनका अनुसरण नहीं करना चाहिये।

(१०) **सूर्यका प्रकाश**—जितना अधिक सूर्यका प्रकाश मिलता है वैसे ही उसकी दीर्घायु भी होती है। उसी प्रकार अन्य उपयोगी वस्तु जीवन शक्तिके लिये गरमी हैं। गरमीमें शरीरको पोषक और उत्तेजित करनेकी शक्ति है इस लिये गरमी भी दीर्घायुके लिये आवश्यक है।

(११) **ऑक्सिजन वायु**—जीवनके लिये तृतीय वस्तु ऑक्सिजन वायु है। विना वायुके प्राणीका एक क्षण भी जीना दुर्लभ है। जो वायु जीवनके लिये हितकारी है वह स्वच्छ वायु कहलाती है और वही वायुके नहीं प्राप्त होनेसे मृत्यु हो जाती है। वायु श्वासके मार्गसे शरीरके रक्तमें प्रवेश करती है। इस लिये दिन प्रतिदिन सुबह और सायं-कालमें नदीके किनारे अथवा बाग, बगीचा और मैदानोंमें घूमनेके लिये जाना चाहिये।

(१२) **उष्णदेशोंकी अपेक्षा ठंडे देशोंमें**—मनुष्य दीर्घायुषी होनेके मुख्य दो कारण है (१) गरम देशोंमें जीवन शक्तिका नाश होता है। (२) ठंडे देशोंकी वायु

उत्तम होनेसे जीवनशक्तिकी सहायक है ।

(१३) **वायुका फेरफार**—जिन देशोंमें वारंवार अथवा अचानक वायुके फेर-फार होता है, उसकी असर शरीर पर भी पड़ती है जिससे शरीर और इन्द्रियोंको हानि पहुंचती है अथवा उसमें विशेष गरमी, ठंडी, हल्कापन और स्वच्छतादि होनेसे जीवनको सहायता मिलती है ।

(१४) जिस हवामें उचित आर्द्रता हो वही हवा दीर्घायुके लिये उपयोगी है । उसका कारण आर्द्र हवामें तरावट होनेके कारण शरीरके रसका अधिक आकर्षण नहीं करती । इसके सिवाय आर्द्रहवामें वातावरणकी समानता विशेष रहती है जिससे गरमी और ठंडीका विपरीत परिवर्तन कम होता है । जिस हवामें थोड़ी बहुत आर्द्रता रहती है वह हवा अवयवोंको अधिक कोमल एवं मजबुत बनाती है; किन्तु अधिक सूखी हवा नाड़ियोंको शीघ्र सूखी बनाती है और वृद्धावस्थाके समस्त चिन्ह तुरत लाती है।

(१५) समुद्रका जल दीर्घायुषी होनेके लिये उपयोगी है इससे समुद्रमें रहने-वाले मनुष्य दिर्घायुषी होते हैं ।

(१६) अनिद्रा व परिश्रम भी जीवन शक्तिको कम करते हैं। परिश्रमसे नाड़ी शीघ्र चलती है। शरीर श्रमसे ज्वरके समान गरम हो जाता है जिससे जीवन शक्तिको क्षीणता प्राप्त होती है । उस जीवन शक्तिकी क्षीणताके वेगको कमी करनेवाले जीवना धार निद्रा व आराम है। अतएव सात आठ घंटे निद्रा व आरामके लेनेसे जीवन शक्तिकी क्षीणता होनेकी क्रिया रुकती है। उस समयमें जीवनशक्तिकी अभिवृद्धि होनेसे दिनमें होनेवाली क्षीणताका बदला मिल जाता है और नाड़ियें नियमित चलती हैं। और हरएक इन्द्रियां पूर्वके समान शान्तिमें आती है । यदि अधिक समय तक निद्रा व आराम न प्राप्त हो तो उससे जीवन शक्तिको अधिक क्षीणता व हानि पहुंचती है।

(१७) मनुष्यसमाज पशुपक्षियोंसे भी अधम बन कर बालकोंको मातृस्नेहका पूर्ण आस्वाद नहीं लेने देते। बालकोंको माता अपने पाससे दूर हटाकर दासदासियोंके हाथमें सौंपते हैं यह भी आयुष्यके कम होनेका एक कारण है ।

(१८) जो मनुष्य सुशिक्षित कहलाकर दुराचारोंमें फसते हैं, जो मनुष्य अधिक औदि भूमिमें रहते हैं, जो मनुष्य कुदरतके नियमानुसार नहीं चलते, जो मनुष्य प्रमादी बन कर पड़े रहते हैं, जो मनुष्य कामी, क्रोधी, लोभी और तामसी तथा अधिक विलासी रहते हैं वे दीर्घायु नहीं भोग सकते; निराशा, पश्चात्ताप, अप्रीति, शोक, चिन्ता, अपमान और भय ये सब आयुको कम करनेवाले हैं ।

(१९) पाचनक्रिया उत्तम प्रकारसे चलती रहनी चाहिये और होजरी—जठर

निर्विकारी चाहिये ये दोनोंपर शरीरका अधिक आधार है। जुस्सा रोगका मूल है, वह होजरीकी स्थितिको बिगाड़ता है। इससे अजीर्ण होकर शरीर बिगड़ता है इस लिये दीर्घायुकी कामनाके लिये पाचन क्रिया व होजरीको निर्विकारी रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

(२०) छातीकी दृढता व श्वासोश्वासकी इन्द्रिका अच्छा रहना दीर्घायुके लिये आवश्यक है। ये अच्छे है या नहीं इसकी परीक्षा करनी चाहिये।

(२१) खूनके सदैव परिवर्तनसे भी आंतरिक घसारा होता है। जिसकी नाड़ी अधिक थड़कती है उसका घसारा अधिक होता है। मनके असाधारण जुस्सेसे या मदिरापान करनेसे खूनकी गति जलद होती है। उसकी आयु कम होती है। जिसका हृदय अधिक जूस्सेवाला नहीं है और नाड़ी नियमित धीर शान्त चलती है वह दीर्घायुवाला होता है।

(२२) उत्तम स्वभाव, खुश मिजाज, विश्वासता, वीर्यसंचय, नियमितता, आशा भरा जीवन, पथ्यपालन, मनकी शांति, कुदरतके नियमोंका पालन, आत्म-संयम, मन व इन्द्रियोंको वशमें रखना, अतिकामवासनासे दूर रहना, कामोत्पत्ति न हो ऐसा आचरण करना, संतोष व आनंद रखना ये सब दीर्घायु होनेके लिये आ-धाररूप है; क्योंकि आयुष्यका बढाने घटानेका आधार जीवन शक्तिकी शांतता या घिसारेके उपर रहा है। ज्यों २ घसारा कम त्यों २ आयु लम्बी होती है। इसलिये जीवनशक्तिका पोषण देनेवाली शक्तियोंका संग्रह करना चाहिये।

(२३) छोटे गांवमें रहना यह दीर्घायुके लिये अच्छा है और बड़े शहरमें रहना यह हानिकारी है। बड़े शहरोंमें बालकोंके मरणका प्रमाण अधिक होता है। नगरमें जितने बालक उत्पन्न होते हैं उसका आधाभाग तीन वर्षकी उम्मरके अंदर मर जाते हैं और गांवोंमे बीस या तीस वर्षकी उम्मर होने तक आधे भी नहीं मरते; इसका कारण हवा, जल, खुराक व व्यायाम ये सब नगरसे छोटे गांवमें चाहिये वैसे मिल सकते हैं। फिर श्रीमन्त व विलासी मनुष्योंकी अपेक्षा गरीब घरके परिश्रमी मनुष्य अधिक समय तक जीवित रहते हैं।

(२४) मनुष्यको शारीरिक शिक्षाके समान मानासिक शिक्षा देनी चाहिये। शारीरिक या मानसिक दोनोंमेसे एक प्रकारकी अपेक्षित शिक्षाकी न्यूनता यह भी आयुष्यके कम होनेका कारण है।

(२५) भिन्न २ प्रकारके तत्व एवं शक्तियोंको प्राप्त करनेकी, फेलानेकी व तैयार करनेकी जिनके शरीरमें योग्यता है वे दीर्घायु भोगते हैं। फिर इन्द्रियोंकी

दृढताके साथ भी दीर्घायुका सम्बन्ध है। इन्द्रियोंको दृढ बढानेके साथ २ उन्हें योग्य बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

(२६) जब कोई भी रोग उत्पन्न हो तब प्रथम उपवास करना, मस्तक ठंडा रखना, छाती व पैर गरम रखना, जंजालके समय मनको शांत रखना, अंतःकरणमें अधिक उत्कंठा और दुर्भावनाका उदय नहीं होने देना। सदैव निर्दोषिता व प्रसन्नतामें समय व्यतीत करना।

(२७) रोगके मिटनेका आधार पाचनशक्ति, शांतरीतिसे खूनका नियमित फिरना, जलके शोषण करनेवाली शिराओंकी चपलता तथा सरलता, इन्द्रियोंकी अच्छी दशा व नियमित क्रियाके ऊपर है।

(२८) सुन्दर व सुडोल शरीरकी आकृति यह दीर्घायु होनेका प्रधान चिन्ह है। अपेक्षितसे अधिक स्थूलता हानि करनेवाली है।

(२९) शरीरके आन्त या अन्य कोई भाग निर्बल नहीं चाहिये। यदि निर्बल रहते हैं तो शरीरमें तुरंत रोग उत्पन्न होता है और शरीरका बांधा अव्यवस्थित हो जीन्दगी कम होजाती है; किन्तु शरीरके अन्य भाग व आंतनल बलवान हो यह दीर्घायुषी होनेके साधन है।

(३०) शरीरके तंतु दृढ व टिकाउ रहने चाहिये। अधिक सूखे या कठिन नहीं चाहिये। कई लोग इन्द्रियोंको दृढ व काठिन बनानेके अनेक उपाय करते हैं; किन्तु इन्द्रियोंकी अमुक अवधि तक दृढता और काठिनता जीवनको लाभकारी है और अधिक दृढता और कठिनता हानिकारी है। जीन्दगीकी प्रधान आवश्यक्ता हर एक इन्द्रियोंकी एवं रसवहनकी चपलतामें रही हुयी है।

(३१) यदि कोई धनवान् गृहस्थ भोग विलासमें मस्त रहकर शारीरिक या मानसिक परिश्रम न करे तो उसको इश्वरके नियम-कानूनके उल्लंघनका फल मिलता है। उसे भूख नहीं लगती, पाचनशक्ति मंद पड़ती है। वह हरएक प्रकारसे रोगाधीन हो अपनी आयुको कम करता है। इस लिये दीर्घायुकी इच्छा रखनेवालोंने ईश्वर स्थापित नियमोंके अनुसार चलना। उन नियमानुसार चलनेसे शरीर निरोगी बनकर आयु लम्बी होती है।

बालशिक्षा।

१ मनुष्य जीवनका सबसे आवश्यक समय बाल्यावस्थाका है। बालक जन्म लेकर नवीन संसारमें आता है उस समय उसकी दृष्टि जिन २ वस्तुओंके ऊपर पड़ती है उसे वह आश्चर्यके साथ देखता है। पीछे वह धीरे २ देखनेका, तुलना करनेका और मनमें जो आता है उसे भर रखनेका आरंभ करता है। इस समय वह आसपासकी वस्तुओंके गुण दोषका और दूसरोंके मनका जितना ज्ञान प्राप्त करता है उतना सम्पूर्ण अवस्थामें नहीं प्राप्त कर सकता। **लॉर्ड ब्रोहामने** कहा है कि, "बालक संसारके पदार्थोंके गुण दोषका और अपने तथा दूसरोंके मनका जितना ज्ञान देढसे ढाई वर्षकी उम्मरमें प्राप्त करता है उतना ज्ञान वह जीवनके बाकीके भागमें नहीं प्राप्त कर सकता। इस समय वह जो ज्ञान प्राप्त करता है और जो विचार उसके मनमें दृढ होते हैं वे सब इतने तो मजबूत होते हैं कि वे पीछेसे बदल जांयगे या चले जांयगे ऐसा हम लोग मानते हैं किन्तु यह हमारी भूल है।" बालककी बाल्यावस्था बड़ी मूल्यवान है, उस समय बालकके हृदय पर जो भाव जमाये जांयगे व दृढ हो जांयगे। इस लिये उस समय उसके भावोंको उत्तम व उच्च बनानेके लिये यथाशक्य यत्न करना चाहिये। उस समय सबसे अधिक समागम माताका रहता है इस लिये वह जैसे स्वभावकी होगी वैसी ही उसकी सन्तति भी होगी। परमेश्वरने उसे अपनी प्रतिनिधिरुपसे भेजी है। उसीके ऊपर बालकके पालन पोषण व अच्छे बुरे भविष्यका आधार है। वही उसका परमधन है और वही उसकी असरकारक प्रधानशिक्षक है। बालकोंको माताकी ओरसे जैसी शिक्षा व जैसा आदर्श प्राप्त होगा वैसेही वे होंगे। **ज्योर्ज हरबर्टने** कहा है कि—"एक उत्तम माता सो शिक्षकोंके समान है। घरमें सभोंके हृदयको खेंचनेके लिये वह लोहचुम्बक है और सभोंके नेत्रोंके लिये ध्रुवनक्षत्र है। उसका अनुकरण घरके सभी लोग करते हैं।"

'**गुरुणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः**' समस्त गुरुओंमें माता यह परम व प्रधान गुरु है। बालक घररुपी विद्यालयमें जैसी शिक्षा प्राप्त करता है वैसाही वह होता है और वह घरमें जैसा देखता है वैसाही सिखता है। उसके स्वभावका निर्माण उसी समय होता है; वे स्वभाव मरण पर्यंत नहीं जाते, उसकी शिक्षाका आरंभ जन्मके होते ही प्रारंभ होता है। उसको प्रथम स्तन—पान करना नहीं आता। उसकी माता एकाद वार उसके मुखमें स्तन देकर दूधका स्वाद चखाती हैं फिर वह

स्वयं स्तन–पान करने लगता है इस प्रकार बालकको जो कुछ सिखाना हो उसका आरंभ उसी समयसे किया जाता है। जहांतक हो उसको उसी समयसे प्रत्येक बातकी शिक्षा अच्छी तरहसे देनी चहिये । बालकको प्रथम स्पर्श इन्द्रिय जागृत होती है जिससे स्तनका स्पर्श होते ही वह स्तन–पान करने लगता है । पीछे नेत्रोंसे अपनी माताको पहिचानता है, कानसे माताके मुखके शब्दको सुनकर पहिचानता है। पीछे रसेन्द्रिय जागृत होती हैं जिससे कडुवा, मीठा, खट्टा इत्यादि स्वाद जान सक्ता है और अंतमें घ्राणेन्द्रिय जागृत होती है । वह जैसे २ बड़ा होता जाता है वैसे ही वैसे उसको इन्द्रियों सम्बन्धी ज्ञान भी होता जाता है । जन्म होनेपर बालकके शरीरका रक्त शीघ्रतासे भ्रमण करता है जिससे तन, मन व समस्त इन्द्रियोंकी अभिवृद्धिके साथ २ उसकी अनुकरण करनेकी शक्ति भी बढती है । इसलिये माताको उचित है कि अपने घरमें प्रत्येक व्यक्तिसे उत्तम व्यवहार करे जिसे देखकर बालक भी वैसे गुणोंको सीखे; क्योंकि बालक माता–पिताका अनुकरण करता है। कहना कुछ और करना कुछ ऐसा नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसपरसे बालकके मनपर अच्छी असर नहीं होगी । स्वयं कहनेके अनुसार आचरण करनेसे बालकके ऊपर अच्छी असर होती है। बालकोंको मधुर वचनसे बुलानेका अभ्यास रखना चाहिये जिससे वे भी सभ्यता, विवेक, मर्यादा नम्रता इत्यादि गुणयुक्त होंगे । उनसे मधुर वचनोंसे किसी कार्यके करनेको कहना चाहिये जिससे वे उस कार्यको हर्षपूर्वक करे और उससे उनको कार्य करनेकी आदत पड़ेगी, शरीरको व्यायाम मिलेगा और माता–पिताके पास कार्य करनेकी आदत होनेसे वे इधर उधर घुमते नहीं फिरेंगे और वे खराब समागमसे और दुर्गुणोंसे बचेंगे। बालकके पास कार्य करानेपर कदापि कोई कार्यमें उनसे हानि हो तो भी उसे कटुबचन कहकर उसको मारना नहीं; किन्तु साधारण खेद प्रदर्शितकर उनको मधुर शब्दोंसे उपदेश देना कि, "भाई ! यह काम यदि इस प्रकार किया जाता तो हानि नहीं होती अब दूसरी बार समझकर कार्य करना ।" प्रथम माताका मुख कुछ चिंतित देखकर बालक समझेगा कि मैंने यह कार्य ठीक नहीं किया इसलिये दूसरी बार सावधानी रखनी चाहिये । माताके क्रोध नहीं करनेसे उसको रोनेकी व हठ करनेकी आदत नहीं पड़ेगी और उस समय जो उपदेश दिया जायगा उसे वह ध्यान देकर सुनेगा । यदि कोई अतिथि अपने घर आवे तो उसका उत्तम प्रकारसे आदर, सत्कार करना जिसे देखकर बालक भी सीखेगा । अतएव जिसप्रकार हो बालकको अच्छे गुण ही सिखानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इस समय उसका जैसा स्वभाव बनैगा

वैसा आजीवन रहेगा।

बालकको कभी मर्यादा रहित व अविवेकी नहीं होने देना। प्रायः आज-कलके माता पिता बालकसे कहते हैं कि "ले इस लकडीसे अमुकको मार, वह तुझे मूर्ख कहता है, तू अमूक व्यक्तिकी बात मत सुन" इत्यादि अनेक अपशब्द व मिथ्याभाषण सिखाते हैं उसका परिणाम माता-पिताको अंतमें भोगना पड़ता है; फिर माता-पिता कहते हैं कि लड़के बिगड़ गये; किन्तु उसके मूलकारण स्वयं ही हैं समझदार मनुष्योंको चाहिये कि आरंभहीसे बालकोंको सुधारनेके लिये चेष्टा करें। आरंभहीसे वे विनयी और मर्यादी बने ऐसे संस्कार उन्हें पाड़ने चाहिये। बाल-कोंको जहां तक हो उत्तम ही उपदेश और अनुकरण करनेका अवसर देना चाहिये।

२ **बालककी तर्कशक्ति**—बालककी तर्कशक्तिको बढानेकी भी चेष्टा करनी चाहिये। यदि वह कोई प्रश्न पूछे और उसका यथार्थ उत्तर न दिया जाय तो उसकी जिज्ञासा दब जाती है और पृच्छकबुद्धि नष्ट हो जाती है। उसका प्रश्न कदापि अनुचित हो तो भी उसका खुलासा करना चाहिये और कठिन हो तो भी सोच विचार कर उसका उत्तर देना चाहिय। यदि वह कोई वस्तु मांगे तो उसे देना चाहिय। यदि उस वस्तुसे हानि होनेकी सम्भावना हो तो अन्य वस्तु देकर उसे भुला देना चाहिये।

३ **खेल कैसे खेलने देना चाहिये**—बालकोंको जलका खेल नहीं खेलने देना; क्योंकि उससे उसके वस्त्रादि भीग कर शर्दी होनेका भय रहता है। चिड़िया, मछली, तीर-कमान, लोह चुम्बक आदि पदार्थ उसे खेलनेको देना चाहिये क्योंकि इन खेलोंसे उसे ज्ञान मिलेगा। किन्तु खिलौने धारवाले या भयानक नहीं होने चाहिये। जिन कार्योंसे (खेलोंसे) उसके भविष्य बिगड़नेकी सम्भावना हो वैसे खेल नहीं खेलने देना। जैसे पुतला पुतलियोंका विवाह। इस खेलसे उसके मनपर खराब असर पड़ती है; झूठ बोलना, बिना पूछे किसीकी वस्तु उठाना या हरण करना, गाली देना, हठ करना आदि दुर्गुण नहीं सीखने देना।

४ **खेलके साथ ज्ञान**—बालकको खेलके साथ ही अक्षरज्ञान, रंग, आकार, इत्यादिकी पहिचान के लिये लकड़ीके टुकडोंके खिलौने बनवाना चाहिये। जिससे वे खेलके साथ २ अक्षर ज्ञानको प्राप्त कर सके। उनकी उसीमें खेलके रुपसे परीक्षा लेनी और उनके पहिचान लेने पर उसको शाबासी देना जिससे वे खेल ही खेलमें प्राथमिक शिक्षाको प्राप्त कर लेंगे।

बालकोंको पशु, पक्षी, मनुष्य व पहिचानके बालकोंके नांव आवे वैसे गल्प

सुननेमें और गानेमें रुचि होती है इसलिये बीच २ में ऐसे गल्प आते हो ऐसी किताब पढानी व सुनानी चाहिये। ईश्वर व धर्म सम्बन्धी छोटे २ गल्प सुनाकर उसका सार समझाना चाहिये। इससे उनके आचरण उत्तम बनेंगे, और बालकोंको ईश्वर तथा धर्म सम्बन्धी श्लोक, कविता इत्यादि कंठ कराना चाहिये। उनको भूत प्रेतादि या सीपाहीका डर बतलाकर उन्हें वहेमी और डरपोक नहीं बनाना। बालकोंको शूरवीर, परोपकारी, धार्मिक व सदाचारी स्त्री पुरुषोंके चरित्र पढाने सुनाने चाहिये। जिसे कई बालकोंको पाठशाला भयानक मालूम होती है उस प्रकार नहीं मालूम होगी। पाठशालामें प्रथम उसे मातृभाषाकी पूर्ण शिक्षा देनी चाहिये। प्रथम दूसरी भाषाओंकी शिक्षा न देनी चाहिये। पीछे संस्कृत, अंग्रेजी इत्यादि दुसरी भाषाओंकी शिक्षा देनी चाहिये। यहांपर यह बात भी स्मरणमें रखने योग्य है कि बालकको एक साथ कई भाषाओंकी शिक्षा देनेका प्रबंधकर दबा देना नहीं चाहिये। वह जो कुछ सिखे वह समझकर सिखे ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये।

अर्वाचीन समयमें जो शिक्षा देनेकी प्रणाली है उससे बालकको वास्तविक ज्ञान नहीं मिलता। पाठयप्रणाली, पुस्तक व परीक्षा सम्बन्धी ऐसी अव्यवस्था है कि अध्यापकोंको सिखानेमें और बालकोंको सिखनेमें भारी काठिनता मालूम पड़ती है। अनेक प्रकारकी अव्यवस्थाओंके रहने पर भी परीक्षामें उत्तीर्ण करानेकी लालसासे शक्तिके ऊपर बालकोंको परिश्रम कराया जाता है। इससे शिक्षाका मूल उद्देश पूर्ण नहीं होता। अध्यापकोंकी ओर दृष्टि दीजिये तो वे भी अल्प अभ्यासी व कम वेतन वाले रहते हैं। ऐसे अध्यापक भला उत्तम शिक्षा किस प्रकार देसकते हैं? हमारी समझके अनुसार वर्तमान समयकी शिक्षा देनेकी पद्धतिमें बहुत कुछ परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है।

इस समय यूरोप अमेरिका व जापान प्रभृति उच्च देशोंमें बालकोंको शिक्षा देनेके क्रममें बहुत कुछ सुधार हुआ है। वहांपर बालकोंकी बुद्धिको उत्तम बनानेके लिये अनेक प्रकारकी युक्तियोंकी शोध की गयी है। वहांपर बालक विना अधिक परिश्रम कियेही खेल कुदके साथ शिक्षा प्राप्त कर सके वैसा प्रवन्ध किया गया है। गणित शास्त्रके समान कठिन विषयोंका ज्ञान भी यंत्र व पुस्तकोंकी सहायतासे सहजमें आजाय उस प्रकार सिखानेका प्रबन्ध किया गया है। विविध प्रकारके प्राणी, वृक्ष, फल इत्यादिके सुन्दर चित्रोंकी पुस्तकें बनायी हैं; जिससे छोटे २ बालकोंको जोड़, बाकी इत्यादि सहजमें सिखा दिया जाता है। यही नहीं; किन्तु बालककी ज्यों २ विचारशक्ति बढती जाती है त्यों २ हिसाबके साथ २ उन्हें संसारके जानने

योग्य प्राणी व अन्य पदार्थोंका ज्ञान उन्हीं पुस्तकोंके द्वारा मिल जाता है। बालकोंकी मातायेंभी उनकी शिक्षाके विषयमें अधिक ध्यान देती हैं जिससे बालक विना अधिक परिश्रम कियेही बल तथा बुद्धिमें श्रेष्ठ बनकर स्वदेशाभिमानी, शूरवीर, स्वतंत्र विचारके, हिम्मतवान, उत्साही, व परोपकारी होते हैं। सुप्रसिद्ध **जौन स्टुअर्टमील** तीन वर्षकी उम्मरमें अंग्रेजीं, लाटीन व ग्रीक इन तीन भाषाओंको सिख गया था। यह उसने अपने घरमें ही सिखा था। आप इस बातको अच्छी तरहसे जानते हैं कि प्राचीन समयमें इस देशमें मातायें अपने बालकोंको शिक्षा देती थी। आदिमाता, **सावित्री, सत्यरुपा, मैत्रेयी, मेना, कुन्ता, कौशल्या, सुमित्रा, सीता, विदुला,** प्रभृति प्रतापी माताओंने अपने बालकोंको उत्तम शिक्षा देकर मानवरत्न बनाये थे। अर्वाचीन समयमें ऐसी शिक्षा घरमें या पाठशालामें नहीं मिलती। धर्म व नीतिकी शिक्षारहित व्यावहारिक शिक्षासे बालक विपरीत बुद्धिके होते जाते हैं। माता पिता प्रभृति बड़ोंके ऊपर तथा धर्म और ईश्वरके ऊपर आजकलके बालकोंको पूर्ण भक्ति और विश्वास नहीं रहा है। इस लिये जहांतक पाठशालाओंमें धर्मनीतिके साथ विनय, विवेक प्रभृतिकी शिक्षा देनेका उत्तम प्रबन्ध नहीं हुआ है वहांतक माता पिताओंको उचित है कि अपने घरमें ही बालकोंको धर्मनीति प्रभृतिका उपदेश देनेका प्रबंध करे।

५ **पाठशाला**–बालकोंको विद्या पढनेका स्थान स्वच्छ, विशाल, पवित्र व पूर्ण प्रकाशवाला चाहिये। आसपासमें सुन्दर सुगंधी पुष्पवृक्षोंके बगीचेकी रचनावाला व मनोहर चित्रोंसे सुशोभित रहना चाहिये। जिसे देखकर बालकोंके मन प्रफुल्लित होते हैं और उनके मनकी वृत्तियें धीरे २ विकसीत होती हैं।

६ **अध्यापक**–सद्गुण संपन्न, सुशिक्षित, नीतिमान, सभ्य, पवित्र मनवाला, कुबोधका नाश करनेवाला, कर्तव्याकर्तव्य तथा पुण्यपापके लयको बतानेवाला, आस्तिक, हंसमुख, आनन्दी, शान्त, विद्यार्थीके ऊपर प्रेम रखनेवाला, युक्ति व खेल कूदके साथ ज्ञान देनेवाला, दुर्व्यसनोंसे रहित, धैर्यवान, क्षमाशील, उत्साही, सुस्वरवाला, सरल व रसिक बनानेवाला, इत्यादि सद्गुणोंसे युक्त गुरुके समीपमें बालकको शिक्षा दिलाना। बालक ऐसे अध्यापकके अनुसरण करनेसे आगे चलकर श्रेष्ठ निकलते हैं।

७ **विद्यार्थी**–शिक्षा देनेवाले अध्यापक–गुरुजीके ऊपर अपने मातापिताओंके समान पूज्य भाव रखना चाहिये। उनकी आज्ञाका पालन करना, मर्यादा रखना, निन्दा करना सुनना नहीं, कोई अपराध नहीं करना, अपराध हो जानेपर वे जो दण्डदे उसे सहन करना, मनमें क्रोध नहीं करना, गुरुजीने जो दण्ड दिया होगा वह

मेरे भलेके लिये ही है ऐसा जानकर उनके ऊपर प्रेम रखना, आदर सत्कार करना, उनसे नीचेके आसनपर बैठना, उनकी मर्यादा रखना, उनको संतुष्ट करना, इत्यादि अनेक प्रकारसे गुरुको प्रसन्न रखना यह शिष्योंका—विद्यार्थियोंका परम धर्म है।

८ **सच्ची शिक्षा**—बाल्यावस्थाकी शिक्षा देनेके पश्चात् बालकोंको कैसी शिक्षा देनी चाहिये यह एक विचारणीय विषय है। जब तन, मन व आत्मा ये तीनों एकत्र होते हैं तब मनुष्यकी प्रकृति कहलाती है। तन, मन व आत्मा इन तीनोंकी जिससे उन्नति हो वही सच्ची शिक्षा है और ये तीनों जिसके समान शिक्षित रहते हैं वही सच्चे शिक्षित कहलाते हैं; क्योंकि शिक्षाका मूल उद्देश ऐसा होना चाहिये कि विवेकको परिपक्व करना, आचरण सुधारना, और अधिक उत्तम सुखी, उपयोगी, परोपकारी, उत्साही एवं उच्च व्यवसायमें कुशल होनेका है। नीतिरहित शिक्षा कुछ कामकी नही हैं। **प्रेस्टेलोझी** नांवके एक स्वीस सज्जनने शिक्षाके लिये एक उत्तम पद्धतिकी स्थापना की है; उसका ऐसा अभिप्राय है कि, "केवल बुद्धिकी शिक्षा हानिकारी है। समस्त ज्ञानमें उसके मूल यथार्थ रीतिसे अंकुशित कल्पना शक्तिकी भूमिमें डालने चाहिये और उसीमेंसे उसे पोषण मिलना चाहिये। कदापि ज्ञानकी प्राप्ति मनुष्यको संसारके अधिक अधम महापापोंसे बचा सकती है; किन्तु संगीन विचार व सदाचाररूप किल्ला—ज्ञानकी आसपासमें न हो तो स्वार्थके अंगसे होनेवाले दुष्टकर्मसे नहीं बचा सकते।" इस समय ऐसे अनेक मनुष्य देखे जाते हैं कि जिन्होंने शिक्षा प्राप्त की है फिरभी वे समागम व विश्वास करने योग्य नही हैं। यह सब शिक्षापद्धतिकी अपूर्णताका परिणाम है। इस संसारको किस प्रकार चलाना यह एक महान् प्रश्न है। उसके अंदर अन्य प्रश्नोंका भी समावेश हो सकता है। शिक्षा देनेमें ये समस्त बातें ध्यानमें रखने योग्य है। शरीरकी सम्हाल किस प्रकार रखनी, मनको किस प्रकार शिक्षा देना, व्यवहार किस प्रकार चलाना, कुटुम्बका किस प्रकार पोषण करना। नागरिकरूपसे जो फरजें अदा करनेकी है वे किस प्रकार करनी, सृष्टिमें जो सुख प्राप्त करनेके साधन है उनको किस प्रकार संपादन करना जिससे अपनेको व दुसरोंको अधिक लाभ हो। इसके सिवाय संसार व्यवहारको अच्छी तरहसे चलानेके लिये नम्रता, विवेक, विनय, दया, सन्तोष, क्षमा, न्याय, उदारता, बडोंका मान, करकसर, कृतज्ञता, शुद्धभाव, सत्यता, प्रमाणिकता, परोपकार, मन व इन्द्रियोंका निग्रह, ईश्वरस्मरण इत्यादि सद्‌गुण प्राप्त हो वैसी शिक्षा देनेकी आवश्यकता है।

९ **शिक्षा उपयोगी संग्रह स्थान**—बालकोंको मिलनेवाली शिक्षाको सरल व दृढ बनानेके लिये पुस्तकोमें आनेवाली समस्त वस्तुओंका संग्रह रखना चाहिये और

जिसके वर्णनका पाठ चलता हो उसको प्रत्यक्ष दिखाकर उसका पूर्ण ज्ञान कराना ऐसा करनेसे बालक प्रसन्नताके साथ उसे याद कर सकेंगे।

१० शारीरिक दण्ड,—मातापिता व अध्यापकोंको उचित है कि जहांतक संभव हो बालकोंको ताड़न न करे; क्योंकि ऐसे दण्डसे बालक निठुर होजाते हैं। बालकको ताड़न नहीं कर बातोंसे समझाना या उसको अधिक प्रिय वस्तु कुछ समयतक नहीं देनेका भय दिखाना अधिक अच्छा है। जैसे कि अपराधी बालकसे कहना कि तूने यह कार्य अनुचित किया इसलिये तुझे खेलनेका अमुक पदार्थ नहीं ले दूंगा; मैं आज तुझे बगीचेमें नहीं लेजाकर अमुक लड़केको लेजाउंगा। यदि तू अमुक कार्य करेगा तो तुझे तोता लादूंगा। इस प्रकार अच्छे आचरणोंके लिये उत्तेजन देनेके लिये पारितोषिक देना और खराब आचरणोंके लिये निराशा देना; किन्तु ये सब योग्य प्रमाणसे देना चाहिये। पारितोषिक या दण्ड देनेमें पक्षपात नहीं करना। प्रत्येक कार्यमें सच्ची आशा देना और अपराधके लिये योग्य दण्ड देना। यदि बालक पढनेमें प्रमाद करता हो या उपद्रव करता हो तो वर्गमें नंबर उतारनेका भय बताना। यदि उससे भी वह न माने तो अन्य योग्य उपदेश या दण्ड देना। अध्यापक जो दण्ड दे उसमें मातापिताओंने तटस्थ रहना चाहिये। माता दण्ड दे तब पिताने व पिता दण्ड दे तब माताको भी अलग रहना चाहिये। अधिक पारितोषिक या दण्ड नहीं देना; क्योंकि ऐसा करनेसे भी बालकका अनीष्ट होता है।

११ मातापिताओंका कर्तव्यः—जिस समय बालक अभ्यास कर रहे हों उस समय प्रतिदिन मनके साथ २ उन्हें शरीरकी, व्यापार-रोजगारकी तथा अन्य समस्त प्रकारकी उपयोगी शिक्षा देनेका प्रबंध करना चाहिये। दूसरोंके सामने अपने बालकोंको किसी प्रकार अपमानित नहीं करके उनकी यदि कोई भूल भी हो तो उसे गुप्तरुपसे तथा शान्तिसे समझाना। जहां पर वेश्याओंका नाच हो रहा हो, जहांपर जुआ खेला जाता हो और जहांपर नसे किये जाते हों ऐसे स्थानोंपर बालकोंको कभी नहीं ले जाना चाहिये। जहांतक होसके उन्हें धर्म व नीतिके पथपर चलानेकी चेष्टा करनी चाहिये। बालकोंका अनुकरण करनेका अधिक स्वभाव रहता है इसलिये उनको सदाचारी व सद्गुणी बनानेके लिये स्वयं सदाचारी व सद्गुणी बनना चाहिये और सदाचारी, तथा सद्गुणी मनुष्योंका समागम करने देना चाहिये।

१२ पढना लिखना—बालकको पढाने व लिखानेके समय बहुत कुछ सम्हाल रखनेकी आवश्यकता है। पुस्तक नेत्रसे दश बारह इंच दूर रहे वैसा प्रबंध करना, पुस्तकमें मुख डालकर पढना उचित नही हैं; क्योंकि ऐसा करनेसे दृष्टि छोटी हो

जाती है। एक साथ अधिक समयतक पढनेकी अपेक्षा बिचमें आराम लेकर पढना अच्छा है। ऐसा करनेसे शरीरका रक्त फिरता रहेगा और होशियारी रहेगी। लिखनेके समय टेबल या और कोई ऐसा साधन सामने रखना चाहिये कि जिससे सीधे बैठकर पढ़ने लिखनेका कार्य हो सके। नीचे नम करके या शिर डालकर पढने लिखनेसे कमरमें दर्द होता है और नेत्रको हानि पहुंचती है। रातको अधिक समयतक पढने नहीं देना, जहांतक हो पढने लिखनेका कार्य दिनमें ही करलेना चाहिये। रातको किसी समय पढनेकी आवश्यकता हो तो मिट्टीके तेलके बदले अन्य किसी ठंडे तेलका उपयोग करना चाहिये। मिट्टीके तेलकी रोसनीमें पढनेसे धुंआ गलेमें जाता है और उससे खांसी, क्षय प्रभृति छातीके दर्द होनेकी और नेत्रकी ज्योति कम होनेकी संभावना है। कदापि अधिक आवश्यकता हो तो चीमनी य लेम्पको दूर रखकर उसके प्रकाशमें पढने लिखनेका कार्य करना। मिट्टीके तेलकी खुल्ली बत्तीसे कभी नहीं पढना। हमने इस विषयपर ऊपर जो कुछ कहा है उसपर ध्यान देकर शिक्षा देनेसे बालक बहुत ही उत्तम तैयार होंगे। एक कविने कहा है कि;—

> विद्या देत मिलाय लाय प्रभुसे विद्या मिटावै भ्रम,
> विद्या है प्रिय इष्ट देव इससे होता महा विक्रम;
> विद्यामें करिये क्रमै क्रम श्रमै उत्साहसे पूर्ण हो,
> कन्या पुत्र पढाइये प्रणकिये कल्याण सम्पूर्ण हो।

बालक स्वरुपवान, बुद्धिमान और अंगोंसे सुशोभित किस प्रकार हो सक्ते हैं?

बालकका सर्वांग सुन्दर, गुणज्ञ, और बुद्धिसे श्रेष्ठ होना यह माताकी शारीरिक व मानसिक शक्तिके ऊपर अवलंबित है। इस बातको अनेक मातायें नहीं जानकर अपने बालकोंकी अपेक्षा दूसरोंके बालकोंको श्वेत, तेजस्वी, सुन्दर, बलवान, चतुर व साहसी देखकर आश्चर्यको पाती हैं और कहती हैं कि परमेश्वरने हमारे बालकोंको ऐसे क्यों न किये? उनके ऊपर परमेश्वरने इतनी कृपा की है और हमारे पर क्यों नहीं की? यह उनका कथन सर्वथा अनुचित है। प्रिय पाठको! इसमें उस मंगलमय परमेश्वरका क्या दोष है? उसको प्रत्येक मनुष्य समान है। वह किसीको न्यूनाधिक नहीं समझता।

जो २ नियम बनाये हैं उसके अनुसार जो मनुष्य चलते हैं वह अच्छे फलको पाते हैं। और उसके अनुसार नहीं चलनेवाले कुलको कलंक लगानेवाले कटु फलकु सन्तान पाते हैं। भला इसमें दोष किसका है? यदि बालकोंको सब प्रकारसे श्रेष्ट बनाना हो तो माताको चाहिये कि वह स्वयं शारीरिक व मानसिक शक्तिमें उत्तम बने; क्योंकि बालकोंके अच्छे होनेका सम्पूर्ण आधार मातापिताके तन, मन व स्वाभाविक चारित्रके ऊपर रहा हुआ है। यह बात सर्वत्र सिद्ध हुयी है। सृष्टिकर्ताका नियम है कि गर्भाधानके समय मातापिताकी जैसी प्रकृति होगी वैसी प्रकृति भविष्यमें बालकोंकी होगी। इस विषयपर एक अंग्रेज विद्वान् कहता है कि माताके शरीर और मनसे जो शरीर व मन बनता है और जिस रक्तसे वह पुष्ट होता है उस माताके स्वभाव तथा चरित्रका वह हिस्सेदार क्यों न हो? यह एक यथार्थ बात हैं कि बालक अपने शरीर तथा मनकी संपत्ति उसके अस्तित्वके साथ मातापिताके पाससे प्राप्त करते हैं। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि गर्भाधानके साथ २ मातापिता अपने शरीर तथा मनकी अवस्थाका न्यूनाधिक अंश बालकोंको देते हैं। इसी नियमानुसार धार्मिक व नीतिमान मनुष्योंके घर खराब व अधर्मी बालक उत्पन्न होते हैं एवं समयपर दुर्गुणी मनुष्यके घरपर अच्छे बालक उत्पन्न हो आते हैं। इसका कारण यह है कि कोई पतिपत्नी बहुत उत्तम प्रकृतिके रहते हैं; किन्तु गर्भाधानके समय किसी कारणसे वे विकृत् मनके रहते हैं तो बालक कुलांगार उत्पन्न होते है और कोई पतिपत्नी विकृत् प्रकृतिके रहते हैं; किन्तु किसी कारणसे गर्भाधानके समय उनके मनका भाव अच्छा रहता है तो उन्हें एक उत्तम बालक उत्पन्न होता है। जो मनुष्य मदिरा, अफीम इत्यादिके व्यसनमें आसक्त रहकर गर्भाधान करते हैं उनके सन्तान भी उन २ व्यसनोंमें फसे रहेंगे। यही कारण है कि एक ही माता पितासे भिन्न २ प्रकृतिके बालक उत्पन्न होते हैं। इस लिये मातापिताओंको उचित है कि अपने बालकोंके व अपने भलेके लिये गर्भाधानके समय अधिक सावधानिसे अपने जीवनके साधुभावको उज्ज्वल रक्खे। माताको उचित है कि गर्भावस्थाके नवमास तक अत्यन्त सावधानिसे, प्रसन्न चित्तसे, उद्योग द्वारा गर्भकी रक्षा करे और बालक जन्म ले उस दिनसे शुरु करके अपनी अन्तिम घटिका तक मातापिताको सावधानिके साथ बालकोंको सब प्रकारसे उत्तम बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

माता अपनी मानसिक शक्तिके द्वारा गर्भस्थित बालकको गर्भधारण करनेके समयसे प्रसव कालतक ऐसे सांचेमें ढालती हैं कि जैसे रुप, गुण, बल, बुद्धि और आकार उनमें रहे होंगे वैसाही बालकका चित्र बनेगा। यह नियम मनुष्य, पशु,

पत्नी, सभीको एक समान लागु होता है। बाइबलके इतिहासमें एक स्थानपर वर्णन किया गया है, "कि **लेबलने याकुबको** ठगविद्या करके **स्काइलके** बदलेमें **लीह** नांवकी कन्या व्याही। उसके लिये उसकी भेड़ियोंको और बकरोंको सात वर्षतक चरानेको स्वीकार किया था। जब कपट खूला हो गया तब उसने कहा कि सात वर्षतक मेरी दूसरी नोकरी करे तो मैं अपनी दूसरी कन्या **रीका-इलभी** तुझे व्याहुं। फिर इसके उपरांत इतने वर्षोंमें भेड़ियोंको और बकरियोंको जितने बच्चे बुंदकीदार होंगे वे तुझे उपहारमे दूंगा। **लेबलके** मनमें ऐसा आया कि कहां ऐसे अधिक बच्चे उत्पन्न होंगे जिन्हें देने पड़ेंगे; किन्तु **याकुबने** एक ऐसा उपाय सोचा कि जिससे **लेबलको** अपनी स्वार्थतत्परताका यथोचित दण्ड मिले और सब बच्चे बुंदकीदार हो। इसके लिये उसने जल पीनेके पात्रमें समस्त बुंदकीदार लकडी रक्खी व नर तथा मादाओंको अलग २ रक्खा। उसमें नरोंको खुले रख कर मादाओंको बाध रक्खी और वे जलके विना अधीर होने लगी तव तक उन्हें जल नहीं पीने दिया। जब मादायें विना जलके अधीर होने लगीं तब उन्हें नरोंके बिचमें जल पीनेके लिये छोड़ दीं। जल दो रंगका हो गया था। उन्होंने उस जलपात्रके भीतर बुंदकीदार लकड़ीके सिवाय और कुछ भी नहीं देखा। ऐसी दशामें उसे वीर्यप्रदान होने दिया। इतना करके वह चुप नहीं रहा। **याकुब** इस विषयमें पूर्ण चतुर था। वह अपने जानवरोंको दूसरे दिन उसी स्थानपर लाया और प्रथमके अनुसार मादाओंको अलग रखकर नरोंमें नहीं जाने दीं। वे जब तृषातुर हुयी तब उन्हें उस बुंदकीदार जलका स्मरण हो आया। वह ध्यान मनमें द्रढ हो गया। उसका परिणाम यह हुआ कि अनेक बुंदकीदार बच्चे उत्पन्न हुए"। इस रीतिके अनुसार मनके एक ताल ध्यानसे मनुष्य जातिको भी रुप, रंग, गुण व आकारसे क्यों नहीं सुधार सकते हैं? गर्भपर मनकी असर किस प्रकार होती हैं यह बात निम्न उदाहरणसे सिद्ध होती है।

"**एक्वारेजिया**" एक प्रकारका तिजाब होता है। उसमें विद्युत् यंत्रके तारके दो छेड़ोंको डालना, उसमें जिस धातुकी तखती डालनी हो वह डालनी। जिससे विद्युतके ऊपरके नीचेके दोनों भाग उस विद्युत्के तार द्वारा तिजाबमें जाकर सुवर्णके अदृश्य कणोंको पकड़ कर तखतीके ऊपर जमा करके सुवर्णके समान बना देगी। इसी प्रकार विद्युत्के द्वारा असलके अक्षर या चिह्न जैसे रहते हैं वैसे उतार सकते हैं। उसमें असल नकलमें कुछ भी भेद नहीं पड़ता। वैसेही विद्युत्के बलसे एक वस्तुका पूर्ण चित्र उतार सकते हैं। इस प्रकार गर्भिणी स्त्रीके मनके ऊपर होनेवाली

असर एक प्रकारकी विद्युत्‌के द्वारा बालकके ऊपर तुरंत होती है। जिस प्रकार सुवर्णके गले हुए तिजाबमें तखती रहती है उसी प्रकार पेटमें गर्भाशयके भीतर गर्भ रहता है और जिस प्रकार विद्युत् तिजाबमेंसे सुवर्णके कणोंको पकड़ कर तखतीको सुवर्णके समान बना देती हैं उसी प्रकार स्त्रीकी नसोंके चलनेसे एक प्रकारकी विद्युत् उत्पन्न होती है। उस विद्युत्‌की शक्ति, स्त्रीके मनोभावके ऊपर प्रकृति, रूप, रंग, गुण, बुद्धि, आकार प्रभृतिकी जैसी असर होती है उसके साथ रजरुधिरके कणोंको पकड़कर गर्भाशयमें रहे हुए बालकको पहुंचाकर पुष्ट बनाती हैं। अहा! परमात्माकी लीला कैसी विचित्र है!

इस प्रकार अच्छी बुरी प्रकृति, रुप, गुण, बुद्धि, रंग व आकार इत्यादि जो कुछ स्त्रीके मनोभावमें आते हैं या इच्छा होती है वह उसके चित्तमें सजड़ होनेपर एक प्रकारकी विद्युत् उत्पन्न होती है और उसके द्वारा वह मनोभाव क्षणमें गर्भाशयमें जाकर बालकके ऊपर असर करता है। इसमें कुछ भी विलंब नहीं लगता। मनपर किसी प्रकारकी भावना या असरके होते ही विद्युत् उसे गर्भके पास पहुंचा देती है। ऐसे कारणोंसे यदि कोई स्त्री अंधेरेमें गर्भधारण करे और वीर्यदाता पतिको नेत्रसे न देखे यही नहीं किन्तु प्रसव होने तक भी देखे या ध्यान न करे तो बालक रुप, रंग, गुणमें स्त्रीके समान उत्पन्न होगा। कोई स्त्री पतिकी अपेक्षा अपनेको रुप, रंग, व गुण इत्यादिमें श्रेष्ट समझती हैं और उसमें मस्त रहकर अपने मुखको दर्पणमें देखा करे, पीछे चाहे पतिका भी थोड़ा बहुत ध्यान करती हों तो भी बालक उस स्त्रीके समान होगा। जो स्त्री अपने पतिके ऊपर अत्यन्त प्रीति रखती है उसका बालक अपने पतिके समान होगा। जिस स्त्रीका मन अपने पतिके ऊपर रहनेके साथ २ अपने भीतर भी रहता है उसके बालकमें दोनोंके रुप गुणादि आवेंगे। घरमें आनेवाले किसी आप्त वर्गका स्त्री वारंवार ध्यान किया करे व उसके ऊपर चाहे निर्मल प्रेम रक्खे तो भी उसके समान आकृति इत्यादिवाला बालक होगा। अनेक स्थानपर ऐसा देखा जाता है कि अमुक स्त्रीको अमुक व्यक्तिके ऊपर स्वाभाविक प्रेम रहता है चाहे उसके साथ उसका साक्षात् संबंध न भी हो तो भी उसीके समान बालक होता है और पति तथा दूसरे लोग उसके ऊपर व्यर्थ कलंक लगाते हैं। इसलिये स्त्रीको चाहिये कि वह अपने पतिके सिवाय दूसरे पुरुषसे किसी प्रकारका संबंध न रक्खे। केवल अपने पतिके ऊपर अखंड प्रीति रखकर उसका ध्यान करते रहना यही पतिव्रता स्त्रियोंका कर्तव्य है। गर्भिणी स्त्री जिस प्रकारके पदार्थ खाती है उसी प्रकारके संस्कार गर्भके ऊपर पड़ते हैं इसलिये सदैव उत्तम पदार्थ खाने चाहिये। गर्भिणी स्त्रीके तन

तथा मनका प्रभाव गर्भके ऊपर अधिक पड़ता है इस लिये शारीरिक व मानसिक समस्त कार्य उत्तम करने चाहिये। अत्यंत शोक हर्ष और भयका भी बालकके ऊपर प्रभाव पड़ता है इसलिये ये सब अधिक न हो इसके लिये सावधानि रखनी चाहिये।

स्कॉटलांड देशमें एक मोचीकी गर्भिणी स्त्री एक जड़ पदार्थको देखकर भयको प्राप्त हुयी थी। उस जड़पदार्थकी मूर्ति उसके ध्यानपर ऐसी ठसगयी कि वह उसे किसी प्रकार भूल नहीं सकी। अन्तमें उसे जो बालक उत्पन्न हुआ वह जड़के समान हुआ। अमेरिकाके ट्रोय नगरके निवासी, आत्मविद्यामें कुशल **जोन बोवीडाडस** कहता है कि, "बोस्टन नगरमें एक धनवान स्त्री गर्भणी थी। वह एकदिन तोतेसे डर गयी; जिससे उसे जो लड़की उत्पन्न हुयी उसकी बोलचाल प्रायः पत्नीके समान थी। वैसेही एक गर्भिणी स्त्रीने अपने पाले हुए मेंढेके बच्चेका शिर हाथमें लेकर दबा दिया उसके लिये उसे पीछेसे पश्चाताप हुआ जिससे उसे जो बालक उत्पन्न हुआ उसकी छाती दबी हुयी थी और शिर मेंढेके बच्चेकी माफिक आगे बढा हुआ था। किसी प्रकारसे अंगोंका अपूर्णतावाले स्त्रीपुरुषादिको देखनेका परिणाम भी बहुत बुरा आता है। गर्भिणी स्त्रीको चाहिये कि अंध, लूले, लंगड़े, बहिरे इत्यादि खामीवालेको ध्यान लगाकर कभी न देखे। सदैव मानसिक शक्तिके ऊपर उत्तमभाव उत्पन्न हो वैसा करना। ऐसा करनेसे ही उत्तम सन्तान उत्पन्न होंगे।

फ्रान्स देशके सुप्रसिद्ध **नेपोलिय बोनापार्टके** पिताने भयंकर लड़ाईके समयपर अपनी स्त्रीमें गर्भाधान किया था। उसकी पत्नी भी पराक्रमी व लड़ाईमें पतिको सब प्रकारसे सहायता कर रही थी। कहा जाता है कि उसके प्रसवके थोड़े पूर्व समयमें वह घोड़े पर बैठ कर अपने पतिके साथ लड़ाईमें गयी थी। उस समयके अपने स्वामीके महाबलकी असर उसके गर्भके ऊपर हुयी; जिससे **नेपोलियनके** समान भूवनविख्यात शूरवीर बालक उत्पन्न हुआ। गर्भाधानके समय जिसका जिस विषयमें प्रेम, हर्ष और उत्साह प्रभृति रहता है उसकी सन्तति भी उसी विषयमें प्रेम करनेवाली होती है और वे उन्हीं कार्योंको करती है। यदि स्त्रीके विचार सदैव वैर, विरोध, क्लेश, दुर्व्यसन, लड़ाई, आलस्य, परनिंदा, चोरी, व्यभिचार, झूठ, छल कपट, और अन्य प्रपंचयुक्त रहते हैं तो गर्भस्थित बालकके ऊपर वैसी ही असर होती है और वह माताके उन दुर्गुणोंको ग्रहण कर उसी प्रकार आचरण करता है। इस बातके उदाहरणोंकी कमी नहीं हैं इस लिये स्त्रियोंको चाहिये कि ऐसे दुर्गुणोंसे दूर रहनेकी चेष्टा करे।

यदि माता स्वभावसे शान्त, ज्ञान व धर्म प्रभृति उत्तम गुण व उत्तम विचा-

रोंको धारण करनेवाली होंगी तो वह अपनी इच्छानुसार बालक उत्पन्न कर सकेंगी। ऐसे उत्तम गुणवाली मातायें तैयार करनेका कार्य इस समय पुरुषोंका है। जिन्हें जिस प्रकार अनुकूलता हो वह उसी प्रकार अपनी स्त्रियोंको व पुत्रियोंको तथा पुत्र वधुओंको उत्तम शिक्षा देने दिलानेका प्रबंध करे। जब वे शिक्षित होंगी तब वे अपनी इच्छानुसार उत्तम बालक उत्पन्न कर सकेंगी। वर्तमान समयमें सर्वत्र घोड़े, बलद, प्रभृति पशुपक्षी तथा फलफूलके वृक्षोंकी जाति सुधारनेके लिये बहुत कुछ चेष्टा की जाती है; किन्तु दुःखकी बात है कि मनुष्यके समान उत्तम प्राणी जो कि ईश्वरकी मूर्ति समझी जाती है और जिसके ऊपर इस भूमिके मनुष्य व प्राणियोंके कल्याण अकल्याणका आधार है उसको उत्तम बनानेके लिये कोई भी उद्योग नहीं करते! बालक अनायास जैसे उत्पन्न हो वैसे ठीक हैं। जहांपर ऐसे विचार हैं वहांपर स्त्रियोंको अपने कर्तव्यका ज्ञान कहांसे आ सकता है?

प्रिय पाठकगण! हम आपसे सविनय निवेदन करते हैं कि आप इस विषय-पर थोड़ा विचार कीजिये व स्त्रियोंको सुशिक्षित कर उनके हृदयमें उत्तम विचार लानेकी चेष्टा कीजिये। स्त्रियोंको सच्चरित्रा बनानेके लिये उन्हें सदैव राम, युधिष्ठिर, हरिश्चंद्र, ध्रुव, बुद्धदेव, श्रीकृष्ण, प्रह्लाद, सीता, सावित्री, तारामति प्रभृति उत्तम चरित्रवाले स्त्रीपुरुषोंके चरित्र पढाइये; काम, क्रोध, द्वेष, वैर, विरोध, क्रुरता, कपट, हिंसा, अनीति व अधर्मके रास्तों पर उन्हें भूलसे भी जाने मत दीजिये। स्त्रियोंको चाहिये कि वे कठोर वचनका परित्याग कर भयवाली जगहमें कभी जानेका विचार न करे। साथ ही विकारी भोजन न करे। रजोदर्शन व गर्भावस्थाके नियमोंका पालन करे, घरकी समस्त वस्तुओंको सुशोभित रक्खे, चित्र भी आदर्श स्त्री पुरुषोंके व ईश्वरकी प्राकृतिक मनोहर छविओंके रक्खे कि जिसे देखकर मनमें उत्तम भावनायें उत्पन्न हो। बाहर जाकर ईश्वरकी सृष्टि रचनाको देख कर मनको आनन्दित रखना। गर्भधारणके पूर्व अपने सद्गुणी पतिकी मूर्तिका हृदयमें धारण करना किम्वा पतिकी आज्ञासे किसी महापुरुषकी मूर्तिका, अपने पतिके द्वारा उनके गुण चरित्र प्रभृति समझ कर, धारण करना। गर्भाधानके समय ऐसी उत्तम वृत्ति रखना और गर्भधारणके पश्चात् भी ऐसे स्वरुप व गुणमें लीन रहना। सदैव पतिके गुण व स्वरुपका किम्वा इसमें कहे हुए चित्रका ध्यान लगा कर देखा करना और उनके चरित्रका मनन करना। वे चित्र ऐसे स्थानपर लगा रखना कि उसके ऊपर वार २ अपनी दृष्टि पड़े व मनसे संकल्प करना कि मुझे ऐसा सद्गुणी व पराक्रमी बालक उत्पन्न हों। इस प्रकार चलनेसे अपनी इच्छानुसार स्त्रियां बालक उत्पन्न कर सकतीं हैं। उत्तम

बालक उत्पन्न करना यह हरएक स्त्रियोंका धर्म है और उससे इस लोकमें यश व परलोकमें श्रेय मिलता है। स्त्रियोंको चाहिये कि इन नियमोंका पालन प्रेमसे करे व पुरुषोंको चाहिये कि स्त्रियोंको इन नियमोंके पालनमें सुविधा कर दे।

बालकोंके भविष्यका आधार माताके ऊपर है इसलिये माता कैसे गुणवाली चाहिये ?

इस संसारमे मनुष्यके लिये बालक यह बुढापेका आधार, युवावस्थाका सुख, सुखी घरकी शोभा व गरीब मनुष्योंका परम धन है। कीर्तिमान बालकसे वंशका गौरव बढता है; जो कुटुंब अच्छे बालकोंके प्रभावसे पवित्र होते हैं उनके वंशकी सुकीर्तिरुपी सुगन्धिसे कुटुम्बका मुख उज्वल होता है। ऐसे सद्‌गुणी कुलदीपक बालक जिसके वहां उत्पन्न होते हैं उसको पूर्ण भाग्यवान समझना। बालकोंके सद्‌गुणी या दुर्गुणी होनेका सम्पूर्ण आधार माताके ऊपर है। जिस घरमें माता धार्मिक, नीतिवाली, परमार्थी, न्यायपरायण, सत्यवादी, भक्तियुक्त, सुघड़, आनन्दी, शान्त, मन व इन्द्रियोंको वशमे रखनेवाली, आत्मसंयमी, तन मनसे शिक्षित, विपत्तिमें धैर्य रखनेवाली, पतिव्रता और मधुरभाषिणी रहती है, जिस घरमें ममता व धर्मका प्रभाव व्याप रहा है, जिस घरमें प्रमाणिकता व समस्त सद्‌गुण निवास कर रहे हैं, उस घरको सुखका धाम समझना चाहिये। ऐसा घर मनुष्यको परम प्रिय होता है; क्योंकि वह अन्तःकरणको आश्रय व शान्ति देता है। वह संसारके विविध प्रकारके उपद्रव व दुःखोंको भूला देता है। जिस घरमें सद्‌गुणी माता रहती है उस घरमें उत्तम बालक उत्पन्न हो उसमें आश्चर्य ही क्या है? **ज्योर्ज हरबर्टकी माताके विषयमें आईझाक वाल्ट** लिखता है कि, "वह अपना घर विवेकसे व सावधानिसे चलाती थी; वह सख्त होकर या चिढकर नहीं किन्तु प्रेम व मधुरतासे बालकोंको खेल कुदके साथ २ शिक्षा देकर व्यवहार चलाती थी। उसके पास बालक प्रेम व आनंदसे रहते थे; बालकको जैसा समागम मिलता है वह वैसा ही होता है। बालकको जो असर बाल्यावस्थामें होती है वह जीन्दगी पर्यन्त नहीं जाती; सद्‌गुणी माता अपने बालकोंको परमधन समझती है और ऐसा विचार रखती है कि मैं उन्हें सद्‌गुणी बनाकर मरुं तो मेरा जीवन सार्थक हो। धन्य है ऐसी सद्‌गुणी माताको! माता तो ऐसी ही चाहिये।

बालककी बाल्यावस्थाका आश्रयस्थान माताकी गोद है। माता ही उसे धर्मवीर, नीतिनिपुण, पराक्रमी व शूरवीर बनाती है। संसारमें जो महापुरुष हो गये हैं और हो रहे हैं वे समस्त माताके सद्गुणके प्रतापसे ही और जो नीच बन कर संसारमें भाररुप हो रहे हैं वे भी माताके दोषसे। माता ही बालकके अच्छे बुरे भविष्यकी व जनमंडलके कल्याणकी आधाररुप हैं। फ्रान्सके बादशाह **नेपोलियन बोनापार्टने** कहा है कि, बालकका भविष्य उत्तम या अधम होना यह माताके ऊपर निर्भर है। मैने अपने जीवनमें जो उन्नति, उत्साह, उद्योग, आत्मसंयम प्रभृति गुण सम्पादन किये हैं वे सब गुण प्राप्त करनेमें मेरी माताने मुझे बहुत कुछ सहायता की है। **नेपोलियन बोनापार्टके** जीवनचरित्रके लेखकका कथन है कि, "उसके ऊपर अपनी माताके सिवाय दूसरेकी आज्ञा कभी काम नहीं आती थी। वह माताके समीपसे आज्ञापालन सिखा था।" माताका आचरण यह एक प्रकारका संचा है। वह जिस प्रकारका होगा उसी प्रकारके बालककी बुद्धि, प्रकृति तथा आचरण होते हैं। अमेरिकाका **जोनरेनडल्क** नांवका एक राजनीतिज्ञ पंडित कहता है कि, यदि मुझे बाल्यावस्थाकी स्मृति अभी तक नहीं होती तो मैं ईश्वरका द्वेषी—नास्तिक बन जाता। मेरी स्वर्गवासी माता मेरे दोनों हाथ पकड़ कर मुझे मेरे घुंटनों पर बिठा कर कहती थी कि, "अपना पिता स्वर्गमें है।" माताका धर्मभाव व चरित बालकोंके जीवनमें कैसा आश्चर्यजनक परिवर्तन कर सकता है उसका दूसरा उदाहरण यह है। **मी. कविका** अपने मित्र **रेवरेंड जान न्यूटनके** जीवनचरित्रमें एक स्थानपर लिखता है कि, "उसके पिताके मरण होनेसे वह माझीका कार्य करने लगा और वहां पर बहुत खराब कार्य करने लगा। जब वह यौवनकी चंचलताके कारण पापमार्गमें जानेको तैयार हुआ यही नहीं वह कुछ समयसे पापरुपी कादोंमें फंसकर अपनी आत्माका नाश कर रहा था तब एक दिन यकायक बाल्यावस्थामें माताके समीपसे उसे मिला हुआ उपदेश स्मरण आया। जिससे उसको पश्चात्ताप हुआ। उसे मालूम हुआ कि माता परलोकके आवरणको एक ओर करके प्राणोंमें प्रकाश डाल रही है एवं धीरे २ सत्पथ दिखला रही है" परिणाम यह हुआ कि वह पापकर्मसे मुक्त हो पुण्य कर्म करने लगा।

उत्तम माताके उपदेश व आचरणकी जो गहरी असर बालकके हृदयमें होती है वह युवावस्थामें उपयोगी होती है। इस प्रकार माता बालकके शरीरमें प्रवेश करके फिर जीवित होती है। **ओगस्टाईनकी** माता **मोनिकाने** भी अपने बालकोंको अच्छा उपदेश दिया था। उसने अपने बालकोंको सत्पथ पर लानेकी चेष्टा की थी उसका फल बहुत अच्छा आया था। उसने अपने बालकोंको ही नहीं किन्तु अपने पतिको

भी सुधार लिया था। पतिकी मृत्युके पश्चात् भी उसने बालकोंको अच्छे २ उपदेश दिये थे और उसके—मोनिकाके मृत्युके पश्चात् बालक बहुत ही अच्छे हो गये थे। धार्मिक व उद्योगी माताकी गोदमें आनेवाले बालक भविष्यमें महान् होते हैं। महात्मा **थियाडरपार्क** जब पांच वर्षका था तब वह एकदिन अपने खेतमेंसे घरपर आता था। उस समय एक छोटे तलावके स्वच्छ जलमेंसे निकलकर धूपमें कछुएका बच्चा खेल रहा था। उसे देखकर पार्कने एक पथ्थर लेकर मारनेका विचार किया उतनेमें उसके अंतरमेंसे एक प्रकारकी आवाज आयी कि पार्क! तू उसे मत मारना! यह सुनकर पार्कको आश्चर्य हुआ और चारों ओर देखने लगा किन्तु उसे कुछ भी देखनेमें नहीं आया। उसने चारों ओर अंधकार देखा जिससे भय पाकर दौड़ता हुआ अपनी माताके पास आया। आकर अपनी माताकी गोदमें बैठकर पूछा कि माता! मुझे कछूएको मारनेके समय किसने रोका? माताने जवाब दिया कि, "पुत्र! लोग उसे **विवेक** कहते हैं। मैं उसीको **ईश्वरकी वाणी** कहती हूं। ज्यों २ तू इस बातको सुननेके लिये यत्न करेगा, त्यों २ यह बात तू स्पष्ट समझ सकेगा। एक समय वही तेरे जीवनके मार्गको दिखानेवाला होगा"। पार्क ऐसे मर्मज्ञ स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। इसीसे वह उन्नतशील अमेरिकाके आकाशका उज्वलतम नक्षत्र हुआ। अमेरिकामें ही नहीं; किन्तु सम्पूर्ण पृथ्वीमें महात्मा पार्कका नांव सर्वत्र उत्तम रुपसे फैल रहा है। गुलामगीरीके व्यवसायको नष्ट करनेके लिये जिन सज्जनोंने अपने जीवन अर्पण किये थे, उनमें महात्मा पार्कर सबसे अगुआ था। उसके उत्साह, उद्यम व धर्मभावने अमेरिकामें एक आश्चर्यकारी परिवर्तन कर दिया है। पार्क ऐसी धार्मिक माताकी गोदमें उत्पन्न होकर और उसके पाससे उत्तम शिक्षा प्राप्तकर संसारके उन्नत मनवाले विद्वानोंकी मंडलीमें परम आदरणीय हो रहा है।

प्राचीन समयमें इस देशमें भी सुचरित्रवाली साध्वी माताओंसे परम तेजस्वी, धार्मिक, बलवान, पराक्रमी व नीति निपुण मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। पाण्डवोंकी माता कुन्तिने अपने तीन व दो अपनी शोकके सब मिलाकर पांच पुत्रोंको अपने हाथके नीचे रखकर ऐसी शिक्षा दी थी कि वे वनवासकी दुःखद दशाको भोगकर अंतमें एक महान् राज्यके स्वतंत्र मालिक हुए; वहांतक कि उन पांचों भ्राताओंमें कभी भी द्वेषबुद्धि या वैर उत्पन्न न होकर सब कोई परस्पर प्रेमपूर्वक बन्धुभावमें दृढ बने रहे थे। वे परम धार्मिक, पराक्रमी, बलवान् व वीरपुरुष हुए। कुन्तिने उनको समान भावसे उच्च शिक्षा दी थी; जिससे वे पांचों भ्राता अन्योन्य अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रेम रखते थे। उनमेंसे किसीके ऊपर किसीको द्वेष अथवा ईर्षा नहीं उत्पन्न हुयी थी।

दैवेच्छासे देशनिकालके समान कठिन दुःख भोगना पड़ा तो भी किसी समय उन्होंने कोई अधर्माचरण नहीं किया। वे बाल्यावस्थासे आश्रयहीन थे फिर भी धर्मके आश्रयसे व माताके प्रभावसे राज्यसुखको प्राप्त हुए। उनके ऊपर माताकी पूर्ण सत्ता थी, महान् गुणयुक्त माताओंके उत्तमगुण व शिक्षाके प्रभावसे श्रीकृष्ण, श्रीराम, नल, प्रह्लाद, वशिष्ट, गौतम, व्यास, परशुराम इत्यादि महापुरुष व कौशल्या, सीता, पार्वती, तारामति, द्रौपदी, गार्गी, मैत्रेयी व सावित्री प्रभृति श्रेष्ट गुणवाले जगत्में प्रसिद्ध हो गये हैं।

अर्वाचीन समयमें बंगालके राजा राममोहनरायकी माता अत्यंत धार्मिक थी। वह अपने इष्टदेवता व धर्मके ऊपर दृढ विश्वास और अटल आस्थावाली तथा उदार चरित्रवाली थी। राममोहनरायके समान ईश्वरके ऊपर विश्वास रखनेवाला, बुद्धिमान् और वंशका मुख उज्वल करनेवाला पुत्रकी मातारुपसे जगत्में विख्यात हुयी। राममोहनराय भविष्यमें जिन सद्गुणोंसे सुशोभित हुए थे उनमेंसे कई गुण उन्होंने माताके द्वारा ही प्राप्त किये थे। भारतके गौरवधन बाबू केशवचन्द्र सेनके समान उदार धर्मभावने भारतवर्षमें नवीन जीवनका संचार किया है। युरोप व अमेरिकाके समान उच्च देश उसके धर्म संबंधी विचार जाननेके लिये सदैव आतुर रहता था उस महान् बुद्धिशालीकी बाल्यावस्थाका आश्रयस्थान उसकी माता ही थी। केशवचन्द्रसेनने अपने मरणके समय माताके चरणकी रज अपने शिरपर लेकर कहा था कि, "माता! आपके समान सबकी मातायें नहीं रहतीं, आपके गुणोंके द्वारा ही मैं इस पदको प्राप्त हुआ हूं। महात्मा केशवचन्द्रसेन मनुष्यत्वकी और वीरत्वकी छबि इस संसारमें रख गया है। उसके बाल्यावस्थाके कोमल मनमें उस धर्मपरायणा माताने ही धर्मके अंकुर उत्पन्न करनेकी सहायता की थी। उसने अपने ही प्रयत्नसे, अपने हाथसे केशवचंद्रसेनके मनमें धर्मके बीज बोये थे; जिससे सम्पूर्ण संसारके मनुष्य समझ गये हैं कि, "भारतवर्षमें अभीतक अमित तेजस्वि व धर्मवीर पुरुष उत्पन्न होते हैं"। ऐसी माताओंको धन्य है कि जो अपने बालकोंको उत्तम सद्गुणशाली बनानेकी सदैव चेष्टा किया करती है।

इस समय ऐसी भी अनेक मातायें है कि जो अपनेमें उत्तमभाव धारण कर बालकोंके हृदयमें उत्तम भाव धारण करानेके कार्यमें बेपरवाह रहती हैं। यही नहीं किन्तु शिठानी बनकर कोमल तन मनवाले बालकोंको दासदासियोंके हाथमें सोंप देती है। ऐसे अज्ञान् दासदासियोंकी सम्हालमें बालकोंको रखनेसे जो खराबी होती है वह बड़ी उम्मर होनेपर किसी भी प्रकारकी शिक्षासे नहीं सुधर

वैदिक सन्देश—गुरुकुल
पं. विश्वनाथ विद्या
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगंज
श्री वीरेन्द्र के सम्प
पत्र १९२२ में निकला।
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १९
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आग
इस नाम का एक म
में निकाला।
जलविद सखा—(जाल
कन्या महाविद्यालय
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेजी
सम्पादिका थीं। पत्रिका
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन मे
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३ मे
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे। १
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमेर
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ। साप्ताहि
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत था
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना।

सकती। बालकके भलेके लिये जैसी चिन्ता माताको रहती है वैसी दूसरोंको नहीं रहती। दास-दासियोंके समान अज्ञानियोंके समागमसे बालकोंमें अनेक प्रकारके दुर्गुण प्रवेश करते हैं। समागमका महान् प्रभाव है। यूनानके एक विद्वान्ने कहा है कि आप अपने बालकको एक गुलामके हाथमें सोंपेंगे तो आपके पास एकके बदले दो गुलाम तैयार होंगे। यह उपदेश उन माता-पिताओंको सदैव स्मरण रखना चाहिये कि जो अपने बालकोंको दासदासियोंके हाथमें सौंप देते हैं। समस्त उदाहरण व उपदेशोंका यही सार है कि बालकोंको सद्गुणी व उत्तम बनानेके लिये माता-पिताओंने स्वयं सद्गुणी व उत्तम बननेके साथ २ बालकोंको सदैव अपनी दृष्टिके सामने रखना चाहिये।

बालकका मातापिताके प्रति धर्म।

जिस जनने पितुमातको लियो न आशिर्वाद।
व्यर्थ जन्म ताको गयो नर नहीं सोई निषाद॥

इस जगत्में मातापिता गृहदेवता रुपसे रहकर घरको पवित्र कर रहे हैं। पिताके भीतर न्यायशीलता और माताके भीतर दयालुता ये दोनों ईश्वरी गुण रहे हुए है। संसारमें माताके स्नेहके समान अन्य कोई वस्तु नहीं है। क्या उसमें स्वार्थका नेक भी अंश देखा जाता है? कभी भी नहीं। हमलोग अनेकवार माताको भूल जाते हैं; किन्तु माता कभी भी नहीं भूलती। हम लोग उसे छोड़ देते हैं; किन्तु उसके प्राण सदैव हमें आलिंगन कर रहे हैं। नव मास पर्यन्त गर्भमें रखकर अनेक प्रकारसे संकटोंको सहनकर हमें जन्म दिया है। जिस समय हम कुछ भी नहीं समझते थे, और पुरा मुख भी नहीं खुलता था, उस समय माता बालकके साथ विविध प्रकारके खेल व आलिंगन किया करती थी व मनमें अत्यंत प्रसन्न होती थी। बालकके शरीरकी रक्षाके लिये उसकी पिशावसे भींजे हुए बिछौनेपर स्वयं सोकर उसको सुखे हुए बिछौनेपर सुलाती है और बालकके निमित्त स्वयं कडुए औषध खाती है। रोते हुए बालकको शान्त करनेके लिये अनेक प्रकारकी चेष्टायें करती है। बालकको किसी प्रकारकी चोट लगनेपर या वेदना होनेपर अपने आंखमें आंसु लाती है, बालकको बैठने व खड़े करनेका अभ्यास करानेके लिये अनेक प्रकारसे यत्न करती है। बालकको बोलना सिखाना कितना कठिन कार्य है फिर भी माता अपने समय, कार्य

व सब प्रकारके सुखोंको तिलांजली देकर बालकके साथ २ सरल २ शब्द बोलकर उसको बोलना सिखाती है और उसके विचारोंको भिन्न २ प्रकारसे समझकर उनकी आवश्यकताओंको पूर्ण करती है। माता व पिता अपने बालकको सुखी बनानेके लिये जो उपाय करते हैं उसको बतलानेकी लेखिनीमें शक्ति नहीं है।

अहो ! इस सृष्टिमें मातापिताके समान अन्य कोई भी बालकका शुभचिंतक, प्रेमी व हितकारी नहीं है ! उसमें भी माताका शुद्धप्रेम व ममत्व तो अकथनीय है। बालक चाहे वैसे कसुरमें आवे तो भी उसे भूलकर केवल शुद्ध प्रेमसे ही उसके प्रति बर्तन करती है। बाल्यावस्थासे लेकर वृद्धावस्था तक बालकोंके ऊपर समान भाव रखना यह माताका ही कार्य है। माताका प्रेम व ममत्व अन्यत्र नहीं हैं। मातापिता-को अपनी सन्ततिका मुख देखकर जो हर्षके आँसु आते हैं वे क्या दूसरोंको आसकते हैं ? माता पिताको अपनी सन्ततिके लिये जो चिन्ता होती है वह क्या दुसरोंको कभी रह सकती है ? मातापिताको अपनी सन्ततिके उदय देखनेकी जैसी इच्छा रहती है वैसी दुसरोंको कभी रह सकती है ? संक्षेपमें मातापिता अपनी सन्ततिके कल्याणको जिसप्रकार चाहते हैं उस प्रकार अन्य कोई भी चाहते हैं क्या ? कभी नहीं ! यही नहीं किन्तु माताको बालक उत्पन्न करनेमें अपना ही रक्त गुमाना पड़ता है उसके लालन पालनमें अपनी समस्त शक्तियोंका व स्वार्थोंका बलिदान देना पड़ता है। उन्हें पढा लिखाकर उत्तम व सुखी बनानेके लिये तथा भविष्यमें उसके उत्तम प्रकारसे व्यवहार चलानेके लिये माता पिता ही चिन्ता करते हैं। माता पिताके समान सच्चा उपदेशक व शुभचिन्तक संसारमें और कौन है ? कोई भी नहीं। मातापिता अपने बालकोंके लिये प्राण पर्यन्त अर्पण करनेके लिये तैयार होते हैं। महाराजा दशरथजीने पुत्रके वियोगसे अपना प्राण छोड़ दिया था। अर्जुन अपने पुत्र अभिमन्युके मरणके पीछे मरनेके लिये तैयार हुआ था, द्रोणाचार्यने पुत्रके मरणके समाचार सुनकर हथियार छोड़ दिये थे। श्रवणके मरणके समाचार सुनकर उसके मातापिताने अपने प्राणोंका भी परित्याग किया था। आज भी ऐसे अनेक मातापिता संसारमें दिखायी देते हैं जो कि अपने सन्तानोंके मरण हो जानेके कारण, उनके शोकके मारे मरण तुल्य होकर अपनी जींदगीको व्यतीत कर रहे हैं।

अहा ! बालकके प्रति मातापिताका प्रेम अलौकिक है। मातापिताके प्रेमकी, उनके गुणकी व उनके किये हुए उपकारोंकी गणना की नहीं जा सकती। उनके उपकारोंका बदला जींदगी पर्यन्त तन, मन, धन व कर्मसे सेवा करने पर भी चुकाया नहीं जा सक्ता। मनुस्मृतिमें कहा है कि;---

यं माता पितरौ क्लेशं, सहेते संभवे नृणां ।
न तस्य निस्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ।।

मनुष्य अपनी माताके उदरमें आता है तबसे मातापिता जिस क्लेशको सहन करते हैं उसका बदला वह सो वर्ष पर्यंत भी नहीं दे सकता। वास्तविकमें मातापिताका उपकार अपार है। ऐसे परमपूज्य व जीवनरक्षक मातापिताकी सेवा सदैव करनी चाहिये। सब देशोंके व सब धर्मोंके शास्त्रोंमें मातापिताकी सेवाको सबसे उत्तम कहा है। आर्यधर्मशास्त्र मनुस्मृतिमें कहा है कि मातापिताको जो प्रिय मालूम हो वह सदैव करना चाहिये। उनकी सेवाको परम तप कहा है। उनकी प्रसन्नताके विना कोई भी कार्य नहीं करना। गृहस्थावस्थामें माता, पिता व गुरुकी अवगणना नहीं करनेवाले पुरुषका तीनों लोकमें अच्छा होता है और उसका शरीर देवोंके समान तेजस्वी बनता है। वह स्वर्गमें अत्यन्त सुखको प्राप्त होता है। उन तीनोंका आदर करना यह समस्त धर्मोंके आदर करनेके समान है और उन तीनोंके अनादर करनेसे समस्त क्रियायें निष्फल जाती है। जहां तक वे तीनों जीवित हो वहां तक अपने लिये दुसरा कोई धर्म ही नहीं है। उनको जो प्रिय मालूम हो और उनकी इच्छा जिससे पूर्ण हो वही कार्य करना चाहिये। विशेष करके उनकी सेवामें सदैव तत्पर रहना चाहिये। उन तीनोंकी सेवा करना व उनकी आज्ञाका पालन करना यही बालकोंका परमधर्म है। इस परसे सिद्ध होता है कि विज्ञ मनुष्यने अपने मातापिताको साक्षात् प्रत्यक्ष देवता समझकर उनकी सेवा करना व उनका वचन पालन करना चाहिये। देखिये! भगवान् रामचन्द्रजीने अपने पिताके वचन पालन करनेके निमित्त १४ वर्ष वनवास स्वीकार किया। पितामह भीष्मदेव अपने पिताके वचनको पालन करनेके निमित्त सम्पूर्ण जीवन कौमारावस्थामें व्यतीत किया। श्रवणने मातापिताको अपने कंधेपर बिठाकर तीर्थ यात्रा कराके संतुष्ट किया। पांडवोंने अपनी माता कुन्ताजीके वचन पालनार्थ द्रौपदीके साथ अनुचित विवाह करना स्वीकार किया। रणवीर राणा चंद्रसिंहजीने अपने पिताके वचनको पालन करनेके लिये टिकायतकी गद्दीको छोड़कर सामान्य पदवी स्वीकार की। लक्ष्मणजीने माता सुमित्राकी आज्ञा पालन करनेके लिये रामचन्द्रजीके साथ वनमें जाना स्वीकार किया। इस प्रकारके उदाहरणोंकी इस भारतवर्षके इतिहासमें न्यूनता नही है। माता पिताकी आज्ञाको पालन करनेवाले सुपुत्र कभी भी दुःखी नहीं होते। मातापिताके अन्तःकरणके शुभाशिर्वादसे स्वर्गके समान अखंड सुख भोगकर बालक अमर कीर्तिको प्राप्त कर सकते है। मातापिताकी सेवाका प्रताप अपूर्व हैं। उनके चरणारविंदमें समस्त

तीर्थ रहे हुए हैं। जब शिवजीके पुत्र गणेशजी व कार्तिक स्वामीके बिचमें विवाह संबंधी विवाद हुआ तब शिवजीने कहा कि पृथ्वीकी प्रदक्षिणा प्रथम कर आवेंगे उसके साथ सिद्धि बुद्धिका विवाह होगा। अब गणेशजीके वाहनकी अपेक्षा कार्तिक स्वामीका वाहन अच्छा था जिससे कार्तिक स्वामीने इस शरतको स्वीकार किया; किन्तु मूषकवाहन गणेशजी विचारमें पड़ गये, उस समय उनकी माता पार्वतीजीने एक सरल मार्ग बतलाया जिससे गणेशजी अपने मातापिताकी प्रदक्षिणा कर उनके पैरमें पड़े जिससे उन्हें सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमाके समान फल हुआ और गणेशजीकी कामना तुरन्त सिद्ध हुयी। अहा! माता पिताका महत्त्व कितना है!

मातापिताकी भक्तिके उदाहरण केवल इसी देशमें बनते हैं ऐसा नहीं है; किन्तु समस्त देशोंमें मिलसकते हैं। रोमके इतिहास द्वारा मालूम होता है कि एक समय रोमके राज्य कर्ताओंने किसी प्रतिष्ठित स्त्रीके शरीरकी चमड़ी उखाड़कर उसे मार डालनेके लिये कैदमें भेज दी। जेलरको उस स्त्रीकी खुबसुरती देखकर उसके ऊपर दया आयी जिससे उसका यकायक खून नहीं करके भूखी मारनेका विचार किया। उस स्त्रीकी एक लड़की थी उसने अपनी मातासे साक्षात् करनेके लिये जेलरसे प्रार्थना कर आज्ञा प्राप्त की किन्तु वह कुछ भी खानेकी वस्तु न लेती आवे इसके लिये अधिक सावधानी रक्खी गयी। वह लड़की प्रतिदिन अपनी माताके पास आने लगी। कईदिन तक खुराक नहीं देनेपर भी वह स्त्री कैसे जीवित रहती है? इस विषयकी तलास कराने पर जेलरको मालूम हुआ कि वह लडकी अपनी माताको स्तनपान कराती है यह जानकर उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उस लड़कीकी बुद्धि व मातृभक्तिकी बात राजाके पास कही। राजाने कैदमेंसे उस स्त्रीको मुक्त किया तथा उस स्त्री व लड़की दोनोंके निर्वाहका प्रबंध राज्यकी ओर से करदिया। आज भी उस कैदमें एक मंदिर बना है और उस मंदिरका नाम "मातृभक्तिका कीर्तिस्तंभ" रक्खा गया है। इसी प्रकार एक स्त्रीने अपने वृद्ध पिता **साईमोनसको** बचाया था। इन उदाहरणोंसे सिद्ध होता है कि मातापिताकी भक्ति करना यह एक स्वाभाविक नियम है। अहा! ऐसे बालकको धन्य है! और उनके जन्मको भी धन्य है! जो कि अपने जन्मदाता व लालन पालन करनेमें महान् परिश्रम करनेवाले मातापिताकी कृपाका बदला नहीं भूलकर उनकी सेवाके लिये अपना सर्वस्व अर्पण करते हैं। जो बालक अपने मातापिताकी भक्ति करना यही अपना परमधर्म समझते हैं, जो बालक अपने मातापिताको ही अपना परम दैवत समझते हैं और जो बालक मातापिताको ही संसारमें अपना सर्वस्व समझते हैं ऐसे सुपात्र पुत्ररत्नोंको शतशः धन्यवाद

है ! जितना जहरमें और अमृतमें, जितना अंधकार व प्रकाश में भेद है, उतना ही कुपुत्र व सुपुत्रमें भेद है। सुपुत्ररुप रत्नको ही उत्पन्न करनेसे मातायें **रत्नगर्भा** कहलाती हैं। सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करके देखा जाय तो कुपुत्रको "**पुत्र**" नांव देना अनुचित है; क्योंकि पुत्र शब्दका यही अर्थ है कि, "जो नरकसे रक्षा करे वह पुत्र" सुपुत्र अपने सदाचारोंके द्वारा माता पिताकी सेवा कर उनकी नरकदुःखसे रक्षा करता है । इसलिये पुत्र नामके लिये वही योग्य है। कुपुत्र अपने दुराचरणोंसे माता पिताको दुःखजनक होकर नरकमें डालनेवाला होता है। वह पुत्रके समान पवित्र नामके योग्य कैसे हो सक्ता है ? ऐसे बालक तो मातापिताके शरीरमेंसे उत्पन्न हुए मनुष्याकार कीट ही हैं। ऐसे कुपुत्र पुत्रको धिक्कार है और उसका जीवन भी व्यर्थ है ! उनका जीवन पृथ्वीके ऊपर भार रुप है। वह जैसे आया है वैसेही पापका भार बांधकर चला जायगा !

जो मनुष्य मातापिताकी सेवाकर उनका आशिर्वाद नहीं प्राप्त करता वह मनुष्य नहीं किन्तु राक्षस है। उसको नवमास तक गर्भमें रखकर माताने जो संकट सहा उससे वंध्या रहती तो अच्छा था । मातापिताकी सेवा नहीं करना और उनकी आज्ञाका पालन नहीं करना यह अत्यन्त मूर्खता व कृतघ्नता है। माता पिताकी आज्ञाको भंग करनेवाले बालक आगे चलकर अत्यन्त दुःखी होते हैं व जन्म पर्यन्त पश्चात्ताप करते हैं । बड़ी उम्मर होने पर भी मातापिताकी आज्ञाको उल्लंघन नहीं करना चाहिये । माता पिता किसी समय कोई धर्मविरुद्ध आज्ञा करे तो भी तुरन्त स्वीकार कर लेना और पीछे विनयपूर्वक समझाना चाहिये कि यह कार्य इस प्रकार ठीक नहीं है। मातापिताकी आज्ञा सदैव हितबुद्धिसे उत्पन्न होती है; इस लिये उनकी योग्य आज्ञा होनेपर उसे आधीन होना चाहिये। शास्त्रमें कहा है कि;—

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः ।
अधमोऽश्रद्धया कुर्यात् अकर्तुश्चरितं पितुः ॥

अर्थात् माता पिताके संकल्पको समझकर जो उनकी आज्ञाको माने वह उत्तम, मातापिताके कहने परसे आज्ञाका पालन करे वह मध्यम, माता पिताके कहनेपर अश्रद्धासे आज्ञाका पालन करे वह अधम और माता पिताकी आज्ञा सर्वथा न माने वह कुछ कामका नही है। यह बात हरएक बालकोंको याद रखनी चाहिये। वर्तमान समयमें कई निठुर बालक बड़ी उम्मर होनेपर मातापिताके किये हुए उपकारोंको भूल जाते हैं और अपनी स्त्रीके कथनपरसे भ्रमित हो मातापिताकी ओर प्रेम व मानकी दृष्टिसे नहीं देखते, मातापिताका अपमान करते हैं, उनकी आज्ञाका उल्लंघन

करते हैं उनसे अलग रहते हैं, उन्हें अन्न वस्त्रादि नहीं देते, गालियें देकर उन्हें अप्रसन्न करते हैं और अपने पूर्वजन्मके शत्रुके समान समझ अपने पुत्रधर्मको भूल कर अनेक प्रकारके कडुए वचन कहकर दुःख देते हैं ऐसे कुपुत्रोंको शतशः धिक्कार है। वे यह भी नहीं विचारते हैं कि इस संसारमें इनके समान मेरा हितचिन्तक कौन है? किसने मुझे पालन पोषण कर बड़ा किया है? किसने मेरे लिये सुखके साधन बनानेके लिये परिश्रम किया है? और किसने मेरे सुखके लिये अनेक प्रकारके दुःख सहे हैं? इन बातोंपर जो बालक विचार नहीं करते उन्हें धिक्कार है। मातापिताके अपार उपकारोंको भूल जाना यह अत्यंत लज्जा व पापकी बात है। ऐसे पापी बालक इस लोकमें और परलोकमें अत्यन्त दुःखी होते हैं; यही नहीं किन्तु उनके बालक भी उनको देख कर उन्हें दुःख देना सिखते है। इससे अपने किये हुए कार्योंका यहां पर ही बदला मिल जाता है। जो दुष्ट पुत्र अपने मातापिताकी आज्ञा नहीं मानते और उनकी सेवा नहीं करते वे नरकमें पड़ते है। कमबुद्धिवाला मनुष्य भी अपने मातापिताकी सेवाके द्वारा इस संसारमें कीर्ति व सुखको प्राप्त करता है। इस लिये विज्ञ पुत्रोंने किसी प्रकारके मोहमें नहीं पड़ कर अपने परम पूजनीय मातापिताकी सेवा करनी चाहिये, और उनकी आज्ञा पालन करनी चाहिये। उन्हें किसी प्रकार अप्रसन्न नहीं कर तन, मन, व धनादिसे सदैव सुखी व प्रसन्न रखना यह बालकोंका मातापिताके प्रति परम धर्म है।

कुटुम्बके प्रति धर्म।

इस संसारमें हरएक मनुष्यको समझ रखना चाहिये कि हमारा अपने कुटुम्बके प्रति क्या धर्म है? और उसे समझकर उसके अनुसार चलना चाहिये। मनुस्मृतिमें कहा हुआ है कि;—

मातापितृभ्यां यामाभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्॥

माता, पिता, भ्राता, भगिनी पुत्र, पत्नी, कन्या और दास वर्ग प्रभृतिके साथ विवाद नहीं करना। फिर उसीमें कहा है कि बड़ा भ्राता पिता तुल्य है। भार्या व पुत्र अपने शरीरके समान है। दासदासियां अपनी छायाके समान है और कन्या कृपापात्र है। इस लिये उनकी ओरसे कदापि दुःख हो तो भी उसे सहन करना। महाभारतके अनुशासनपर्वमें कहा है कि:—

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ वि
सम्पादन में वैदिक संदे
संन्यासी—हरदुआगं
श्री वीरेन्द्र के स
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला।
जलविद सखा—(ज
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेज
सम्पादिका थीं। पत्रि
कु. शकुन्तला देवी स्ना
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार श्री
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पाद
साढ़े तीन रुपये थे।
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमे
यद्यपि आर्य प्रति
थी, किन्तु उसके मुखप
आरम्भ हुआ। साप्ता
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूता
रियासतें) तक विस्तृत
आर्यसमाज की धार्मिक,
बना।

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो, मृते पितरि भारत ।
सह्येषां वृत्तिदाताऽस्यात् सचैतान् परिपालयेत् ॥

पिताके परलोक गमनसे बड़े भ्राताने पिताके स्थानपर रह कर छोटे भाइयोंकी वृत्तिविधान व उनके पालनका प्रबंध करना चाहिये ।

कनिष्ठास्तं नमस्येरन् सर्वे स्वानुवर्तिनः ।
तमेव चोपजीवेरन् यथैव पितरं तथा ॥

छोटे भ्राताने पिताके अनुसार बड़े भ्राताकी आज्ञाका पालन करना चाहिये और उनके प्रति भक्ति दिखानी चाहिये ।

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्यायां गुरुपत्न्यनुजस्य सा ।
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥

बड़े भ्राताकी स्त्री छोटे भ्राताके लिये गुरुपत्नीके अनुसार है और छोटे भ्राताकी स्त्री बड़े भ्राताके लिये पुत्रवधूके अनुसार है । फिर उसी पर्वमें कहा हुआ है कि बड़ी बहिन, बड़े भ्राताकी पत्नी और बाल्यावस्थामें जिसके स्तनका पान किया हो वे सब माताके समान हैं । जो मनुष्य पिता, माता, भ्राता, गुरु व आचार्यकी सेवा करता है और उनके ऊपर कभी भी द्वेष नहीं करता उन्हें स्वर्गलोकमें उत्तम स्थान मिलता है । महानिर्वाण तन्त्रमें कहा हुआ है कि;—

मातरं पितरं पुत्रं दारानतिथिसोदरान् ।
हित्वा गृही न भुंजीयात् प्राणैःकण्ठगतैरपि ॥

कण्ठगत प्राण होनेपरभी गृहस्थने माता, पिता, स्त्री, पुत्र, व अन्य सम्बधियोंको छोड़कर स्वयं भोजन नहीं करना। फिर उसीमें कहा है कि गृहस्थाश्रमी मनुष्यने भ्राता, भगिनी, व भ्राताके पुत्र, ज्ञाति, मित्र व भृत्योंका पालन करना व उन्हें संतुष्ट रखना । इस कथनानुसार जो गृहस्थ अपने कुटुम्बके प्रति बर्ताव करेंगे वे सब प्रकारसे सुखी बनेंगे ।

मातापिताका बालकोंके प्रति धर्म ।

इस संसारमें मातापिता ये ईश्वरकी ओरके प्रतिनिधि हैं । ईश्वरने उनके ऊपर बालकका लालित पालित व सुशिक्षित कर मानवरत्न बनाकर अच्छे उद्योगोंके ऊपर लगानेका व योग्य उम्मर होनेपर विवाह करनेका भार रक्खा है । उन्हें इस

दायित्वपूर्ण कार्यको बहुत कुछ समझकर पूर्ण करना चाहिये। यदि इसमें कुछ भी त्रुटी हुयी तो वे ईश्वरके पास अपराधी समझे जायगे। मातापिताने बालकको अपने शरीरके अंशरूप जानकर उनके ऊपर पूर्ण प्रीति रखनी चाहिये और उनका सब प्रकारसे रक्षण करना चाहिये। उनके साथ इस प्रकारका प्रेम रखना चाहिये जिससे वे अपने मनके विचार उन्हें कह सके। यदि घरमें खुले हृदयसे बातचित करनेका अवसर नहीं मिलता है तो बाहरके मनुष्यके साथ बातचित करनेकी इच्छा होती है और बाहरके मनुष्यके साथ अपने घरकी बातचित करनेसे अनेकवार हानी होती है। बालकके समझदार होनेपर उनकी हरएक कार्यमें सलाह लेनी चाहिये जिससे कार्य अच्छा होता है और स्नेह सम्बंध बढता है। यदि उनकी सलाह न ली जाय तो उनका चित्त अलग हो जाता है और स्नेह सम्बंधमें न्यूनता होती है यही नहीं; किन्तु वे मातापितासे अलग रहनेका विचार करते हैं। इस लिये समझदार बालककी सलाह अपने समस्त व्यावहारिक कार्योंमें लेनी चाहिये। किसी प्रकार ऐसा खरचा नहीं करना जिससे बालकोंके ऊपर ऋणका बोजा रह जाय। दानपुण्यादि करनेके समय भी बालकोंके निर्वाह इत्यादिका प्रथम विचार करना चाहिये। बालकोंको भविष्यमें दुःख पड़े वैसा कार्य करनेवाले मातापिता पापके भागी होते हैं। जहां तक हो आयसे व्यय कम करके बालकोंके भविष्यके सुखके लिये द्रव्यका संग्रह करना चाहिये। बालकोंके भाग्य बालकोंके ऊपर रखकर धर्मदानमें या ऐसआराममें अपना द्रव्य खरच कर डालना यह नीति नहीं हैं। पुत्र व पुत्री अपने अंश है ऐसा समझकर उनके सुखके साधन बढानेके लिये सदैव तैयार रहना चाहिये। पुत्र व पुत्रीमें भेदभाव रखना अधर्म है। इस समय ऐसे अनेक दुष्ट स्वार्थी मातापिता हैं जो कि अपनी पुत्रीके सुखका विचार विना किये ही अपनी इच्छानुसार द्रव्य लेकर कन्यादान (?) करते हैं! पुत्रीका घर खाली कर पुत्रका घर भरते हैं जो अत्यन्त अनुचित है। ऐसे कार्य करनेवालोंको मातापिता नहीं किन्तु शत्रु समझना चाहिये। इस विषयमें मैंने अपने "**कन्याविक्रयनिषेध दर्शक**" नामक अपनी गुजराती पुस्तकमें बहुत कुछ लिखा है। यहां पर अधिक लिखनेका अवसर नहीं है। अपनी पुत्रीकी योग्य उम्मर होनेपर उसके योग्य उम्मरके, स्वरूपसे सुंदर, निरोगी, सदाचारी व विद्वान् पुरुषके साथ विवाह करना चाहिये। नांवधारी कुलिनोंके साथ विवाह कर अपनी कन्याको दुःखमें डालनेका महापाप मातापिताओंको कभी अपने ऊपर नहीं लेना चाहिये। कुलिनता अकुलिनताका निर्णय विद्या, सम्पत्ति व सदाचारके होने न होने परसे करना उचित है। जिनमें वे तीनों है वे कुलिन हैं और जिनमें

वे तीनों नहीं है वे अकुलिन हैं। कुलिनता इन तीन गुणोंके विना कभी ठहर नहीं सकती। ये तीन गुण जिसके अंदर हो उसके साथ अपनी कन्याका विवाह करना चाहिये। पुत्रको भी पढा लिखाकर उसकी योग्य उम्मर होनेपर सुंदर व सद्गुणी स्त्रीके साथ विवाह करना चाहिये। पुत्र पुत्रीका विवाह अधिक बाल्यावस्थामें करनेसे उनका अत्यंत अहित होता है। बाल्यविवाहका परिणाम अत्यंत भयानक आता है इस लिये कभी भी बाल्यविवाह नहीं करना चाहिये।

बालकोंके शरीर सदैव निरोगी रहे इसके लिये उनको योग्य आहार विहारादिके सेवन करानेका अभ्यास पाड़ना चाहिये बालकोंको छोटी वयसे उत्तम मार्गपर चढाना तथा दुर्व्यसनोंसे वचाना चाहिये। नित्यनियमानुसार ईश्वरप्रार्थना कराके उनको ईश्वरभक्त वनाना चाहिये। उनको प्रेमी व उद्योगी बनाना चाहिये और उनमें शोधक बुद्धि उत्पन्न हो ऐसा करना चाहिये। उनका दूसरे मनुष्योंके सामने अपमान नहीं करना। तीरस्कार करके अपमान करनेसे उनको मातापिताके उपर अप्रीति होती है। उनका कोई अपराध हो तो उन्हें दूसरे मनुष्योंके सामने कठोर वचन नहीं कह कर एकान्तमें शान्तिसे समझाकर कहना। जिससे उनको खराब नहीं मालूम होकर अच्छी असर होती है और फिर वे ऐसा कार्य नहीं करते। स्त्रियोंने अपनी सोतके बालकोंको भी अपने बालक समझकर उनके साथ योग्य रीतिसे व्यवहार करना। कभी भी द्वैतभाव नहीं रखना। इन सब बातोंपर विचार करके जो मातापिता बालकके साथ योग्य व्यवहार करते हैं उनके सुखके साधन बढते हैं और वे सच्चे धर्मनिष्ट कहलाते हैं।

ससरालमें जानेवाली पुत्रीको उपदेश।

पुत्री ससरालमें जाकर अपने कर्तव्यको पूर्णरूपसे करे, अपने पति, माता, और पिताके कुलोंकी कीर्तिको बढावे ऐसी बनानेके लिये मातापिताओंने चेष्टा करनी चाहिये। इस संसारमें अनेक प्रकारकी आशायें व विघ्न उपस्थित होते हैं जिस समय अत्यन्त चतुर स्त्रियां भी भूल खानेको तैयार होती हैं। इस स्थितिमें स्त्रीको अपने मातापिताकी ओरसे मिला हुआ उपदेश ही काम आता है। उस उपदेशके स्मरण आनेसे उनकी मनोवृत्तियां संकुचित हो उस असत्पथ परसे सत्पथ पर आजाती है। उस उपदेशमेंसे ससरालमें जानेके समय मातापिताके दिये हुए उपदेशकी असर बहुत ही अच्छी

होती है, इस लिये मातापिताने उस समय कैसा उपदेश देना चाहिये इसका थोड़ा विवेचन यहांपर किया जाता है।

पुत्रि ! तू समझदार होना, तू अपने सास, ससुर व पतिकी सेवा करना. हम लोगोंके खानदानकी प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा तेरे हाथमें है इस बातको तू अच्छी तरहसे याद रखना। तू अपने सास, ससुर व पतिकी आज्ञानुसार चलकर उनको सदैव प्रसन्न रखना, उनसे नेक भी विरुद्ध नहीं चलना। अच्छी संगतिकर सदाचारको पालन कर सुकीर्ति बढाना। ज्येष्ट, जिठानी, देवर, देवरानी व ननंद प्रभृति आत्मियोंके प्रति स्नेह रखकर नम्रतासे चलना और उनके बालकोंके प्रति स्नेहभाव रखना, उनके ऊपर कभी भी द्वेष नहीं रखना। सुखी या दुःखी कैसी भी स्थितिमें तू क्यों न हो फिरभी धर्मनीतिका त्याग मत करना। ईश्वरका स्मरण व स्वामीकी भक्ति करते रहना, बड़ोंका सत्कार करना और वे कोई बात पूछे तो सभ्यता तथा नम्रतासे उन्हें उत्तर देना। अपने प्राणपतिको विनय तथा विवेक वचन कहकर आनंद देना। सगे सम्बन्धियोंको कभी भी कटु वचन नहीं कहना। सबको मधुर वचनसे बुलाना। यदि तुझे कोई कठोर वचन कहे तो उसे सहन करना, सदैव प्रसन्नवदन रहकर एक चित्तसे कार्य करना तेरे पतिका घर चाहे वैसा क्यों नहो तू उसे सदैव उत्तम ससझना। सबके साथ बोलनेमें पियरके समान छूट नहीं लेकर मर्यादासे रहना, मधुरता व सभ्यतावाले वचन बोलनेमें कभी भी न्यूनता नहीं रखना। अतिथिजनोंका आदर करना, दुष्ट मनुष्योंका समागम कभी नहीं करना। शरीरको आभूषणोंसे सुशोभित करनेकी अपेक्षा सद्‌गुण रूप आभूषणोंसे सुशोभित करनेकी अधिक चेष्टा करना। पुण्यके व परमार्थके कार्य करनेमें प्रीति रखना, सत्यको सम्हालना, और झुठको जड़ मूलमेंसे निकाल देना। पतिको पसंद हो ऐसे शुद्ध आचरण रखना, उसके समान वशीकरणका दूसरा मन्त्र नहीं है। तू अपने प्राणोंसे भी पतिका भला अधिक चाहना। इस संसारमें तुझे अपने पतिके समान दूसरा कोई नहीं मिलेगा। इसलिये उसके ऊपर पूर्ण प्रीति रखकर सदैव आनंदसे रहना। तुझे जब पियरमें आनेकी इच्छा हो तब तू अपने पति व सास ससुरकी आज्ञा लेकर आना। तू सदाचरणसे चलकर ससराल व पियर दोनों कुलोंकी कीर्तिको बढाना। तेरी जननी, जन्मभूमि, शिक्षा इत्यादिकी किसी भी ना प्रकारसे बदनामी न हो उस प्रकार आचरण करना, कोई गुप्त बात करते हों वहां खड़े नहीं रहना और कोई बात कर रहे हों उसमें नहीं बोलना। दूसरोंके घरपर जानेकी आवश्यकता हो तो अपने पति किम्वा सासकी आज्ञाके विना नहीं जाना। आज्ञा मिलनेपर भी एकाकी दूसरोंके घरपर नहीं जाना तथा जिस घरमें स्त्री न हो उस घरमें

सर्वथा नहीं जाना । घरके समस्त कार्य बड़ोंको पूछकर करना, बड़ोंके सामने अधिक हँसना नहीं और घरके किसी छोटे बड़े व्यक्तिकी मूर्खता देखकर उस पर क्रोधादि नहीं कर उन्हें धैर्यसे समझाना । अधिक हँसनेकी आदत रखनेसे वजन घटता है। किसीका अपमान हो ऐसा कभी नहीं बोलना । कार्य करनेमें शीघ्रता नहीं करनी, क्योंकि शीघ्रतासे कार्य बिगड़ता है, फिर अधिक धैर्य भी नहीं रखना । इस कार्यके पूर्ण हो जानेसे दूसरा कार्य करना पड़ेगा ऐसा प्रमादी विचार कभी नहीं करना। अपनी शक्तिके अनुसार कार्य करना । न्यूनाधिक करनेसे हानि होनेकी संभावना है।

प्रियपुत्रि ! शरीर, केश, वस्त्र व घरकी स्वच्छता रखना । कभी भी गंदी मत रहना। सौभाग्यदर्शक चिन्ह सदैव धारण कर रखना। मिताहारी बनकर समयानुसार सादा खुराक लेना । पाकशास्त्रके नियमानुसार भोजन तैयार कर भेदभाव छोड़कर सबको भोजन कराना । रात्रिको एकाकी कहांपर भी मत जाना । यदि आवश्यकता हो तो किसीको साथमें लेकर जाना। जहांपर पुरुषोंकी दृष्टि पड़ती हो वहांपर स्नान नहीं करना तथा वस्त्ररहित हो स्नान नहीं करना । चलनेके समय मर्यादा रखकर धीरे २ चलना । शीघ्रतासे या उद्धतताके साथ चलनेसे लोग निन्दा करते हैं तथा अन्य प्रकारसे हानियें होती हैं। अपने ज्ञानको बढाने व नवीन रखनेके लिये अवकाशके समय उत्तम पुस्तक पढना और उनमेंसे ग्रहण करने योग्य सार खेंचकर हृदयमें जमाना। तू आपने ज्ञानका उपयोग घर, देश व स्त्रियोंके सुधारमें करना। दया, क्षमा, सत्य, परोपकार, सभ्यता, विवेक, विनय, धैर्य, उत्साह और धार्मिकता प्रभृति सद्गुणोंका संग्रह कर अपने जन्म सफल बनाना; क्योंकि यह अमूल्य मनुष्यावतार वार २ नहीं आता । इसलिये इस जन्ममें जो अच्छे कार्य हुए व ही सच्चे हैं। सुख दुःखका परिवर्तन होगा; किन्तु क्रिया न क्रिया नहीं होगा। इस लिये जो कार्य करना वह अत्यन्त विचार करके करना। खराब स्वभावके, नीच कुलके, नीच बुद्धिवाले व खराब व्यवसाय करनेवाले स्त्री पुरुषोंके पास खड़ा नहीं रहना। कदापि किसी कारणसे खराब स्त्रीकी जरूरत पड़े तो अपना वह कार्य करके उससे तुरंत दूर हो जाना। खराब स्त्रियोंका विश्वास कभी भी नहीं करना । उनके समागमसे बुद्धि भ्रष्ट होती है। बैठने उठनेका तथा बहिनपनका संबंध धर्म, भक्ति, ज्ञान, उत्तम कुल व सभ्यता इत्यादि देखकर करना। यदि इन गुणोंवाली स्त्रीमें भी कोई दुर्गुण दिखायी दे तो उसका तुरंत त्याग करना । यदि कोई दुष्ट हास्य करे तो उसे मानो हमने समझा ही नहीं है ऐसा बतलाकर उनसे दूर होना। परपुरुषके सामने भूलसे भी कभी दृष्टि नहीं करना। तू अपने शीलको प्राणोंकी अपेक्षा अधिक समझ

कर चलना । कोई पापी पुरुष तेरे पर खराब दृष्टि करे तो उससे सावधान रहना । जिसका मन वशमें है और जिसकी वृत्ति शुद्ध है उसके शीलको नष्ट करनेवाला संसारमें कोई भी नहीं है इस बातको तू सत्य समझना ।

प्रियपुत्रि ! वृथा हास्य, दूसरोंके बालकोंको चुम्बन, परपुरुषको देखकर हँसे खाना, अधिक स्वरसे गाना, अपने कान व कमरपर खुजलाना, खुले मस्तकसे रहना, अधिक हंसना, कार्यके विना परघर जाना, अन्य पुरुषको देखनेके लिये खड़े रहना, नीच जातिकी स्त्रियोंका संग करना, चोरी करना, क्रोध करना, रूपपर मोहित होना, अनियमित रहना, अधिक खरचा करना, झगाकरके अवसर करना, विनाकामकी रजो-गुणी वस्तुयें लेना, अमूल्य समयको व्यर्थ व्यतीत करना, सामान्य कारणसे किसीके साथ लड़ाई करना, प्रमादीको उत्तेजन देना, पापीका सत्कार करना, इत्यादि समस्त अवगुणोंका तुझे त्याग करना चाहिये । पतिका भला चाहना, कुल मर्यादाका पालन करना, अपने घरकी बातको गुप्त रखना, घर चलानेकी रीतिमें कुशल रहना, अति-थियोंका योग्य सत्कार करना, पतिकी आज्ञाका पालन करना, उसके सामने सदैव प्रसन्न मुख रहना, तथा पतिके कार्यमें सहायता करना, पवित्र प्रेम, नम्रस्वभाव, नीति-में प्रीति, सहनशीलता और मधुरता ये समस्त सद्‌गुण स्त्रियोंका बल है । इसलिये तू उन गुणोंको धारण करना । वेश्या, गानेवाली स्त्री, कुटनी व दुष्ट स्वभावकी स्त्रीका भूलसे भी समागम न करना । अपने मन व समस्त इन्द्रियोंको सत्कार्यमें लगा रखना। कुटुम्बको देखकर प्रसन्न रहना, पतिके अधीनमें रहकर संतोषसे रहना । अपरिचित स्थान, बाजार व परघर एकाकी नहीं जाना । नाटक व अन्य अनीति बढानेवाले खेलोंमें नहीं जाना । मेलाओंमें जाना भी अच्छा नहीं । जो पुत्री अपनी माताके उपदेशके अनुसार चलती है वह सुखी होती है । सीताजी व उषा अपनी माताके उपदेशानुसार चलकर संसारमें प्रसिद्ध व आदर्श हो गयी हैं । सीताजीको ससरालमें जानेके समय उनकी माताने उपदेश देते हुए कहा था कि;—

श्वश्रूशुश्रूषणपरा, नित्यं राममनुव्रता ।
पातिव्रत्यमुपालंब्य, तिष्ठ वत्से यथासुखम् ॥

हे पुत्रि ! तू सासकी सेवामें सावधान रहना, और तेरे पति जो रामचन्द्रजी हैं उनकी आज्ञाको पालन करना, कभी भी उनकी आज्ञाको उल्लंघन मत करना, पति-व्रताका पतिसेवारूप जो धर्म है उसके आधारसे सुखपूर्वक रहना । पार्वतीजीने अपनी पुत्री उषाको ससरालमें विदा करनेके समय उपदेश देते हुए कहा था कि;—

स्त्रीणां हि वृत्तं पतिरेव देवता,
शुश्रूषणं पुत्रि तदाऽनुकूलता ।
तद्बांधवेषु परमो हि भावो,
तद् वृत्तमेतत्परितो हि धारणम् ॥

हे पुत्रि ! पति ही देव है ऐसा जानना, उसकी सेवा करना, उसको सब प्रकारसे अनुकूल रहना, और उनके आत्मियोंके ऊपर उत्तम भाव रखना, यह स्त्रियोंका परमधर्म है । इस लिये उस धर्मको पूर्णरुपसे धारण करना ।

इस प्रकार अपनी पुत्रीको बहुत कुछ उपदेश देकर अन्तमें कहा कि हे पुत्रि ! तू इस उपदेशको अपने हृदयमें धारणकर उसके अनुसार चलना, जिससे तूझे सुख मिलेगा । तेरा सौभाग्य अखंड रहे । माता पिताको उचित है कि वे भी इस प्रकार अपनी पुत्रियोंको उत्तम उपदेश देकर उन्हें ससरालमें विदा करे ।

स्त्रीको सास, ससुर, देवर, ज्येष्ठ प्रभृतिके साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिये ?

विज्ञ स्त्रियोंको समझ लेना चाहिये कि सास, ससुर, ये धर्मके मातापिता हैं । जिस प्रकार मातापिताकी सेवा करनी चाहिये उसी प्रकार सास, ससुरकी भी सेवा करनी चाहिये । फिर समझना चाहिये कि येही मेरे प्राणेश्वरको जन्म देनेवाले हैं । उन्हीने मेरे पतिका लालन पालन कर सब प्रकारसे योग्य बनाया है । उनके समान और कोई मेरे प्राणनाथके शुभचिन्तक नही है, मैं उन्हीके प्रतापसे इस पतिको प्राप्त हुयी हूं । हमारे सुख दुःखके भागी संसारमें ये ही हैं । ऐसा समझकर उनको सदैव प्रसन्न रखना चाहिये । सासको अपनी माताके समान शुभचिन्तन करनेवाली समझकर उनकी आज्ञाका पालन करना, उनकी आज्ञाके विना बाहर नहीं जाना, वह किसी समय क्रोध करके दो कटु बचन कहे तो उसे हितकारी समझ कर बुरा नहीं लगाना, ससरालमें घरका कामकाज करनेसे किसी प्रकारकी हानी नहीं है । अधिक कार्य करनेसे सामने प्रतिष्ठा बढती है और लाभ होता है । हमारी सास बैठ रहती है और हमसे सब कार्य कराती है ऐसा विचार मनमें कभी भी नहीं लाना; किन्तु ऐसा विचार करना कि उसने आज तक घरमें बहुत कार्य किये हैं, उन्होंने हमारे पतिके लिये अनेक कष्ट सहन किये हैं, अब वे वृद्ध हुए हैं इस लिये अब उनसे कोई कार्य

नहीं करना चाहिये । अब उन्हें विश्राम करने देना यह मेरा धर्म है । ऐसा विचार कर अपने पियरमें जो २ कार्य शिखें हों उसका उपयोग ससरालमें करना । जहां तक हो घरका समस्त कार्य अपने ऊपर ले लेना और उसमें अपनी सासके उपदेशको ध्यानमें रखना; छोटे बड़ेका विवेक रखना। यदि संसारमें इस प्रकार विवेक व मर्यादा न रक्खें जाय तो संसार दुःखरूप हो जाता है; इस लिये छोटे बड़ेका विवेक रखकर समस्त कार्य करना चाहिये ।

ससुरको अपने पिताके समान समझ कर उनकी सदैव सेवा करनी चाहिये। उनके सामने उच्चस्वरसे नहीं बोलना । सभ्यता व नम्रतासे समस्त आचरण करना। उन्हें किस प्रकार असंतुष्ट नहीं कर राजी रखना । प्रातःकालमें जल्दी उठ प्रथम ईश्वरका स्मरण कर सास ससुरके पैरमें पड़ना और उनकी आज्ञा ले कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये। उनपर पूर्ण प्रेम रखकर उन्हें राजी करनेसे ईश्वर प्रसन्न होता है और उत्तम फल देता है। ननंदोंको अपनी भगिनियोंके समान समझकर उनके साथ प्रेम रखना । घरके कार्य मिलकर करना, यदि किसीके कार्यमें कोई त्रूटी हुयी हो तो उसे बार २ कहना नहीं। ननंद एक प्रकारको महिमान है उसको सब प्रकारसे संतुष्ट करके उनकी ससरालमें विदा करना। ननंदको भी उचित है कि अपनी भौजाईको बहिनके समान समझ उन्हें किसी प्रकार नाराज नहीं करना, परस्पर प्रेम रखना व एक दूसरेकी निंदा प्रभृति नहीं करना; यदि दोमेंसे किसीका कोई अपराध हुआ तो भी उसे भूल जाना या समाधान कर लेना जिससे परस्पर प्रेमकी अभिवृद्धि होती है और जहां प्रेम है वहांपर ही सुख है ।

देवरानी और जिठानीको भी परस्पर स्नेह रखना चाहिये। एक दूसरेको अप्रिय मालूम हो ऐसा बचन नहीं बोलना। घरके समस्त कार्य साथमें मिलकर करना और एक दूसरेके सुख दुःखका हिस्सेदार बनना । परस्पर इर्षा तथा द्वेष नहीं रखकर प्रेमसे रहना । एकके कार्यमें भूल हो तो दूसरीने उस भूलको धीरसे बताना । देवरानी जिठानीको यह ध्यानमें रखना चाहिये कि कभी भी किसीके ऊपर कोई आज्ञा न करे । दिवरानीको उचित है कि अपनी जिठानीको माता तुल्य समझकर उनके कथनको ध्यानपूर्वक श्रवण करे और जिठानीको उचित है कि अपनी दिवरानीको पुत्री तुल्य समझकर उसके ऊपर प्रेम व दया रक्खे । परस्पर योग्य विनयादि गुण धारण कर वर्तन करनेसे दोनोंको सुख मिलता है । जिठानीको उचित है कि अपने देवरको पुत्रके समान समझे व दिवरानीको उचित है कि अपने ज्येष्ठको श्वसुरके समान समझे ।·अपने पतिके मित्र व आश्रियोंको देखकर प्रसन्न होना, उनके ऊपर सद्भाव

रखना और उनके साथ विवेक व मर्यादासे व्यवहार चलाना, उनको अप्रिय मालूम हो ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये। भतीजे व भानेजको अपने पुत्रके समान समझकर उनपर प्रेम रखना, उन्हें देखकर प्रसन्न होना और सभी प्रकारसे उनका भला चाहना। भतीजा व भानेजनके साथ भी अच्छा व्यवहार रखना। पड़ोसीके साथ संपसे रहना, और उनका भी भला देखकर प्रसन्न होना। अपने पियरमें अधिक समय तक रहना अच्छा नहीं है, अपने गृह कुटुम्बमें स्नेह रखना, संपसे रहना, और अलग रहनेका विचार नहीं करना; क्योंकि अलग रहनेसे मन अलग हो जाते हैं और अन्य अनेक प्रकारकी हानियें पहुंचती हैं। कई स्त्रियां अलग रहनेके लिये अपने पतिको समझाती हैं, सास श्वसुर इत्यादिका सच्चा झुठा दोष निकालती हैं। यदि पति सीधे स्वभावका रहता है तो अपनी स्त्रीके कथनको सत्य मानकर कुटुम्बसे अलग रहता है। यह अमुक समयके लिये कदापि सुख व शान्तिको देता है किन्तु तरुण स्त्रीकी स्वतंत्रताका अनिष्ट परिणाम जो हम लोग अनेक स्थानोंमें देखते हैं उसके कडुए फल उस पति व स्त्री दोनोंको भोगने पड़ते हैं। समझदार स्त्रीको उचित है कि भूलसे भी अपने कुटुम्बसे अलग होनेका विचार न करे, मातापिताकी जीवितावस्थामें उनसे अलग रहकर उनकी आत्माको अप्रसन्न करना सुपुत्रोंका धर्म नहीं है। मातापिता जानते हैं कि पुत्रवधूके आनेपर हम सुखी होंगे; किन्तु यह उनकी आशा पुत्रोंके अलग रहनेसे नष्ट होती है और उनकी आत्मासे जो गुप्त ध्वनि निकलती है वह पुत्र व पुत्रवधुओंके लिये बड़ी ही अनिष्ट करनेवाली है महाभारतके अनुशासन पर्वमें कहा है कि:—

श्वश्रूश्वसुरयोः पादास्तोषयन्ती गुणान्विता।
मातृपितृपरा नित्यं या नारी सा तपोधना॥

जो गुण सम्पन्न स्त्री सास, श्वसुरकी सेवा करती है और मातापिताकी सदैव भक्ति करती है वह स्त्री तपोधन कहलाती है।

शास्त्रोंके ऐसे वचनोंका स्मरण करके सास श्वसुरकी सदैव सेवा करनी यह स्त्रियोंका परम धर्म है। वैसही सासको भी उचित है कि अपनी पुत्रवधूको अपनी पुत्रीके समान प्यार करना। सब कार्य उनकी शक्तिके अनुसार कराना; कई निर्दय सास इस बातका विना विचार किये ही अपनी पुत्रवधूको एक गुलामड़ीके समान समझकर उसकी शक्तिके उपरांत कार्य कराती है। उसको कटु बचन कहती हैं और उसके पतिके सामने निन्दा किया करती है। समझदार सास ऐसा कभी नहीं करती। यदि वहुसे कोई भूल हो जाय तो भी एकांतमें बिठाकर प्रेमसे उप-

देश देती है ऐसी सासोंको धन्यवाद है । और जो वहुयें अपने सास श्वसुरको माता-पिताके समान समझकर सदैव सेवा करती है और घरका समस्त कार्य अपने ऊपर ले लेती है एवं देवर ज्येष्ठ प्रभृतिके साथ योग्य व्यवहार रखती है उन्हें भी धन्यवाद है । घरमें संप, सलाह, समानता, संतोष व आनन्द ये पांचों गुण स्थायी रहे ऐसा आचरण करना उत्तम स्त्रियोंका धर्म है ।

गृहोपयोगी वैद्यक.

स्त्री घरकी प्रधान है । बालकोंको सम्हालना व रोगियोंकी परिचर्या करना यह स्त्रियोंका कार्य है । इस लिये यदि वे थोडा बहुत वैद्यक जानती हो तो अपने बालकोंको और घरके अन्य व्यक्तियोंको निरोगी रख सकती है । रोगीको निरोगी बनाकर तंदुरस्त रखती है व रोगोंके कारणोंको जानकर उसका प्रतिबंध करती है। वैद्य व डाकटरके पास बार २ जानेकी आवश्यकता नहीं रहती । जिस प्रकार कई स्त्रियां अज्ञानताके कारण औषधिके गुणोंको विना जाने ही या रोगकी परीक्षा बिना किये ही चाहे वैसी दवा देकर रोगको बढाती है उस प्रकार वैद्यक ज्ञानवाली स्त्रीके द्वारा नहीं होता है । फिर वह रोगके विषयमें परिचित होनेसे डाक्टर तथा वैद्यको रोगीकी हकीकत यथार्थरूपसे समझा सकती है और डाक्टरकी सूचनाओंको स्वयं तुरंत समझकर रोगीकी परिचर्या प्रभृति उत्तमतासे करती है । कई अज्ञ स्त्रियां अपनेको या अपने बालकको कोई रोग होता है तब ऊंट वैद्यके वहां जाती है और जैंसी तैसी दवा लेकर रोगको बढा देती है; किन्तु विज्ञ स्त्री अपने उपायसे अच्छा न होनेपर चतुर चिकित्सककी सलाह लेती है व रोगके होते ही उसका उपाय करती है । भाव प्रकाशमें कहा हुआ है कि;—

" रोगके उत्पन्न होते ही उसका उपाय करना, उसे साधारण समझकर निश्चिन्त नहीं रहना क्योंकि अग्नि, शत्रु, रोग व विष ये थोड़े होनेपर भी अधिक विकार करते हैं । इस लिये रोगके होते ही उसका उपाय करना इसमें दवाकी क्या जरुरत है ? दवा क्या कर सकती है ? यह तो आप ही मिट जायगा, ऐसा कहना भूल है । जो रोग दवासे मिट सकते हैं वे आप ही मिट जायगा, ऐसा कहना अनुचित है । जो रोग दवासे मिट सकते हैं वे कोही नहीं मिट सकते । यहां पर एक बात यह भी ध्यानमें रखने योग्य है कि रोग होनेके पश्चात् उसको मिटानेका उपाय

करना उसकी अपेक्षा वह रोग मूलसे ही नहीं रहे इसका उपाय करना यह उत्तम है। फिर जिस प्रकार पुरुष अपने रोगका वृत्तान्त वैद्यसे कह सकते हैं उस प्रकार स्त्रियां अपने गुह्य रोगोंका वृत्तान्त नहीं कह सक्ती, जिससे उन्हें अत्यन्त संकट सहना पड़ता है।

स्त्रियोंको साधारण रोगोंकी चिकित्सा जाननेकी अत्यन्त आवश्यकता है, इस लिये हम यहांपर कई सामान्य रोगोंका वर्णन व उनकी चिकित्सा वैद्यक ग्रन्थोंके तथा वैद्योंके अनुभवोंके आधारपरसे प्रकाशित करना उचित समझते हैं।

१ **व्याधिका मूल:**—कई रोग जहरी हवासे व चेपसे उत्पन्न होते हैं; किन्तु अधिक रोगोंकी उत्पत्ति **वात, पित्त व कफ** इन तीन दोषोंसे होती है। समस्त रोग मानवशरीरके आश्रयपर रहे हुवे हैं। अनियमित समयपर भोजन करना, न्यूनाधिक भोजन करना, अपथ्य भोजन करना, जागरण करना, शोक, भय व चिन्ता करना, अधिक परिश्रम करना, अधिक बोलना, अधोमार्ग प्रभृतिके वेगोंको रोकना और ऋतुओंका परिवर्तन होना ये समस्त वात, पित्त व कफके प्रकोपके कारण हैं। इन कारणोंको समझकर उन्हें दूर करना यह निरोगी रहनेका प्रधान कारण है। रोग होनेके पश्चात् उसका उपाय करना उसकी अपेक्षा रोग उत्पन्न नहीं होवे ऐसा आचरण करना यह अत्युत्तम है। जो लोग इन बातोंको समझकर योग्य आहार विहारादिका सेवन करते हैं उनके आरोग्य व आयुष्यकी अभिवृद्धि होती है।

२ **रोगकी परीक्षा:**—रोगकी परीक्षा **प्रत्यक्ष** व **अनुमान** इन दो प्रकारसे होती है। अपनी इन्द्रियोंसे और मनसे बाह्यांतर पदार्थोंका अनुभव करना उसको **प्रत्यक्ष प्रमाण** कहा है और युक्ति किम्वा तर्कसे परीक्षा करना उसको **अनुमान प्रमाण** कहा है। वैसे ही कहनेसे, देखनेसे और अनुमानसे भी रोगकी परीक्षा हो सकती है। वैद्यक शास्त्रमें रोगकी अष्टविध परीक्षा कही हुयी है उस परसे भी रोगकी परीक्षा हो सकती है।

३ **प्रस्वेद:**—शरीरमेंसे प्रस्वेद—पसीना चार प्रकारसे निकल सकता है। बालुकाके समान किसी पदार्थकी पुटली बांधकर उसको गरम करके प्रस्वेद निकालना। यह रीति श्लेष्मको नाश करनेवाली है। किसी वस्तुका क्वाथ बनाकर उसकी भाफ देकर प्रस्वेद निकालना यह वातको नाश करनेकी रीति है और प्रवाही पदार्थका योग करके प्रस्वेद निकालना यह पित्तको नाश करनेकी रीति है।

४ **वमन—कय:**—शरद, वसंत व वर्षा ऋतुमें वमन नहीं कराना; बलवान, अधिक कफवाले, और धैर्यवाले पुरुषको ही वमन कराना चाहिये। विष, अजीर्ण व

कफके दोषको निकालनेके लिये मांयफलके क्वाथको पीलाकर कय करानी चाहिये। कमजोर, वृद्ध व डरपोक मनुष्यको तथा बालकको कय नहीं कराना। यदि बालकको कय करानेकी आवश्यकता पड़े तो बहुत ही सम्हालकर कराना। **कय करानेकी दवाः**--कफके विकारमें पीपलमें सेन्धानमक मिलाकर उसका चूर्ण गरम जलमें पीलाना। पित्तके विकारमें कड़वी नई, अडीसी और नीम्बुका चूर्ण ठंडे जलमें पीलाना। कफ सहित वातव्याधिमें दूधके साथ मिला हुआ मांयफलका चूर्ण पीलाना और अजीर्णमें गरम जलके साथ सेन्धानमक देकर कय करानी चाहिये।

५ वमनसे होनेवाले उपद्रवोंके उपायः--कय करते २ जिहवा बाहर निकल आयी हो तो उसको तिल व द्राक्ष पीसकर जिह्वापर लगाकर भीतर बिठाना। नेत्रके डोले बाहर निकले तो उन्हें घृत लगाकर धीरे २ दबाना। कयमें खून गिरता हो तो चंदन, खस, नागरमोथ, चावलकी धानी, मुंग, पीपल, व जल इन सबको जलमें भीगोकर उस जलको छानकर पीना; अधिक कयके कारण तृषा प्रभृति उपद्रव होते हो तो इमली, रसवंती, खस, चावलकी धानी, जलसे घीसा हुआ चंदन, घृत, शहद और सक्करके साथ मिलाकर पीना।

६ विरेचन जूलाबः--आमवात, बंधकुष्ठ व पेटके रोगोमें जुलाब देना चाहिये। जिस दोषकी जुलाबके द्वारा शुद्धि की जाती है वह दोष फिर नहीं होता है। बालक, वृद्ध, क्षीण, डरपोक, श्रमित, तृषातुर, स्थूल, गर्भिणीस्त्री, नवीन ज्वरवाला, तुरंतकी प्रसुता स्त्री, मंदाग्नि व उन्मादवाला मनुष्य इन सबको जुलाब नहीं देना चाहिये। अन्य रोगवालोंको जुलाब लाभकारी है। फिर भी कार्तिक मासके बैठते या फागुनमें जूलाब लेना उत्तम है। शरद, वसंत व वर्षा ऋतुमें जुलाब नहीं लेना चाहिये, क्योंकि उस समय जूलाब ठीक नहीं लगनेके कारण हानी होती है।

जूलाबकी दवाः--जिसको कम जूलाब लेना हो उसे द्राक्ष, दूध व एरंडीके तेलका देना; जिसको मध्यम जुलाब लेना हो उसे निसोत, कटु, व गरमालेका देना; और जिसको तीक्ष्ण जुलाब लेना हो उसे थुहरका दूध, नेपाला व दारुड़ीका देना। जुलाब लगनेके पश्चात् चावल और मुंगका यूष--ओसामन खाना। जुलाबमें ठंडाजल, परिश्रम, तैलमर्दन, मैथुन इत्यादिका त्याग करना। बालकोंको देशी किम्वा विलायती एरंडीके तैलका जुलाब देना उत्तम है किम्वा स्वर्णमुखीकी चाह दूध और सक्करके साथ देनी। वार २ जुलाब लेना हानिकारी है। इसलिये चाहिये तो भी विचार करके लेना चाहिये।

७ दांतका आनाः--बालक जब सात मासका होता है, तब उसको दांत आने

लगते हैं। उस समय उन्हें दस्त, कय, ज्वर, और खांसी हो आते हैं और दांतकी पीड़ासे निद्रा नहीं आती।

उपायः—दांत आनेकी जगह फूली हुयी मालूम हो तो उसपर मक्खन लगाना जिससे वेदना कम होगी और दांत भी धीरे २ निकल आवेंगे। धावनीके फूल, पीपलको आंवलेके रसमें पीसकर लगानेसे दांत तुरंत आते है।

८ भर आनाः—वर्षा इत्यादिकी शरदी लगनेसे और कफकी अभिवृद्धिसे यह रोग होता है। इससे कय होती है और ज्वर आता है छाती व शिरमें दर्द होता है और बालक अशक्त हो जाता है।

उपायः—अतिविषकी कली व लौंग पीलाना, अद्रककी रस शहदमें मिलाकर पीलाना एवं अडुसीका रस पीलानेसे भी लाभ होता है। अडुसीकी पत्ति छाती पर बांधकर शेक करना। गोरोचन धीसकर पीलाना इससे भी लाभ होता है।

९ लालः—बालकके मुखमेंसे लाल गीरती है जिसे उसके कपड़ेपर नहीं रहने देनी चाहिये। इससे शरदी जूकाम होनेकी संभावना है। **उपायः**—लोदर, गोरोचेन व तिलका क्वाथ बनाकर शहदके साथ पीलाना।

१० गाल पचोरियाः—यह रोग प्रायः बालकोंको होता है। यह एक प्रकारका चेपी रोग है। गालमें सूजन हो जाती है इससे थोड़ी ठंड़ी आकर ज्वर चढ आता है। कदापि उन गालके ऊपरकी ग्रन्थियोंमें दर्द होता है; किन्तु वह चारपांच दिनमें मिट जाता है।

उपायः—एक सामान्य जूलाब देना, गांठोंके ऊपर शेक करना, खुराक हलका देना, सोनागेरु पीसकर लगाना, रास्ना, सौंठ, वीजोरेका मूल, चित्रक, देवदार व अरणीका मूल इन सबको समान भागसे ले जलमें पीसकर लगाना।

११ मिट्टी खानाः—कई बालकोंको मिट्टी खानेकी आदत रहती है, बालकोंकी उससे खूब सम्हाल रखनी चाहिये। इस आदतके पड़नेका कारण माताकी बेपरवाही है इस आदतके कारण बालकका हाथ पैर पतले होकर पेट बढजाता है। शरीर गलता जाता है और उससे समयपर बालक मर भी जाता है इसलिये मिट्टी खानेसे बालकोंको सम्हालना चाहिये।

उपायः—सौंफ, गंधक, इलायची, बोदार, इनका चूर्ण दोवाल माताके दुध किम्वा गौके दूधके साथ मिलाकर पीलाना; जिससे जूलाब लगकर पेटका बिगाड़ निकल जायगा।

१२ पेटमें भार रहनाः—बालक या उसकी माता खाने पीनेमें सम्हाल न

रक्खे तो यह रोग होता है। भारी पदार्थ खानेसे उसका पाचन नहीं होकर पेटमें दर्द होता है।

उपायः—एरंडीके तेलका किम्वा अमलतासके गुड़का जूलाब देना जिससे बिगाड़ निकल जायगा। यव किम्वा एरंडीकी खीर पेटके ऊपर लगानी; चीरायता सुवर्ण-मुखीकी चाह करके गुड़के साथ पीनी जिससे भी पेट हलका हो जायगा।

१३ अण्डवृद्धिः—अण्डवृद्धि विशेष करके वायुसे होती है। इस रोगमें पेडु और वृषणके भीतर दरद होता है समय पर वृषण बड़े होते हैं।

उपायः—शेशगुंदर, सुवा, शींगरोटीके मूल, मरडेशींग, वायवडींग, इन्द्रजव, कांकच, एरंडी इन सबको समान भागसे लेकर चूर्ण बनाना और उसमेंसे दो आनी भार ठंडे पानीके साथ देना।

१४ खुजली व लुखसः—यह दो प्रकारकी होती है। एक प्रकारकी फुन्सिके विना शरीरमें चेल आती है। दूसरी प्रकारकी खुजलीमें प्रथम सफेद व पीछे पीली फुन्सियां होती हैं जिनमेंसे पीप निकलता है।

उपायः—प्रथम एक जूलाब देना। गंधक तेलमें मिलाकर लगाना, चंदनका तेल कपुर व नीम्बूका रस समान भागसे ले मिलाकर लगाना। मजीठ व सक्कर दो २ पैसे भर, स्वर्णमुखी व जीरा एक २ पैसे भर, इन सबका चूर्ण बनाकर सुबह संध्या गरम जलके साथ एक २ तोला सात दिन तक लेनेसे सब प्रकारके चमड़ीके रोग मिटते है। बालकको उसकी उमरके प्रमाणसे देना। बावची तो. २, गंधक तो १।, संचल तो. १।, इन तीनोंको महीन पीसकर कपड़छाण करना और गौके ताजे घृतमें मिलाकर जहां खुजली हो वहां मलकर लगाना जिससे वह तुरंत मिट जायगी।

१५ गुल्म-पेटदुखनाः—वायु, गरमी किम्वा शरदीसे पेटमें दरद होता है। यदि वह शरदीसे होता है तो खट्टी डकार आती है, खाया हुआ तुरंत नहीं पचता।

उपायः—चनीकबाब, अकलकरा, सौंठ, मीरच, पीपल, इन सबको समान भागसे ले कूटकर महीन चूर्ण बनाना। उसे प्रतिदिन शहदके साथ मिलाकर चटानेसे लाभ होगा। यदि गरमीसे होता है तो खाये पदार्थका पाचन हो जाता है; किन्तु गरमीके जोरसे भरी हुयी डकार आती है और तृषा लगती है। वांसकपुर, बेरके मींज, इलायची, सौंठ, केसर, कपुर, कस्तुरी, इन सबको समान भागसे ले, महीन पीसकर उसमें तीनभाग सक्कर मिलाकर प्रतिदीन सुबहमें थोडा २ खाना। बदहजमीका उपाय लंघन है। यदि जायफल शहदके साथ खाया जाय तो भी कुछ लाभ होता है। सूखा हुआ नीम्बू मुखमें रखना।

१६ हिक्का—हिडकीः—वायु या शरदवायुसे हिडकी आती है **उपाय**—फिटकरीको फूला करके ४ रतिके जितना खानेसे या कुंआरके रसमें सौंठका चूर्ण मिलाकर खानेसे लाभ होता है।

१७ मसेः—मुखपर, शिरपर किम्वा गालके ऊपर होते हैं। ये बहुत खराब मालूम होते हैं।

उपायः—पापडीया खारा आगपर धरना, जब फूल कर सफेद हो जाय तब निकाल लेना और उसके समान कलिचुना मिलाकर उसमें तीसरा भाग प्याज डाल पीस कर मसेके ऊपर लगाना, जिससे वह मिट जायगा। नीमक व कूएके जलको मिलाकर लगानेसे मसा मिटता है। सरका लगानेसे और घौडेका बाल खीच कर बांध देनेसे भी मसा गिर जाता है।

१८ ज्वरः-यह रोग शरद, वसंत व ग्रीष्म ऋतुमें विशेष करके होता है। उसका कारण यह है कि वर्षा ऋतुमें इकट्ठा हुआ पित्त शरद ऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे गल कर ज्वर उत्पन्न करता है। वैसेही हेमंत ऋतुमें इकट्ठा हुआ कफ वसंत ऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे गल कर ज्वरको उत्पन्न करता है। ऐसा इन ऋतुओंका स्वभाव है। जिस ऋतुमें ज्वर आता है उस ऋतुमें पीनेकी बहुत कुछ सम्हाल रखनी चाहिये। यह रोग खाने पीनेकी ठीक सम्हाल न रखनेसे वात, पित्त व कफ ये तीन दोष कुपित हो कर ज्वरको उत्पन्न करते हैं। ये पित्तज्वर, वातज्वर, कफज्वर प्रभृति नावोंसे परिचित है। रुक्ष, लघु, और शीत पदार्थोंका सेवन, गायन, वमन, विरेचन, उद्वेग, शोक, जागरण इत्यादिसे ज्वर उत्पन्न होता है। नख, नेत्र, मूत्र, दस्त व चमडी ये रक्त होते हैं, चक्कर आता है, संधि, कमर, व पीठ इत्यादिमें दरद होता है, मुख स्वाद रहित बनता है, कंठमें शोष होता है, खांसी होती है, अरुचि होती है और शिरमें दरद होता है।

उपायः—देवदार, गिलोय, सौंठ, पीपरीमूल, इनका क्वाथ पीना। चीरायता, कट्ट, लौंग, पीपल तुलसी इनका क्वाथ पीनेसे भी लाभ होता है।

पित्तज्वर—खट्टा, खारा गरम, तीता, इत्यादि खाना। अजीर्णमें भोजन करना इत्यादि कारणोंसे पित्त कुपित होता है। इससे मुख तीता लगता है। नासिका मुख, कंठ, ओष्ठ व तालु पक जाते है। तृषा, मूर्छा, भ्रम, पित्तकी कय, दस्त, अरुचि और प्रस्वेद होता है। नख, नेत्र, दस्त व चमड़ी लाल रंगकी होती है तथा ठंडे पदार्थोंके ऊपर रुचि होती है ये सब पित्तज्वरके चिन्ह है।

उपाय—नीम्बकी अंतर छाल, गिलोय, द्राक्ष, मुलेठी कट्ट व नागरमोथ इनका

क्वाथ करके पीना किम्वा नीमकी आंतरछालको या नीमकी गिलोयको पीसकर तो. २, संध्या सुबह पीनेसे लाभ होता है । चौलेकी भाजीसे कय, तृषा व दाह शान्त होते हैं।

कफज्वर—मधुर, भारी, ठंडा, खट्टा, खारा पदार्थ खाना, दिनकी निद्रा और हर्ष इत्यादि कारणोंसे कफज्वर उत्पन्न होता है। यह विशेष करके वसंत ऋतुमें उत्पन्न होता है। शरीरका भारी होना, मुखमें मिठापन होना, कय होना, जठराग्निका मन्द पड़ना, उडकार आना, निद्रा बढना, आलस्य आना, श्वास चढना और मुख, नख, मूत्र, दस्त व चमड़ीका सफेद होना, और गरम पदार्थोंके ऊपर प्रीतिका होना ऐसे चिन्ह होते हैं।

उपाय—गिलोय, पीपल, सौंठ, और भोरींगनी अडुसीकी पत्ति, और कीसमस इनको समान ले उसका क्वाथ करके पीना। नागरमोथ पीलानेसे प्रस्वेद आकर ज्वर हलका पड़ता है और होशियारी आती है।

शीतज्वरः—इस ज्वरमें मस्तक पीड़ा, संधियोंमें वेदना, मुखका आना, कय, तृषा, अरुचि, निद्राका नाश, प्रस्वेद आना, शरीरमें सामान्य दाह, शरदी मालूम होना, खांसी आना, ये सब उसके चिन्ह है। प्रतिदिन ज्वर आना, एक २ दिन रहकर ज्वरका आना, दो दिन छोड़कर तीसरे दिन ज्वरका आना, तीन दिन छोड़कर चौथे दिन ज्वरका आना ये सब उसीके भेद हैं।

उपायः—ठंडी मालूम हो तब प्रथम गरम कपड़े पहिनना, गरम जल बोटलमें भरकर शेक करना, गरम चाह पीना, ताजी हवा कमरेमें आने देना, अतिविष, चीरायता, नागरमोथ, इनको समान भाग ले क्वाथ कर ज्वर न हो तब पीलाना। ज्वर न हो तब क्वीनाईन देना भी उत्तम है। कांकच व काली मीरच, इनको समान भागसे ले चूर्ण करके खीलानेसे सब प्रकारके शीतज्वर नष्ट होते है। नींबकी आंतर छालको उकालकर २॥ से ५ तोले तक ज्वर न हो तब तीन २ घंटे पर देना इससे ज्वर उतर जाता है।

विषमज्वरः—इसमें सब प्रकारके ज्वरोंके कई लक्षण रहते हैं। वह वार २ आता है इसलिये ऐसे ज्वरमें बहुत कुछ सम्हाल रखनी चाहिये।

उपायः—दस्त साफ न आता हो तो आंवला, हरड़े व धमासेका क्वाथ पीलाना, चीरायता, कडु, नागरमोथ, खरसलिया, पटोल, नींबकी आंतरछाल, कालीद्राक्ष, गिलोय, और अमलतास इन सबका क्वाथ बनाकर पीनेसे भी अच्छा लाभ होता है।

सूचनाः—जिन २ ऋतुओंमें ज्वर आता है उन २ ऋतुओंमें खाने पीनेकी सम्हाल रखनी चाहिये। ज्वर आनेके चिन्ह मालूम हो तो प्रथम लंघन करना। लंघन

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद
सम्पादन में वैदिक संदे
संन्यासी—हरदुआगं
श्री वीरेन्द्र के स
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला।
जलविद सखा—(ज
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेज
सम्पादिका थीं। पत्रि
कु. शकुन्तला देवी स्ना
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार श्री
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पाद
साढ़े तीन रुपये थे।
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमे
यद्यपि आर्य प्रति
थी, किन्तु उसके मुखप
आरम्भ हुआ। साप्ता
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूता
रियासतें) तक विस्तृत
आर्यसमाज की धार्मिक,
बना।

यह ज्वरको रोकनेवाली है, लंघनके पश्चात् मुंगका यूष–ओसामन व चावल खाना और पीछे भी हल्का व सादा खुराक खाना चाहिये।

१९ शूल या चूकः–शरदी व वायुसे और पेटमें बिगाड़ होनेसे शूल या चूंक आती हैं। **उपाय**–हरड़ बैडे आंबले, कड़ु, अमलतास, इनका क्वाथ पीलाना किम्वा हीमज, अतीष, हींग, संचल, व इन्द्रजव इनको समान भागसे ले महीन चूर्ण कर उसमेंसे तो. ०॥ गरम जलके साथ खानेसे वायु किम्वा शूल मिट जायगा।

२० हैजाः–यह रोग अत्यन्त दुष्ट है। यह दो प्रकारसे हुमला करता है। प्रथम तो केवल सामान्य दस्त होते हैं। यदि उन्हें बंद न किया जाय तो वह अधिक जोर करता है। दस्त गंध रहित व चावलके धोनके समान होते हैं। तकी कबजियत नहीं होती, दरद नहीं होता, आंत खींचते नहीं, सख्त गुटली चढती हैं, शक्ति नष्ट होती है, सम्पूर्ण शरीर, जिह्वा एवं श्वास ठंडा हो जाता है। नख आसमानी रंगके हो जाते हैं। प्यास अधिक लगती हैं। कय वार २ होती है। नेत्रमें गढे पड़ जाते हैं और आवाज बदल जाती है। दूसरे प्रकारके हैजेमें किसी प्रकारके चिन्ह नहीं होते। कय, दस्त किम्वा गुटली नहीं चढती। रोगीको खुद यह नहीं मालूम होता कि मुझे यह रोग हुआ है। वह इतनाही कहता ही कि मुझे निर्बलता है। यह निर्बलता बढकर शरीर ठंडा हो जाता है और रोगी मर जाता है। इस रोगमें जिसके पेटमें दरद नहीं होता वह विशेष करके मर जाता है; किन्तु पेटमें दरद होकर दरद होते हैं यह स्थिति बचनेकी है। दस्त होने परसे भय नहीं रखना बल्कि जिन्हें दस्त नहीं होते या बहुत कम होते हैं उनके लिये भय रखना चाहिये।

उपायः–सूखी लाल मीरच व नीमक उकालकर उसका पानी आधे घंटेपर थोडा पीलाना, पीछे १० गेहूं जितने काले सूखे धन्तुरेके फूलका चूर्ण, काली मीरच, शहद, इन तीनोंको मिलाकर दस्त बंद होने तक देना। जहरकुचलेको उकालकर या घीसकर पीलाना। रोगीकी शय्याके पास कपुर जलाना। तमाखुकी सीगारेटकी माफिक कपुरकी सीगारेट बनाकर पीना। हाथ पैरमें शेक करना, गुटली चढे वहां हींगकी पट्टी बांधना, किम्वा राई पीसकर प्लास्टर मारना, उसे शय्यामें पड़े रहने देना, यदी शरीर ठंडा हो तो उसे गरम बनानेके उपाय करना, आकके मूलकी छालका चूर्ण और कालीमीरचका चूर्ण समान भागसे मिलाकर अद्रकके रसमें या सौंठके पानीमें मिलाकर चनेकी बराबर गोली बनाना, उसमेंसे एकसे दो गोली आधे २ घंटे पर देनी, कय करके निकाल दे तो तुरंत दूसरी देना, और कय बंद हो वहांतक

देते रहना, उस गोलीके ऊपर दुसरी दवा नहीं देनी; क्योंकि उसका गुण नहीं मालूम होता। प्यास मालूम हो तो धनिया तथा खसको उकालकर ठंडी बनाके देते रहना किम्वा लौंग, जायफल या नागरमोथका पानी उकाला हुआ पीलाना। चाह पीलाना, कोलनवाटरमें कपुर मिलाकर पीलानेसे भी लाभ होता है। जहरी नलीयरकी गरीका चूर्ण दो अन्नी भर कूटकर जलके साथ देना। कय होकर निकल जाय तो फिर देना जिससें प्यास शांत होगी।

सूचना--इस रोगवालेको अफीमवाली कोई दवा नहीं देनी चाहिये।

२१ नेत्र रोग--इस रोगमें नेत्र रक्त होते हैं, जलन होती है, सूजन होती है, पानी गिरता है और वेदना होती है; यह रोग विशेष करके गरमीसे होता है।

उपाय--प्रथम हल्का जूलाब देना, नेत्रके ऊपर छाया रखनी, कुछ दिन तक घरके बाहर नहीं निकलना, नेत्रके ऊपर गरम जल किम्वा खसखसके फलको उकालकर उस पानीसे शेक करना, फिटकरी ५ गेहुंके जितनी फूलाकर पानी तो. २॥ में मिलाकर उस जलसे नेत्र धोना, रसवंती, नींबुका रस, हलदी और अफीम इनको पीसकर लोहेकी कड़छीमें गरम कर पोपचोंके ऊपर लेप करना। नींबुकी चीरके ऊपर हलदी, फिटकरी और अफीम डालकर गरम करना; पीछे सफेद कपडेमें पुटली करना और उससे शेक करना। सरगवेकी पतिका रस शहदमें मिलाकर नेत्रके आसपास लेप करना। फूलाई हुई फिटकरीको पानीके साथ मिलाकर उसकी बुंदें नेत्रमें डालनी। वैसे ही नीलेथोथेको फूलाकर गुलाबजलमें मीलाकर नेत्रमें बुंदें डालनी। खील हुए हो तो उसके ऊपर नीलाथोथा घीसना। सूजन हो तो अफीम व फीटकरी समान भागसे मीलाकर नेत्रके आसपास लगाना, नेत्रमें झांख हो तो नीलाथोथा १५ गेहुं जितना, कपुर ४ गेहुं जितना, गरमजल तो ६ के साथ मिलाकर सुबह संध्या नेत्र धोना।

२२ रतौंध--जो दिनको अच्छी तरहसे देखते हैं किन्तु रातको नहीं देख सकते उनके लिये निम्न उपाय करना चाहिये।

उपाय--डोडीकी पत्ति जलमें बाफकर सुबहमें खाना तथा रीठेके बीज जलमें घीसकर लगाना।

२३ मुख आजाना--गरमीसे मुख आजाता है। जिव्हा, तालु, व गाल पककर रक्त हो जाते हैं या चांदे पड़ते हैं। उसके ऊपर महीन शफेद रंगकी थर जम जाती है व दाग पड़ते हैं। यह रोग बड़ोंकी अपेक्षा बालकोंको अधिक होता है।

उपाय--टंकनखार फूलाकर शहदमें मिलाकर पींछीके द्वारा संध्या सुबह

लगाना। फूलाया हुआ टंकनखार कथ्थेके उकालेमें मीलाकर कोगला करना। चनकबाब, इलायची और कथ्थेके चूर्ण लगाकर लाला गिराना।

२४ दांतका दरद--दांतमें खड्डा होनेसे और अजीर्ण इत्यादिके कारणसे यह दरद होता है।

उपाय--दांतमें पोल हो और दरद होता हो तो दांतको साफ करके कपुर तथा अफीम मिलाकर उसमें लगाना। लौंग किम्वा पिपरमेंटके तेलका फोआ दांतमें रखना। दांतके सड़नेसे पीड़ा होती हो तो अकलकरेके पुष्पको चीरकर दांतके ऊपर दवानेसे दरद--पीड़ा कम हो जायगी। सौंठ, फिटकरी, और अकलकरा इन तीनोंको समान भागसे कूटकर दांतमें भरकर लाला गीराना। रीठेके बीजको कूटकर दांतपर रखकर लाला गीराना इससे भी लाभ होगा।

मंजन--इस मंजनसे दांतके सब प्रकारके दरद मिटकर दांत दृढ होते हैं और मुखकी दुर्गन्धी नष्ट होती है। कथ्था तो. २, माया तो. १ बबुरकी छाल तो. २ बोरसलीकी छाल तो. ४, इन सबका महीन चूर्ण करके लगानेसे लाभ होता है।

जूकाम--यह रोग शरदी किम्वा गरमीसे होता है। शरदीसे नासिकामें सूजन होता है, उसमेंसे पानी गिरता है और वह पानी गलेमें उतर कर खांसी होती है। जूकाम जब शरदीसे होता है तब घट्ट पानी कठिनतासे निकलता है और गरमीसे होता है तब गरम व पतला पानी निकलता है।

उपाय--तमाखु सुंघना, खसखस, धावनीके फूल और सौंठ इनका पानीमें क्वाथ करके तीनदिन तक पीना, जल इत्यादि प्रवाही पदार्थ कम पीना और मुखमें सौंठ लौंग चवाते रहनेसे भी जूकाम बंद होता है। गरमीसे जूकाम हुआ होतो छाछ, सरका व यबका पीसान मिलाकर खाना। कायफल, नागरमोथ, कड़ु, काकराशींगी व पुष्करमूल इनका चूर्ण शहदके साथ खाना और नासिकाके ऊपर अफीममें लगाना।

बालकोंकी खांसी--प्रथम जूकाम होकर बालकोंको खांसी होती है।

उपाय--फिटकरी फुलाकर पीछे १० गेहूंके जितनी पानीके साथ मिलाकर गलेमें पीचकारी मारनी। निबर्लता होतो क्वीनाइन, लोहेका अर्क व कॉडलीवर ओइल देना। केवल कोडलीवर ओइल भी लाभ करता है। जूलाबके लिये स्वर्णमुखीकी चाह किम्वा एरंडीका तेल देना, खूराक दूध या कांजी देना।

२७ आंचकी--बालकका शरीर वारंवार खीच जाता है, उसे आंचकी कहते है। बालकोंको जब दांत आते हैं तब यह हो आती है; वैसेही अन्य रोगोंमें भी

होती है। बड़ोंको भी कभी २ आंचकी आजाती है। यह रोग विशेष करके मगजमेंसे उत्पन्न होता है; इस लिये मगजके ऊपर ठंडे पानीसे भीगोया हुआ कपड़ा रखना।

उपाय–टंकनखारको फूला कर १ वाल लेना उसको स्त्रीके दूधके साथ मिला कर देना। गौरोचन घीसकर पीलाना। प्रसव होनेके पश्चात् स्त्रीको आंचकी आवे तो कपुर वाल १ एरंडीका तेल तो. २॥ में मिला कर गरम पानीके साथ पीलानेसे लाभ होगा। प्याजका रस पीनेसे भी लाभ होता है। गरम किये हुए जलमें छाती तक बैठनेसे भी लाभ होता है। जल सहन हो सके वैसा गरम रखना।

२८ **अर्ष–मसे**–यह गुदाकी किनारीके ऊपर होता है जिससे दस्त उतरनेके समय पीड़ा होती है। किसी समय उसमेंसे खून भी निकलता है।

उपाय–अफीम तो. ०॥, मांयफलका चूर्ण तो. २, मक्खन तो. २ में मिला कर लगाना। काली मीरच तो. १, पीपल तो. २, सौंठ तो. ३, चित्रा तो. ४, सुरण तो. १६, इन सबको पीस कर उसकी गुड़में गोली बनाकर खानेसे यह रोग मिटता है। नीमकका पानी लगानेसे मूलमेंसे कट जाते हैं। छाछ यह अर्षकी उत्तम औषधि है। चूना, टंकनखार, नीलाथोथा, इन सबको समान भागसे लेकर तीन दिन तक नीम्बूके रसमें भीगोकर मसेके ऊपर लगानेसे लाभ होता है।

२९ **कफ**–कफ छाती व गलेको रुंधन करता है। खांसी आकर छातीमेंसे पीला श्लेष्म निकलता है।

उपाय–अडुसीका रस शहदके साथ देना। छातीके ऊपर शेक करना, चाह पीना, रातको गरम जलमें नीमक डालकर चाहके समान सौनेके समय पीना इन उपायोंसे कफमें लाभ होता है।

३० **कानकी पीड़ा**–वायु, गरमी, रक्तविकार व निर्बलतासे कानका दरद होता है। कोई जीवजन्तुके कानमें जानेसे भी यह दरद होता है।

उपाय–वायुसे कानमें दरद होता हो तो स्त्रीका दूध किम्वा तेल गरम कर उसकी बुंदें कानमें डालनी। रक्तविकारसे दरद होता हो तो नस खुलवाकर तेलमें समुद्रफीन गरम कर उसकी बुंदें डालनी। कीड़े पड़े हो तो एळीयाको गौके दूधमें गरम कर कानमें डालनेसे कीड़े मर जायंगे। पीप निकलता हो तो टंकनखार पीसकर कानमें डालना और ऊपरसे नीम्बूके रसकी बुंदें डालनी। कान बहिरे हों तो आककी पत्तिको आगके ऊपर गरम कर उसके रसकी बुंदे १५ दिन तक डालनेसे लाभ

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगं
श्री वीरेन्द्र के स
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला।
जलविद सखा—(ज
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेज
सम्पादिका थीं। पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नाि
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार श्री
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पाद
साड़े तीन रुपये थे।
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमे
यद्यपि आर्य प्रति
थी, किन्तु उसके मुखप
आरम्भ हुआ। साप्ता
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूतान
रियासतें) तक विस्तृत
आर्यसमाज की धार्मिक,
बना।

होगा। ऊंटके मूत्रकी बुंदें भी अच्छा लाभ करती है; इस लिये सोनेके समय उसे कानमें डालनी।

३१ दम—चलते फिरते श्वास चढ आता है। छाती और गलेमें कफ जमा होता है। समयपर चीकने बड़खे निकलते हैं। यदि तुरंत उपाय न किया जाय तो रोगीका शरीर निर्बल हो जाता है। वर्षा व शीतऋतुमें उसका जोर बढता है। जब वह उठता है तब श्वास लेना कठिन होता है।

उपाय—शहदके साथ एलीया चाटनेसे लाभ होता है। नागरमोथ, खेर, कालीमीरच, पीपल, वायवडींग, चित्रा, और सौंठ इस सबको समान भागसे लेकर महीन चूर्ण बनाना। प्रतिदिन सुबह तो. ०॥ खानेसे श्वास, पाण्डुरोग, पित्तकमली, शूल व वायुका गोला ये सब मिटते हैं।

३२ खील—युवकोंको मुखके ऊपर होते हैं विशेष करके गरमीसे होते है।

उपाय—मठका पीसान सीरकेमें भीगोकर मुखपर लगाना किम्वा द्राक्षके वृक्षको लकड़ीको जलाकर उसकी भस्म सीरकेमें मिलाकर लगाना। मांयफलको पीसकर लगानेसे भी खील—तारुणपीटीका मिटते हैं।

३३ आम—यह रोग विशेष करके वर्षा ऋतुकी शरदी व वायुसे होता है। आममें दस्त साफ नहीं आता व दस्त के साथ खून व चीकना पीपकासा पदार्थ भी कभी भी निकलता है।

उपाय—अडुसीकी छालका चूर्ण तो. ०॥ व सक्कर तो. ०॥ इन दोनोंको दूधके साथ पीलाना। खून व आम—वातसे आम हुआ हो तो पेटमें चूक आती है। दस्तके साथ खून व आम गिरता है। थोडी २ देरमें पेटमें चूक आती है और दस्तके समय दरद होता है। यदि दस्त कठिन हो तो ज्वर भी आजाता है। जिव्हा सफेद हो जाती है, पेडुमें दरद होता है, दस्त साफ नहीं होता, थोड़ेसे आम व खूनकी बुंदें पड़ती है।

सौंठ व सौंप एक २ तोला कूटकर पावशेर पानीमें उकालना और नवटांक पानी रहे तब उतारकर उसमें विलायती स्वच्छ एरंडीका तेल तो २॥ डालकर पीलाना; जिससे दस्त साफ होगा। यदि दस्त ठीक न हो तो एकदिन छोड़कर दुसरे दिन उसी प्रकार पीना जिससे दोष निकल जायगा। पीछे छोटी हर्रको घृतमें भुंजकर उसमें थोड़ी विना भुंजी हर्र डालकर चूर्ण बनाना। उसमें उतना ही चीनी मिलाकर खानेसे सब प्रकारके आम नष्ट होते हैं। शंखजीरेको चीनीके साथ मिला-

कर तीन २ घंटेमें खानेसे भी लाभ होता है। सौंठ व सौंपको एरंडीका तेल लगाकर भुंजना फिर उन्हें महीन कूटकर उसके साथ सक्कर मिलाना, पीछे आधा २ तोला खानेसे सब प्रकारके आम मिटते हैं। खूराक हल्का लेना।

३४ **शूल-चूंक व अजीर्णः**—यह वायु तथा ठंडी हवासे होता है; अजीर्णकी डकार आती है और दस्त होते हैं, तथा पेट भारी जैसा मालूम होता है।

उपायः—फुदीना, आजमाइन, व इलायचीको समान भागसे लेकर उससे आधा हिस्सा काली मीरच, व सौंठ लेना, इन सबका चूर्ण शहदके साथ चाटना। लौंग, सौंठ व आजमाईन इन तीनोंकी गोली करके खानेसे भी अजीर्ण मिटता है।

३५ **कृमिरोगः**—बालकके पेटमें कृमि बढनेसे पेटमें दरद होता है, क्षुधा नष्ट होती है, फिर भी वह खानेको मांगा करता है। प्यास लगती है, नाक मला करता है, मुखमें दुर्गंधि आती है, खट्टी कय होती है, बचेनी रहती है, निद्रा नहीं आती, सफरेमें कुछ काटता हो ऐसा मालूम होता है, दस्त पतला होता है, किसी समय कृमि निकलते हैं, ज्वर आता है, खीचान होती है।

उपायः—एकसे दो वर्षके बालकको सेंटोनको ०॥ से १ गेहूं भार जितना सक्करके हलुएमें मिलाकर खीलाना। इससे अधिक दस्त न होकर कृमि गिर जांयगे। यह पीलानेके पश्चात् चार घंटे तक कृमि न निकले तो चाहके साथ एरंडीका तेल पीलाना जिससे खुलासेके साथ दस्त आकर उसके साथ २ कृमि निकल जांयगे। इस प्रकार दोतीन बार एक २ दिन छोड़कर करना। कपीला पीसकर दहींमें पीलाना, इससे भी कृमि निकल जांयगे या मर जांयगे। वायवडींग, व कपीला समान भागसे लेना और उससे आधी सौंठ लेकर उसका क्वाथ करके पीलानेसे कृमि नष्ट होंगे।

३६ **सूजनः**—गरमी, निर्बलता किम्वा रक्तविकारसे यह होता है। नवीन बांस, सेंधानमक और हलदी इनको घीसकर लगानेसे अच्छा हो जाता है। जहरी कचुरा, सुरोंजन, सौंठ, साटोड़ी, आंबाहलदी, और एरंडीकी जड़ इन सबको गोमूत्रमें पीस गरम कर लगानेसे सूजन उतर जाता हैं।

३७ **सर्पदंशः**—सर्पदंशके होते ही उस दंशसे तीन चार अंगुलके दूरपर एक डौरी किम्वा कपड़ेसे दृढ बांध लेना। उसके ऊपर दोतीन अंगुलपर दूसरा बंद बांधना, पीछे उस दंशके ऊपर चीरा करना; वैसेही दंशके आसपासमें काटकर खून निकाल देना। फिर तुरंत देवताका अंगारा लेकर दबाना या लोहा गरम कर दंशवाली जगहको जलाना। चीरा करके कास्टीक लगाना या नीमक लगाना। रीठा और पापडीया

खारा लेकर उसका पानी बनाना और उस पानीमें कपड़ा भीगोकर दंशके ऊपर रखना एवं ऊपरसे पानी डालते रहना। उस पानीको नेत्रमें भी डालना चाहिये। जहर चढ कर निंद आने लगे तो काली मरिच व घृत पीलाना। तमाखू, नीलाथोथा, या मांयफल गरम पानीके साथ पीलाकर कय कराना। गौका दूध पीलाना, बीजोरेके बीज एकरुपैये भर लेकर गरमा गरम पानीमें भीगोकर पीलाना इससे जूलाब होगा। इन्द्रवरणोके मूल एक रुपैये भर पीलानेसे दस्त व कय होंगे। फिर वच, आककी जड, सेंधानमक, इनको समान भागसे ले महीन पीसकर वासी पानीमें पीना, इससे लाभ होगा; किन्तु उसके उपर गौके दुधका पीना अच्छा है। आककी कोमल पत्तिको आकके दूधमें मिलाकर गोलियें बनानी और जहरके उतर जाने पर्यंत खीलानी; इससे बहुत कुछ लाभ होगा। रीठेके बीजको पानके साथ देना। नेपालेके बीजको पीलानेसे कय होकर जहर उतर जाता है। इस प्रकार शीघ्र उपाय करनेसे जहर उतर जाता है।

३८ **बिच्छु**:—इसके जहरकी वेदना अधिक होती है। बीच्छू काटते ही उसके कांटेको सुईके द्वारा निकाल देना या वहांपर काटकर जहर थुंक देना; जिससे जहर उतर जायगा। काटनेवालेके मुखमें चांदी नहीं होनी चाहिये व उसने पीछेसे घिका कोगला करदेना चाहिये। दंशके ऊपर मक्खन घीसना। दीयासलाईके अग्र भागको घीसकर लगाना और ऊपरसे शेक करना। लसुनकी कली पीसकर लगाना। थोहरका दूध लगाना अपामार्गकी पत्तिका रस दंशके ऊपर और जहांतक जहर चढा हो वहांतक लगाना। अमोनीयाकी शीशी सुंघाना। दंशके उपर प्याजको कूटकर बांधना। तीजाबमें थोड़ा जल डाल उसमें सली डालकर उसकी बुंद दंशके ऊपर डालनेसे भी बिच्छू उतर जाता है। शिरके बाल पीस सरसौं और पुराने गुड़का धुप देना। नीमकी गौंद पीस घृतमें मिलाकर धुंआ देना।

३९ **मूत्रकृच्छ्र**—यह रोग शरदी किम्वा गरमी इत्यादि कारणोंसे होता है। इस रोगमें मूत्र बंद हो जाता है; जिससे रोगी बहुत ही कष्ट पाता है।

उपाय—इन्द्रवरणेकी जड़को पीसकर पीलानेसे पीसाब व दस्तका खुलासा होगा। कलथीको पानीमें उकालकर पीलानेसे लाभ होता है। प्याज, गोखरु, कपासके बीज, काकड़ीके बीज, इन सबको समान भागसे पानीमें उकालकर सक्कर मिलाकर पीलाना; जिससे एक प्रहरमें पीशाब छूटेगी। पेडुके ऊपर शेवाल रखना, टेसूके फूल बाफ कर बांधना, मुलतानी मिट्टी घीस कर पेडुके ऊपरके भागमें लेप करना। कपुर किम्वा सौरा पीशाब मार्गमें डालनेसे पीशाब छूटती है। चनकबाब, स्वर्णमुखी, अलसी, पाषाणभेद, और सौरा इनका चूर्ण देनेसे भी लाभ होता है।

४० मुखमेंसे खूनका गिरना—यह गरमी इत्यादिसे होता है।

उपाय—अडुसी तो. १ और शहद तो. १० इन दोनोंको साथ मिलाकर प्रतिदिन सुबह चाटनेसे खूनका गीरना बंद होगा।

४१ चीत्री:—हाथ, पैर, छाती, मुख प्रभृति स्थानों पर सफेद जैसे दाग पड़ते हैं जो बहुत ही खराब मालूम होते हैं।

उपाय—देवदारको नीम्बूमें घीसकर लगानेसे लाभ होता है। तीलके पुष्पको लगानेसे भी लाभ होता है। बावची नीम्बूके रसमें पीसकर लगाना भी अच्छा है।

४२ पाण्डुरोग या पित्तकमली:—कलेजेमें पित्त एकत्र होनेसे, चिन्तासे, ज्वरसे, शोकसे व मगजके रोगसे यह रोग होता है। नेत्र, मुख व नख तथा सम्पूर्ण शरीरका पीला होजाना यह इस रोगका लक्षण है।

उपाय—खेर, पीपल, चीत्रा, नरककचुरा, सौंठ, वायवडींग, इन सबको समान लेकर महीन चूर्ण वनाना, उसमें लुहारके वहांपर लोहेका जो काट जमा होता है उसका महीन चूर्ण कर दूसरी औषधिसे दोगुना मिलाकर प्रतिदिन सुबह खानेसे पित्तकमली मिटती है। विकलेकी पत्ति खानेसे भी लाभ होता है।

४३ शिर दुःखना—वात, पित्त, व शरदीसे प्रायः शिर दुःखता है। किसी समय अन्य रोगके कारणसे भी शिरमें दरद होता है।

उपाय—सौंठ व कनेर समान भागसे लेकर पीसकर तीन गुने गौके घृतमें मिलाकर सुंघनेसे सब प्रकारकी शिरकी वेदना मिटजाती है। यदि वातके कारण शिरमें दरद होता हो तो एरंड़ीकी जड़ छांयामें सूखा पानीमें घीसकर शिरपर तथा पैरके तलियेमें लगानेसे लाभ होता है। यदि गरमीसे दुःखता हो तो चंदन घीसकर लगानेसे लाभ होता है।

४४ खांसी—प्रथम जूकाम होकर छातीमें कफ जमता है इससे या तेल, मीरच, व खोरी वस्तुके खानेसे, गरमी और शरदीसे, तथा छातीके बीगाड़से खांसी होती है। श्वास लेनेकी नली व फेफसेंके पडमें सूजन व आवाज होनेसे, गलेको शरदी लगनेसे, मिट्टी व अन्य रजकण श्वासमें जानेसे भी खांसी होती है।

उपाय—काकराशींगी, द्राक्ष, पीपल, कायफल, व सौंठको समान भागसे लेकर उसका चूर्ण तो. ०। शहदके साथ लेनेसे खांसी, ज्वर, दम व ससनी मिटते हैं। काकराशींगी, अतीष व पीपल इनको समान भागसे ले चूर्णकर शहदमें चाटनेसे बालककी खांसी मिटती है। सक्कर तो. १६, बांसकपुर तो. ८, पीपल तो. ४, इलायची तो. २ और दालचीनी तो. १, इनका चूर्ण करना, इस चूर्णको

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगं
श्री वीरेन्द्र के स
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला।
जलविद सखा—(ज
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेज
सम्पादिका थीं। पत्रि
कु. शकुन्तला देवी स्ना
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार श्री
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पाद
साढ़े तीन रुपये थे।
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमे
यद्यपि आर्य प्रति
थी, किन्तु उसके मुखप
आरम्भ हुआ। साप्ता
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूता
रियासतें) तक विस्तृत
आर्यसमाज की धार्मिक,
बना।

सीतोपलादि चूर्ण कहते हैं। इसे शहद व घृतके साथ मिलाकर खानेसे सब प्रकारकी खांसी मिटती है।

४५ फोडा—रक्तविकारसे, पित्तसे व शरीरसे गंदे रहनेसे शरीरपर फौड़े फून्सियें होती हैं। फौड़े पकनेपर उसमेंसे पीप निकलती है और घाव पड़ते हैं।

उपाय—साबुनके साथ चीनी मिला उसकी पट्टी लगाना। छोटे बालकोंको फून्सियें होती हों तो कोडलीवरआईल दूधके साथ पीलाना, एरंडीके तेलका जूलाब देना। गरम पानी व साबुनसे फौड़ा धोकर साफ करना, और ऊपरसे आंवला, आम, बबुर, आक, इनकी लकड़ी जलाकर भस्मकर नीलाथोथा फूलाकर उसमें मिला गौके धोएहुए घृतमें मिलाकर लगाना, या फौआ दबाना। रेवंचीकी लकड़ीको घीसकर लगानेसे भी लाभ होता है। धनीया, द्राक्ष, सक्कर, आंवला, इनको भीगोकर पीना। कोई गरम वस्तु नहीं खानी, जिससे फौड़े तुरन्त मिट जांयगे।

४६ दाद—शरीरके भीतरके बिगाड़से, गरमीसे और बाहर मेल इत्यादि जमा होनेसे दाद होती है, इससे खूजली आती है। यदि उपाय न किया जाय तो वह फैल जाती है।

उपाय—सरकेमें कपड़ा भीगोकर दादके ऊपर रखना; टंकनखार दो अन्नीभर २॥ तोलेभर पानीमें मिलाकर लगाना; कपुर, फिटकरी, गंधक, कत्था, इनको समान भागसे ले नीम्बूके रसमें मिलाकर लगाना मुरदाशींगीको गुलाबजलमें पीसकर लगाना। नीलेथोथेको पानीमें मिलाकर लगाना।

४७ बालदवा—नागरमोथ, काली मीरच, सौंठ, जीरा, पीपल, बेलफलका गाभ, लौंग, इन्द्रजव, अतीष, वायवडींग, इन सबको समान भागसे ले महीन पीसकर कपड़ेसे छान लेना फिर नीम्बूके रसमें गोलियें बनानी, इनमेंसे १ गोली प्रतिदिन देनेसे दूस्त साफ आ जायगा, इस बालदवाके सेवन करानेसे बालकोंके पेटका जड़ होना, कृमि, खुजली, शीलस, ज्वर इत्यादि रोग नष्ट होकर शरीर निरोगी रहता है। टंकनखार, लौंग और पीपल इनको समान भागसे लेना। टंकनखारको तीन चार वार गोबरमें धोकर स्वच्छ करना और अग्निके ऊपर रख फुलाकर पीछे लौंग और पीपसकानी भी फूलाना। इन तीनोंका चूर्ण करके शहदके साथ बालकको खीलानेसे खांसी मिट जायगी। नागरमोथ, और अतीषको समान भागसे ले महीन चूर्णकर शहदके साथ चटानेसे ज्वर तथा कय मिटते हैं।

४८ स्तनपाक—बालकके वार २ स्तनपान करनेसे स्तनके अग्र भागमें चीरें पड़ती है या चांदे पड़ते है।

उपायः—बीटड़ीके ऊपर आलीवका तेल लगा कर शेक करना। उसके ऊपर ३–४ गेहुं जितनी फिटकरीको २॥ तोला पानीमें मिला कर स्तनके ऊपर लगाना। सूजन हो तो सोनागेरु, चंदन, और सौंठ इनको समान भागसे ले महीन पीस गुलाब-जलमें लेप करना। स्तन पका हुआ हो तो ठंडी होकर ज्वर आता है, सनके आते हैं, उसका उपाय खसखसके फल पानीमें उकाल कर शेक करना। किम्वा नीमकी पत्तिको गरम कर बांधना। गुलाब जलमें कपड़ा भीगोकर रखना। अगरचंदन और रतांजली घीसकर लगानेसे भी लाभ होता है।

४९ स्तनमें दूध बढानेका उपायः—यदि स्तनमें दूध पूर्ण न आता हो तो दूध, मक्खन व मलाईके रसमें कडुए वालका चूर्ण तो. ३ मिलाकर लगाना। सुआ, गरी, बादाम, चना व पिस्ता इन सबको समान भागसे लेकर दिनमें दो वार खाना। थोड़ा सुआका चूर्ण आधाशेर दूधमें मिलाकर खाना। एलीयाकी खीर करके खानी। गिलोयकी जड़, गोखरुकी जड़, शितावरीकी जड़ ये हरएक एक २ तोला लेकर जल शेर १ में उकालकर नवटांक रहे तव उसमेंसे सुबह, संध्या आधा २ पीना, जिससे दूधकी अभिवृद्धि होगी।

५० नाकमेंसे खूनका निकलनाः—चोट लगनेसे, नस चीरानेसे, अधिक गरमीसे या रक्तकी वृद्धि होजानेसे नाकमेंसे खून पड़ता है।

उपायः—शिरपर पानीकी धारा करनी, मिट्टी भीगोकर शिरपर लगाना। अनारका रस नासिकामें डालना फिटकरी व मांयफलका चूर्ण सुंघना।

५१ जलनाः—अग्निसे शरीरका कोई भाग जलता है तब फुल्ला पड़ता है व जलन होती है।

उपायः—कुंवरपाठेको चीरकर जले हुए भागपर रखना, उसका रस लगाना, काली स्याही लगाना, गौंदका लेप कर ऊपरसे गेहूंका पीसान लगाना। नीमक व उससे आधा चूना ले पानीमें मिलाकर लगाना। शहदके साथ मिट्टीका तेल लगाना।

५२ आंखका उठनाः—पुनर्नवाकी ताजी जड़ और असगंध समभाग पीसकर पलकके ऊपर लेप लगानेसे नेत्रदाह, नेत्रशोथ, शीघ्र आराम होता है।

सूचनाः—१ औषध लेनेके प्रमाण जहां न लिखा हो वहां सम प्रमाणसे या हरएक दो दो तोला लेना।

२ एक दो मासके बालकको दूध, सक्कर, शहद या घृतके साथ औषध देना, खाने पीनेके चूर्णका वजन एक रत्ति लेना, पीछे ज्यों २ उमर बढती जाय, त्यों २

मासमें एक रति प्रमाणसे बढाना। एक वर्षकी उमरके पश्चात् हरएक वर्ष वाल २॥ इस प्रकार १२ वर्ष तक बढाने जाना। वर्ष १३ से ६० वर्षकी उमरके मनुष्यको एक तोला देना।

३ क्वाथ, काढा, व उकाला चूर्णसे चार गुना रखना।

४ क्वाथ बनाना हो तब सब औषधियोंको एकत्रकर प्रतिदिन ४ तोला कूट कर एक मिट्टीके पात्रमें औषधको १६ गुने पानीके साथ डालकर हल्के तापसे उकालना, ऊपर कुछ भी नहीं ढांकना। अष्टमांश पानी रह जाय तब उतार ठंडा करके बालकको तो। ०। से १ और बड़ेको तो. ४ शहद, सक्कर, गुड़ या घृतके साथ लेना।

५ चूर्ण बड़े मनुष्यको तो ०॥ से १ तक, बालकको वाल २ से तो. ०॥ तक देना। सक्कर डालनी हो तो दो गुनी और गुड़ समान भागसे डालना चाहिये। चूर्ण तीन मासके पश्चात् बिगड़ जाता है, बालकको वनस्पतिका रस पिलाना हो तो तो. ०। से १ तक और बड़े मनुष्यको तो. १ से २ तक। उसमें शहद सक्कर, गुड़ या घृत जो मिलानेके लिये कहा हो वह तो. ०॥ डालना।

७ गोली शहद या गुड़में बनाना हो तो वाल १ तककी बनानी।

८ जहांपर कोगला करनेकी बात कही हो वहांपर दिन भरमें आधा शेरसे १ शेर तक पानीका करना।

९ जहांपर हीम कहा हो वहांपर उसे चूर्णसे छे गुने पानीमें संध्याको भीगो-कर सुबह मलके छान लेना पीछे उपयोगमें लेना।

१० लेप पानीमें पीसकर या योंही लगाना।

११ जहांपर बाफ लेनके लिये कहा हो वहांपर जिस पानीमें उकालनेके लिये कहा हो उसमें उकाल कर उसकी बराल बाहर न जाय इसके लिये मुखके पास वह पात्र रखकर ऊपर कपड़ा ओढकर शरीरको अच्छी तरहसे ढांक लेना जिससे बराल भीतर रहे। यह बराल १५ से २० मीनीट तक सहन हो सके वहां तक लेना।

१२ यदि अपनेको औषधिकी पहिचान न हो तो दूसरेके पास पहिचान कराके ताजी लेनी।

१३ दवा देश, काल, हवा तथा मनुष्यकी प्रकृति, वय एवं शक्तिको देखकर देना।

१४ औषध तैयार करके अधिक समय तक रख छोड़ना नहीं क्योंकि उससे गुण कम हो जाता है। इस लिये आवश्यक्तानुसार तैयार करना।

१५ औषध रोगकी परीक्षा करके देना।

१६ औषधकी मात्रा आवश्यक्ताके विना न्यूनाधिक नहीं देनी, वैसेही जिस समय खानेके लिये कहा हो उसी समय खाना। समयका परिवर्तन करके औषधि नहीं खाना। औषधके ऊपर जो खुराक खानेके लिये कहा हो वही खाना।

रोगी परिचर्या।

स्त्रियोंको रोगी मनुष्यकी परिचर्या करनेका अभ्यास करना चाहिये। प्राचीन समयमें आर्यस्त्रियोंमें यह ज्ञान अधिकरुपसे था। वे रोगीकी सेवाशुश्रूषाके उपरांत वैद्यकके कई कार्योंमें चतुर थी; वर्तमान समयकी स्त्रियोंमें यह ज्ञान बहुत कुछ कम हो गया है। रोगी मनुष्यकी योग्य परिचर्या होनेसे वे शीघ्र ही अच्छे हो जाते हैं। और वैद्योंको भी बहुत कुछ उनसे सहायता मिल सक्ती है, इस लिये इस गुणकी स्त्रियोंमें अत्यंत आवश्यक्ता है।

कार्यकुशलता–बीमार मनुष्यके रहनेका कमरा बहुत ही स्वच्छ रखना, उसके कमरेमें अधिक सामान नहीं रखना। भीतर खुली हवा आवे ऐसा प्रबंध करना; किन्तु अधिक हवा उसके शरीरपर नहीं लगनी चाहिये, बिछौना स्वच्छ रखना, उसमें गंदकी नहीं होने देना, कपड़े तथा चादरको बार २ बदलते रहना। कमरेमें संध्या सुबह धूप करना जिससे उसकी हवा शुद्ध रहे। खुराक रुचिके अनुसार पाचन हो सके वैसा पका हुआ देना। पानी निर्मल तथा हल्का देना। अधिक मनुष्यकी भीड़ नहीं होने देना। उसके साथ कैसी व कब बात करनी इसका विवेक रखना। अधिक कोलाहल नहीं होने देना; क्योंकि उससे उसे कष्ट मालूम होता है। उसे क्रोध या शोक हो ऐसी कोई बात नहीं करना। उसको सदैव प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करनी।

२ **आनन्दीस्वभाव**:–रोगीके पास प्रसन्न मनसे जाना। भाषा प्रेम व आनंद युक्त बोलनी, "अब अच्छा है" ऐसा कह कर धैर्य देना। उसके कमरेमें सदैव आनंद रहे वैसा करना और ऐसा व्यवहार करना, जिससे उन्हें मालूम हो कि, "मेरे साथ सब कोई सहानुभूति रखते हैं।"

३ **धैर्य**:–जहांतक संभव हो रोगीको एकाकी नहीं रखना, उसकी खटियाके पास बैठकर उसके दुःखको विस्मृत करानेकी चेष्टा करते रहना चाहिये। उसका मन प्रसन्न हो ऐसी बातें करनी, उसको क्या कष्ट होता है यह वह न जान सके

उस प्रकार देखते रहना। वह विना कारण भी शिकायत किया करे तो उसे सुनते रहना। विना अपराधके वह क्रोधित हो तो उसे सहन करना। "अभी आपको शीघ्र अच्छा हो जायगा" ऐसे धैर्यके वचन प्रसन्नतासे कहते रहना और उसको शांत व आनंदमें रखनेका सब प्रकारसे उद्योग करते रहना चाहिये।

४ समयसूचकता:–रोगीकी स्थितिमें अकस्मात् परिवर्तन हो तो अधीर न हो कर तुरंत उसका उपाय करना। डाक्टर किम्वा वैद्य कुछ शस्त्र क्रिया करे उस समय रोगीके हाथ पैर दबा रखना। उसके दुःखको देखकर अपनेको दुःख मालूम हो तो भी ऊपरसे चहेरा प्रसन्न बना रखना। यदि परिचारक खुद अधीर बनेगा तो रोगी अधिक अधीर बन जायगा; जिससे दुःख बहुत होनेकी संभावना है। इस लिये उस समय बहुत सावधानि रखना चाहिये।

५ मनको अधीन रखना:–रोगीके कमरेमें जितनी वार रहना उतनी वार अपना मन अपने वशमें रखना। रोगीके जीनेकी कोई आशा न हो तो भी उसको दिलाशा देते रहना और स्वयं धैर्य रखना। "क्या मैं मर जाउंगा?" रोगी ऐसा पूछे तो मन दृढ रखकर उसको धीरेसे दिलाशा मिले ऐसा उत्तर देना। मरनेकी तैयारीमें हो और अपनेको दुःख मालूम होता हो तो भी धैर्य रखना। रोना नहीं, क्योंकि रोनेसे वह व्याकुल हो जाता है जिससे उसे अधिक कष्ट होता है और अनेक प्रकारके संकल्प होते हैं। इस लिये उस समय सबको शांत रहना चाहिये और ईश्वर स्मरण करना जिससे मरनेवालेकी सद्गति हो। वह मर जायगा या जीवित रहेगा इस विषयमें वैद्य या डाक्टर जो कह गये हो वह रोगीको नहीं कहना। कहनेसे वह भय पाकर मर जाता है। जो मरनेकी तैयारीमें हो वह भी आशासे समयपर बच जा सक्ता है। इस लिये "अभी आराम हो जायगा, सबसे बड़े वैद्य जो परमेश्वर है वह अच्छा करेगा" इत्यादि वचनोंके द्वारा रोगीको आश्वासन देते रहना चाहिये।

६ खुल्ली हवा:–रोगीको खुल्ली हवा मिलनेके लिये कमरेके द्वार खुल्ले रखने चाहिये। उसकी परिचर्या करनेवालेको भी बाहर जाकर खुल्ली हवाका लाभ ले आना चाहिये। इससे एक तो खुल्ली हवा मिलती है और श्रम दूर होता है और कार्य करनेमें हुशियारी आती है इस लिये ऐसा अवश्य करना चाहिये। यदि बाहरकी हवा भीनासवाली हो तो कपड़े बदल कर भीतर जाना, योंही रोगीके पास नहीं जाना।

७ रोगीके आचरणके ऊपर दृष्टि:–रोगी कहे कि मुझे चेन नहीं पड़ती तब उसके हाथके ऊपर अपना हाथ धीरे २ फेरना। उसके हाथ पैर और शिर दाबना

किम्वा उसकी इच्छानुसार पढना या कुछ गाना। उसके समीपमें या बाहर कोई गुप्त बात नहीं करनी; क्योंकि उससे उसे संदेह पड़ता है। इस लिये जो कुछ बोलना हो वह स्पष्ट बोलना। यदि कोई बात उससे गुप्त रखने योग्य हो तो उससे दूर जा कर करनी चाहिये।

८ **निद्राः**—रोगीको निद्रा आवे वैसा प्रबंध करना। वह जब निद्रामें हो तब वहांपर किसीको नहीं आने देना। एक वार निद्रामेंसे रोगी जाग जायगा तो फिर उसे निद्रा कठिनतासे आती है, इस लिये इस विषयमें बहुत ही सावधानि रखनी चाहिये।

९ **रोगकी परीक्षाः**—परिचारकको रोगकी परीक्षा करते शिखना चाहिये। रोगकी परीक्षाका कार्य कुछ कठिन है; किन्तु ध्यान देनेपर यह बात मनुष्य अच्छी तरहसे समझ सक्ता है। रोगकी परीक्षाका सामान्य ज्ञान भी परिचारकको होगा तो डाक्टरकी फीस वार २ भरनी नहीं पड़ेगी।

१० **औषधिः**—रोगकी परीक्षा कर उसे कैसी दवा देनी यह भी जान लेना चाहिये। यदि अपनी समझमें आवे तो सामान्य रोगकी औषधि स्वयं देना या रोगके चिन्ह वैद्यको कहकर दवा लेना। अपनी बुद्धिसे या वैद्यकी सलाहसे पथ्यापथ्य समझ कर उसका रोगीको पालन कराना। रोगी दवा न खाता हो तो उसे युक्तिके द्वारा समझाकर खीलाना। दवा लगानेकी हो तो उसे ध्यान देकर लगाना। भूख व प्यास लगी हो तो योग्य खान पान देना।

इस प्रकार परिचर्या करनेका अभ्यास होनेसे घरमें बहुत लाभ होता है। समय पर वैद्योंकी दवा जो लाभ नहीं करती वह लाभ परिचर्या करती है।

स्त्री परीक्षा।

इस संसारमें उत्तम गुण व रुपवाली स्त्रीके साथ जिस पुरुषका विवाह होता है वही सुखी व पूर्ण भाग्यशाली है। स्त्रियोंके स्वाभाविक गुण जो धैर्य, उत्साह, चतुरता, साहस व प्रेम प्रभृति अंतःकरणमें गुप्त रहते हैं व प्रसंग उपस्थित होनेपर स्वतः प्रकाशित होते हैं। जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशमें दीपकका दृष्टिपर आना अशक्य है उसी प्रकार वे सुख व सम्पत्तिके दिनोंमें नहीं किन्तु दुःख व निर्धनावस्थामें अधिक देदीप्यमान होते हैं। जिस देखकर सहृदय मनुष्य अत्यन्त प्रसन्न

होते हैं। स्त्री जो अपने पतिके ऊपर प्रेम करती है वह पतिके ऐश्वर्यके लोभसे नहीं; किन्तु प्रेमसे करती है यह विपत्तिके समयमें ही दिखायी देता है। स्त्रीकी यथार्थ परीक्षा सुखके समयमें नहीं; किन्तु दुःखके समयमें हो सकती है। यद्यपि स्त्रियां पुरुषोंकी समानता नहीं कर सकती किन्तु परमेश्वरने उनमें एक ऐसा अलौकिक गुण रक्खा है, जिससे आपत्तिके समयमें पुरुषको वह उपयोगी हो सकती हैं। इसके सिवाय अन्य समयमें भी स्त्रीकी परीक्षा उनके ज्ञान, गुण, शील, व कर्मके ऊपरसे हो सकती है। सती सीता, द्रौपदी, दमयंती, प्रभृतिकी परीक्षा दुःखोंके समयमें ही हुयी है; किन्तु ऐसी स्त्रियोंकी भी कमी नहीं हैं जिनकी परीक्षा सुखोंके समयमें भी हुयी है।

पत्नी कैसे वश हो ?

स्त्रीको भय या दुःख देकर और त्याग करके वश रखनेका जो पुरुष विचार करते हैं वह अत्यन्त अनुचित है। इस प्रकार वश करनेसे स्त्री कदापि वशके जैसी दिखायी देती है किन्तु उससे उसका चित्त पृथक् रहता है। पतिके ऊपर यथार्थ भाव नहीं रहनेपर भी उसे ऊपरसे भाव दिखाना पड़ता है जिसका पारिणाम अच्छा नहीं आता। उत्तम कहलानेकी इच्छा रखनेवालोंने अपनी मूर्ख स्त्रीको उपदेशादि द्वारा समझाकर वश रखना अधिक उत्तम है फिर स्त्रीको वश रखनेका सरल उपाय यह है कि स्त्रीको आयव्ययका हिसाब रखनेका, गृहव्यवहार चलानेका, एवं अन्य योग्य कार्य सौंपना चाहिये। स्त्रीके ऊपर प्रेम रखना, वस्त्रालंकारादि ले देना, उसको उत्तम गुण शिखाना, उत्तम समागममें रखना और स्वयं सद्गुणी बनना, इत्यादि उपाय करनेसे स्त्री स्वयं वश होजायगी। भय या दुःख देनेकी अपेक्षा ऐसा व्यवहार करके स्त्रीको वश करना अच्छा है।

पति कैसे वश हो ?

पतिको वश करनेकी कई स्त्रियोंको उत्कट इच्छा रहती है। इनमेंसे समझदार स्त्रियां अच्छा मार्ग लेती है और मुर्ख स्त्रियां खराब मार्ग लेती हैं। अच्छा मार्ग लेनेवाली सुखी होती है और खराब मार्ग लेनेवाली आखिर दुःखी होती है। यह उनके कार्योपरसे मालूम होता है। एक समय पाण्डव, ब्राह्मणगण व द्रौपदी प्रभृति

वनमें एक स्थानपर बैठकर हास्यविनोदकी बातें करते थे। वहांपर श्रीकृष्णकी प्रिया सत्यभामाजी आये। और द्रौपदीजीको एकान्तमें ले जाकर कुशल समाचार पूछे। तत्पश्चात् सत्यभामाजीने द्रौपदीजीसे पूछा कि आप लोकपालके समान महा शूरवीर पाण्डवोंके साथ कैसा व्यवहार करती हैं? वे आपके वशमें क्यों रहते हैं? वे आपके ऊपर क्रोध क्यों नहीं करते? वे आपका मुख देखकर प्रसन्न रहते हैं इसका कारण क्या है? क्या आपने व्रत, उपवास, तप, वशीकरणमंत्र, औषध, कामशास्त्रकी विद्या, जप या पूजन किया है? जो कुछ हो वह मुझे कहिये जिसे मैं भी करके श्रीकृष्णको अपने वशमें करुं। सत्यभामाजीके इन वचनोंको सुनकर द्रौपदीजीने कहा कि सत्यभामा! आप अज्ञान स्त्रियोंका आचरण क्यों पूछती हैं? आपने जो पूछा है उसका उत्तर मैं क्या दूं? ऐसा संशय आपको नहीं रखना चाहिये। स्त्रीमंत्रादिके अधीन रहती है इस बातको उसका पति जब जान लेता है तब वह उद्वेगको पाता है। जहां उद्वेग है वहां शांति नहीं है और जहां शांति नहीं है वहां सुख कहांसे हो सक्ता है? मंत्र तंत्र करनेवाले धूर्तोंकी सलाह लेकर वशीकरण करानेसे पतिको कष्ट होता है और पति सामने अप्रसन्न होता है। यदि मंत्र तंत्रसे कार्यसिद्धि होती तो फिर मंत्र तंत्रवाले स्वयं ही क्या सिद्धि प्राप्त कर सुखी नहीं होते? वे क्यों मार २ फिरते और भिक्षा लेते फिरते? मंत्रतंत्र करना यह सब उन धूर्तोंके पेट भरनेके लिये प्रपञ्च है। ऐसे लोगोंका समागम व विश्वास करनेवाली स्त्रियां स्वयं सब प्रकारसे नष्ट होकर अपकीर्तिको पाती है। वैसी स्त्रियोंका इस लोकमें और परलोकमें अनीष्ट होता है। यह सत्य है कि पति ऐसे मंत्र–तंत्रसे वश नहीं होता। मैंने अपने पति-पाडवोंको जिन उपायोंसे वश किया है वे उपाय आप सुनिये।

मैं अहंकार, काम, क्रोध, और लोभका त्याग कर पांडवोंकी सेवा करती हूं। इर्षाका त्याग कर और मनको वशमें कर वे जिस प्रकार प्रसन्न रहे उस प्रकार करती हूं। वे दूरसे बुलावे किम्वा इसारा करे तो मैं तुरंत उनके पास हाजिर होती हूं, उनकी इच्छानुसार चलती हूं। पतिको खराब मालूम हो ऐसा कुछ भी नहीं बोलती। खराब स्थानपर खड़ी नहीं रहती। जिस स्त्रीकी लोकमें कुछ भी खराब बात होती हो उसके पास कभी बैठती नहीं हूं। खराब पदार्थ नहीं देखती। मेरे पतिको सूर्य, चन्द्र व अग्निके समान समझती हूं। मेरे पतिके सिवाय देव, मनुष्य, गंधर्व चाहे वैसे स्वरुपवान युवान वस्त्रालंकारसे सुशोभित हो तो भी उन्हें तुच्छ समझती हूं। मैं अपने पतिके भोजन करनेके पश्चात् भोजन करती हूं। जिस प्रकार चंद्र बिना रात्रि, दीपक बिना घर, जल बिना मछली, देव बिना मंदिर, जीव बिना शरीर, जल बिना जलाशय, उसी

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगं
श्री वीरेन्द्र के सम्
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला।
जलविद सखा—(ज
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेज
सम्पादिका थीं। पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नात
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार औ
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे।
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमे
यद्यपि आर्य प्रति
थी, किन्तु उसके मुखप
आरम्भ हुआ। साप्ता
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूतान
रियासतें) तक विस्तृत
आर्यसमाज की धार्मिक,
बना।

प्रकार पतिके विनाकी स्त्री इस संसारमें शोभा नहीं पाती। ज्यों विना अग्निके यज्ञ व्यर्थ है, त्यों पुरुषके विना स्त्रीका जन्म व्यर्थ है। पतिके विना स्त्रीका समस्त संसार शोकमय दिखायी देता है। संसारमें पति यही सुखोंका हेतु है। पतिसेही स्त्रीको समस्त सुख व सौभाग्य है। पति ही इस संसारमें स्त्रीको तारनेवाला है। इस लिये मैं उनकी तन, मन, कर्म और सच्चे अंतःकरणसे भाव रख कर सेवा करती हूं। पति वनमेंसे या गांवमेंसे घर आवे, तब मैं सामने जाकर आसन व जल देती हूं। आनंदसे वार्तालाप कर उनका मन प्रसन्न करती हूं। मैं घरके समस्त पदार्थ स्वच्छ रखती हूं। पाक मनोहर स्वादीष्ट बनाती हूं और समयपर उन्हें भोजन कराती हूं। धनकी रक्षा करती हूं। घरकी समस्त सामग्री सम्हालती हूं। मेरे पतिका अपमान हो ऐसा कभी भी नहीं बोलती। आलस्यको छोड़कर पतिकी सेवा करती हूं। अधिक हसती नही हूं। बाहर एकाकी नहीं जाती। सास ससुर व पतिकी आज्ञाके सिवाय बाहर कहां भी नही जाती। घरके द्वार पर या रस्तेपर खड़ी नहीं रहती। सदैव सत्य बोलती हूं। पतिका जिस प्रकार हित हो उस प्रकार समस्त कार्य करती हूं। पतिके विना मुझे कोई पदार्थ प्रिय नहीं हैं। कार्यप्रसंगसे पति परदेशको जाते हैं तब चंदन, पुष्प, उत्तम वस्त्रालंकार धारण नहीं करती; किन्तु व्रत नियमादि करती हूं। जो पदार्थ मेरे पति खाते पीते नहीं उस पदार्थके ऊपर मैं भी प्रीति नहीं रखती हूं। शास्त्रोंमें स्त्रीके लिये जो २ धर्म लिखे हैं उनका मैं अच्छी तरहसे पालन करती हूं।

उत्तम सुन्दर वस्त्रालंकार पुष्प और चंदनादि धारणकर अपने पतिको प्रसन्न रखती हूं। कुटुम्बके लिये जिन २ धर्मोंका उपदेश मेरी सास कुन्ताजीने किया है उनका पालन करती हूं और मान देने योग्य मनुष्योंका सन्मान करती हूं। रात्रि दिन यम नियम विनयादि गुणोंको धारण करती हूं। मेरे प्राणपति क्रोधमें होतो भी मैं दीनतासे दासी होकर उनकी सेवा करती हूं; क्योंकि स्त्रीके लिये पति ही एक आधार है। पति देवसमान व सर्वस्व है। यह सब कुछ समझकर उनकी आज्ञाको उल्लंघन नहीं करती। वैसे ही मेरे पतिको जन्म देनेवाली मेरी सासको भी देवी के समान समझकर उनकी सेवा करती हूं। उन्हें भोजन कराके भोजन करती हूं और उनको शयन करानेके पश्चात् मैं सोती हूं। आज हम वनमें हैं; किन्तु जब राजधानीमें थे, उस समय मैं ब्राह्मणोंको और गरीबोंको अन्नवस्त्रादि द्वारा संतुष्ट करती थी। और राज्य व्यवस्थाका तथा समस्त सम्पत्तिका ध्यान रखती थी। मैं अपने कुटुम्बका भार

अपने ऊपर रखकर पतिको अन्य व्यवस्था करनेके लिये समय देती थी । सुन्दर राज्य महलोंमें और वनमें तथा सुख दुःखमें मैं अपने पतिके साथ समानभाव व प्रेम रखकर रहती हूं । मेरा यही सच्चा वशीकरण है। मैं जानती हूं कि इसके सिवाय अपने पतिको अपने प्रेममें बांधनेका—वश करनेका कोई भी उपाय नहीं है । नीच स्त्रियोंके आचरणोंको खराब समझकर उनका अनुकरण कभी नहीं करती ।

सत्यभामा ! आपसे यह बात छीपी नहीं है कि जिन स्त्रियोंके ऊपर पति प्रसन्न रहता है वेही स्त्रियां धन्य है । उत्तम वस्त्रालंकार, चंदन, पुष्प व सुगंधीपदार्थ और संक्षेपमें कहा जाय तो समस्त सुखोंके साधन केवल पतिकी प्रसन्नतासे ही स्त्रियोंको प्राप्त होते हैं, वैसेही पुत्र परिवार, धन्य धान्य और सब कुछ पतिकी प्रसन्नतासे ही प्राप्त हो सक्ते हैं और उसीके क्रोधसे इन सबका नाश होता है । सखि! सुखसे सुख नहीं मिलता; किन्तु दुःखसे सुख मिलता है; इस लिये स्नेहसे और प्रेमसे मन, वचन और कर्मसे आप अपने पति श्रीकृष्णकी सेवा करना । बाहरसे आते हुए अपने पतिका शब्द सुनकर आप खड़े होकर सामने जाइये, आसन दीजिये और पतिके आसनके ऊपर बैठते ही शीतल जलका लोटा भरकर समीपमें रखिये और पंखेसे पवन डालिये । जो आपके पतिको प्यारे हों, आपके पतिके भक्त हों और स्नेही हों उनको अन्न, वस्त्र, अलंकारसे मान दीजिये । आप अपने पतिके शत्रु तथा दुष्टोंसे सदैव दूर रहिये और अपने मनको वशमें रखिये । गाफिल न रहना, और अधिक नहीं बोलना चाहिये । अन्य पुरुषकी बात तो दूर रही; किन्तु प्रद्युम्न तथा शांब जो कि आपके पुत्र हैं उनके साथ भी एकान्तमें मत बैठना । जो स्त्री उत्तमकुलमें उत्पन्न हुयी हो, निष्पाप हो, सुशील, सरल व सती हो, ऐसी ही स्त्रियोंका समागम रखना । जो क्रूर स्वभावकी हों, झगड़ालु हों, अधिक खानेवाली हों, चोरी करनेवाली हों और दुराचारिणी हों ऐसी स्त्रियोंका समागम कभी भी नहीं करना । अमूल्य वस्त्रालंकार धारण कर परमप्रेमसे व मन, वचन तथा कर्मसे पतिकी सेवामें रहना । आपके पतिने जो बात कही हो वह दूसरेसे नहीं कहना; क्योंकि वह बात फिर जब व जानेंगे, तब आपके ऊपर जो स्नेह होगा वह कम हो जायगा। यदि आप सदैव इस प्रकार वर्तेंगे तो श्रीकृष्णको आपके ऊपर प्रेम व दया उत्पन्न हुए विना नहीं रहेगा । ऐसा आचरण ही सौभाग्यको बढ़ानेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला व पतिको वश करानेवाला है ।

अहा ! साध्वी द्रौपदीजीका बताया हुआ पतिको वश करनेका उपाय कैसा उत्तम व सरल है ! वस्तुतः इस उपायसे ही पति स्त्रीको वश हो सकता है। इस लिये अन्य व्यर्थके दुःखजनक क्लेशभर उपायोंको छोड़कर ऐसाही सुखकारी उपाय करना चाहिये । इससे पति स्वयं वश हो जायगा ।

पतिव्रत ।

पतिव्रत यह स्त्रियोंका साररत्न व अमूल्यधन है। जब विवाह होता है तब ईश्वररूप माने हुए अग्निदेव और सहस्रों मनुष्योंके समक्ष स्त्री पुरुष प्रतिज्ञा लेकर बंधे हुए हैं कि कोई परस्त्री किम्वा परपुरुषके साथ प्रीतिसे नहीं बंधाना और परस्परके शरीरका अधिकार दूसरेको नही सौंपना । ऐसी प्रतिज्ञा कर अपने शरीरको परस्पर अर्पण किया है और परस्परमें अखंड प्रीति रखनेके लिये बंधे हुए हैं; फिर भी जो स्त्रीपुरुष क्षणीक सुखके लिये कामके वश हो उस ईश्वरी लेखका भङ्ग करके अपना शरीर दूसरेको सौंपते हैं और अपनी इज्जत बताते हैं उन्हें धिक्कार हैं ! उसके समान एक भी बड़ा अपराध नहीं है । उसके समान एक भी बड़ा पाप नहीं हैं । ऐसे पापी मनुष्यके ऊपर परमेश्वर क्रोधित होता है और उसे बड़ी शिक्षा करता है । इस संसारमें चोरी व व्यभिचार करना जिस प्रकार बुरा है उस प्रकार और कोई कार्य बुरा नहीं है । संसारमें स्त्रीपुरुषकी संख्या करीब २ समान है । इस परसे मालूम होता है कि एक स्त्रीको एक पुरुष और एक पुरुषको एक स्त्री होनी चाहिये । फिर संसारके नियमानुसार धर्मसंस्कार करके विवाहित दम्पती एक दूसरेका वचन तोड़े तो फिर विवाह करनेकी आवश्यक्ता ही क्या है ? तब मनुष्य और जंगली पशुपक्षीमें क्या भेद है ? विवाहित स्त्री अपने पतिके ऊपर सच्चा प्रेम न रक्खे तो फिर पतिका उसके ऊपर प्रेम कहांसे रह सक्ता है ? उससे दोनों दुःखदस्थितिमें आ पड़ते हैं। फिर जिनके मातापिता व्यभिचारी रहते उसके बालक भी विशेष करके व्यभिचारी होते हैं । ऐसे अधिक मनुष्य होनेसे कुटुम्ब, ज्ञाति, और देश अनिष्ट स्थितिमें आपड़ता है । व्यभिचारी मनुष्योंको रात्री दिन सुखसे निद्रा नहीं आती और कार्य व्यवसायमें मन नहीं लगता और उन्हें कहां भी सुख या शान्ति नहीं मिलते । जब उसकी वासना पूर्ण नहीं होती तब बड़ा ही दुःखित हो जाते हैं। व्यभिचारी मनुष्यकी इज्जत लोगोंमें कम होती है । उनका कोई भी विश्वास नहीं करता। उसे कोई अपने यहां

बुलाना नहीं चाहते। ऐसा कार्य करनेवाला समझता है कि मेरे कृत्यको कोई नहीं समझते किन्तु वह कृत्य कभी छूपा नहीं रहता। ऐसे लोगोंकी इस लोकमें अपकीर्ति होती है और परलोकमें नरक प्राप्ति होती है। **महाभारतमें** कहा हुआ है कि;- स्त्री पुरुष शीलभंग होनेसे महान् दोषके पात्र बनते हैं। स्त्रीने कभी परपुरुषका विश्वास नहीं करना। जिसने शीलका रक्षण किया उसने सब कुछ किया। जो स्त्री पतिका त्याग कर एकान्तमें चांहे वहां फिरती है वह दूसरे जन्ममें ग्राम्यडुकरी होती है और विष्ठा खाती फिरती है। महर्षि **याज्ञवल्क्यजीने** कहा है कि जो स्त्री व्यभिचार करती है उसको पत्नीत्वके अधिकारसे रहित करनी और उसका विश्वास नहीं करना; इस प्रकार अनेक शास्त्रोंमें व्यभिचारका निषेध किया है। शीलकी सब प्रकारसे रक्षा करनेसेही स्त्री उत्तमताको प्राप्त होती है और उसके भंग करनेसे स्त्री नीच कहलाकर ससुर, पियर व माताके कुलोंको कलंक लगाती है। स्त्रीने परपुरुषके साथ खेलना, हंसना, छलमें अंगका स्पर्श करना, एकान्तमें एक आसनपर अधिक समय तक बैठना, उनकी किसी प्रकार सेवा करना, और ऐब दिखाना ये सब व्यभिचारके भीतर गुने जाते हैं। इस लिये वैसा नहीं करना; क्योंकि ये सब कार्य नीतिसे विरुद्ध है। जिस आचरणसे लोगोंके मनमें संदेह उत्पन्न हो वह लोगोंमें दूषण देनेवाला और पतिपत्नीमें प्रेम कम करानेवाला है। पतिपत्नीमें प्रेम स्थायी रखनेके लिये जहांतक संभव हो निष्कपटतासे वर्तन करना चाहिये। स्त्रियोंको चाहिये कि अपने जीवनके साररूप पतिव्रतधर्मकी रक्षाके लिये प्राणकी भी परवाह न करें। प्राचीन समयमें सीताजी, द्रौपदीजी, दमयंती, सुकन्या और वीरमती प्रभृति स्त्रियोंने अनेक कष्ट सहकरके भी अपने पतिव्रत धर्मकी रक्षा की है।

अतिथि-सत्कार।

अपने घरपर कोई सगा सम्बन्धी मित्र व कोई भी मनुष्य आवे उसका यथोचित रीतिसे आतिथ्य-सत्कार करना यह गृहस्थोंका परमधर्म है। आया हुआ अतिथि अप्रसन्न हो ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये। अतिथिको अप्रसन्न करनेसे लोगमें अप्रतिष्ठा होती है और पुण्यका क्षय होता है। अतिथिका सत्कार करना यह आर्यशास्त्रकी प्रधान आज्ञा है। कदापि शक्ति न हो तो भी आतिथ्य-सत्कार करनेमें त्रूटी

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगं
श्री वीरेन्द्र के सम्
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला।
जलविद सखा—(जा
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेज
सम्पादिका थीं। पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नात
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार औ
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे।
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमे
यद्यपि आर्य प्रति
थी, किन्तु उसके मुखप
आरम्भ हुआ। साप्ताहि
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूतान
रियासतें) तक विस्तृत
आर्यसमाज की धार्मिक,
बना।

नहीं करनी। अतिथि आया है वह नहीं आया नहीं होगा, उसका सत्कार करने योग्य अपनेमें सामर्थ्य न हो तो भी मुख प्रसन्न रखकर जो स्वयं खाते पीते हों वह खिला पीलाकर विदा करना। सत्कारका अभिप्राय केवल उसको मिष्टान्न खीलाना यही नहीं हैं। उसको प्रेमसे बोलाना चलाना यही सच्चा सत्कार है। यदि इसमें त्रूटी हुयी तो अतिथि भी विचार करेगा कि मैं उस उपाधिमें कहांसे फसा? यहांपर नहीं आता तो ही अच्छा था। इसलिये गृहस्थोंका धर्म है कि जो अपने यहां अतिथि आवे उसका यथोचित सत्कार करे। अतिथिसे नम्रता व प्रसन्नतासे कहना चाहिये कि आज हमारे बड़े भाग्य हैं जो आप हमारे घर पधारे। इत्यादि विवेक-युक्त बचनोंके द्वारा वह अपना सत्कार हुआ देखकर प्रसन्न होता है। पीछे चाहे खान-पान अपने घरमें हो वही दीजिये उसमें कोई हानि नहीं हैं। अतिथि अपनी रोटीका ही भूखा नहीं है, वह अपने भावका भूखा है, ऐसा गृहस्थोंको समझना चाहिये। अपने घरपर कोई भी विद्वान् या अन्य गृहस्थ आवे तो उसको आसन देकर बिठाना। तदनन्तर जलपान दे कुशल समाचार पुछना। वह अपने जानेतक आनेका कारण न कहे तो आनेका कारण भी सभ्यतासे पूछना। उसके जानेके समय विवेक और नम्रतायुक्त वचन बोलना, फिर "पधारना" इत्यादि वचन कहते हुए विदा करना। यदि अपनेसे बड़े हो तो कुछ स्थान तक पहुंचानेके लिये जाना चाहिये। घरमें कोई पुरुष या अपना पति न हो उस समय स्त्रीको उचित है कि अपनी मर्यादा रखकर अतिथिका सत्कार करना। अपने पतिव्रत धर्मको हानि न पहुंचे इस बातकी सावधानी रखनेके साथ २ अतिथि किसी प्रकार असंतुष्ट न रहे इस बातकी सावधानी रखनी चाहिये। स्त्रीको चाहिये कि अपने पतिव्रत धर्मको पालन करनेके साथ २ अतिथिका पूर्ण रूपसे सत्कार करे। इस प्रकार चलनेसे घरकी शोभा तथा कीर्ति बढती है; इसलिये गृहस्थोंको आतिथ्य-सत्कारके नियमोंको समझकर अपनी शक्ति व सम्बन्धके अनुसार अतिथि सत्कार करना चाहिये।

नोकर चाकर कैसे रखने चाहिये?

गृहस्थने घरमें जिन स्त्री पुरुषोंको दास दासी रूपसे रखना हो वह नम्र, विवेकी, सभ्य, आस्तिक, परिश्रमी, सत्यभाषी, सदाचारी, मर्यादी, नीमकहलाल, चतुर, निरोगी, और स्वामी भक्त होने चाहिये। अधिक तरुण कम्वा अधिक वृद्ध मनुष्यको

नोकर नहीं रखना। तरुण मनुष्यकी मनकी वृत्ति स्थिर नहीं रहती और वृद्ध मनुष्यका शरीर कार्य करने योग्य नहीं रहता। इन दो अवस्थावालोंको छोड़कर नोकर रखना चाहिये। स्त्री पुरुष कोई भी नोकर क्यों नहो वे सदाचारी होने चाहिये। जो बातको तुरन्त समझ सकते हो, जो सेवक धर्मको समझते हो, जो घरकी बात बाहर न कहते हो वैसे नोकर रखने चाहिये। गरम मीजाजवालेको, अधिक स्वरुपवानको, अविवाहितको, आलसुको, निर्बलको, अति युवा व वृद्धावस्था वालेको, व्यभिचारीको, रोगीको अधिक शौकीनको, नीचबुद्धिको, व्यसनीको, निन्दकको, नास्तिकको, चोरको, मिथ्याभाषीको, अधिक बातें सुनने कहनेकी आदत वालेको, और जिसको अपने कार्यमें कालजी नहो ऐसे अवगुणवाले नोकरको नहीं रखना चाहिये। यदि विना विचार किये ऐसे नोकरोंको गृहकार्यमें नियुक्त किया जाय तो पीछेसे पश्चात्ताप करनेका समय आता है। खासकर स्त्रियोंके कार्योंमें स्त्री नोकर व पुरुषोंके कार्योंमें पुरुष नोकर ही रखना चाहिये। जहांतक संभव हो पाक बनानेका कार्य घरकी स्त्रियोंको ही करना चाहिये। और यदि पाक बनानेके लिये किसी नोकरकी ही आवश्यकता हो तो पुरुषकी अपेक्षा स्त्री नोकरको ही रखना चाहिये। पाकगृहके साथ घरकी स्त्रियोंका विशेष सम्बन्ध है ऐसी दशामें वहां पर पुरुषको अधिक समय तक रखना उचित नहीं है। किसी कारणसे पुरुषको रखना ही पड़े तो उस पुरुषमें नोकरके पूर्वोक्त लक्षण देखकर ही रखना चाहिये।

नोकरके साथ व्यवहारः—घरमें रसोई करनेवाले या अन्य गृहकार्य करनेवाले नोकरके ऊपर अधिक विश्वास नहीं रखना चाहिये। उनके साथ कार्यके जितना ही व्यवहार रखना चाहिये। कार्यके जितना बोलना, और जहां तक संभव हो उससे अधिक व्यवहार रखना नहीं चाहिये। उससे अधिक व्यवहार रखनेसे वह अपने साथ बोलनेकी छूट लेता है। कोई बाहरका मनुष्य आवे तब भी वह अपनी छूट लेगा, जिससे अपना मान नहीं रहता और बाहरके मनुष्यको अपने विषयमें हल्का विचार बंधेगा। घरके धन, आभूषण, वस्त्रादि रखनेके स्थानकी कुञ्जी नोकरोंको नहीं बतानी और वे कहां पर है यह भी उन्हें नहीं बताना, क्योंकि धन व स्त्रीको देखकर बड़े २ मुनीश्वरोंकी भी दानत बिगड़ जाती है। खानगी बैठने उठनेके कमरेमें उन्हें आज्ञाके सिवाय नहीं जानेका खास हुकम दे रखना चाहिये। अज्ञान स्त्री, मूर्ख राजा, बेल और अविचारी इन चारोंका स्वभाव है कि इनको जो समीपमें मिलते हैं उन्हींसे वे प्रेम कर बैठते हैं। इस लिये प्रथमसे ही ऐसा प्रबंध करना कि स्त्रियोंको पुरुष नोकरोंके सहवासमें न आना पड़े। स्त्रियोंको चाहिये कि नोकरके साथ जरूरी

बातको छोड़कर व्यर्थकी बात नहीं करे, उसके साथ हंसना नहीं, उसके ऊपर आवश्यकतासे अधिक दया भी नहीं रखना चाहिये। नोकर चाकरकी वृत्तिकी परीक्षाके अनेक उपाय है वे करके यदि उसकी साफ दानत है, वह अपनी किसी वस्तुका बिगाड़ नही करता और मोका मिलने पर भी कोई वस्तु उठा नहीं जाता, तभी उसके ऊपर कुछ विश्वास रखना उचित है; विश्वासके रखने पर भी उसके हरएक कार्योंमें वह जानने न पावे उस प्रकार दृष्टि रखनी। यदि पुराना व कार्यमें चतुर नोकर हो; किन्तु चोरी और व्यभिचारके लक्षणयुक्त हो तो उसको तुरंत रजा देना चाहिये। सामान्य दोषोंके लिये उन्हें धीरेसे समझाना, उसका बार २ अपमान और तिरस्कार कभी नहीं करना। यदि उसे कोई शारीरिक या सांसारिक दुःख आपड़े तो धीरेसे उसको समझाना और यथासाध्य सहायता करना चाहिये। मालिकोंको प्रति नोकरका क्या धर्म है यह अपनी ओरसे या दूसरोंकी ओरसे समझाना, जिससे वह अपने धर्म—कर्तव्यको न भूले। नोकरके साथ ऐसा व्यवहार रखनेसे नोकरका व मालिकका—दोनोंका भला होगा।

मनुष्यका प्रधान कर्तव्य।

इस संसारमें उत्पन्न होकर मनुष्यको क्या करना चाहिये? यह सबसे प्रथम प्रश्न उपस्थित होता है। इसका यही उत्तर है कि तन, मन व धनसे परोपकारके कार्यकर ईश्वरके पदको प्राप्त करना चाहिये। जहांतक उसके पदको पहुंचनेका मनुष्य यत्न नहीं करता, तब तक वह मनुष्य पशु, पक्षी, कीट, पतंग और वनस्पति प्रभृतिके अवतार धारण कर उसका जन्म मरण हुआ करता है। और आधि व्याधि तथा उपाधि अपने शिरपर लेता है। यह मनुष्य शरीर अनेक जन्मके किये हुए पुण्य व प्रारब्धके योगसे प्राप्त हुआ है। उसीके द्वारा ईश्वरके परमपदकी प्राप्ति होती है। इस मनुष्य शरीरके सिवाय ईश्वरकी प्राप्ति नहीं होती। ऐसा सुयोग मिलने पर भी जो इस योगको व्यर्थ जाने देते हैं उनके समान मूर्ख मनुष्य कौन है? ईश्वरके परमपदको प्राप्त करना यह धन वैभवादिसे नहीं, पढ लिखकर बड़ी २ डिग्रियां सम्पादन करनेसे नहीं; किन्तु सत्कर्म कर ईश्वरकी ओर वृत्ति रखनेसेही हो सकता है। इस कार्यमें ढील नहीं करना चाहिये, क्योंकि काल कब आवेगा इसका निश्चय नहीं है। मनुष्यको उचित है कि शास्त्रोक्त सत्कर्मोंको करनेके साथ २ सदैव ईश्वरमें वृत्ति

रखनी चाहिये । जिस समय शरीर नष्ट होगा उस समय केवल सत्कर्मों एवं ईश्वर स्मरण ही मनुष्यको कार्यमें आवेंगे । अज्ञानी मनुष्य इस पञ्चभूतके बने हुए शरीरको सत्य मानता है और मेरा २ कर उनके मोहमें फसकर अपने अन्य आवश्यक कर्तव्योंको भूल जाता है । मनुष्य कहता है कि यह मेरा शरीर अभी अच्छा नहीं है; मैं इसे अच्छा करूंगा । इसमें मेरा व मैं कहनेवाला जीव व शरीर दोनों अलग २ हैं । मैं कहनेवाला जीवात्मा इस शरीरको अज्ञानसे अपना मान लेता है; किन्तु वास्तविकमें ऐसा नहीं है । ज्ञानी मनुष्य शरीरके भोग शरीरको भोगने देता है किन्तु उसके भोगमें स्वयं लीन नहीं होता और आसक्ति नहीं रखता । वह उसमें सुख, दुःख, हर्ष, शोक, कुछ भी नहीं रखता; क्योंकि समस्त भोगोंका देहके साथ सम्बन्ध है, आत्माके साथ नहीं है । जब आत्माको किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है, तब व्यवहार दृष्टिसे जो सुख दुःख मालूम होते हैं वे ठीक नहीं हैं; क्योंकि देह स्वयं नश्वर--मिथ्या है फिर उसके सम्बन्धकी वस्तुयें कैसे सत्य हो सकती हैं ?

इस असार संसारके अनेक दुःखोंका मनुष्यने अनुभव लिया है, फिर भी असत्य पदार्थोंके ऊपर ममत्व रख रहा है । जिससे सत्य क्या है ? इस वातको वह समझ नहीं सक्ता । यह जगत् सत्य नहीं है; किन्तु सत्यका मार्ग दिखानेवाला है । यह मनुष्य शरीर सत्य नहीं है; किन्तु सत्यको प्राप्त कर लेनेका साधन है । उसका लोक व्यवहार समस्त मिथ्या है, केवल परमात्माको जाननेका व्यवहार सत्य है । मूर्ख मनुष्य माया प्रपंचके मोहके कारण अपने प्रधान कर्तव्यको भूलकर असत्यको सिद्ध करनेका प्रयत्न करता है जिसमें अनेकवार दुःख भोगता है, निराश होता है और पश्चात्ताप करता है, फिर भी मायामें फसा हुआ मनुष्य नहीं चेतकर फिर आधि, व्याधि एवं उपाधिको अपने हाथसे अपने ऊपर ले लेता है । जहांतक मनुष्य मोह निद्रामेंसे जागृत हो अभिमानका त्याग नहीं करता, वहांतक वह परमात्माको नहीं जान सक्ता । शास्त्रमें कहा हुआ है कि;—

यः पश्यति स्वयं सर्वं, यं न पश्यति कश्चन ।
यश्चेतयति बुद्ध्यादि, नतत्तु चेतयत्ययम् ॥

जो ब्रह्म स्वयं सब कुछ देखता है किन्तु उसको अन्य कोई नहीं देख सक्ता; जो बुद्धि आदिको चेतनवाला करता है किन्तु बुद्धि आदि उन्हें चेतनयुक्त नहीं कर सकते; ऐसे परब्रह्मको पहिचानकर जहांतक उसके ऊपर सच्ची प्रीति नहीं उत्पन्न होती, वहांतक मनुष्य इस संसारमें अनेकवार उत्पन्न होता है व मरता है । आधि, व्याधि व उपाधिको भोगता है । जहांतक मनुष्यका अज्ञान दूर नहीं होता, वहांतक

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगंज
श्री वीरेन्द्र के स
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है ।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला ।
जलविद सखा—(ज
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई । पत्रिका
थीं । कुछ पृष्ठ अंग्रेज
सम्पादिका थीं । पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार औ
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे ।
कर रहे थे ।
आर्य मार्तण्ड—अजमे
यद्यपि आर्य प्रति
थी, किन्तु उसके मुखप
आरम्भ हुआ । साप्ताहि
को अजमेर से निकला ।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूतान
रियासतें) तक विस्तृत
आर्यसमाज की धार्मिक,
बना ।

एक शुद्ध निरञ्जन निराकार परम करुणाकर प्रभुको प्राप्त नहीं हो सकता । इस शरीरसे मनुष्य ईश्वरके पदको प्राप्त कर सकता है, फिर भी शोक है कि मनुष्य ईश्वरको जाननेके लिये यत्न नहीं करते । हे मानव ! सद्गुरु व सत्य शास्त्रोंने परब्रह्मको जाननेके जो मार्ग बताये हैं उन मार्गोंको ग्रहण करनेका यत्न कर और अहंकारका त्याग कर, व्यवहारमें वैराग्य एवं निष्काम वृत्ति रखकर सुकृत्य कर, जिससे जन्म मरणका फेरा मिटेगा और मनुष्य शरीर धारण किया सुफल होगा ।

गृहव्यवस्था ।

स्त्री विवाह होजानेके पश्चात् ससरालमें आती है, तब उसके पतिका घर यही उसका घर होता है । और पतिके गृहकार्यकी चिन्ताका समस्त भार उसके ऊपर आ पड़ता है इस लिये माताको उचित है कि अपनी पुत्रीको गृहव्यवस्थाकी शिक्षा देकर योग्य बनावे । उसके योग्य होनेसे वह सुखी होकर कीर्तिको पाती है और मातापिताकी कीर्तिको बढाती है। यदि कन्याको गृहव्यवस्थाका कार्य न शिखा कर उसको व्यर्थ के लाड किये गये हों तो वह ससरालमें जाकर दुःखी होती है । उसकी अज्ञानताके कारण उसका सास, ननंद प्रभृतिके पास आदर नहीं होता और उसके मातापिताकी निन्दा होती है । इस लिये पुत्रीको ससरालमें भेजनेके पूर्व ही गृहव्यवस्थाकी उत्तम शिक्षा देनी चाहिये ।

१ **सुघड़ता**—स्त्रियोंके लिये यह गुण भूषणरूप है । प्रतिदिन एक प्रहर रात्रि रहे, तब ईश्वर स्मरण करते उठना और मुख, नेत्र व दांत साफ कर गृहकार्यमें लगना । घरके समस्त भागमें बुहारी निकालकर साफ करना । घरमें कुड़ा रहनेसे विविध प्रकारके जीव होते हैं, और गंदकी बढ कर घरकी हवा बीगड़ती है । घरको लेंपकर साफसुफ रखना, घरमें शरदी न हो इस बातकी सावधानी रखनी । शरदीका भाग धरमें रहनेसे घरके मनुष्य बीमार होते हैं, इस लिये प्रमादको छोड़कर धरमें और घरके आसपासमें स्वच्छता रखनी चाहिये। घरकी समस्त वस्तुयें जैसे कि फरनीचर, वस्त्र, पात्र प्रभृति बहुत ही स्वच्छ रखने चाहिये; घरकी वस्तुयें स्वच्छ व पवित्र नहीं रहनेसे अनेक प्रकारसे हानि होनेकी सम्भावना है । सोनेकी शय्या, पलंग, प्रभृतिको प्रतिदिन उठाकर स्वच्छ रखना । बीच २ में उन्हें धूपमें सूखा लेना चाहिये जिससे दुर्गन्धि व जीवजन्तु न रहे । शय्याके ऊपरकी चद्दरको बदलते रहना चाहिये ।

घरके पशुपक्षियोंको बांधनेकी जगह भी स्वच्छ रखनी, घरकी मोहरियां साफ रखनी; यदि घरके पास पुष्पादिक वृक्ष हो तो उनमें गंदा जल नहीं डालना। गोबरको इ-कठ्ठा नहीं कर रखना। घरके आसपासमें गंदा पानी नहीं डालना। इस प्रकार घर व उसके आसपासमें सब जगह स्वच्छतासे रखनी चाहिये। घरके अंगनमें सुबह झाडु निकाल थोड़ा पानी छीटककर अबील व रोलीसे मनोहर चित्र निकालना। घर व घरके आसपासमें दुर्गन्धि न रहने पावे और सुगन्धि फैली रहे ऐसा प्रबन्ध रखना चाहिये। सूर्योदयके पश्चात् निर्मल जलसे शरीर मलकर स्नान करना, स्नान करनेमें जलका लोभ नहीं करना। शिरके बाल भी सप्ताहमें एक या दोवार आंबला, रीठा व सीका-खाईके चूर्णसे धोकर साफ रखना। स्नान करके सूखे गमछे या टुवालसे शरीर साफ कर धोये हुए वस्त्र पहिनने। औंदे कपड़ेसे अधिक समय तक नहीं रहना, क्यों-कि वैसा करनेसे जूकाम होती है, गरमकी अपेक्षा शीतजलसे स्नान करना यह श-रीरको दृढ बनानेवाला है; किन्तु जो स्त्रियां अशकत हो और ठंडा जल सहन कर न सके उन्होंने गरम जलसे स्नान करना चाहिये। एकदिन पहिना हुआ कपड़ा विना धोये दूसरे दिन नहीं पहिनना चाहिये। बालकोंको भी उनकी शक्तिको देखकर प्र-तिदिन स्नान कराके नवीन धोये हुए वस्त्र पहिनाना। स्नानकर, धोये हुए वस्त्र प-हिनकर धूपदीप कर अपनी रुचि और कुलपद्धतिके अनुसार ईश्वर स्मरण करना। ईश्वरकी प्रार्थना कर उनके किये हुए उपकारोंका स्मरण करना। ईश्वर भक्ति कर-नेके पश्चात् अपने घरका कार्य करना। अन्य कार्योंके प्रथम अपने सौभाग्यदर्शक चिन्हादि धारण कर लेना चाहिये।

२ पाकः—रसोई बनाना यह स्त्रियोंका प्रधान कार्य है। जिसके घरमें र-सोई बनानेवाला नोकर हो उसने उसके ऊपर रहकर अच्छी रसोई बनवानी चाहिये और जिसके घरमें रसोई बनानेवाला न हो उसके घरमें स्त्रीको रसोई बनाना पड़ती है। हाथसे रसोई बनाना यह इन दोनोंमेंसे उत्तम है। इस संसारमें सब किसीके जीव-नका आधार भोजन है। यह शरीर एक यन्त्र है और अन्नजल ये दो वस्तुयें यह यन्त्र चलानेवाली है। उसके विना शरीर अच्छी तरहसे नहीं चल सकता, यही नहीं किन्तु शरीर उसके विना टीक नहीं सकता। इस लिये उसे स्वच्छ अन्न जल देना आव-श्यक है। जिस प्रकार अन्नजलसे शरीर दीर्घायुवाला होता है, उसी प्रकार उसकी अव्यवस्थासे शरीर नष्ट होता है। इस लिये इस सम्बन्धमें बहुत कुछ सम्हाल लेनेकी आवश्यकता है। अन्न जलके खानेपीनेसे वात, पित्त और कफ ये तीन दोष प्रकट होते हैं। उनकी न्युनाधिकतासे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। इस लिये

रसोई बनानेवाले व भोजन करनेवालोंको पदार्थोंके गुण दोष अवश्य जान रखना चाहिये। उसमें भी रसोई बनानेवाली स्त्रीको घरके मनुष्योंकी प्रकृति व पदार्थोंके गुण दोष जानना आवश्यक है। वैसे ही पदार्थोंके गुणदोष, पाकशास्त्र, रसायनशास्त्र, व वैद्यकशास्त्र प्रभृतिका आवश्यक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और बड़ोंके पाससे अनुभव प्राप्त कर लेना चाहिये। जिसके शरीरमें वायु अधिक हो उसने वाल, रहल तथा अन्य ऐसे ही वातवर्द्धक पदार्थ नहीं खाना चाहिये, जिसके शरीरमें कफका दोष हो उसने घृत, गुड़, चीनी, सक्कर इत्यादि कफ बढाने वाले पदार्थ नहीं खाना चाहिये और जिसके शरीरमें पित्तदोष अधिक हो उसने मेथी, बेंगन, तेल, मीरच, हींग व बजरी इत्यादि पित्तको कुपित करनेवाले खारे, तीते व गरम पदार्थ नहिं खाना चाहिये। वैसेही कफवात, कफपित्त, व वातपित्त प्रभृति दो २ दोष शरीरमें हो यह भी जानलेना चाहिये। पतिको या घरके अमुक मनुष्यको किस भोजनपर रुचि है, उनकी प्रकृतिको कौन पदार्थ हितकारी है, इन सब बातोंका विचारकर रसोई बनाना चाहिये। प्रथम रसोई बनानेका सामान रसोई घरमें एकत्र कर रख लेना, कोई वस्तु वार २ मांगनेकी या लेनेकी आवश्यकता न पड़े वैसा प्रबंध कर लेना। रसोईके पदार्थोंमें कोई अन्य वस्तु न पड़े इसके लिये उसको ढांक रखना। रसोईके समस्त पदार्थ परिपक्व होनेके पश्चात् उन्हें उतारकर बचेहुए लकड़ी व कोलसोंको पानीसे भीगोकर रखलेना, जिससे दूसरीवार काममें आवेंगे। रसोईकी वस्तुयें तैयार हो जानेके पश्चात् कलईवाले पात्रमें निकाल लेनी चाहिये, खानेके पात्र भी जहांतक हो सके कलईवाले ही उपयोगमें लेने चाहिये। अन्नको अच्छी तरहसे साफकर रसोई बनानी चाहिये। उत्तम प्रकारसे तैयार की हुयी गरमा गरम ताजी रसोईके जीमनेसे शरीर निरोगी रहता है और बल, बुद्धि, शक्ति प्रभृति बढते हैं। इसलिये स्त्रीको उचित है कि अपने इस कार्यको बहुतही सावधानीसे करे व प्रेमसे पति तथा घरके मनुष्योंको भोजन करावे।

३ भोजन—भोजन करनेका स्थान चारों ओरसे स्वच्छ रखना चाहिये। उस स्थानको मनोहर, सुगन्धीमय व आनन्दमय बना रखना चाहिये। भोजन परोसनेके पूर्व ही जलपात्र, नीमक, आचार व चटनी इत्यादि वस्तुयें धर देनी चाहिये। भोजन करनेके लिये जो मनुष्य बैठेहों उनमें भेद नहीं रखना, भोजन करनेके समय शोक, भय व दुःखकी बातें नहीं करनी चाहिये; क्योंकि आनन्दमें रहकर खाया हुआ अन्न तुरंत पच जाता है। शोक तथा भयमें खाया हुआ अन्न विकृतिको प्राप्त होकर स्वास्थ्यको बिगाड़ता है। इस लिये भोजनके समय सावधानी रखनी चाहिये। रसोई

बनानेका व भोजन करनेका स्थान जहांतक संभव हो गुप्त रखना चाहिये। खुराक प्रतिदिन समयपर व पाचन हो सके वैसा लेना। खुराकमें मिष्टान्नकी अपेक्षा सादा उत्तम है। प्रतिदिन एक ही प्रकारका खुराक न बनाकर भिन्न २ प्रकारका बनाना जिससे किसी वस्तुके ऊपर अभाव न हो जाय। भोजन करनेके पश्चात् पान सुपारी, इलायची, लौंग इत्यादि मुखवास खानेके लिये देना। इस प्रकार सबको भोजन कराके पीछे स्वयं भोजन करना। रात्रिको जहांतक संभव हो हलका भोजन करना चाहिये। दिनके भोजन होजाने के पश्चात् घरमें जो संग्रह की हुयी वस्तुयें हो उनकी व्यवस्था करनी चाहिये।

४ संग्रह की हुयी वस्तुओंकी व्यवस्थाः—घरकी उपयोगी वस्तुओंका खरच हो जाय उसके पूर्व ही तीन चार दिन आगेसे पतिको कह रखना। वस्तुयें रखनेका भंडार, रसोई बनानेका स्थान, भोजन करनेका स्थान, समीप २ में व अलग २ रखना। सबको एकत्र रखनेसे या दूर २ रखनेसे अनेक प्रकारकी असुविधायें उत्पन्न होती हैं। अन्न, अचार, सक्कर, घृत, तेल, मसाला इत्यादि समस्त पदार्थ सम्हालकर रखने चाहिये। समस्त वस्तुओंको रखनेके लिये स्थान निश्चित कर रखना चाहिये, जिससे उन वस्तुओंके मिलनेमें विलंब नहो। किसी वस्तुको खुली नहीं रखनी चाहिये। घरकी समस्त वस्तुओंको इस प्रकार रखनी चाहिये जिससे देखनेमें बड़ी मनोहर मालूम हो।

५ शयनगृहकी शोभाः—रात्रिके बारह घंटे शयनगृहमें व्यतीत करने पड़ते हैं इस लिये उसमें सुख व आनन्दसे निद्रा आवे वैसा सब प्रकारके प्रबन्ध करना चाहिये। सोनेका कमरा अलग ही होना चाहिये। उसको बहुत ही स्वच्छ रखना चाहिये। उसकी जालियें खुली रखनी चाहिये किन्तु सोनेके समय हवा शरीरके ऊपर न आवे और दुर्गन्धि न आवे इसकी सम्हाल रखनी चाहिये। शयनगृहको पवित्र स्त्री पुरुषोंके चित्रद्वारा व अन्य मनोहर वस्तुओंके द्वारा सजाना चाहिये। उस घरमें नीति व धर्म के उपदेशवाले उत्तम वाक्य लिखकर लगा रखना चाहिये। शय्या सुन्दर व स्वच्छ रखनी चाहिये और गंध पुष्पादि द्वारा घरको सुगंन्धीमय बना रखना चाहिये। रात्रिमें वस्त्र महीन व स्वच्छ धारण कर पतिको प्रसन्न करना चाहिये, शयन गृहमें पति के पधारतेही वह अपने दिन भरका परिश्रम भूल जाय उस प्रकारसे उसको प्रिय वार्तालापादि द्वारा प्रसन्न कर देना चाहिये। अपने पतिके शयन करनेके पश्चात् स्त्रीको सोना उचित है। शयन गृहको स्वच्छ व आनन्दमय रखनेसे सुखपूर्वक निद्रा आती है।

६ **गृह–वाटिका:**–विज्ञ स्त्रीको चाहिये कि घर के सामने या आसपासमें जूठन या कुडा डाल कर गंदकी न करे। वहांपर एक छोटासा सुन्दर बगीचा बनाना। प्रतिदिन अवकाश के समय खाली पड़ी हुयी भूमिको साफ कर उसमें गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण, अष्टकोण प्रभृति प्रकारकी क्यारियें बनाना। उनमेंसे किसीमें गुलाब, किसीमें मोगरा, किसीमें जूई, किसीमें तुलसी, किसीमें धनिया, किसीमें केतकी, किसीमें मालती, और किसीमें जासूस, इस प्रकार भिन्न २ प्रकार के सुगन्धि पुष्प, शाकभाजी, एवं औषधि लगानी। उन सबको भिन्न २ प्रकारका खाद डालना, सदैव पानी पीलाना व ऊपरसे पानी छींटकते जाना। मध्यमें हो सके तो फुहारेका प्रबंध करना। चारों ओर जाने आनेकी सडक, कमाने व बैठकें बनानी। इस प्रकार नजरबाग बना लेना, जिससे घरकी शोभा बढती है, हवा शुद्ध होती है, स्वास्थ्य अच्छा रहता है, एवं शाक तरकारी, पुष्प व औषधियां तुरंत मिल सकती हैं, इस लिये ऐसा प्रबंध अवश्य करना चाहिये।

७ **लेन देन:**–स्त्रीको लेन देनका काम भी आना चाहिये। इस सद्‌गुण के विना गृहिणीका गृहकार्य अच्छी तरहसे नहीं चल सक्ता। घरका खर्चा आयके अनुसार रखना, आयसे व्यय अधिक नहीं हो इस बातपर ध्यान रखना। यही नहीं किन्तु भविष्यके सुख के लिये प्रतिमास या प्रतिवर्ष खरचा निकाल कर कुछ बचत हो ऐसा करना। जिस वस्तुकी घरमें कुछ जरूरत न हो उस वस्तुको नहीं खरीदना; क्योंकि वैसी अनावश्यक वस्तुमें पैसे खरच कर डालनेसे जब आवश्यक वस्तु लेनेकी आवश्यक्ता पड़ती है, तब पैसे नहीं होनेसे मुख ढीला करके बैठ रहना पड़ता है। उस समय उस अनावश्यक वस्तुको बेच नहीं सक्ते इस लिये लेनदेनमें प्रतिष्ठा रहे वैसी तजवीज रखना। जो वस्तु लेनी हो उस वस्तुका मूल्य दो चार ठिकाने पूछ कर पीछे खरीदना। शीघ्रता कर और दुकानवाला जो मालकी प्रशंसा करे उसे सुन कर या उसपर विश्वास कर नहीं खरीदना। क्यों कि धूर्त दुकानदार अपनी वस्तुका मूल्य अधिक लेनेके लिये उसकी अनेक प्रकारसे प्रशंसा करता है, शपथ खाता है व धर्मकी दुहाई देता है; इस लिये उसके ऊपर कुछ भी विश्वास नहीं करना। जिस वस्तुकी आवश्यकता मालूम हो उसका टीकाउपन व भाव इन दोनोंके ऊपर पूर्ण विचार करके लेना। शौककी व फैसनवाली, विचित्र रंगवाली वस्तु हो, किन्तु टीकाऊ न हो तो उसे नहीं खरीदना चाहिये। जहांतक संभव हो उधार माल कभी नहीं लेना। उधार लेनेसे हिसाबमें गड़बड़ होनेकी संभावना है। धूर्त व्यापारी नहीं ली हुयी वस्तु भी कभी २ लिख देता है। फिर उधार माल लेनेसे व्यापारी अधिक

पैसे लेता है, इत्यादि रीतिसे अनेक प्रकारकी हानियें हैं। भरनेमें, वजन करनेमें, इत्यादिमें ध्यान रखना चाहिये, जिससे व्यापारी कम माल न दे। किसीसे कोई माल उछीना नहीं लेना; क्योंकि अपने पास न हो उस समय वह मांगने आवे और मना करनेसे देनवाले मनुष्यका चित्त अप्रसन्न होता है। फिर लेन देन करनेमें हिसाब जाननेकी आवश्यकता है। हिसाब गुनते न आवे तो सामेवाला मनुष्य ठग जाता है। सारांश कि लेनदेनके कार्यमें अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिये।

८ करकसर:–स्त्रियोंको लेने देनेमें उडाऊ नहीं होना जहांतक सम्भव हो करकसरसे व्यवहार चलाना। जो वस्तु आठ आनेमें मिलती हो उसके जैसी दूसरी वस्तु कुछ भेद होने परभी सात आनेमें मिलती हो और उससे कार्य चल सक्ता होतो एक आना बचे वैसा करना। करकसर करना यह पुरुषकी अपेक्षा स्त्रियोंका प्रधान कार्य है। जिस स्त्रीको करकसर करना नहीं आता उसका घर नष्ट होता है, फिर वह बड़ा धनवान हो तो भी क्या हुआ? "सो शर व एक कसर" एक सो ठीकानेसे आय हो उसके समान एक कसर है। करकसर करके भविष्यके सुखके लिये द्रव्यका संग्रह कर रक्खा हो तो वृद्धावस्थामें सुख मिलता है। यही नहीं; किन्तु कोई खरचा अकस्मात् आ पड़े तो उस समय संग्रह किया हुआ धन काम आता है। इसलिये नित्यके खुराक, पुषाक प्रभृति गृहकार्यके समस्त व्यवहारमें करकसरसे रहना। थोड़ासा अन्न गया तो उसमें क्या हानि है? जूठनमें डालदो, थोडासा धान्य बाहर पड़ा हो भले मुस खा जाते उसमें क्या है? धान्यको साफ करनेमें थोड़ा चला गया तो उससे क्या कम हो जाता है? किसी वस्तुकी खास जरूरत न होतो भी एक दो पैसेकी क्या गुनती है? ले लेना चाहिये। इस प्रकार व्यर्थ व्यवहार कर बिगाड़ नहीं करना। थोड़ा २ करके हिसाब किया जाय तो कुछ दिनमें वही बहुत हो जाता है। स्त्रियोंको समझ रखना चाहिये कि पाई २ की पैदासमेंसे लाखों रुपैये हो जाते हैं और पाई २ की हानिसे लाखों रुपैये नष्ट हो जाते हैं। कोई मजुर चार आना प्रतिदिन पैदा करता हो उसमेंसे प्रतिदिन एक २ आना बचावे तो एक वर्षमें २२–८–० रुपैया बच जाता है और चालीस वर्षमें ९००) जितनी बड़ी रकम बन जाती है। वह मजुर भी एक २ आनेसे एक रकम खड़ी कर सक्ता है। फिर ज्यों २ आवदानी होती जाय त्यों २ सेविंग बेंकमें जमा करते जानेसे भी एक बडी रकम जमा हो जा सक्ती हैं। फिर जब वृद्धावस्थामें कार्य न होसके उस समय जमा किये हुए द्रव्यसे खरचा चल सक्ता है। "जो आया सो खाया और मिलातो मीर नहीं तो फकीर" ऐसी स्थितिसे युवावस्था व्यतित करनेवालोंको वृद्धावस्थामें बहुत दुःख

भोगना पड़ता है। इसलिये घरमें किसी प्रकारका बिगाड न होने देना। भविष्यका विचार करके घरका खरचा करकसरसे चलाना। थोंडे खरचेसे कार्य निकलता हो तो अधिक खरचा नहीं करना। पतिको ललचाकर वस्त्राभूषणमें अधिक द्रव्यका खरचा नहीं कर देना। आभूषणोंमें अधिक द्रव्य रोकनेकी अपेक्षा चाहिये उतनेही आभूषण रखना और दूसरा द्रव्य सूदपर देना जिससे उसमें वृद्धि हो। द्रव्य ही मनुष्यका जीवन है। मनुष्य चाहे मूर्ख हो तो भी द्रव्य होनेसे समझदार कहा जा सक्ता है। द्रव्यहीन विद्वान् मनुष्य भी सत्कारको नहीं पाता। फिर दुःखके समय द्रव्य एक मित्रका कार्य करता है। द्रव्योपार्जनमें कितना दुःख भोगना पडता है इस बातका विचार करना चाहिये। बहुत दुःखसे प्राप्त किया हुआ द्रव्य व्यर्थ खरच नहीं कर देना। देख विचार कर करकसरके द्वारा द्रव्यका संग्रह करना; किन्तु स्मरण रखना कि, **अंतमें लोभ यह पापका मूल है**। इसलिये अतिलोभ नहीं करना। जिस प्रसंग पर जितना जहांपर व्यय करना पड़े उतना वहांपर करना चाहिये। यदि आवश्यक खरचेमेंभी लोभ करके धर्म कर्म एवं परोपकारमें कृपणता की जाय तो पीछे रहा हुआ धन कौन जाने कौन खावेगा। इसलिये योग्य व्यवहार करते हुए साथही भविष्यकाभी विचार करना चाहिये। केवल अपने पतिकी कमाई पर आधार नहीं रखकर अवकाशके समयमें घरमें बैठे हुए जो कार्य हो सके वह करके कुछ द्रव्योपार्जन करते रहना चाहिये।

९ **गृहकार्यः**—घरके कार्यमेंसे निवृत्त होकर कुछभी हुन्नर उद्योग करके अपने पतिकी सहायता करनी चाहिये। कमानेवाला एक पति हो और खानेवाला बहुत हो तो पतिको बहुत दुःख भोगना पड़ता है। इसलिये जहांतक संभव हो समयकी करकसर कर अवकाशका अवसर देखकर उसमें कुछ भी परिश्रमकर पतिकी कमाई में और घर खरचमें सहायता करनी चाहिये। स्त्रियोंका यही परम धर्म है। पतिका योग्य मित्र होना यह स्त्रीका प्रधान कार्य है। इसलिये उसने पीसना, कूटना, सूतकांतना, भरना, सीना, मृत्तिकाके खीलौने बनाना, टोपीयें बनाना, गलबंद मौजे बनाना, इत्यादि उपयोगी कार्य कर घरमें बैठे २ कुछ द्रव्योपार्जन करलेना चाहिये। ऐसा नकर पैरपर पैर चढाकर आलसी बन बैठे रहना, या सो रहना यह दरिद्रीका काम है। घरमें बैठ कर कुछ कार्य करना इसमें कुछ हानि नही है। हानि तो चोरी या व्यभिचारमें है। विज्ञ स्त्रियोंको चाहिये कि व्यर्थ समय नहीं व्यतीतकर गृहकार्यकर अवकाशके समयमें दो पैसा योग्य व्यवसाय कर प्राप्त करे। अंग्रेज लोगोंकी स्त्रियां भी घरमें बैठकर मौजे, गलबंद प्रभृति बननेका कार्य करती हैं और घरके मनुष्योंके कपड़े हाथसे सी लेती

है। बाहरसे भी दो पैसेकी आवदानी हो वैसा कार्य करती है। पीसने कूटनेके कार्यकी अपेक्षा सीने–परोनेका कार्य अच्छा है। जिस कार्यसे द्रव्य अधिक मिले ऐसा कार्य शिखकर घरमें बैठे हुए नीतिपूर्वक करना। जो स्त्री कार्य–रोजगार करना नहीं जानती वह कठिनतासे मजदूरी कर अपना गुजरान चलाती है। कदापि पति मर जाय तो गरीब स्त्रीको गुजरान चलानेका समस्त भार अपने ऊपर आपड़ता है। अब यदि वह उपयोगी कार्य करना जानती है तो सुखसे इज्जतके साथ कैसे भी करके गुजरान चलाती है; किन्तु जो स्त्री कोई द्रव्योपार्जन हो वैसा कार्य नहीं जानती वह भविष्यमें दुःखी होती है और कठिन मजदूरी करके उदरपोषण करती है। कदापि वैसा करनेसे भी पेट न भरे तो कुकर्मकर अपने जीवनको नष्ट करती है। जो भविष्यका विचारकर प्रथमसे उपयोगी कार्य सिखी हुयी रहती है वह अपने पतिव्रत धर्मकी रक्षाकर नीतिपूर्वक धर्ममार्गसे कार्य–व्यवसाय कर सुखपूर्वक गुजरान चलाती है। इसलिये स्त्रियोंको चाहिये कि उपयोगी कार्य सिखकर पतिको सहायता करें।

१० **हिसाब लिखना:**–स्त्री यह गृहराज्यकी मन्त्री है; इस लिये उसे आय-व्ययका हिसाब लिखना अवश्य सिखना चाहिय। हिसाब यह आयव्ययके अनुमानको जाननेके लिये दीपक है। अतएव किस बातमें कितना खरचा हुआ? इस मासमें या वर्षमें किस विषयमें अधिक खरचा हुआ? इतना अधिक खरचा होनेका क्या कारण है? उस कारणको देखकर यदि अयोग्य खरचा हुआ हो तो फिर उतना नहीं करना इस बातकी तजवीज करना सूझता है। फिर आवदानी कितनी है? किस बातमें कितनी आवदानी हुयी? अधिक आवदानी किसमें हुयी? और हुयी तो किस प्रकार इत्यादि मालूम होनेके साथ २ फिर उससे अधिक आवदानी करनी सुझती है। आयव्ययकी जोड़ करते लाभ हुआ या हानि? लाभ हुआ तो कितना? व हानि हुयी तो कितनी? हानि होनेका कारण क्या है? उस कारणकी शोध कर वैसा न करनेकी बात सूझती है। यदि हिसाब न रक्खा जाता हो तो यह सब अन्धकारमें रहता है व अन्धकारमें रहनेसे बहुत हानि उठानी पड़ती है। आयव्ययका अनुमान हो जानेसे व्यय करनेमें सावधानी होती है। अधिक खरचा करनेका मन नहीं होता। हिसाब नहीं लिखनेसे ज्यों आता है, त्यों खरचा हो जाता है। मन किसी प्रकारका खरचा करनेमें पीछा नहीं करता व भविष्यका मार्ग नहीं सूझता। फिर हिसाब लिखनेसे दूसरा यह लाभ होता है कि हम लोग कई मनुष्योंके साथ सम्बन्ध रखते हैं तो उनमेंसे किसको कितना व कब दिया और कब लेनेदेनेका निश्चय हुआ है यह जाननेमें आता है। फिर कौन वस्तु कब व कितनी लाये थे वह कितने समयतक चली थी।

पूर्वकी अपेक्षा अधिक खरच हुआ या कम और उसका कारण क्या है ? नगद पैसा देकर कोई वस्तु किसीसे लाये हो उसका हिसाब लिखा हो तो सामनेवाला मनुष्य बदमासीकर दूसरीवार नहीं मांग सकता । फिर हरएकके पास क्या लेना व क्या देना है यह भी मालूम होता है । वर्ष समाप्तिमें आयव्ययकी जोड़कर बाकी निकालनेसे लेने देनेमें सूझ पड़ती है । इस प्रकार हिसाब लिखनेसे अनेक लाभ होते हैं; इस लिये आयव्ययके हिसाब रखनेमें प्रमाद नहीं करना चाहिये ।

११ **पशुपक्षीका पालनः**—अपने घरके पशुपक्षियोंकी प्रतिदिन संध्या सुबह सम्हाल लेना यह भी स्त्रियोंका कार्य है । उनके रहनेके स्थानको जहांतक हो स्वच्छ रखना । वहांपर गंदकी नही रहने देना पशुओंको घास डालना व पानी पीलाना। गरमीकी ऋतुमें उन्हें पानीसे न्हवाना चाहिये । उनके शरीरके मैल व कुड़ेको निकाल देना । उन्हें किसी प्रकारका रोग हो तो किसी अनुभवी मनुष्यको पूछकर दवा करनी। वे जिस प्रकार अच्छे रहे वैसी तजवीज करनी । पशुपक्षियोंको खीलाने पीलानेमें बेपरवाह नहीं रहना; ऐसा समझना कि वे बिचारे हमारे अधीन पड़े हुए हैं और वे मूक हैं । उनका पालन पोषण करना यह हमारा परमधर्म है । उनकी सम्हाल लेनेका आधार केवल दासदासियोंके ऊपर नहीं रखना । समय २ पर स्वयं जाकर उनकी सम्हाल न लेनेसे वे बिचारे दूसरेके हाथसे दुःखी होते हैं, फिर भी हमें वे कह नहीं सकते । अंतमें वे कष्ट पाकर मरते हैं, जिसका पाप हमें लगता है । यदि हमें उनके ऊपर प्रेम रखते हैं तो वे भी हमारे पर प्रेम रखते हैं । यदि हम उनके ऊपर क्रोध करते हैं तो वे हमारे क्रोधको जानकर जहांतक संभव हो दूर रहते हैं । फिर वे हम लोगोंको कितने उपयोगी है इस बातको सब कोई जानते हैं । इसलिये यदि व किसी समय विपरीत चले तो भी दया तथा धैर्य रखकर उनको अपने वश करना, किन्तु शीघ्रता कर उन्हें मारना नहीं । उनका सब प्रकारसे पालन पोषण व रक्षण करना यह पालन करनेवालेका परमधर्म है ।

१२ **अवकाशका समयः**—स्त्रियोंको अपने गृहकार्य करनेके उपरांत जितना अवकाशका समय मिले उसमें उपयोगी हुन्नरका कार्य करना, मनरञ्जन संगीत गाना व कवितायें पढकर चित्तको आनंन्दमें रखना । प्रभुकी भक्ति व स्तुति करना । ईश्वर सम्बन्धी, नीति सम्बधी व संसार व्यवहारमें उपयोगी हो वैसा ज्ञान प्राप्त करना । उत्तम २ सम्वादपत्र, मासिकपत्र व उत्तम उपदेशवाली पुस्तकें पढनी । यदि पढना न आता हो तो दूसरेके पास बंचाकर अपने ज्ञानको बढाना । खुल्ली हवामें पतिके साथ जङ्गलमें फिरनेके लिये जाना । कुदरती सौन्दर्यको देखकर आनन्द प्राप्त करना । पतिके

कार्यमें सहायता करनी। नवीन शोधमें मन लगाना। शरीरको अपने वशमें रखना। अपने पतिको किस प्रकार आराम व सुख दिया जासके व पति अपने कार्यको पूर्ण-कर श्रमित हो घरपर आवे, तब उसको किस प्रकार प्रसन्न करना इस बातका विचार करते रहना चाहिये। बालकोंको पढाना, वे आज नवीन क्या पढे हैं यह देखना, और पतिके पाससे स्वयं नवीन ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिये। अवकाशके समय ये सब कार्य करने चाहिये। समय अमूल्य है, गया हुआ समय फिर नहीं आता। जितना समय गया उतना आयु कम हुयी। माता जानती है कि मेरा बालक बड़ा होता है किन्तु आयु कम होती है यह वह नहीं जानती। उससे जितनी आयु सत्कार्य में गयी उतनी अच्छी गयी। आयुका जो समय व्यर्थ गया उसे हानि समझनी चा-हिये। जो लोग समयका मूल्य नहीं जानते वे पीछेसे पश्चात्ताप करते हैं। इसलिये समयको अमूल्य समझकर अवकाशका समय व्यर्थ नहीं व्यतीत कर उसका सदुप-योग करते रहना यह विज्ञ स्त्रीका परम कर्तव्य है।

प्राचीन स्वयंवर पद्धति।

स्वयंवर–अपनी इच्छानुसार पतिको पसंद करके विवाह करना उसे स्वयं-वर कहते हैं। यह रीति प्राचीनकालमें अत्यन्त चलती थी, जिससे दम्पती–स्त्री पुरुष अत्यन्त सुखी होते थे। पसंदगी करनेमें कोई रूपके ऊपर, कोई होशियारी व शूरवीरताके ऊपर, कोई चीठियोंमें काव्य, समस्यायें लिख भेजकर अपनी विद्वता व चतुरताको सिद्धकरे उसके साथ व कोई रूप, गुण व विद्वान् वरकी शोध करके लानेके लिये देश देशान्तरमें अपने गुणज्ञ गुरुको भेजकर समाचार मंगाते थे। उसमें जो योग्य मालूम हो उसे कन्या पसंद करतीथी। इत्यादि प्रकारसे पति पसंद करनेका कार्य कन्यायें करतीथी। कन्याका पसंद किया हुआ वर मातापिताको योग्य मालूम होता तो उसके साथ उसका सम्बन्ध कर देते थे। वे उसमें आडे नहीं आते थे। फिर कोई तो वर पसंद करनेके लिये अ-पने यहां स्वयंवर मण्डप रचाकर उसमें देशदेशान्तरोंके विद्वान्, धीरवीर, गुणवान व प्रसिद्ध पुरुषोंको निमंत्रण करतेथे। उन्हें योग्य आसन व मानपान देकर सत्कार करते थे। फिर उसमें जिस प्रकार परीक्षा लेनेका प्रथम प्रबन्ध रहता था तदनुसार किया जाता था। उसमें निश्चित की हुयी परीक्षामें जो उत्तीर्ण होते उन्हें

कन्या अपनी वरमाला पहिनाती थी। इस प्रकार गुणदोषकी परीक्षा लेकर कन्या प्रसन्नतासे अपने सदैवके साथीके साथ प्रेमग्रन्थि बांधती थी। जो ग्रन्थि सम्पूर्ण जीवनमें नहीं छुटती थी। अर्वाचीन समयमें माता पिता जिस प्रकार अपनी कन्याकी इच्छाको विना जाने ही चाहे वैसे वरके साथ उसका विवाह करा देते हैं और उन्हें जीवन भरके लिये दुःखी बनाते हैं वैसा पूर्व समयमें नही था। उस समय कन्याके लिये योग्य पतिकी शोधके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया जाता था। वर्तमान समयके अनुसार उनकी पसंदगीका अधिकार नहीं छीना गया था। उनकी इच्छा विरुद्ध कभीभी विवाह नहीं किया जाता था। उनकी जहां इच्छा हो वहां उसका विवाह कराया जाता था। सुख दुःखमें साथी समझकर निभाव तथा गुजरान चलावे व सद्गुण सम्पन्न हो ऐसा वर देखकर उसके साथ अपनी कन्याका विवाह करना यह माता पिताका कार्य है; किन्तु वह स्वतः पतिकी शोधकर विवाहके योग्य हो वैसी पढा लिखाकर योग्य बनाना व योग्य होनेपर स्वयं पतिकी शोधकर विवाह करे उसमें मातापिताकी सम्मति लेनी चाहिये व माता पिता भी उसे योग्म सलाह व सहायता दे। प्राचीनकालमें यह रीति चल रही थी इस बातको हरएक सज्जन जानते हैं। सीताजी रामचन्द्रके साथ, दमयन्ती नलकी साथ, द्रौपदी अर्जुनके साथ, और रुक्मिणी श्रीकृष्णके साथ स्वयंवरसे व्याही थी। सीताजी व द्रौपदीजी युद्ध कलामें चतुरता व बहादुरी प्रभृति गुणके ऊपर मोहित होकर और दमयन्ती तथा रुक्मिणी रूप व गुणके ऊपर मोहित होकर व्याही थी।

इस प्रकार परस्परकी इच्छासे मिले हुए दम्पती कैसे सुखी होते थे यह हम उनके चरित्रके ऊपरसे जानते हैं। उनमें परस्पर प्रेम अचल रहता था। वह प्रेम चाहे वैसे संकटके समयमें भी नहीं जाता था। घरमें सब कोई संपसे रहते थे व परस्पर सुख दुःखमें भाग लेते थे। यही नहीं; किन्तु दुःखमें भी त्याग नहीं कर आश्वासन, हिम्मत व धैर्य देते थे। घरके बड़ोंकी मर्यादा रखते थे। स्त्रियां पतिके निमित्त प्राण देनेको तैयार होती थी। सदैव उनके सुखसे सुखी व उनके दुःखसे दुःखी रहती थी। देखिये! सीता, द्रौपदी व दमयन्ती प्रभृति सतियोंने पतिके लिये कैसे २ दुःख भोगा है। यह सब प्रताप इच्छानुसार पतिका पसंद कर स्वयंवरसे विवाह करनेका समझना चाहिये।

उपर्युक्त स्वयंवरकी रीति बंद होनेका कारण विधर्मी अत्याचारी राजाओंका बल था जिससे विघ्न उपस्थित होने लगे। वैसे ही कई राजा लोग कन्याके साथ विवाह करनेकी लालसासे आपसमें लड़ने लगे व शास्त्र तथा धर्म नीतिकी अज्ञानता चारों ओर फैल

गयी । इत्यादि कारणोंसे स्वयंवरकी सर्वोत्तम रीति बंद हुयी व आधुनिक समयकी अनीष्ट प्रथा प्रचलित हुयी । विना विशेष विचार किये ही मातापिताओंने कन्याओंका विवाह कर देना शुरु किया, और सत्यप्रेम चला गया । सौमें पांच स्थान पर सच्चा प्रेम रहा उससे क्या हुआ ? वर्तमान समयमें ईश्वरकी कृपासे अंग्रेज सरकारका दया व न्यायपूर्ण राज्य हुआ है । उनकी ओरसे किसी प्रकारका भय नहीं है। उसकी कृपासे स्थान २ पर पुत्र पुत्रियोंको पढनेके लिये शालायें स्थापित हुयी है। इसलिये उनकी योग्य उमर होने तक उन्हें योग्य शिक्षा देनेका प्रबन्ध करना । ज्ञानवान होनेके पश्चात् प्राचीन प्रसिद्ध सुख देनेवाली स्वयंवर पद्धतिसे किम्वा पुत्रियोंकी सम्मति लेकर योग्य पुरुषके साथ विवाह कर वे सुखी हो ऐसा कीजिये । स्वयंवरकी प्रथा चालु करनेमें किसी भी प्रकार शास्त्रका बाध नहीं है। देखिये ! अपनी उस प्राचीन रीतिके अनुसार अन्य युरोपादि देशके लोग भी स्वयंवरकी पद्धतिसे विवाह कर सुखी होने लगे हैं । फिर क्या ? हम अपनी प्राचीन उत्तम आर्यनीतिको छोड़ देंगे ? कभी नहीं । हे आर्यगण ! अर्वाचीन समयकी खराब रीति नीतिको छोड़ दीजिये, प्राचीनकालकी उत्तम सुख देनेवाली नीति रीतिको ग्रहण कीजिये जिससे दम्पतीका संसार प्रेममय बने ।

प्राचीन विवाहपद्धति ।

इस सृष्टिमें संसारका सत्य सुख गृहस्थाश्रमसे मिल सकता है । वह गृहस्थाश्रम स्त्री पुरुषके पवित्र सम्बन्धसे होता है । वह पवित्र सम्बन्ध विवाहके नांवसे परिचित है । विवाहकी रीति सब देशोंके लोगोमें स्वाभाविक रीतिसे रहती है । जिन लोगोंकी विवाहकी रीति उत्तम प्रकारकी है, उनका संसार सब प्रकारसे सुखी होता है । प्राचीन समयमें आर्योंकी रीति नीति सब प्रकारसे श्रेष्ठ थी व उससे वे सब प्रकारसे सुखी थे ऐसा अनेक शास्त्रोंके प्रमाणसे सिद्ध होता है । वे वर्तमान समयके समान अत्यत बाल्यावस्थामें बालकोंके विवाह नहीं करते थे; किन्तु जब पुत्रपुत्री पढ लिखकर समझदार होते थे व उनके यथार्थ गुणदोष जाननेमें आते थे तब विवाह करते थे । विवाह कालके सम्बन्धमें **वागभट्टने** कहा है कि, १६ वर्ष तककी बाल्यावस्था, ७० वर्ष तककी मध्यावस्था और उसके उपरान्त वृद्धावस्था समझी जाती है; १६ वर्षकी वयतकमें धातु-वीर्य एवं पराक्रमकी वृद्धि होती है, ७० वर्ष तक

समान रहते हैं और उसके पश्चात् क्षीण होते हैं। **आश्वलायन** १६ वर्षकी वय तककी स्त्रीको बाला, ३० वर्ष तककी स्त्रीको तरुणी, ५५ वर्ष तककी स्त्रीको प्रौढा व उसके पीछेकीको प्रगल्भा मानते है। **अथर्ववेदमें** कहा है कि ब्रह्मचर्यवाली युवती कन्या युवान पतिको प्राप्त हो। **मनुमहाराजने** कन्याके लिये ब्रह्मचर्य कममें कम १६ वर्ष और अधिकमें अधिक २५ वर्षकी वयतक निश्चित किया है और पुरुषके लिये २५ का और अधिकमें अधिक ४८ का निश्चित किया है। जहांतक बालकी ब्रह्मचर्यमें रहती है वहांतक उसका कन्यापन नष्ट नहीं होता। वेदमें और भिन्न २ शास्त्रमें कन्या १२ वर्ष तक बालिका समझी जाती है। उस अवस्थामें उसका विवाह होना योग्य माना है व शारीरिक शास्त्रकी भी यही सम्मति है। छोटी वयमें विवाह करनेका निषेध किया है।

अर्वाचीन समयमें ऋतु, हवा और देशकाल देखते रजोदर्शन होनेका समय १३ से १६ वर्ष तकमें रहता है और किसीको किसी समय विलंबसे भी आता है। इस लिये १२ वर्षकी वय तकमें विवाह करना यह उचित है; किन्तु समागमका समय तो रजोदर्शन होनेके पश्चात् ही होना चाहिये। अनेक महात्माओंके विचार देखते प्रथम बड़ी उमरमें ही विवाह होता था वह उचित था। क्योंकि बड़ी उमर होनेसे स्त्री पुरुषोंके गुण दोषकी परीक्षा हो सकती है। गुणदोषकी विना परीक्षा किये विवाह करना यह भी अत्यन्त हानिकर है। वर्तमान समयमें जिस प्रकार पुत्रपुत्रीके गुणदोषकी परीक्षा विना किये ही विवाह किया जाता है उस प्रकार प्राचीन कालमें नहीं था। प्राचीन कालमें अनेक प्रकारसे वरवधूकी परीक्षा कर विवाह किया जाता था। विवाह संस्कार ईश्वर तथा अग्निकी साक्षीमें किया जाता था और इस समय भी यह रीति अनेक अंशमें चल रही है। उस प्रकार जो विवाह सम्बन्ध होता है वह कभी नहीं छूटता। ऋग्वेदसंहितामें लिखा है कि कन्याके ऊपर अग्नि नामक देवताका अधिकार है। उस अग्निकी ओरसे कन्याका पिता अपनी कन्याका हाथ जामाताके हाथमें देते हुए कहता है कि;—

"धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्येयं त्वया।" धर्म, अर्थ व काम इस त्रिवर्गमें किसी भी स्थानपर इसे छोड़नी नहीं। उसका उत्तर जामाताकी ओरसे मिलता है कि, **"नातिचरामि"** मैं नहीं छोडुंगा। तदनन्तर वरवधू दोनों परस्पर प्रतिज्ञा करते हैं जो इस पुस्तकके अन्य भागमें दी गयी हैं; इस प्रकार देवोंके समक्ष मन्त्रोच्चारपूर्वक बंधा हुआ सम्बन्ध कीसीसे छूट नहीं सक्ता। स्मृतियोंमें विवाह आठ प्रकारके कहे हुए हैं,

किन्तु इस समय प्राजापत्य विवाह प्रधानतासे होता है। "आप दोनों साथमें रहकर धर्मका आचरण करना" ऐसा कहके वरका सत्कार कर जो कन्यादान किया जाता है वह प्राजापत्य विवाहका प्रकार है। शास्त्रोंकी रीतिसे, वैदिक मन्त्रोंसे विवाह किया जाता है उसका कारण यह है कि इससे वर वधूके अन्तःकरण एक दूसरेके साथ प्रेमरूपी रैसमकी ग्रन्थिसे इतने दृढ बंधते है कि अपने प्रीतिपात्रको जो पदार्थ अनुकूल, प्रतिकूल वही पदार्थ अपनेको भी अनुकूल व प्रतिकूल मानते हैं। फिर चाहे वैसी विपति आपड़े तो भी वह छुट नहीं सकती। दुःख व विपत्तिमें प्रेमकी ऐसी ग्रन्थि बंधती है कि अपने प्रीतिपात्रको जो पदार्थ अनुकूल, प्रतिकूल वही अपनेको अनुकूल, प्रतिकूल ऐसा मानते हैं। ऐसी अनुकूलताके लिये शरीरकी भी परवाह नहीं की जाती। जिस प्रकार पार्वतीजीने शिवजीके लिये किया था। अच्छी तरहसे परीक्षा कर एक दुसरेकी पसंदगीसे सम्बन्धकर शास्त्रोंकी विधिसे जो विवाह होता है उसीसे सत्य प्रेम होता है; किन्तु वर्तमान समयमें परीक्षाकर परस्परकी पसंदगीसे सम्बन्ध करना व वैदिक मन्त्रोंसे विवाह करना यह बात तो दूर रही किन्तु पौराणीक मन्त्रोंसे भी यथार्थ रीतिसे विवाह कम स्थानोंमें होता है। वर्तमान समयमें विवाहविधि करानेवाला पुरोहित अज्ञानतासे चाहे वैसे श्लोक पढकर हाथ मिला विवाह करा देते हैं। वैसे ही जहां शास्त्रोक्त विधिसे विवाह किया जाता है वहां भी विचित्र बातें देखनेमें आती हैं। जो शब्द पतिको निजको बोलनेके हैं उसमें भी पति तो चुप रहता है और पुरोहित बोलता जाता है। जैसे कि "**मह्यं त्वा दुर्गार्हपत्याय देवाः**" गार्हपत्य अग्निकी सेवाके लिये देवताने तेरा मुझे दान किया है, इन शब्दोंकाचारण पुरोहितके करनेसे वह कन्या पुरोहितके साथ व्याही गयी मानी जाती है। फिर "**मयापत्याजरष्टिर्यथा स**" मुझ स्वरुप पतिके साथ स्थिर हो "**मयापत्या**" "मैं पति" ये शब्द भी पतिको बोलना चाहिये; किन्तु अज्ञानताके कारण पुरोहित बोलता है जो कितना अनुचित है। ऐसी शास्त्रक्रियासे मिली हुयी जोड़ीमें पूर्ण प्रेम कहांसे हो? उक्त समयपर तो वरवधूको परस्पर ही बोलना चाहिये। इस लिये वर्तमान समयमें जिस प्रकार कई लोग कुछ २ कण्ठकर रखते हैं उस प्रकार विवाह संस्कार होनेके समय बोलनेके मन्त्र या उसका अर्थ कण्ठकर रखना चाहिये और वरकन्याने उन्हें विवाहके समय परस्पर बोलना चाहिये। पुरोहितने तो उस प्रसंगपर बोलनेकी सूचना ही देनी चाहिये। जो लोग धर्मके ऊपर सच्ची श्रद्धा रखनेवाले हैं और जो प्राचीन पद्धतिसे विवाह सम्बन्धसे एकत्र होकर सुखी होना चाहते हैं उन्होंने प्राचीनकालकी मूलपद्धतिके अनुसार योग्य उम्मर होनेपर विवाह संस्कार करना चाहिये।

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगं
श्री वीरेन्द्र के सम्
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला।
जलविद सखा—(ज
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेज
सम्पादिका थीं। पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नात
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे।
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमे
यद्यपि आर्य प्रति
थी, किन्तु उसके मुखप
आरम्भ हुआ। साप्ता
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूतान
रियासतें) तक विस्तृत
आर्यसमाज की धार्मिक,
बना।

पत्नीरूपसे कैसी कन्याको पसंद करना चाहिये ?

इस संसारको सुखरुप बनानेके लिये उत्तम स्त्रीकी आवश्यकता है। शीघ्रता-कर जैसी तैसी कन्याके साथ विवाह कर देनेसे पुरुषका सम्पूर्ण जीवन नष्ट हो जाता है। केवल एक दिनके सुखके लिये लोग शाक भाजीको भी बहुत कुछ देखकर लेते हैं; फिर यह सम्पूर्ण जीन्दगीके सुखका सवाल है। अतः अवश्य कन्याकी परीक्षा करके उसके साथ विवाह करना चाहिये। वर्तमान समयमें यह सब अन्धकारमें पड़ा हुआ है जिससे चाहिये वैसा संसारसुख नहीं मिलता, प्राचीन समयमें आर्य-लोग कन्याकी परीक्षा करनेके पश्चात् योग्य मालूम होनेपर उसके साथ विवाह करते थे। **वात्स्यायनने** कहा है कि, अपनी ज्ञातीकी जो कन्या दुसरेके साथ विवाहित नहीं हुयी है उसके साथ शास्त्रविधिसे विवाह करनेसे पुरुषको धर्म, अर्थ, पुत्र, पुत्री, सम्बन्धी, स्वपक्षवृद्धि, और रतिसुख ये छ बातें प्राप्त होती हैं। **कन्या कैसी पसंद करनी ?** उत्तम कुटुम्बकी, जिसके माता पिता दोनों जीवित हों, पुरुषसे छोटी हो, जिस कुटुम्बके समस्त मनुष्य एक दूसरेके साथ संपसे रहते हों, जिसके माता पिताका कुटुम्ब बड़ा हो, स्वरुपवती, बुद्धिमती, पुण्यवती, पठित, शान्त, नम्र, उद्योगी, मधुरभाषिणी, इत्यादि सद्गुणवाली होनी चाहिये और शरीरके ऊपर शुभ चिन्हवाली होनी चाहिये। उसके दांत, नख, कान, नेत्र व स्तन ठीक होने चाहिय, न्यूनाधिक नहो और निरोगी होनी चाहिये। **बृहत्संहितामें** लिखा है कि, जिस स्त्रीका ऊपरका ओष्ट, अधिक उंचा रहता है वैसी स्त्री विशेष करके झगड़ालु रहती है। सामान्यरुपसे देखा जाय तो जो स्त्री कुरुपा रहती है वह विशेष करके दुर्गुणी रहती है और जो स्त्री स्वरूपसे सुन्दर रहती है वह विशेष करके सद्गुणी रहती है। कहा है **गोटमूखने** कि, पुरुषने ऐसी स्त्रीके साथ विवाह करना कि जिस स्त्रीके साथ विघाह करनेसे स्वयं सुखी होगा, ऐसा वह समझता हो और अपने मित्रोंकी सम्मतिसे वह विवाह कर सकता हो, फिर जिस कन्याके ऊपर मन तथा दृष्टिका आग्रह हो, उस कन्याके साथ विवाह करनेसे सुखी होता है। अपनेसे गरीब या श्रीमन्त कुटुम्बकी कन्या भी लेनी उचित नहीं है। कदापि लेनी पड़े तो भी उनको अपनेसे गरीब या श्रीमन्त नहीं समझकर समान ही समझनी चाहिये। अपने

पड़ोसमें भी विवाह सम्बन्ध नहीं करना। क्योंकि उससे आपसमें प्रेमकी न्यूनता होनेकी संभावना है। सम्बन्ध बांधनेका विचार करनेके पश्चात् विवाह करनेके लिये तैयार हुए पुरुषके ऊपर कुमारीकाका प्रेम है या नहीं, यह समझनेके चिन्हके सम्बन्धमें **वात्स्यायनने** इस प्रकार कहा है, यदि कुमारीका पुरुषके सामने संकुचित हो, किम्वा पुरुषकी दृष्टि उसकी दृष्टिके साथ मिलनेपर वह नीचा शिर कर दे तो जानना कि उस कुमारीकाका उस पुरुषके ऊपर प्रेम है। (२) फिर यदि वह कुमारीका उस पुरुषके समीपमें रहनेकी इच्छा बतावे एवं उसके मित्रोंकी ओर वह मित्रभाव बतावे तो समझना कि उसका उस पुरुषपर प्रेम है। (३) यदि वह कुमारीका अपने मस्तकके बालोंके पुष्प उस पुरुषको दे और उस पुरुषके भेजे हुए पुष्पको अपने बालोंमें लगावे तो समझना कि उसका उसके ऊपर प्रेम है। फिर यदि कन्याके केश लम्बे व काले हो, मुख चन्द्रके समान हो, नाभि दक्षिणावर्त नामके शंख जैसी हो, मतलब बीचमें गहरी हो, शरीरका रंग सुवर्णके जैसा पीला चमकदार हो, दन्त सुन्दर अनारकलीके समान हो, जीसके शरीरकी त्वचा कोमल हो, पैर सुकोमल हो, जंघायें हाथीकी सौंढके जैसी गोलाकार हो और उसके ऊपर बीलकुल बाल नहो ऐसे चिन्हवाली कन्याके साथ विवाह करना योग्य है।

कैसी कन्याके साथ विवाह नहीं करना? जिस कन्याके ऊपर, तन, मन एवं दृष्टिका प्रेम न बंधता हो उसके साथ विवाह नहीं करना। फिर निद्रा वश हुयी, शयन करती हुयी, व विवाहके समय भगनेवाली, जिसका नांव अकल्याण सूचक हो, छीपा रक्खी हो, दुसरेके साथ विवाहकी बात तक हो चुकी हो, पैर वक्र हो, शरीरका पीछेका भाग कुंधा हो, जिसका कपाल ऊंचा हो, धर्मक्रियाके सम्बन्धमें अपवित्र हुयी हो, व्यभिचारिणी हो, रजोदर्शन आ गया हो, सगर्भा हो, भगिनी रूपसे मानी हुयी हो, बहुत छोटी हो, जिसके हाथ पैर सुख रहे हो, जिसका नांव नदी किम्वा वृक्षके नामसे हो, जो निन्दापात्र हुयी हो, जिसके नांवके उपान्त्य वर्णमें "ल" और "र" अधीक आते हों, वैसी कन्याके साथ विवाह नहीं करना चाहिये। वैसे ही क्षय, अर्ष, अपस्मार, कुष्ट प्रभृति रोगी मनुष्योंके वंशमें उत्पन्न हुयी हो और अधिकांगी, न्यूनांगी, रोगिणी इत्यादि दोषवाली कन्याके साथ विवाह नहीं करना चाहिये। वैसे ही जिस कन्याके शिरके बाल लाल रंगके हो, नेत्र मण्डलाकार एवं मांजर हो, जिसकी कुक्षीमें, छातीपर, दोनों पार्श्वोमें और जंघामें अधिक बाल हो, दोनों ओष्ट बड़े हों, शिरके बाल उंचे व सब पीले हो, जिसके पैरकी कनिष्ट अंगूली व अंगूठा चलनेके समय पृथ्वीका स्पर्श न करते हों, जिसके चलनेपर पृथ्वीपर

आवाज होती हो, जिसकी पैरकी पैनीयें अधिक मोटी हो, जंघाके ऊपर अधिक बाल व शिरायें मालूम होती हो, किम्वा अधिक मांसके कारण विचित्रसी मालूम होती हो, पेट गागरकासा हो, जिसकी नाभी छोटी हो, कंधा व कंठका प्रदेश छोटे हो, जिसके गालके ऊपर कृष्णता मालूम होती हो, जिसका पेट बड़ा किम्वा काला हो, ओष्ट लम्बे व उंचे हो, फिर जिसके ओष्टके ऊपर बाल हों, कान बड़े हों, दांतके नीचेके भागमें मांस उठाहुआ हो, जिसका शरीर अधिक लम्बा हो, हाथ कौएके पैरके जैसे या नाहरके चरण जैसे हो, जिसके अंग सूख गये हों, रूक्ष मालूम होते हो शिराओंसे पूर्ण हो, नेत्र गहरे हों, आकार व आचरण खराब हो, जिसके पैर मोटे, रूक्ष व टहड़े हो, पैरकी अंगुलिये अलग २ हो, पैरका रंग काला हो, ऐसे चिन्हवाली कन्याके साथ विवाह नहीं करना। फिर अपने कुलकी कन्याके साथ विवाह करनेमें भी दोष लगता हैं। इसलिये वह नहीं करना। कुलकी कन्याके साथ विवाह करनेसे प्रजा अशक्त व निर्बल उत्पन्न होती है। क्रमशः प्रजा कार्यहीन होकर वंशका ध्वंस होता है। इस समय स्पेन राज्यके राजवंशमें बहुतसे मनुष्य अपनी भगिनीकी पुत्री व भ्राताकी पुत्रीके साथ विवाह करनेके कारण अत्यन्त अशक्त हो गये हैं और उसी दोषसे वहांपर पोर्टुगीझ धनवान लोगोंके वंशमें भी मूर्ख प्रजाकी उत्पत्ति हुयी है। अंग्रेजोंमें व कुछ मुसलमानोंमें भी समीपके ऐसे सम्बन्धसे हानि देखनेमें आती है। हिन्दुलोग बड़ेही भाग्यवान है कि आर्य शास्त्रकारोंने इस सम्बन्धमें बहुत सूक्ष्म विचार व शोधकर ऐसे नियम बांधे हुए हैं कि उन नियमानुसार अभीतक हिन्दु लोगोंको चलना पड़ता है। कन्याके सम्बन्धमें उपर्युक्त विषयोंका विचार करना चाहिये। कन्याकी दैव परीक्षा किये विना कभी भी सम्बन्ध निश्चित नहीं करना चाहिये। कन्याकी दैव परीक्षाके लिये आगे इसी पुस्तकमें लिखा गया है।

पतिरुपसे कैसे पुरुषको पसंद करना चाहिये ?

प्राचीन कालमें स्त्रियोंको अपने लिये पति पसंद कर लेनेकी पूर्ण सत्ता थी। अर्वाचीन कालमें यह उनका अधिकार छीन लिया गया है। अभी तो मातापिता जिन्हें पसंद करे उसेही बीचारी अबलाओंको स्वीकार करनेकी आवश्यकता पड़ती है जो अत्यन्त खेदकी बात है। जिसे जिसके साथ सम्पूर्ण जीन्दगी व्यतीत करनी है उसे अपने योग्य पतिको स्वयं ढूंढलेना चाहिये। हम जहांतक समझते हैं इस विष-

यमें दूसरोंको कम मालूम हो सकता है। उक्त अधिकार तो स्त्रियोंको ही मिलना चाहिये। कन्या प्रथम अपने योग्य पतिको पसंदकर उसमें मातापिताकी सम्मति ले यह बात ठीक है। प्राचीन कालमें आर्योंमें यह प्रथा चल रही थी इस विषयमें महात्मा **वात्स्यायनने** कहा है कि;– १ यदि कोई कुमारिकाके लिये कई ठिकानेसे मंगनी आती हो तो उस कुमारिकाने ऐसेही पुरुषकी मंगनीको स्वीकार करनी कि जिस पुरुषके साथ विवाह करनेसे उसकी रक्षा होनेकी तथा जीन्दगी सुखपूर्वक व्यतीत होनेकी सम्भावना हो। जो पुरुष अपनी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये आतुर हो, विद्वान्, सद्गुणी व स्वरूपवान इत्यादि गुण सम्पन्न हो और अपनी सम्पतिके अनुसार चलनेवाला हो वैसे पुरुषको पसंद करना चाहिये। (२) जब किसी कुमारिकाके मातापिता द्रव्यके लोभसे ऐसे मनुष्यके साथ उसको व्याहाना चाहे कि जो मनुष्य रूप व गुण रहित हो किम्वा अन्य कारणसे वह विवाह करने योग्य नहो या दूसरी स्त्रियोंके साथ व्याहा हो ऐसे मनुष्यकी ओरकी मंगनीको धिक्कारके साथ अस्वीकार करना। पीछे वह मनुष्य चाहे वैसे गुणवाला हो तो भी क्या हुआ? वह पुरुष अपनी सम्मतिके अनुसार चलना स्वीकार करता हो, शरीरसे बलवान हो, अपने साथ विवाह करनेके लिये प्रार्थना करता हो और अनेक प्रकारसे उसका पाणि ग्रहण करनेके लिये यत्न करता हो तो भी उसकी मंगनीको सर्वथा अस्वीकार करना। (३) दूसरी कईएक स्त्रियोंके साथ व्याहे हुए पुरुषके साथ विवाह करना उसकी अपेक्षा एक पुरुष जो गरीब तथा सम्पत्ति रहित हो किन्तु जो अपने ऊपर पूर्ण प्रेम रखता हो उसके साथ विवाह करना अच्छा है। सामान्य रीतिसे पैसेवाले पुरुषोंकी कई स्त्रियोंको कुछ चिन्ता नहीं रहती; किन्तु उनके ऊपर उनके पति अधिक प्रेम नहीं रखते और उसके पास विश्वास रखकर वार्तालाप नहीं करते। वे अपनी स्त्रीको केवल मनोविकार शान्त करनेका एक साधन समझते हैं। (४) यदि आपसे उतरते कुलका कोई पुरुष मंगनी करे किम्वा जिस मनुष्यके नेत्र भुरे हों किम्वा जिस पुरुषको परदेशमें मुसाफरी करनेका अधिक शौक हो उस पुरुषकी मंगनी स्वीकार नहीं करनी। (५) यदि आपके लिये कई स्थानोंसे मंगनी आयी हो और उनमेंसे किसको स्वीकार करना यह सूज न पड़े तो लोक व्यवहारके अनुसार जिस पुरुषने अपनी मंगनी अपने मातापिताके द्वारा आपके मातापिताके ऊपर भेजी हो उस पुरुषको पसंद करना; क्योंकि वैसा पुरुष उत्तम व प्यार करनेवाला होगा। फिर जिसके नख लाल रंगके हों, जिसकी हाथ सांपकी फेन जैसे व पत्तिके जैसे हों, भुजायें लम्बी हों, जिसकी जंघाओंके ऊपर बाल न हो, शिरायें न दिखती हो, जिसका नीचेका ओष्ट मांससे भरा-

हुआ व लाल रंगका हो, मुख गोलाकार हो, दान्त सफेद हो, और स्वर कोयलके समान हो, जिसके मुखके ऊपर बुद्धिमत्ताके चिन्ह मालूम होते हों, नासिका कुछ लाल रंगकी व अधिक मोटी या छोटी न होकर सामान्य हो, नेत्र काले कमलके समान श्याम रंगके और द्वितीयाके चन्द्रके समान अनीदार हो, कान शोभायमान, बीजके चन्द्रके समान हो, मस्तकके केश कोमल, कृष्ण, वक्र व स्वच्छ हों, मस्तक समान हो, पैरकी पैनी समान तथा लाल रंगकी व सुकोमल हो, जिसके हाथ व पैर कमलके गर्भके समान कोमल एवं गौर हो, जिसकी पौंचे मांससे भरी हो, अधिक उच्च या नीच न होकर समान हो, ऐसे चिन्हवाले पुरुषको पति रूपसे पसंद करना सुखकारक है। छोटी उमरवालेके साथ व वृद्ध उमरवालेके साथ विवाह नहीं करना । क्षय, अर्ष, अपस्मार, कुष्ट इत्यादि रोगी मनुष्यके वंशमें विवाह नहीं करना । जिसके नख काले हों, पीले हों और बीचमेंसे बैठ गये हों, जिसका ललाट गोलाकार या ऊंचा हो, नासिका बांसकी पत्ति जैसी व उसमें हाथीके रोमके बाल उगे हों, गला उंचा हो, जिसके हाथ छोटे व उसके ऊपर बाल हों ऐसे चिन्हवाले पुरुषको पतिरूपसे पसंद नहीं करना। वैसे ही वाग्‌दान हो जानके पश्चात् किसी खास कारणके विना सम्बन्ध नहीं तोड़ना, तोडनेवालेको महापाप लगता है। विवाह करनेमें द्रव्य नहीं लेना। जो मनुष्य लोभके कारण द्रव्य लेते हैं वे अपनी कन्याको बेचनेवाला कहलाता है। उपरोक्त गुण देखकर तथा मातापिताकी सम्मति लेकर पतिको पसंद करना व शास्त्रविधिसे विवाह सम्बन्ध जोड़ना यह उत्तम सुखकारी है। तपास नही करनेसे अनेकवार विरूद्ध स्वभाव, असम बुद्धि, अप्रीति एवं विचित्र स्वभाववालेके साथ विवाह सम्बन्ध हो जाता है तो दोनोंको जीन्दगी पर्यन्त कष्ट भोगना पड़ता हैं । इस लिये जो मनुष्य वरवधूके सारासार चरित्रके ऊपर विचार किये विना विवाह करते हैं वे पद २ पर परमेश्वरके पवित्र नियमका उल्लंघन करते हैं । इस पापका परिणाम दुःख उनके माता पिताओंकोभी भोगना पड़ता है। अतएव इस सम्बन्धमें प्रथमसे ही परीक्षा करनेकी पद्धति रखना बहुत ही अच्छा है।
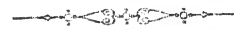
कन्याकी दैव परीक्षा ।

कन्याकी दैव परीक्षा करनेके पश्चात् जो योग्य मालूम हो उसके साथ सम्बन्ध जोड़ना ऐसा **आश्वलायनका** वचन है । दैव परीक्षा करनेका कार्य उन नियमोंके अनुसार चलता हो वही कर सकता है । वर तथा कन्याके माता पिता दोनोंके कुल कैसे हैं इस बातकी खात्री करना अर्थात् वरकन्याके पिताके कुटुम्बके लोग धर्मशास्त्रके ज्ञाता तथा व्रतादि एवं सत्कर्म करने वाले हैं या नहीं यह देखना । फिर वर बुद्धि-वाला है या नहीं यह अच्छी तरहसे देख लेना चाहिये । कन्याकी भी परीक्षा करनी चाहिये । वह बुद्धिशाली, स्वरूपवती, सद्‌गुणी हो; जिसके शरीरपर शुभ चिन्ह हो, शरीर उत्तम हो, यह जानकर दैव परीक्षाके लिये आठ प्रकारकी जमीनमेंसे मृत्तिका लाकर उसके गोले बनाना । जिस कन्याके लक्षण देखने हों उस कन्याको उस गोले-मेंसे किसी एकको उठानेके लिये कहना "**रेतमग्रे**" इतने शब्द बोलना (१) पीछे कन्या जिस गोलेको उठावे उस गोलेकी मृत्तिका दोगुना पाक देनेवाली भूमिमेंसे लायी गयी हो तो समझना कि उसकी सन्ततिके घरमें अन्नके भंडार भरपूर रहेंगे । (२) यदि गौशालामेंसे लायी गयी मृत्तिकाका गोला उठावे तो समझना कि उसकी सन्तति पशुओंकी मालीक होगी (३) यदि गोला यज्ञकुंडकी भूमिकी मृत्तिकाका हो तो समझना कि उसकी सन्तति अत्यन्त भक्तिवाली होगी । (४) फिर यदि किसी जीवित प्राणियोंवाले सरोवरमेंसे लायी हुयी मृत्तिकाका गोला उठावे तो समझना कि उसकी सन्तति सब प्रकारकी सम्पत्तिको प्राप्त होंगे । (५) जिस स्थान पर सदैव जूआ खेला जाता हो उस स्थान परसे लायी हुयी मृत्तिकावाला गोला उठावे तो समझना कि उसकी सन्तति भविष्यमें जूआरी होंगे । (६) जिस स्थानपर चार रास्ते मिलते हों उस स्थानसे लायी हुयी मृत्तिकावाला गोला वह उठावे तो समझना कि उसकी सन्तति भामटी होगी । (७) जिस भूमिमें कुछ पाक न हो सकता हो वैसी खाली भूमिमेंसे लायी हुयी मृतिकाका गोला वह उठावे तो समझना कि उसकी सन्तति वन्ध्यत्व दोष-वाली होगी (८) स्मशान भूमिमेंसे लायी हुयी मृत्तिकावाला गोला वह उठावे तो समझना कि उसकी पुत्रियां अपने पतिकी मृत्युको उत्पन्न करनेवाली होगी । इस प्रकार दैव परीक्षा करनेकी रीति आश्वलायनने बतायी है । इस प्रकार परीक्षा करनेके पश्चात् जिसमें समस्त शुभ चिन्ह मालूम हों उसके साथ विवाह करना उत्तम समझा गया है ।

विवाहके समयकी वरवधूकी प्रतिज्ञायें।

स्त्रीपुरुषके विवाह संस्कारके समय जो ईश्वरको हाजर समझकर अग्नि व लोगोंकी गवाहीसे पवित्र प्रतिज्ञायें की जाती हैं वह धर्म व्यवहार एवं नीतिका अनुसरण करके कीजाती हैं, ऐसा उस संस्कार परसे सिद्ध होता है। ये प्रतिज्ञायें आश्वलायन गृह्यसूत्रमें लिखी हुयी हैं; उसमेंसे यहां उद्धृतकी जाती हैं, जिससे मालूम होगा कि प्राचीन आर्यलोगोंकी नीति रीति कैसी थी? और उससे उन लोगोंका उस समय संसार कैसा सुखमय होगा इस बातका भी ख्याल आवेगा।

१ इस यज्ञशालामें बिराजे हुए लोग निश्चय पूर्वक जानते हैं कि हम अपनी प्रसन्नतासे गृहस्थाश्रममें एकत्र रहनेके लिये एक दूसरेको स्वीकार करते हैं। हमारे हृदय जलके समान शान्त मिलकर रहेंगे। जिस प्रकार प्राणवायु प्रिय है, उस प्रकार हम एक दूसरेसे प्रसन्न रहेंगे। समस्त सुख दुःख सहन करेंगे और एक दूसरेके प्रति दृढ प्रेम रक्खेंगे।

२ जिस प्रकार पवित्र वायु व जल प्रभृतिको किरणोंसे ग्रहण करनेवाला सूर्य दूरके पदार्थ व दिशाओंको प्राप्त होता है, उस प्रकार हम एक दूसरेकी इच्छासे प्राप्त होते हैं। हमारे परस्परके मनको ईश्वर अनुकूल रक्खे।

३ हम एक दूसरेके साथ विरोध नहीं करेंगे; किन्तु प्राण रक्षक होंगे। समस्त दुःखोंको दूरकर ईश्वरकी कृपासे सुख भोगनेके लिये यत्न करेंगे। पशुओंको सुख देंगे, प्रसन्न चित्त और पवित्र अन्तःकरणसे रहेंगे, एवं सुन्दर, शुभगुण—कर्म—स्वभाव-वाले शूरवीरोंको उत्पन्न करेंगे।

४ **पुरुषः**—ऐश्वर्य एवं सुसंतानादि सौभाग्यकी वृद्धि करनेके लिये तेरा पाणि-ग्रहण करता हूं। मेरे साथ वृद्धावस्थातक सुखसे रहना।

५ **स्त्रीः**—मैं आपका हाथ सौभाग्यकी वृद्धिके लिये ग्रहण करती हूं। आप मेरे साथ वृद्धावस्था तक प्रसन्नता व अनुकूलतासे रहें। मैं व आप आजसे पति-पत्नीके भावसे रहेंगे।

६ (ईश्वरकी प्रार्थना करती हुयी व लोगोंको उद्देश करके स्त्री विशेष प्रतिज्ञा करती है)। रक्षक, ऐश्वर्ययुक्त, न्यायकारी, जगत्को उत्पन्न व धारण करनेवाले पर-मात्मा व सभामें बैठे हुए समस्त विद्वानोंने गृहस्थाश्रम धर्मके अनुष्ठानके लिये मुझे

आपको दी है, इस लिये आप मेरे हाथसे व मैं आपके हाथसे इस प्रकार परस्पर बिके हुए हैं। अब हम दोनों कभी भी एक दुसरेकी ओर अप्रिय व्यवहार नहीं करेंगे।

७ **पुरुषः**–हे प्रिये! ऐश्वर्य युक्त मैं तेरा पाणिग्रहण करता हूं और धर्म मार्गमें प्रेरक मैं तेरा पाणिग्रहण कर चुका हूं। तू धर्मसे मेरी पत्नी किम्वा भार्या है। मैं तेरा धर्मसे गृहपति हूं। हम दोनों मिलकर गृहकार्य सिद्ध करें व दोनोंको अप्रिय जो व्यभिचार है उसे कभी न करें। ऐसा करे कि जिससे घरका समस्त कार्य सिद्ध हो और उत्तम सन्तति, ऐश्वर्य व सुखकी वृद्धि सदैव चलती रहे। सर्व जगत्के पालन करनेवाले परमात्माने तुझे मेरे लिये दिया है। तू समस्त जगत्में पोषण करने योग्य मेरी पत्नी हो। तू मुझ–पतिके साथ सो शरदृऋतु अर्थात् सो वर्षतक सुख-पूर्वक जीवित रहना।

८ **स्त्रीः**–हे भद्रे! परमेश्वरकी कृपासे आप मुझे मिले हुए हैं। इसलिये आपके विना इस जगत्में पालन करनेवाला व सेवा करने योग्य इष्टदेव कोई नहीं हैं और मैं आपके सिवाय दूसरे किसीको नहीं मानुंगी। जिस प्रकार आप मेरे सिवाय किसी स्त्रीके साथ प्रीति नं करेंगे, उसी प्रकार मैं अन्य पुरुषके साथ प्रीति नहीं करूंगी। आप मेरे साथ सो वर्षतक जीवित रहेंगे।

९ **पुरुषः**–जिस प्रकार परमात्माकी इस सृष्टिमें उसकी व आप्त विद्वानोंकी शिक्षासे दम्पती--स्त्री पुरुष होते हैं। जिस प्रकार विद्युत् सबमें व्यापक रहती है उस प्रकार तुझे मेरी प्रसन्नतासे सुन्दर वस्त्र व आभूषण एवं सुख मुझसे मिले। यह मेरी व तेरी इच्छाको परमात्मा पूर्ण करे। समस्त जगत्के उत्पन्न करनेवाले हे परमात्मन्! पूर्ण ऐश्वर्य युक्त उत्तम प्रजासे मेरी स्त्रीको आच्छादित करके शोभा युक्त कर। मैं सूर्य-किरणके समान उसे वस्त्रभूषणादिसे सदैव सुशोभित करूंगा।

१० **स्त्रीः**–मैं भी उसी प्रकार आपको सूर्यके समान समझ धारण सुशोभित आनन्दयुक्त व अनुकूल प्रिय आचरण करके ऐश्वर्य एवं वस्त्राभूषण इत्यादिसे सदैव आनन्दित रक्खुंगी।

११ **पुरुषः**–मैं ज्ञानसे तेरा ग्रहण करता हूं। तू भी मेरा ज्ञानसे ग्रहण करती है। तुझे मैं पूर्ण प्रेमसे स्वीकार करता हूं तू भी मुझे पूर्ण प्रेमसे स्वीकार करती है। तू सामवेदके समान है, मैं ऋग्वेद जैसा हूं। तू व मैं प्रसन्नतापूर्वक विवाह करते हैं। साथमें रहकर वीर्य धारण करें, उत्तम प्रजा उत्पन्न करें, कई सन्तान हों, वे हम लोग वृद्ध हों वहांतक जीवित रहे। हम दोनों एक दूसरेसे प्रसन्न, रुचिवाले, उत्तम

२ विचार करते हुए सो वर्षतक एक दुसरेको प्रेमसे देखते रहें, आनन्दसे जीवें व प्रियवचन सुनते रहें।

१२ **स्त्री:**—आपके हृदय, आत्मा व अन्तःकरणको मैरे प्रियाचरण कर्ममें धारण करती हूं। आपका चित्त मैरे चित्तको अनुकूल सदैव रहे। आप एकाग्र होकर मैरी वाणीसे जो कुछ कहूं वह सदैव किया करेंगे; क्योंकि आगेसे परमेश्वरने आपको मैरे अधीन किया है और मुझे आपके अधीन की हैं। इत्यादि।

इस प्रकार प्राचीन समयमें विवाह संस्कारके समय उत्तम प्रतिज्ञायें ब्राह्मण, क्षत्रीय व वैश्य ये तीनों जातियोंमें की जाती थी; किन्तु अत्यन्त शोककी बात है कि यह अर्वाचीन समयमें इस प्रकार किसी स्थानपर अर्थ रहित प्रतिज्ञायें होती हैं और किसी २ स्थानमें वह भी नहीं होती। अहा! अर्वाचीन कालमें अपनी आर्य सनातन रीति के सम्बन्धमें कितनी अज्ञानता है? अहा! कितनी बेपरवाही है! इस प्रकार होने-से हमारा संसार निन्दित हो रहा है! दम्पती—स्त्रीपुरुषोंमेंसे प्रेम गया! स्थान २ पर अनीति व अधर्माचरणके बीज बोये गये। हाय! उसीसे संसारका समस्त सुख नष्ट हो गया! पति पत्नीके मन परस्पर अलग हो गये व गृहस्थाश्रमका आनन्द लेने के बदले दुःखरुप हुआ, फिर भी अज्ञानता—अन्धकारको दुर करनेमें नहीं आती। हे देशवासी भ्राताभगिनीगण! आप अपनी मूल आर्यनीति रीतिका विचार कीजिये और पवित्र धर्मशास्त्रोमें बतायी हुयी ऐसी उत्तम प्रतिज्ञायें अर्थ सहित कण्ठकर विवाह संस्कारके समय विधिपूर्वक परस्पर बोलकर ग्रहण कीजिये, जिससे पति-पत्नीमें दृढ प्रेम बंधकर पूर्वकी स्थिति प्राप्त हो!

प्राचीन अर्वाचीन स्त्रियोंमें भेद और उसके कारण।

प्राचीनकालमें अपने देशकी स्त्रियोंकी दशा बहुत ही अच्छी थी। जिनकी कीर्ति आज भी चारों ओर फैल रही है। उस समयकी स्त्रियोंको प्रथम ही विद्या व धर्मका ज्ञान प्राप्त होता था। इसीसे व अपने प्राणनाथके प्रति, पुत्रपुत्रीके प्रति, सास, ससुर, देवर, ज्येष्ट प्रभृति आत्मियोंके प्रति क्या धर्म है यह जानती थी व सब के प्रति स्नेह रखती थी। अपने कुटुम्बके मनुष्योंको देखकर प्रसन्न होती थी, पतिकी ओरसे जैसे वस्त्रालंकार मिलते थे उन्हींसे संतुष्ट होती थी। सासकी आज्ञामें रहकर गृहकार्यको कुशलतासे करती थी। रजोदर्शन, गर्भावस्था, व प्रसूतिके समय पालन

करनेके नियम जानती थी व तदनुसार चलती थी। बालकोंको सम्हालनेमें, शिक्षा देनेमें व उनको सद्‌गुणी तथा पराक्रमी बनाकर पृथ्वीमें सुप्रसिद्ध करनेके लिये प्रयत्न करती थी। प्रतिदिन उपदेशकर नीति धर्मके रास्ते पर चढाती थी व स्वयं वैसा उत्तम आदर्श उनके सामने उपस्थित करती थी। यही कारण है कि ऐसी माताओंके उदरसे राम, कृष्ण, अर्जुन, परशुराम, व्यास, वशिष्ट, परीक्षित, हरिश्चन्द्र, भोज, विक्रम, भर्तृहरि प्रभृति शूरवीर, धर्मवीर, सत्यवादी व नीतिनिपूण महात्मा उत्पन्न हुए थे। वैसेही सीता, कौशल्या, द्रौपदी, लक्ष्मीजी, पार्वतीजी, सरस्वती, लीलावती और गार्गी इत्यादि सतियां वैसी ही उत्तम माताओंके उदरसे उत्पन्न हो गयी हैं। उस समयकी स्त्रियां उत्तम रीतिसे गृहकार्य, गृहव्यवस्था व आयव्ययका हिसाब रखकर करकसरसे अपना व्यवहार कर जानती थी। गृहराज्य चलानेमें अपने पतिको अनेक रीतिसे सहायता करती थी, पतिको संङ्कटके समय सहायता, धैर्य, हिम्मत, सहानुभूति व उपदेश देती थी। पतिके सुखसे सुखी व पतिके दुःखसे दुःखी होती थी। पतिकी ओरसे किसी कारणसे तिरस्कार हो, वियोग हो, तो भी पतिके ऊपर वैसाही प्रेम रखकर रहती थी। उस समयकी स्त्रियां अपने पतिके साथ सार्वजनिक सभाओंमें जाती थी व धर्मनीतिके सम्वादमें बड़े २ विद्वानोंको भी परास्त करती थी। वे परदेनसीन नहीं थी। लीलावती जैसी स्त्रीने गणितके समान महान् ग्रन्थको बनाया है। कईएकोंने काव्य, वैद्यक, रसायनशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ बनाये हैं और कईएकोंने वेदके समान सर्वमान्य ग्रन्थों पर भाष्य किये हैं। दुर्गावती, कर्मदेवी, लक्ष्मीबाई एवं तारा बाईके समान अनेक स्त्रियोंने शत्रुओंके नाश करनेमें सहायता की है। उन इतिहास प्रसिद्ध ललनाओंके चरित्रसे कौन अजान है? कई एकोंने पतिके प्राणकी रक्षाके लिये अपने प्राण अर्पण किये हैं। सीताके समान सतीने व वीरमतीके समान सुशीला स्त्रीने अपने प्राण जाने पर्यन्त भी शीलका नाश नहीं किया है। इत्यादि अनेक सद्‌गुणी स्त्रियां हो गयी हैं।

अर्वाचीन समयमें यह समस्त नष्ट हुआ है। स्त्रियां विद्याको भूल गयी हैं। नीति धर्मकी चाहिये वैसी शिक्षा नहीं मिलती, जिससे स्त्रियां अपने धर्मसे अजान रहती हैं। पतिके प्रति, पुत्र–पुत्रीके प्रति, सास ससुरके प्रति, देवर ज्येष्ठ तथा देवरानी जिठानी-के प्रति एवं अन्य कुटुम्बके व सम्बन्धियोंके प्रति उनका क्या धर्म है यह नहीं जानतीं। आज जहां देखा जाय, वहां सास बहुके झगड़े, आप्तियोंमें कुसंप, पड़ोसियोंमें वैर व पतिको प्रसन्न करनेके बदले उन्हें दुःख देतीं हैं। पुत्र पुत्रीका योग्य रीतिसे लालन पालन कर उनको पढाना व धर्मनीतिवाले बनाना दूर रहा, सामने उन्हें स्वेच्छाचारी

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्य
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगंज
श्री वीरेन्द्र के सम
पत्र १९२२ में निकला।
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आग
इस नाम का एक म
में निकाला।
जलविद सखा—(जा
कन्या महाविद्यालय
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेजी
सम्पादिका थीं। पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन मे
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३ मे
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे। १
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमेर
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ। साप्ताहि
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत था
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना।

बनाती हैं। उन्हें उत्तम समागम करानेके बदले स्वयं कुलक्षणी बनाती है। चाहिये उस प्रकार गृहकार्य नहीं जानतीं; वे हिसाब रखना व करकसरसे व्यवहार चलाना नहीं जानती। वे सुघड़ता व धर्मनीतिके पालन योग्य नियमोंको नहीं जानती। फिर ईश्वरकी भक्तिकी तो बात ही क्या कहनी, संक्षेपमें कहाजाय तो वे अपने अनेक आवश्यक विषयोंसे अजान हैं। आप ध्यान देकर देखेंगे तो प्राचीन अर्वाचीन स्त्रियोंमें इस प्रकारके अनेक भेद देख सकेंगे। यदि इसके कारणपर विचार किया जाय तो देशमें अनेक धर्म-पंथोंका प्रचार, कुसंपकी अभिवृद्धि, विदेशी व विधर्मियोंके उपद्रव, विद्याका अभाव, योग्य उपदेशकी न्यूनता, उत्तम स्त्रियोंके समागमका अभाव एवं धर्म तथा नीतिकी शिक्षाका न मिलना इत्यादि हैं। इन्हीं कारणोंसे स्त्रियां अपने सच्चे धर्म व कर्मको भूलकर घरकी लक्ष्मीके बदले लौंडी बनी हैं, सार्वजनिक सभाओंमें न जाकर परदेमें पडी हैं व संसारसागर पार करनेके सच्चे साथीके स्थानको छोडकर घरकी कार्य करनेवाली मजदूरनी जैसी हुयी हैं। अर्वाचीन स्त्रियोंकी इस अधमस्थितिका अब हम किन शब्दोंमें वर्णन करें ?

फिर भी सद्भाग्यसे इस समय ईश्वरकृपासे अंग्रेज सरकारके प्रतापी अमलमें जूलम करनेवालोंका जूल्म नष्ट हुआ है और स्थान २ पर स्त्रियोंके लिये विद्यालय स्थापित हुए हैं; उसमें अनेक प्रकारकी शिक्षा दी जाती है, जिससे कितनीक स्त्रियां लिखना पढना सिखी हुयी है और सिख रही हैं। कोई २ स्त्रियां सम्वादपत्र, पुस्तक, मासिकपत्र इत्यादि पढने लगी हैं और कई स्त्रियां अच्छी स्त्रियोंके समागमसे सुधर गयी हैं। कई स्त्रियां अपने सत्यधर्मको जानती हैं। कई स्त्रियां ऐसी भी हैं जो कि सीने, परोनेका व भरनेका काम सिखी हुयी हैं। कई स्त्रियां खराब व हानिकारी प्रथाओंको छोड़ने लगी हैं इत्यादि अनेक प्रकारके सुधार हुए हैं। फिरभी वह प्राचीन समय अभीतक बहुत दूर है। जब सती स्त्रियोंके सुचरित्रोंका प्रतिबिम्ब उनके कोमल अन्तःकरणमें डालनेका उद्योग किया जायगा और स्त्रियां धर्मके तत्त्वोंसे पूर्ण रुपसे परिचित होंगी एवं स्त्रियोंको सद्गुणी स्त्रियोंका समागम मिलेगा, तभी ही भारतभूमिकी स्त्रियोंकी यथार्थ उन्नति होगी और जब स्त्री जातिकी उन्नति होगी तभी पुरुषोंकी तथा भारतवर्षकी उन्नति होगी।

पतिव्रता प्रताप ।

पतिव्रता अमुक देशमें, अमुक ज्ञातिमें या अमुक कुटुम्बमें ही होती है ऐसा कोई नियम नहीं है । वह तो हरएक देश, ज्ञाती किम्वा कुटुम्बमें उत्पन्न हो सकती है । पतिव्रताओंके उत्पन्न होनेसे वह देश, वह ज्ञाति और वह कुटुम्ब चाहे दुर्दशा-ग्रस्त हो, चाहे वे छोटे हों तो भी वन्दनीय होते हैं तथा उत्तमताको प्राप्त होते हैं । पतिव्रता स्त्रियोंसे देश, ज्ञाति व कुल शोभाको पाते हैं । पतिव्रता इस संसारकी आधार स्वरुप है । पतिव्रता स्त्रीसे गृहसंसार प्रकाशित हो जाता है। प्रजा धार्मिक, नीतिमान, शुद्धान्तःकरणवाली, पराक्रमी, धीर, वीर, तेजस्वी व विद्वान् होती हैं । सद्गुणी माताका प्रतिबिम्ब बालकोंके कोमल हृदयमें इस प्रकार पड़ता है कि वह जीन्दगी पर्यन्त नष्ट नहीं होता । परिश्रमसे कायर हुआ पुरुष पतिव्रताके सुखभावसे आनन्दित व निःश्रमित होता है । बालक, द्रव्य इत्यादि अनेक प्रकारकी सम्पत्ति हो किन्तु सद्गुणी व सुस्वभावकी स्त्री घरमें न हो तो संसारसुख न्यून ही समझना। ऐसी सुशील स्त्री जिसको प्राप्त होती है उसके धन्यभाग्य समझने चाहिये । पातिव्रत्य यह स्त्रीका परमदैवत, रुप, तेज व अलौकिक शक्ति है । उस शक्तिके द्वारा वह अपने पतिको परम स्वर्गीय सुख देती है, समस्त पापोंसे मुक्त करती है और अपने साथ पतिको स्वर्गके अखंड अनन्त सुखकी प्राप्ति कराती है । उसके सामने कुदृष्टि करने वालेका नाश होता है । सती स्त्रीके जननी तथा जनक पवित्र होकर धन्यवादके भागी होते हैं। जिस प्रकार नक्षत्रोंमें चन्द्र शोभाको प्राप्त होता है, उसी प्रकार समस्त स्त्रियोंमें पतिव्रता स्त्री शोभाको पाती है । सती स्त्री पतिके कठोर हृदयको कोमल बनाती है, उसके तीक्ष्ण जूस्सेको और शोकको शान्त करती है। पतिव्रताकी प्रेमभरी रीति, मधुरता, नम्रता, प्रेम, और धैर्ययुक्त वचन, बीमारीके समय औषधिका कार्य करते हैं । उत्तम बुद्धि, तत्परता, मायालुता, उद्योग, व सावधानतासे आनेवाले विघ्नोंको, दूर कर कार्योंको पूर्ण करती है । पति तथा कुटुम्बकी शोभाकी अभिवृद्धि करती है। इसके बालक उत्तम शिक्षा पाकर संसारमें मानवरत्न बनते हैं। इसीसे ऐसी साध्वी स्त्रियोंको "रत्नगर्भा" कहा है । महात्मा तुलसीदासजीने कहा है कि:—

नारी निंद मत कीजियो, नारी रत्नकी खान ।
जिस खानमें पैदा हुए, ध्रुव प्रहलाद समान ॥

वास्तविकमें ऐसी रत्नगर्भा स्त्रियां ही देशके उदय होने में साधन रुप हैं । ऐसी माताओंसेही गौतम, वसिष्ठ, व्यास, परशुराम, राम, कृष्ण, युधिष्टिर, अर्जुन,

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद
सम्पादन में वैदिक संदे
संन्यासी—हरदुआगं
श्री वीरेन्द्र के स
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है ।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला ।
जलविद सखा—(जा
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई । पत्रिका
थीं । कुछ पृष्ठ अंग्रेजी
सम्पादिका थीं । पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे । १
कर रहे थे ।
आर्य मार्तण्ड—अजमेर
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ । साप्ताहि
को अजमेर से निकला ।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत थ
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना ।

भीम, कर्ण, पृथु, हरिश्चंद्र, हनुमान, नेपोलियन, भोज, विक्रम, व शालिवाहन इत्यादि महापुरुष तथा पार्वतीजी, सीताजी, लक्ष्मीजी, सरस्वतीजी, गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, मदालसा, व तारा इत्यादि जगत् प्रसिद्ध साध्वी स्त्रियां उत्पन्न हो गयी हैं। अहा! पतिव्रता साध्वी स्त्रियोंका प्रताप ही अलौकिक है। साध्वी स्त्रियोंके प्रतापसे क्या २ नहीं हो सकता? सब कुछ हो सकता है। उसके सतीत्वके प्रभावसे देवता भी अधीन हो जाते हैं, फिर मनुष्योंकी क्या बात कहना? ऐसी साध्वी स्त्रियोंके प्रतापसे ही राम तथा सीताको वियोग हुआ, धर्मराज हानिको प्राप्त हुए, रावणके कुलका नाश हुआ; इन्द्र दुःखी हुआ, सत्यवान दीर्घायु हुआ, प्रेमानन्द तथा रामानन्द बन्धनमुक्त हुए, संजयके राज्यकी रक्षा हुयी, कौरवोंका नाश हुआ इत्यादि अनेक महान् कार्य साध्वी स्त्रियोंके प्रताप्रसे ही हुए हैं, जो कार्य करनेमें पुरुष भी समर्थ नहीं उसे पतिव्रता सहजमें कर सकती है। बल, बुद्धि तथा प्रतिकृतिमें आर्य महिलाओंने अनेकवार पुरुषोंके साथ स्पर्धा की है, जिसके अनेक उदाहरण पुराण तथा इतिहासके द्वारा मिलते हैं। हतभाग्य आर्यावर्तकी आर्य तरुणियोंका कि वह महात्म्य तथा गौरव अभी न्यून हो गया है, जिससे इस समय ऐसे उदाहरण कम बनते हैं; क्योंकि आज ऐसी साध्वी स्त्रियां उत्पन्न नहीं होती। ऐसी साध्वी स्त्रियोंका होना यह शिक्षा, समागम तथा उपदेशके आधारपर है; किन्तु वर्तमान समयकी स्त्रियोंको प्राचीन पद्धतिसे धर्म नीतिवाली शिक्षा नहीं मिलती। सत्शास्त्र तथा सती स्त्रियोंका समागम नहीं मिलता, स्त्री धर्मनीतिका उपदेश नहीं मिलता और उनके कोमल हृदयमें सतीके चरित्रोंकी दृढ छाप नहीं पड़ती; जहां यह स्थिति है वहां साध्वी स्त्रियोंके होनेकी आशा कहांसे रख सकते हैं? वहां स्त्रियां अपना यथार्थ धर्म समझकर उत्तम आचरण कहांसे सिख सकते हैं? प्रिय पाठक गण! यदि आप अपनी कन्याओंको उत्तम साध्वीयां बनाना चाहते हैं तो उन्हें प्रथमसे ही प्राचिन पद्धतिसे शिक्षा दीजिये, उत्तम समागम तथा सतियोंके चरित्रोंके पाठादिसे उनके अतःकरण अंकित कीजिये, फिर उनका प्रताप देखिये। जब इस प्रकार आचरण किया जायगा तभी उन्हें असती स्त्रियोंके आचरणपर धिक्कार उत्पन्न होगा, तभी वे दुराचारोंसे दुर रहेंगी, तभी वे आपत्तियोंको उल्लंघनकर सत्यव्रतमें अचल रहेंगी, तभी व लोभ तथा लालसामें नहीं फसकर उनको तृणके समान तुच्छ समझेंगी और तभी वे अपने धर्मको छोड़ किसी विषयकी ओर दृष्टि नहीं करेंगी। इस लिये प्रथम उन्हें पूर्वकी रीतिसे शिक्षा प्रभृतिकी अनुकूलता कर दीजिये जिससे वे आगे चलकर "पतिव्रता" ऐसे उत्कृष्ट पदको धारणकर अपने धर्मका यथार्थ पालन करनेमें तत्पर बने व पतिव्रताके अपूर्व प्रतापको संसारके सामने दिखावें।

७ गृहस्वामिनीने समस्त कार्योंके ऊपर दृष्टि रखनी चाहिये कि कौनसी वस्तु कहांपर खराब किम्वा विना कामकी उपयोगमें आती है। घरमें कौनसी वस्तु खराब हो गयी है और घरमें किससे मंगल हो और किससे अमंगल हो इत्यादि समस्त विषयोंके ऊपर लक्ष रखना चाहिये। यदि इन बातोंपर लक्ष न रक्खा जाय तो बहुत कुछ हानि होती है।

८ गृहस्वामिनीने जिस प्रकार थौडे खरचेमें सन्मानके साथ संसारका व्यवहार चल सके इस प्रकार उसपर दृष्टि रखना चाहिये। आयका विचार करके खरचा करना और भविष्यके लिये कुछ भी द्रव्य संग्रह कर रखना चाहिये। यदि गृहस्वामिनी इन बातोंपर दृष्टि न रक्खे तो महान् विपत्ति प्राप्त होती है।

९ गृहिणीको उचित है कि सदैव सबकार्य अपनी दृष्टिसे देखा करे। समस्त वस्तुओंकी सम्हाल रक्खे और भविष्यमें जिसकी आवश्यकता मालूम हो उसका प्रथमसे प्रबन्ध करे। सब ओर दृष्टि रखकर खरचा अधिक न हो और वस्तुओंका बिगाड़ न हो इसके लिये कालजी रखनी चाहिये।

१० घरके समस्त मनुष्य और नोकर चाकर सदैव सावधान रहे और किसी प्रकारका अन्याय कार्य न करे और वंचना करनेकी हिम्मत न करे इसके लिये कालजी रखना। जिससे घर सर्वदा शान्ति तथा सुखसे पूर्ण रहे; जिससे सब कार्य उत्तम हों, पति और कुटुम्बका जिससे सन्मान और सुनाम स्थायी रहे इस पर दृष्टि रखनी चाहिये।

११ गृहस्वामिनीके गुण दोषोंके ऊपर संसारके कल्याण अकल्याणका आधार है। जिस प्रकार आकाशमें चन्द्रका उदय न हो तो मुसाफर ज्यों मार्गमें अनेक प्रकारके दुःख सहन करते हैं और अन्धकारसे मार्ग भूलकर दूसरे मार्गपर जाते हैं वैसे ही घरमें अच्छी गृहस्वामिनीके न होनेसे गृहस्वामिको भूलमें पड़कर अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं।

१२ गृहस्वामिनीने कुछ गंभीर बनना चाहिये। यदि वह गंभीरताको छोड़कर चपलता धारण करेगी तो कोई उसका भय नहीं रक्खेंगे या मान नहीं रक्खेंगे।

१३ गृहस्वामिनीका, अधीन रहनेवाले मनुष्य, भय नहीं रक्खेंगे और भक्ति नहीं करेंगे तो घरका कार्य अच्छी तरहसे नहीं हो सकता, इस लिये सामनेवालेको भय रहे वैसी अपनी गंभीरता रख आचरण करना।

१४ गृहस्वामिनीने ऐसी गंभीरता रखकर आचरण करना चाहिये कि कोई भी उसकी अवज्ञा कर सके किम्वा आज्ञाभंग करनेका साहस न कर सके। फिर किसी कार्यकी आज्ञा देनेके समय ऐसी मधुरभाषाका उच्चार करना चाहिये कि जिससे वे उसका प्रसन्नतासे पालन करें।

१५ गृहस्वामिनीने अपने अधीन मनुष्योंके प्रति दया रखनी चाहिये। उन्होंने खाया है या नहीं, उन्हें किसी प्रकारकी अपूर्णता है या नहीं, उनके ऊपर सब कोई प्रेमभाव रखते हैं या नहीं, इन सब बातोंपर दृष्टि रखनी चाहिय।

१६ गृहस्वामिनीको लोकचरित्रकी शिक्षा लेनी चाहिये। दास, दासी और कुटुम्बके मनुष्योंके कैसा स्वभाव है, कौन दुष्ट है कौन सद्गुणी है, कौन किस प्रकारका व्यवहार करता है, इन सब बातोंपर सदैव दृष्टि रखनी चाहिये।

१७ गृहस्वामिनीको यदि किसीका दोष देखनेमें आवे तो उसको योग्य उपदेश या दण्ड देना। यदि आवश्यकता मालूम हो तो घरमेंसे निकाल देना; क्योंकि घरमें एक खराब चरित्रका मनुष्य हो तो उसके समागमसे दश मनुष्य और भी वैसे होते हैं। जो गृहस्वामिनी इस विषयमें दृष्टि नही रखती उसे पीछेसे अत्यन्त पश्चात्ताप करना पड़ता है।

१८ गृहस्वामिनीके स्वभाव तथा चरित्र भी सब प्रकारसे उत्तम होने चाहिये; क्योंकि घरके हरएक मनुष्य उसका अनुकरण करते हैं और उसके कार्य देखकर शिक्षा पाते हैं; इस लिये गृहस्वामिनीने अपने दोषोंको सुधारकर दूसरोंके लिये अनुकरण करने योग्य चरित्रवाली बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

१९ गृहस्वामिनीने पक्षपाती नहीं होना चाहिये। जिस प्रेमसे अपने पुत्र पुत्रीके प्रति देखती है उसी प्रेमसे देवर तथा अन्य आत्मियोंके बालकोंको देखना चाहिये। यदि इसमें स्वार्थीपन होगा तो बुद्धिमान् मनुष्य उसे हल्के स्वभावकी समझेंगे।

२० गृहस्वामिनीने सबको सुखी करनेका प्रयत्न करना चाहिय। घरमें सबके ऊपर एक समान दृष्टिसे देखना। कोई किसी कारणसे अधिक स्नेह किम्वा दयाका पात्र हो तो प्रसिद्ध रीतिसे उसके ऊपर दया तथा स्नेह प्रगट नहीं करना; क्योंकि ऐसा करनेसे उसके साथी लोग दुःखित होंगे; किन्तु यदि कोई सत्कार्य करे और सत्साहस कर दिखलावे तो उसको प्रसिद्ध रीतिसे पारितोषिक इत्यादि देना यह अनुचित नहीं हैं, क्योंकि उसको देखकर दूसरे भी वैसे उत्तम कार्य करनेका यत्न करेंगे।

२१ गृहस्वामिनीने यदि कोई अन्यायका कार्य करे तो उसको प्रसिद्ध रीतिसे

योग्य दण्ड देना चाहिये; क्योंकि वैसा करनेसे अन्य मनुष्य भी सावधान रहेंगे। कई एक गृहस्वामिनीयें इस विषयमें भूल या उपेक्षा करती हैं जो बहुत ही अनुचित है ।

२२ गृहस्वामिनीने घरमें कोई बीमार हो तो तुरन्त उसकी चिकित्सा करानी चाहिये । वैसा नहीं करनेसे पीछे वह बीमारी बढ जाती है ।

२३ गृहस्वामिनीने अपने यहां आये हुये सगे सम्बन्धी किम्वा अतिथिको खाने, पीने, सोने, बैठनेका ठीक प्रबन्ध हुआ है या नहीं इस बातका ध्यान रखना चाहिये।

२५ गृहस्वामिनीने पुत्र, पुत्री, बहु इत्यादि घरके समस्त मनुष्य अच्छे सहवासमें रहे, उच्चविचारके हों, सत्कार्य करनेमें उत्साह बतावे और धर्मनीतिवाले हों और उद्योगी बनें इसके लिये यत्न करते रहना ।

२६ गृहस्वामिनीने अपना घर थोड़े खरचेसे सुशोभित व आकर्षक मालूम हो ऐसा करना चाहिये ।

२७ घरके समस्त मनुष्योंको स्वच्छ खुराक, स्वच्छ हवा, स्वच्छ जल, प्रकाश और सूर्यकी किरण मिले इसके लिये ध्यान रखना व आरोग्यके नियम सम्हालनेके लिये सदैव चेष्टा करनी चाहिये ।

२८ घरके दास दासियोंकी ओर दया तथा प्रेमसे आचरण करना और शान्तिपूर्वक गृहव्यवहार चलाना । किसीको अपशब्द तथा कठिन वचन नहीं कहना ।

२९ घरमें ऐसे नियम तथा शान्ति रखना कि बाहरका मनुष्य मिलने आवे तो वह घरमें देखते ही गृहस्वामिनीके बुद्धि, चतुरता इत्यादिकी प्रशंसा करने लगे । साथ ही उसके घरकी शान्ति, एवं उत्तम स्वागतसे प्रसन्न हो धन्यवाद देने लग जायगा ।

३० गृहस्वामिनीने घरके समस्त मनुष्य आनन्द पूर्ण रहे, कुटुम्बका सुख बढे व घर स्वर्गके समान मालूम हो, इसके लिये सर्वदा दृष्टि रखकर सदैव शुभाचरण करना चाहिये ।

सती-गीता ।

अर्थात्

स्त्रियोंके लिये उपयोगी कविताओंका संग्रह ।

ईशविनय ।

(१)

ईश्वर तू है सबका स्वामी,
क्षमासिन्धु उर अन्तर्यामि ।
महिमा तेरी अपरम्पार
तुझसे गये वेद भी हार ॥

(२)

तूने सारा जगत बनाया,
अनुपम दृश्य हमें दिखलाया ।
सूरज तारे चांद बनाये,
जल थल अनल पवन प्रकटाये ॥

(३)

न्यायी, सत्यसिन्धु, सुख खान,
करुणानिधि तू है बलवान ।
दानी, ज्ञानी, घटघट वासी,
तू है निर्विकार अविनाशी ॥

(४)

जीना मरना तेरे हाथ,
अधःपतन उन्नति सब साथ ।
यश अपयशका तू ही दाता,
रूप न तेरा जाना जाता ॥

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्या
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगंज
श्री वीरेन्द्र के सम्
पत्र १९२२ में निकला।
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आर्य
इस नाम का एक म
में निकाला।
जलविद सखा—(जा
कन्या महाविद्यालय
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेजी
सम्पादिका थीं। पत्रिका
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन मे
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३ मे
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे। १
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमेर
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ। साप्ताहि
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत था
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना।

(५)

चींटीसे हाथी तक सारे,
जितने जीव जन्तु बेचारे।
देकर सबको दाना पानी,
रखता तू इनपर निगरानी ॥

(६)

राईको पर्वत कर देता,
पर्वतको राई कर देता।
नगरोंको तू निर्जन करता,
वनमें नगरी सिरजन करता ॥

(७)

ब्रह्मादिक तव ध्यान लगाते,
नारदादि मुनिवर गुण गाते,
गाते गाते वे थक जाते।
तो भी पार न तेरा पाते ॥

(८)

हे ईश्वर हे जगदाधार,
महिमा तेरी अपरम्पार।
मेरी रखलीजे प्रभु लाज,
विनय यही हूँ करता आज ॥

"बालविनोद."

ईशविनय।

विनय सुनो प्रभु मोरी। अरज करूँ कर जोरी ॥
करो कृतारथ स्वामी। घटघट अन्तर्यामी ॥

मैने पाप किये हैं। तुमसे नहीं छिपे हैं ॥
भेजा तुमने हमको। पर उपकार करनेको ॥
भूल गई निज धर्म। बने न कुछ शुभ कर्म ॥
गर्भबसी थी जिस दीन। तड़प रही थी तुम बिन ॥
आये ढिग प्रभु मोरे। विनय करी कर जोरे ॥
"नाथ कृपालु उबारो। नेक दया निज धारो ॥
जन्म मिलै इहि बारा भारत भूमि मझारा ॥
पाप कर्मसे दूरी। रहुं नाथ भरपूरी ॥
मन चंचल न करूंगी। धर्म पन्थ पर रहुँगी" ॥
नाथ दया उर धारी। गर्भ-यातना टारी ॥
मूढ बंधे थे दोऊ। खुले भूमि गिर सोऊ ॥
किये कौल मैंने थे। वे सब भूल चले थे ॥
पड़ी पाप-कीचड़मे। फंसी जगत-गड़बड़ में ॥
संग अविद्या लीन्हीं। भोग वियष मति दीन्ही ॥
वैरा पापिनी माया। भूली प्रभुकी दाया ॥
क्षमा करो अपराधा। हरो नाथ बव बाधा ॥
सुमति मुझे प्रभु दीजै। नाथ कुमत हर लीजै ॥
पतिमें प्रीति लगाऊँ। पतिमें ऊनको ध्याऊं ॥
पति मूरती मन भावन। मधुर मनोहर पावन ॥
सोई नारी-अधारा। सोई स्वर्ग अगारा ॥
कृष्ण! कन्हाइ! मुरारी। गहती शरण तुम्हारी ॥
हरो पाप मति मेरी। नाथ शरण मैं तेरी ॥
विनय सुनो प्रभु मोरी। अरज करूं करजोरी ॥

"-बाबू बिन्दाप्रसादकी धर्मपत्नी".

स्त्री—शिक्षा.

गीत (१)

बहिन तुम सबसे पहिले जागो ॥ टेक ॥
मुँह अरु हाथ धोय लो जल्दी,
पति चरनन फिर लागो ॥ १ ॥
घर दरवाजा झाड़ो नितही,
विधिसे बिस्तर टांगो ॥ २ ॥
चौका बर्तन करो कराओ,
नहा मलिनता त्यागो ॥ ३ ॥
भोजन रचनेके तुम पहिले,
राय पतिकी माँगो ॥ ४ ॥
नियत समय सब काम करोरी !
अनरीतों से भागो ॥ ५ ॥

गीत (२)

बहिन तुम मानो बात हमारी ॥टेक॥
करो सदा गुरु जनकी सेवा,
पढ़लो विद्या प्यारी ॥ १ ॥
चित्रकला सीना औ बुनना,
सीखो विविध प्रकारी ॥ २ ॥
व्यञ्जन और शिशू--पालन विधि,
बाल-चिकित्सा न्यारी ॥ ३ ॥
काम-काज व्यवहार सुहावन,
पतिव्रत—धर्म कथारी ॥ ४ ॥
कहे 'गुणाकर' ये सब बातें,
हैं तुमको सुखकारी ॥ ५ ॥

विनय.

गजल कव्वाली।

पतिव्रत धर्म्म सर्वोत्तम, धारलो इसको महिलाओ।
इसीका नित करो पालन, नहीं तुम ओरको ध्याओ ॥ टेक ॥
नहीं मन्दिरमें दर्शनको, नहीं कबरोंकी पूजनको।
नहीं गंगाके न्हानेको, पतिको छोडके जाओ ॥ २ ॥
पती निज ईश कर मानो, न जानो ओर सपनेमें।
न गण्डे मन्त्र लेनेको, न गुण्डों पास तुम जाओ ॥ ३ ॥
पती जीवित व्रत्तादिक ये, सभी निष्फल है ऐ बहिनो।
मनूकी है यही आज्ञा, कभी धोखेमे मत आओ ॥ ४ ॥
अगर अन्धा तथा लंगडा, कुरूपा भी पती होवे।
उसीको ईश-वत मानो, न ग्लानी चित्तमें लाओ ॥ ५ ॥
पढो वृत्तांन्त सीताका, पतीके संग बन जाना।
अधो-गति क्या तुम्हारी है, तनिकमें तो शर्माओ ॥ ६ ॥
हरा सीताको जब रावण, धरा जा लङ्कके मांही।
पति-व्रत धर्म नहीं छोडा, इसीका फेर फल पायो ॥ ७ ॥
हुई गान्धारिसी नारी, वीर-विदुषी वो थी भारी।
पती निज प्राण कर माना, उन्हींके नाम तुम गाओ ॥ ८ ॥
पढो सच्छास्त्र हितकारी, कभी मत गाओ तुम गारी।
सुधारो दीन-भारतको, कुरीति त्यागती जाओ ॥ ९ ॥
अगर अब भी न चेतोगी, तो निष्फल है हमारा श्रम।
इसी "शर्मा"की विनतीको, श्रवण तक नेक पहुँचाओ ॥ १० ॥

"--गणेशदत्त शर्मा"

नारी-धर्म्म

(१)

नर नारी मिल धर्म्म पालनेमें, करते थे शर्म नहीं ॥
निज निज कर्तव्योंमें था, तब कौन भला सर गर्म्म नहीं ?
भारतके पहले गौरवका, और दूसरा मर्म नहीं ॥
मर्द कडे थे बातके पक्के, तिय थी कुछ नर्म्म नही ॥
सावित्री सिय सतीके जीवन, और सिखाते कर्म्म नहीं ॥
सिवा पतिव्रत सुन लो बहिनो, और तुम्हारा धर्म्म नहीं ।

(२)

नहीं विश्वभरमें कोई अपने, आपके सम प्यारा है ।
पति प्यारेको तियने अपने, आपे सरिस विचारा है।
बहुतेरियोंने बढ कर जाना, निज जीवन भी वारा है।
पति प्यारेका प्रेम नारीको, तीन लोकसे न्यारा है ।
सती हुई सैकडों हजारोने, जौहर हैं किये कहीं ।
सिवा पतिव्रत सुनलो बहिनो, और तुम्हारा धर्म्म नहीं ।

(३)

भूल है उन बहिनोंकी, निजको पराधीन जो माने हैं ।
जो आये सो बढकर प्यारा. उसे पराया जाने हैं ।
धरनीका जो करें न आदर, वे हत भाग दिवाने हैं ।
तीस पर भी कुलवती सती, निज प्रेम पात्र पहचाने हैं ।
सिरमें जो हो रोग तो कोई, कढा फेंकता उसे कहीं ।
सिवा पतिव्रत सुन लो बहिनो और तुम्हारा धर्म्म नहीं ।

(४)

गृह-शरीरमें पति जीवातम, और बुद्धि सम नारी है,
हैं इन्द्रियों समस्त कुटुम्बी इक इक पद अधिकारी है।
सबका सार संभार सुशासन, काम बुद्धिका भारी है,
जैसे बुद्धि बिना जीवातम, तैसे पिय बिनु प्यारी है।
पतिके गृह कुटुम्बका पालन, छोड बडा कोई कर्म्म नहीं।
सिवा पतिव्रत सुन लो बहिनों कोई तुम्हारा धर्म नहिं।

(५)

यह दिखाओ ओरोंको तुम, शुचि सुन्दर रखकर आचार,
मत चवाव चर्चामें चित्त दो, अच्छे ऊँचे रहें विचार।
दान, दया, कुलकान लाज, ये सच्चे गहने तनपर धार,
सत्य रहो मन-वचन-कर्म्मसे, करो न अनभल रहो उदार।
रीस करो मत बुरा न मानो, कडी तुम्हें कोई कहे कहीं,
सिवा पविव्रत सुन लो बहिनों कोइ तुम्हारा धर्म्म नहीं।

"नारायणसिंह गौड़"

भारत-भगिनियोंसे प्रार्थना।

पतिव्रताओंके चरितोंको सुनिये कान लगा करके।
चारों दिशिसे चित्त हटाकर बहनों ध्यान लगा करके ॥ १ ॥
देखो सती गान्धारीका कैसा जगमें यश छाया।
असत कुरीति वृथा बातोंको उसने चित्तसे बिसराया ॥ २ ॥
धर्म धीर धृतराष्ट्र बीरकी सेवामें रत रहती थी।
अन्धे थे पति तो भी उनको सबसे बढकर चहती थी ॥ ३ ॥
दोनों दृग मृग कैसे उनपर वस्त्र लपेट लिया करती।
होते व्याकुल पति नेत्र बिन उनको धैर्य दिया करती ॥ ४ ॥

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्या
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगंज
श्री वीरेन्द्र के सम्
पत्र १९२२ में निकला।
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आर्
इस नाम का एक म
में निकाला।
जलविद सखा—(जा
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेजी
सम्पादिका थीं। पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन मे
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३ मे
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे। १
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमेर
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ। साप्ताहि
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत था
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना।

देखो सती द्रौपदी बनमें कैसे पति संग दुःख सहे ।
यश गौरव प्रताप इस जगमें जिसके अब तक पूरि रहे ॥ ५ ॥
सीता देवी जनक दुलारी की नहीं जाये बात कही ।
चौदह वर्ष रही पतिके संग बनमें भारी बिपत सही ॥ ६ ॥
अरुन्धतीकी ओर निहारो धर्म ध्वजा फहराती है ।
सप्त ऋषी मन्डलमें जाकर लहर लहर लहराती है ॥ ७ ॥
तजो घोर निद्राको बहिनो लीजै अपना धर्म सँवार ।
अब सोनेका समय नहीं है समझावे है बारंबार ॥ ८ ॥
रहो लीन पतिके चरणोंमें जब पूरण होवेगी आश ।
धर्म कार्य्यमें नित चित दीजै रखकर निज पतिपर विश्वास ॥९॥
ब्रह्मा विष्णु महेश शेष सम पति अपनेको पहिचानो ।
नित चितसे पतिमें रत रह कर सदा देव सम सनमानो ॥१०॥
सजकर द्वेषभाव आपसमें धर्मोंका उपदेश करो ।
पतिव्रताओंके चरितो सुनो सुनाओ ध्यान धरो ॥११॥
पढो दिव्य इतिहास पुरातन जिससे होय हृदयमें ज्ञान ।
नाश होये अज्ञान तिमिर औ, होवे प्रकट ज्ञानका जान ॥१२॥
चाहे पति हो अंग हीन अति दीन करो न कभी अपमान ।
रहो सदा आरूढ धर्म्मपर तब होगा अपना कल्यान ॥१३॥
पतिको धर्मभावसे हियमें जो ईश्वर सम ध्याओगी ।
जैसी वह विदुषी प्रसिद्ध हैं वैसी ही हो जाओगी ॥१४॥
यही विप्र 'नन्दन' का कहना जो पति धर्म निभाओगी ।
कलि करालमें भी सुख पाकर स्वर्ग लोकको जाओगी ॥१५॥
सीखो अपने धर्म कर्मको झूठी बातें तो त्याग करो ।
सति दवियोंके चरितों पर मनन करो अनुराग करो ॥१६॥

"देवकीनन्दन शर्मा."

चेतावनी।

मानिन मत कर मान पियासे, व्यर्थ जन्म नहि जावेगोरे ॥टेक॥
चार दिनाकी सुन्दरताई, पाय सखी ऐसी बौराई।
प्राणपतिसें प्रेम न राख्यो, को तेरी मुक्ति बनावेगोरे ॥१॥
जब सखि प्राण प्रयान करेगो, तब यह पातक जान परेगो।
जब यमदूत पकड़ तोहिं लेगो, तब को आन छुड़ावेगोरे ॥२॥
आसे पतिकी सेवा करले, व्यर्थ दर्प अवगुण निज हरले।
करि ले सुकृत धर्म हे बाले ! सो तोहिँ पार लगावेगोरे ॥३॥
जो रहि हैं प्रसन्न पति प्यारे, जगि हैं दिन दिन भाग तुम्हारे ॥
"देवीचरण" तुम्हें तब बहिनां, स्वर्ग स्वयं अपनावेगोरे ॥४॥

गजल.

मान लो बहिनो अविद्या त्याग कर देवी बनो।
ख्वाव गफ़लतसे जरा अब जाग कर देवी बनो ॥
प्यारियो ! उद्देश्य जीवनका पतिव्रत धर्म है।
प्रेममें पतिदेवके अनुराग कर देवी बनो ॥
गुरुजनोंकी लाज कर लघु-बालकों पर स्नेह कर।
सासकी सेवामें निशदिन लाग कर देवी बनो ॥
जो महा सतियां हुई आदर्श भारतवर्षकी।
तुम उन्हींके भक्तिरस अनुराग कर देवी बनो ॥
है निवेदन यही "कृष्णा" का भारत नारीयो।
धर्म सुकृतसे उदय निज भाग कर देवी बनो ॥

उपदेश।

दोहा

प्यारी बहिनो ! पूर्व सम, सब सद्गुणकी खान।
कौन बनावै तुम बिना, सब विधि शुभ सन्तान ॥

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्या
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगंज
श्री वीरेन्द्र के सम्
पत्र १९२२ में निकला।
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आर्
इस नाम का एक म
में निकाला।
जलविद सखा—(जा
कन्या महाविद्यालय
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेजी
सम्पादिका थीं। पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन मे
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३ मे
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे। १
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमेर
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ। साप्ताहि
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत थ
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना।

भजन.

भारतको दुःखसे बहिनों ! को तुम विना छुटावे ।
बीड़ा सुधारका अब को ? तुम बिना उठावे ॥भारत०॥
विद्या न पढ़ने वाली, अज्ञान नारीयों को ।
अपने प्रमाणसे रुचि, को ? तुम विना दिलावे ॥भारत०॥
विद्याको पढ़ पढ़ यों, सब भाँति सभ्य होकर ।
सारी कुरीतियों को, को ? तुम बिना मिटावे ॥भारत०॥
जैसे सुबुद्धि मनको, शुचि मन बनाके छोड़े ।
तैसे सुपथमें पतिको, को ? तुम बिना चलावे ॥भारत०॥
सच्चे सु प्रेम द्वारा, दो मनको एक करके ।
"इक नारिव्रत' नियमको, को ? तुम बिना दृढ़ावे ॥भारत०॥
प्रेमोपदेश बलसे, उत्तेजन दिलाकर ।
तुलसी व कालीदासै, को ? तुम बिना चितावे ॥भारत०॥
श्री रन्तिदेव हरिचंद, मोरध्वजादि नृप संग ।
दुःख झेल धर्म-नौका, को ? तुम बिना खिवावे ॥भारत०॥
कुन्ती समान होकर, विद्या-विचार-बलसे ।
सन्तान पांडवों सम, को ? तुम बिना सधावे ॥भारत०॥
शिशुपनसे सद्गुणोंकी, उन्नति करा सुतोंमें ।
विद्योतसाह पैदा, को ? तुन बिना करावे ॥
" नर केशरी " बुँदेला, नृप छत्रसालसे औ' ।
आल्हादि वीर बाँके, को ? तुम बिना बढ़ावे ॥भारत०॥
सारे कुटुम्बियोंको, सद्धर्मपर चलाकर ।
"धन्योगृहास्थ आश्रम," को ? तुम विना बतावे ॥भारत०॥
विद्या औ' आत्मबलसे, परिपूर्ण देश होवे ।
ऐसे "रमेश" शुभ दिन, को ? तुम बिना दिखावे ॥भारत०॥

बहनोंसे विनय ।

भारतकी ललनाओ, बहनो देखो हुआ सबेरा ।
सब तो हुए सचेत, तुम्हें क्या आलसने है घेरा ?
पूर्व दिशामें प्रकट हुई है, ज्ञान सूर्यकी कान्ति ।
मिटी मोहकी रात, दे रही हवा नई यह शान्ति ॥ १ ॥
बाधा विघ्न रहे, तम-सम, जो वे कम हुए समस्त ।
स्त्री-शिक्षाके घोर विरोधी, होते जाते अस्त ॥
अब तुम भी पढ़ लिखकर, प्यारी सीखो अच्छे ढंग ।
शिक्षित पतियोंकी बन जाओ, सचमुच आधा अंग ॥२॥
सब कामोंमें दे सहायता, हो सधर्मिणी सच्ची ।
घरके काम और शिक्षामें रहो न कुछ भी कच्ची ॥
जब कोई संकट पति पर हो, तुम दो उन्हें सलाह ।
प्रेम पूर्ण समझाकर उसके जाने न दो कुराह ॥३॥
सास ननन्द हों अगर अशिक्षित, तो तुम बनो विनीत ।
प्रेम प्रीति व्यवहार नीतिसे, करलो उन्हें पुनीत ॥
सहन शीलता होगी तुममें, तो न मचेगा युद्ध ।
ससुर जेठ भी क्रूद्ध न होंगे, होगा कुछ न विरुद्ध ॥४॥
पुत्र-पुत्रियोंके पालनका, शिक्षाका भी कार्य-
सीखो और सिखाओ सबको, बनकर खुद आचार्य ॥
घर बाहरकी जो कन्या यें, चले तुम्हार पन्थ ।
उन्हें सिखाओ और पढाओ, स्त्री-शिक्षाके ग्रन्थ ॥५॥
कड़ुए वचन न बोलो, प्यारी मीठी रखो जबान ।
संगति बुरी कभी मत बैठो, रहे सदा यह ध्यान ॥
यों बन जाओगी 'गृहलक्ष्मी' पाओगी सम्मान ।
घर होगा सुख-शान्ति निकेतन, कुलका भी कल्यान ॥६॥

—जनकदुलारी पाण्डेय

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्या
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगंज
श्री वीरेन्द्र के सम्
पत्र १९२२ में निकला।
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आग
इस नाम का एक म
में निकाला।
जलविद सखा—(जा
कन्या महाविद्यालय
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेजी
सम्पादिका थीं। पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन मे
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३ मे
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे। १
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमेर
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ। साप्ताहि
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत था
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना।

स्त्री-शिक्षा।

(वीवाह-गीतावलीके गीत.)

जो जो बहिने, विद्या गहने, नाहीं पहिनें,
देखी अधिक दुःखारी, वे हां हां वे।
लाभ औ हान, सोच न जानें फिर क्या जानैं,
सुखको स्वाद विचारी, वे हां हां वे।
संताननकी, कूल बालनकी, जग वासिनकी,
जीवन नासन हारी, वे हां हां वे॥
जितने जीके, ढिग माईके, रहँ सब हीके,
करि हो कैसइ, सिखि हैं तैसइ बनि हैं वैसइ,
जैसी है महतारी, वे हां हां वे॥
वे शिशुपनमें, उनके मनमें भर सकती है,
जो बातें हितकारी, वे हां हां वे।
बड़े भयेपर, गुरुकुल जाकर, पढ़न गये पर,
लगहिं कठिन औ भारी, वे हां हां वे॥
डारै जितनी कडी हो तितनी, क्रमसो इतनी,
कमती नवत निहारी, वे हां हां वे:
यासों तुम सब, पढ लैहे जब, सुधरेंगे तब,
तुमरे कुंवर कुंवारी, वे हां हां वे॥
बहु तक पढ़कै, पुरुषसों बढ़कैं, भई चढ़बढ़कैं,
क्या नाहीं हैं नारी, वे हां हां वे॥
यासों आवो, पढ़ो पढावो, सबै सिखाओ,
बात "रमेश" हमारी, वे हां हां वे॥

स्त्री-गृहनीति ।

सुनो सुनो प्रिय भगिनी कृष्ण ? हम तुमसे कुछ कहती हैं ।
नीतिपूर्वक गृहमें रहना, उत्तम कार्य समझती हैं ।
सेवा करो सदा निज पतिकी, बोलो बात मधुरतासे ।
प्रेम सहित अरु चित्त लगाकर कारज करो चतुरतासे ॥
प्रातसमय निज शय्या तजकर पतिको शीश नमाओ तुम ॥
तिस पीछे फिर सास-ससुरको विनती आय सुनाओ तुम ।
करके स्वच्छ शीघ्र पाकालय, उत्तम पाक बनाओ तुम ।
सास-ससुरको जिमा प्रीतिसे पति पीछे फिर पाओ तुम ॥
करके स्वल्प शयन प्रिय भगिनी ! ले पुस्तक फिर आओ तुम ।
घरकी कन्या अरु बहुओंको उत्तम सीख सुनाओ तुम ॥
सायंकाल होय जब प्यारी ? दीपक तुरत जलाओ तुम ।
फिर जाकर पाकालय भीतर भोजन मधुर बनाओ तुम ॥
निबट रसोईके धन्धेसे सासुहिं शयन करा करके ।
कर सेवा ले आज्ञा उनकी पति समीप फिर जा करके ॥
कमल-चरण ले करमें देवी ! अपना शीश नमाओ तुम ।
मातु नींदकी गोद लेटकर अति अनुप सुख पाओ तुम ॥
ये ही हुए गृहस्थी कारज दुजी बातें करना ये ।
समझ धर्म्म अरु कर्म सुबयना ! अपने मनमें धरना ये ॥
मिले जहांतक वस्तु स्वदेशी उसको धारण करना तुम ।
वस्तु विदेशी समझ हानिकर उसका त्यागन करना तुम ॥
ऐसी कौन वस्तु प्रिय भगिनी ! जिसको तुम नहीं पाओगी ।
सुयश तुम्हारो दिन दिन बढ़ि है देश हिं जा अपनाओगी ॥
सीख सीख कर उत्तम विद्या घरके काज बनाओ तुम ।
होगी कीर्ति जगतमें भगिनी "प्रिय" जगमें सुख पाओ तुम ॥

—धर्मपत्नी प्यारेलाल श्रीवास्तव्य "

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्य
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगंज
श्री वीरेन्द्र के सम
पत्र १९२२ में निकला ।
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है ।
ऋषि दयानन्द—आर
इस नाम का एक म
में निकाला ।
जलविद सखा—(जा
कन्या महाविद्यालय
प्रकाशित हुई । पत्रिका
थीं । कुछ पृष्ठ अंग्रेजी
सम्पादिका थीं । पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन मे
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३ मे
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे । १
कर रहे थे ।
आर्य मार्तण्ड—अजमेर
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ । साप्ताहि
को अजमेर से निकला ।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत था
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना ।

माताकी ममता ।

ले गोदीमें माता मेरी अपना दूध पीलाती थी ।
देख देख खुश मूझको मनमें भारी खुशी मनाती थी ॥
चूम चूम कर दोनों मेरे गालोंको गरमाती थी ।
बजा बजा चुटकीको सुस्ती मेरी रोज भगाती थी ॥
बना बनाके बातें मीठी जी मेरा बहलाती थी ॥१॥

रोता था जब कभी मैं पलना डाल झुलाती थी ।
"आरी निंदिया," आरी निंदिया" यों गाना फिर गाती थी ॥
दे दे धमकी रोज़ रोज़ माँ सुखसे मुझे सुलाती थी ॥२॥

फँसा देख बीमारीमें झट चंगा अहा ! कराती थी ।
मान मानता कई तरहकी पगलीसी हो जाती थी ॥
रोग न जब तक जाता था हा ! आंसु बहूत बहातीथी ॥३॥

गिरा मुझे धरती पर पाती जल्दी दौड़ उठाती थी ।
"घोड़ा कूदा," "घोड़ा कूदा" यों कह समझाती थी ॥
फूंक फूंक कर चोट लगी हूई झुई अच्छी बतलाती थी ॥४॥

खिला खिलाकर चीज़ें मुझको जीमें आप अघाती थी।
रोज़ रोज़ दे नये खिलौने बांके खेल खिलाती थी ॥
मुझे नज़र सी लगी जानके राई नोन जलाती थी ॥५॥

पहिना कपड़े मोज़े जूते, सर्दी आदी बचाती थी ।
उंगली पकड़ मुझे आंगनमें चलना रोज़ सिखाती थी ॥
थका देखती थी जब माता कनियां बेग बढ़ाती थी ॥६॥

कहता था "पानी" को "पप्पा" सुनकर तब मुसकाती थी ।
ठीक ठीक फिर बोल बोल कर साफ़ साफ़ कहलाती थी ॥
कहकर "बाबा" "दादा" "काका" घरके लोग चिन्हातीथो ॥७॥

आग-दिये पर हाथ बढ़ा ले कह "तत्ता" अलगाती थी ।
कीड़े देख न पकड़ूं इससे "जूज" बोल रुकाती थी ॥

सभी तरहसे माता मेरी मुझको सदा रखाती थी
धिक् ! मुझको है करुं न सेवा अपनी माता की मनसे ।
भोग बड़े दुःख पाला जिनने उऋण कभी नहिं हूं उनसे ॥
विप्र "गुणाकर" हित मेरे ही मां अति कष्ट उठाती थी॥९॥

दादरा ।

सब मिथ्या ये गहनें तुम्हारे बहिना ॥ टेक ॥
सच्चा एक भूषण विद्या बताया,
करो उसको धारण ये मानो कहना ॥ सब ॥ १ ॥
इस भूषणसे शोभा अति पाओ,
दुःख पडे नहीं कोई सहना ॥ सब ॥ २॥
चोर चकार न लूटे इसको,
नहीं संग वाके पड़े रखना ॥ सब. ॥३॥
सास नहीं बांट नन्द नहीं लेवे,
ऐसा ये उत्तम बहिन गहना ॥ सब ॥ ४ ॥
न यह टूटे न यह घिसता,
नहीं संग वाके पड़े रखना ॥ सब. ॥ ५ ॥
करो प्रेमसे इसको धारण,
मानो कन्हैयाका कहना ॥ सब. ॥ ६ ॥

भजन ।

धारो पतिव्रत धर्म मेरी बहिना पाओ सुख जो अपरम्पार ॥धारो॥
पतिव्रता वह कहावे, जो पति चरणोमें प्रेम बढावे,
नहीं कभी करे अहंकार ॥ धारो पतिव्रत धर्म मेरी. ॥१॥
पति चरणोंकी सेवा करना, मनमें कपट जरा नहीं रखना,
करो इसको स्वीकार ॥ धारो पतिव्रत धर्म मेरी. ॥२॥

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्या
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगंज
श्री वीरेन्द्र के सम्
पत्र १९२२ में निकला ।
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है ।
ऋषि दयानन्द—आग
इस नाम का एक म
में निकाला ।
जलविद सखा—(जा
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई । पत्रिका
थीं । कुछ पृष्ठ अंग्रेजी
सम्पादिका थीं । पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन मे
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३ मे
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे । १
कर रहे थे ।
आर्य मार्तण्ड—अजमेर
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ । साप्ताहि
को अजमेर से निकला ।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत था
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना ।

जो पति सेवामें मन लावे, वही जगमें धन्य कहावे ॥
वही है जगमें सार ॥ धारो पतिव्रत धर्म मेरी ॥ ३ ॥
यों कन्हैयालाल कथ गावे जो इसका आशय पावे ।
वही भगिनी धन नार ॥ धारो पतिव्रत धर्म मेरी. ॥४॥

दोहाः–पहिले कृतयुग बीचमें, कैसी थी यहां नार ।
उनके उपर ध्यान दे, करना बहिन विचार ॥
चितसे अब विद्या पढो. सभी नार मन लाय ।
विद्याके परतापसे, दुःख सबही नश जाय ॥

भजन-स्तुति ।

कर कृपा ईश्वर दीजियो अबलोंको सुन्दर नीति ॥टेक॥
नैया अब तुम पार लगाओ, हमारा अब तुम कष्ट मिटाओ ।
ज्ञान हियेमें अब उपजाओ, बुद्धिके बीच प्रकाशियो ।
और हरना सभी कुरीति, अबलोंको सुन्दर नीति ॥ कर ॥१॥

मूरखता हममें परकाशी, इसको हरना अब अविनाशी ।
काटो हमारी दुःखोंसे फांसी, अब सुख दे सुखिया कीजियो
सब हर कष्ट भय अरु भीति, अबलोंको सुन्दर नीति ॥कर ॥ २ ॥

विद्या देकर प्रेम बढाओ, द्वेषभावसे हमें छुटाओ ।
प्रीतिकी रीति बतलाओ, वह शक्ति हममें कीजियो–
जिससे हम पालें प्रीति, अबलोंको सुन्दर नीति ॥ कर ॥३॥

तुमसे है वह विनय हमारी, हमपर कष्ट पडा अब भारी ।
कहलाई है मूढ गंवारी, यह पहली पदवी दीजियो–
"कन्हैया" कर जोर करे विनति, अबलोंको सुन्दर नीति ॥कर॥४॥

दादरा ।

सत्कर्मोंमें प्रभू लगाओ हमें. सत्कर्मोंमें ॥
मूर्खतासे पल्ला छुटाओ, पतिव्रता साध्वी बनाओ हमें ॥सत्कर्मों. ॥१॥
प्राचीन विद्या हममें प्रचारो, अच्छी सुन्दर विद्या दीजो हमें ॥स. ॥२॥
अवगुण हमरे सब ही छिपाओ, गुण दे गुणाढया बनाओ हमें ॥स.॥३॥
धर्म पतिव्रत हमें बताकर, विदुषी सुशीला बनाओ हमें ॥ स. ॥४॥
बिगड़ी दशा तुम हमरी बनाओ, अब हितू नहीं सूझत है कोई हमें ॥स॥
कर कृपा अब हमें अपनाओ, कहे 'कान्हा' शरणमें लीजो हमें ॥स.॥६॥

माताका उपदेश ।

बेटी जब ससुराले जाना, मत करना अपना मन माना ।
करना सो जो सास सिखावे, अथवा जेठी ननन्द बतावे ॥
जो होवें घर जेठ जेठानी, करना उनहीकी मन मानी ।
उनकी सेवा बनी आवेगी, तो तू सुख सम्पति पावेगी ॥
जेठी ननन्द सासु जेठानी, सेवा इन्हें बराबर जानी ।
इनकी आज्ञा पालन करना, वधू धर्म यह मनमें धरना ॥
जितने जेठे होवें घरपर, उन्हें समझना ससुर बराबर ।
उनकी आज्ञा सिरपर धरना, मानो है सुखसे घर भरना ॥
जो सुभाग्यसे हो द्यौरानी, करना प्रेम बहिन सम जानी ।
उसको उत्तम काम सिखाना, अपने कुलकी चाल बताना ॥
देवरको लखना लघुभाई, आदर करना प्रेम जनाई ।
उनके दुखमें दुःख मनाना, सुखमें मिलि आनन्द बढ़ाना ॥
जब तुम उनसे काम कराना, अपना बडपन नहीं बताना ।
प्रेम सहित धीरे मुसकाकर, आज्ञा-देना शील बताकर ॥
ऐसा करनेसे द्यौरानी, बात करेगी सब मन भावी ।

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्
सम्पादन में वैदिक संदे
संन्यासी—हरदुआगं
श्री वीरेन्द्र के स
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है ।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला ।
जलबिद सखा—(ज
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई । पत्रिका
थीं । कुछ पृष्ठ अंग्रेज
सम्पादिका थीं । पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पादन
साड़े तीन रुपये थे । ९
कर रहे थे ।
आर्य मार्तण्ड—अजमे
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ । साप्ताहि
को अजमेर से निकला ।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत थ
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना ।

देवर भी आज्ञा मानेगा, तुझको गृहदेवी जानेगा ॥
छोटी ननन्द बहिन है छोटी, उससे बात न करना खोटी ।
प्रेम सहित उसे आदरना, द्वेष विरोध कभी मत करना ॥

माताकी शिक्षा ।

सुनो बेटी सिखाती हूं, नसीहत गौर कर देखो ।
हमारी बात पर चलना, कि जिससे जन्म सुख देखो ॥१॥
फलो फूलो सदा प्यारी, बढै परिवार सुख सारी ।
हमारा धर्म्म है भारी, हिये बिच आनकर देखो ॥२॥
ये नारी धर्मकी कुंजी, अहै धन सुखकी पूंजी ।
करी कर्त्तव्यको पालन, यही उपदेश है देखो ॥३॥
सभी बातें हु बतलाती, सुनारी धर्म सिखलाती ।
बड़ोकी बात शिर धरना, न तजना नीति फिर देखो ॥४॥
मिलेगी सासु जब तुमको, तजोगी जल्द अब हमको ।
पिता भ्राता सखी भाभी, यहांके लोग सब देखो ॥५॥
सिखावे सासु सो करना, जिठानी ननन्द मन भरना ।
न करना अपनी मनमानी, वधूका धर्म यह देखो ॥६॥
बड़ी ननन्दी व जेठानी, सासु अरु जेते बड़जानी ।
सुआज्ञा पालना, सेवा सभी करना धरम देखो ॥ ७ ॥
ससुर सम जेठको जानो, पतिको ईश सम जानो ।
कभी आज्ञा न भंग करना कि जिससे जन्म सुख देखो ॥८॥
वहिन सम छोटी घोरानी, लखो देवरको लघु जानी ।
सिखाना धर्मकी बातें, बताना चाल कुल देखो ॥ ९ ॥
सुखी सुख, दुःखमें दुःख करना प्रेम मिलकरके सुख भरना.
बताकर शील धीरज कर, बड़ापन अपना नहीं देखो ॥१०॥

सभोंका प्रेम उर भरना विरोध रु द्वेष नहि करना ।
कि मान तुजको गृह देवी, सभी परतीति हो देखो ॥११॥
लघु हो या बड़ा होई, परे दुःख कष्टमें कोई ।
लगा कर चित्त तू सबका न करना मन मलिन देखो ॥१२
पतिको देव तुल जानो, उन्हीके सुखसे सुख मानो ।
उन्हीके प्राणसे जीवन सफल है चित्तमें देखो ॥ १३ ॥
कभी नाराज मत करना, उन्हींके मार्गपर चलना ।
तेरे मर्यादके रक्षक वही है सब तरह देखो ॥ १४ ॥
सभी सुख-क्षेमके दाता, सभोंसे बढ़के है नाता ।
कहैं क्या क्या न नारी जो, पतिव्रत-धर्म पढ़ देखो ॥ १५ ॥
जो तेरे बच्चें हैं प्यारे, बड़े छोटे कई हों वारे ।
दिये भगवानके सच्चे बतावे धर्म कर देखो ॥ १६ ।
सकारज गृहमें मन देना, कुबुद्धिमें न चित्त देना ।
सदा सुख चैनसे रहना, कलहमें नाम बद देखो ॥ १७ ॥
गृहोंके भूषण औ वासन, सकल वस्त्र और सब आसन ।
सफाई करना निज हाथन, न इनमें शर्म कर देखो ॥१८॥
बनाना हाथ निज भोजन, प्रयोजन जिससें हो पोषण ।
सफाई स्वच्छता सादी, रहे परसन सब देखो ॥१९॥
परोसी पासकी नारी, जो आवे गृहमें सदुचारी ।
सदा आदर बनाना तू, प्रेम करी चित्तमें देखो ॥ २० ॥
किसीके घर बुलाये बिन, या इत उत राह निश या दिन ।
अकेलेमें न जाना तू, जो आज्ञा सासकी देखा ॥ २१ ॥
जो नौकर दास अरु दासी, रखो सद चाल विश्वासी ।
बहुत ही प्रेम नहि रखना, करो शिक्षा सदा देखो ॥ २२ ॥
सभी यह काज सुठी नारी, सबोंकें चित्तमें हो प्यारी ।
रहे यश छाय जग सारी, ये "लालन" बात कर देखो ॥२३॥

सच्चे उपदेश।

सदा प्रेमसे तुम चलो, बहिनो सखियन बीच।
जो ऐसा करती नहीं, वह कहलाती नीच ॥

नित्य सत्य बोला करो, झूठ पापको त्याग।
झूठ नष्ट सबको करे, ज्यों इन्धनको आग ॥

कोयल कौव्वा उभयकी, रंगत एक समान।
फिर क्या कोयल ही सदा पाती जगमें मान।

अपने मीठे बोलसे, कोयल पाती मान ॥
लोग रूप नहि देखते, गुणपर रखते ध्यान ॥

बुरी बला अति लोभ है, सब पापोंका मूल।
इससे बहिनो लोभको, कर डालो निर्मूल ॥

चित्त लगाकर सीखिये, विद्या विविध प्रकार।
विद्या है इस विश्वमें, सुख सम्पतका द्वार ॥

मिल सकती आलस्यसे, कभी नहीं सुखशान्ति।
कर सकते उद्योगसे, सभी दूर दुःख भ्रान्ति ॥

रक्खो अपने ध्यानमें, अपने भले स्वभाव।
बुरे स्वभावोंका सदा, पड़ता बुरा प्रभाव ॥

भाई भोजाई बहिन, प्रिय कुटुम्ब परिवार।
किया करो उन सबनसे, प्रीति पूर्ण व्यवहार ॥

चला करो बहिनो सभी, सदा नियम अनुसार।
किया करो विधियुत शयन, श्रम आहार विहार ॥

स्वच्छ रखो तन मन वसन भवन द्वार दे ध्यान।
मेलापन सब भांतिके, रोगोंकी है खान ॥

सतीमंडल ।

स्त्री पुरुषके कर्त्तव्य सहित ।

भाग—२

यह लोकप्रिय प्रसिद्ध ग्रन्थ पृथ्वीके हरएक धर्मके स्त्री, पुत्र और पुत्रियोंको शिक्षा–उपदेश लेनेके लिये उपयोगी हो इस प्रकार धर्म नीतिसे भरा हुआ है । यह ग्रन्थ पतिव्रता होनेकी और गृहसंसारको पवित्र प्रेमी बनानेकी इच्छा करनेवाली बहिनोंके लिये पारसमणिरूप है । ऐसा उत्तम ग्रन्थ अभी तक कोई भी नहीं प्रकाशित हुआ है ।

इस ग्रन्थमें प्राचीन अर्वाचीन जगत् प्रसिद्ध पवित्र सतियोंके शिक्षा योग्य अद्भूत रसिक चरित्र व गृहसंसारोपयोगी विषय दिये गये हैं जो पढनेवालोंको तल्लीन कर, उनको सद्गुणशाली बना दे वैसा उत्तम उपदेश इसमें दिया गया है । जीवन चरित्र यह जीवनको सुधारनेका साधन है; क्योंकि उत्तम दृष्टान्त यह मनुष्यको उत्तम बननेके लिये जागृत करता है ।

इस अभिप्रायसे इस पुस्तकमें जगत् प्रसिद्ध पवित्र–सती सुमित्रा, सुनीति, सत्यवती, सरमा, सरस्वती–भारती, सत्यभामा, अदिति, अंजनी, भवानी, उषा, उत्तरा, चित्रलेखा, विधाता, मायादेवी, मनसा, शक्ति, श्रद्धा, मूर्ति, महाश्वेता, गोपा, यशोधरा, उर्वसी, चूडाला, कादम्बरी, कालिंदी, इन्द्राणी, श्रुतावती, वेदवती, शांडिली, उभयकुमारी, सुव्रता, भानुमति, योगिनी, रोहिना, बहुला, राणकदेवी, वीरमती, पद्मिणी, मैनावती, शशिव्रता, शशिकला, ऋषिदर्श, कदलीगर्भा, तिलोत्तमा, कान्ति, वनदेवी, खन्ना, देवी कामिनी, चन्द्रप्रभा, मृगनयनी, गङ्गा, यमुना, सरयु, श्रीदेवी, मीनलदेवी, कला, चन्द्रमुखी, नागदेवी, राजुल–राजिमती, यशोदा, रोहिणी, उर्मीला,

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगंज
श्री वीरेन्द्र के सम्
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है ।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला ।
जलविद सखा—(जा
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई । पत्रिका
थीं । कुछ पृष्ठ अंग्रेजी
सम्पादिका थीं । पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नात
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे । १
कर रहे थे ।
आर्य मार्तण्ड—अजमेर
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ । साप्ताहि
को अजमेर से निकला ।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत थ
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना ।

सारिका, लीलावती, कृष्णाकुमारी, भामती, गुणसुन्दरी, रुपसुन्दरी, सती सोन, लेडी हामिल्टन, बिक्टोरिया, कोलोना, सुन्दरबा, राजबाला, इच्छनकुमारी, त्रिमूर्ति, शीवा, मेना, राजेश्वरी, लालबा, अहिल्याबाई, तारा, झांसीकी रानी, लक्ष्मीबाई इत्यादि पवित्र ८७ सतियोंके उपदेशमद मनहर जीवन चरित्र हैं इसके सिवाय—

स्त्रीपुरुषके कर्त्तव्य––स्त्रीकी उत्तमता, स्त्रियोंकी आचार नीति, स्त्री पुरुषके अधिकार, दम्पती धर्म, पवित्र गृहसंसार, सत्य संसारसुख कैसे मिले, पतिको कैसा आचरण रखना, स्त्रीकी सुन्दरताका उपयोग, पति पत्नीमें कैसा प्रेम चाहिये, स्त्रीकी पवित्रता, स्त्रीपुरुषकी अपवित्रता, पति पत्नीके गुणोंकी होनेवाली असर, सच्चे पतिके लक्षण, सच्ची पत्नीके लक्षण, पुत्रपुत्रीकी उत्तमताके लक्षण, स्त्री उपयोगी नीतिमाला, स्त्रीकी बीमारीके समय पतिका कर्तव्य, संसारोपयोगी बुद्धि किस प्रकार मिले, स्त्रीको कैसा सहवास रखना चाहिये, माता व सन्तान, माताका उपदेश, विज्ञ पतिके पत्नीके प्रति वचन, संसारमे सच्चा स्नेही कौन है, सास बहुका अनबनाव कैसे मिटे, सौन्दर्य बढानेका उपाय, बुद्धि बढानेका उपाय, आनन्द बढानेका उपाय, स्त्री उपयोगी चतुरता, स्त्री उपयोगी हुन्नरकला, स्त्री उपयोगी पाककला. गृहोपयोगी रसायन, गृहोपयोगी पदार्थपरीक्षा, खास स्त्री उपयोगी वैद्यक,–स्त्रीके खास रोग, चिकित्सा, दवा समेत, सन्तति सुन्दर कैसे हो, शरीरको सम्हालनेकी रीति, कुटुम्ब व्यवस्था, गृहकार्य व्यवस्था, उत्तम वर कन्या शोधनेकी रीति, बालकोंको धर्मनीतिकी शिक्षा किस तरह देनी, परमात्माकी प्रीतिके लिये क्या करना, पवित्र उपदेश और सतीगीता–स्त्री उपयोगी उत्तमोत्तम कविताओंका संग्रह । इसमें गृहसंसारके लिये अत्यन्त उपयोगी ऐसे १०५ उत्तम विषय है । पृष्ठ अनुमान ६०० शुशोभित सुनेरी पक्की जिल्द । प्रथमसे ग्राहक होनेवालोंसे मूल्य रु. ३॥ पीछेसे मूल्य रु. ४–०–०

चरित्रचन्द्रिका।

भाग—१.

संसारके समस्त धर्मोंके सिद्धान्त समेत।

यह लोकोपयोगी पुस्तक संसारके हरएक धर्मके मनुष्योंको शिक्षाके लिये उपयोगी हो ऐसी तैयार की गयी है। धर्म नीति और पवित्रज्ञानसे पूर्ण ऐसा ग्रन्थ अभीतक एक भी प्रकाशित नहीं हुआ है। इस ग्रन्थमें प्राचीन अर्वाचीन जगप्रसिद्ध पवित्र महान् पुरुषोंके उपदेश लेने योग्य अद्भुत मनहर जीवनचरित्र लिखे गये हैं जो पढनेवालोंको और श्रवण करनेवालोंको तल्लीन कर दे ऐसे उत्तम सदुपदेशसे पूर्ण है, जीवन चरित्र यह जीवनको सुधारनेका उत्तम साधन है; क्योंकि उत्तम दृष्टान्त यह मनुष्यको उत्तम होनेके लिये जागृत करता है।

इस अभिप्रायसे—श्रीराम, श्रीकृष्ण, परशुराम, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, मनु, नारद, कपिलमुनि, कश्यप, अत्री, अगस्त्य, विश्वामित्र, वशिष्ठ, गौतम, वाल्मिकी, याज्ञवल्क्य, पाराशर, बृहस्पति, व्यास, शुक्राचार्य, जैमुनि, पाणिनी, पतंजली, शुकदेवजी, धन्वन्तरि, इक्ष्वाकु, निमी, नहुष, रघुराजा, मान्धाता, सगर, दिलीप, भरत, जनक, परिक्षित, मुचकंद, अंबरीष, ध्रुव, प्रह्लाद, चित्रकेतु, पुरुरवा, हरिश्चंद्र, भर्तृहरि, गोपीचंद, जड़भरत, शीबी, अजामील, रावण, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, युधिष्ठिर—धर्मराजा, अर्जुन, दुर्योधन, भिष्मपितामह, विदुर, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, नलराजा, सुदामा, श्रवण, अशोक, चन्द्रगुप्त, भास्कराचार्य, शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य, ताताचार्य, क्षपणक,

वैदिक सन्देश—गुरुकु
पं. विश्वनाथ विद्य
सम्पादन में वैदिक संदेश
संन्यासी—हरदुआगंज
श्री वीरेन्द्र के सम
पत्र १९२२ में निकला
बलिदान—लाहौर
यह मासिक पत्र १
नहीं है।
ऋषि दयानन्द—आ
इस नाम का एक
में निकाला।
जलविद सखा—(जा
कन्या महाविद्याल
प्रकाशित हुई। पत्रिका
थीं। कुछ पृष्ठ अंग्रेजी
सम्पादिका थीं। पत्रिक
कु. शकुन्तला देवी स्नाति
मातृभूमि—मेरठ
प्रसिद्ध पत्रकार और
साप्ताहिक का प्रकाशन
सत्यवादी—दिल्ली
जनवरी १९२३
साप्ताहिक का सम्पादन
साढ़े तीन रुपये थे। १
कर रहे थे।
आर्य मार्तण्ड—अजमेर
यद्यपि आर्य प्रतिनि
थी, किन्तु उसके मुखपत्र
आरम्भ हुआ। साप्ताहि
को अजमेर से निकला।
क्षेत्र भूतपूर्व राजपूताना
रियासतें) तक विस्तृत थ
आर्यसमाज की धार्मिक, स
बना।

चार्वाक, ऋषभदेव, अर्हन्, नेमनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, बौद्ध, जरथोस्त, मुसा, इसुक्राईस्ट, हजरत महंमद पैगम्बर, नानक, कबीर, कमाल, रामदास, स्वामी रामानन्द, तुलसीदास, सुरदास, सहजानन्द स्वामी, दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्रसेन, देवेन्द्रनाथ टाकोर, राजा राममोहनराय, कुमारील भट्ट, मण्डनमिश्र, पद्मपादाचार्य, अपय्यादीक्षित, अभिनवगुप्ताचार्य, प्रणामीपन्थके आचार्य प्राणनाथजी, देवचंदजी, त्रिकालदर्शी, गुरुगोविन्द, गुरु मच्छेन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, महापंडित कालिदास, माघकवि, बाणभट्ट, भवभूति, मयुर, दंडी, चाणाक्य, दीनदरवेश, भट्टोजी दीक्षित, बीरबल, गंगकवि, तानसेन गवैया, चन्दकवि, जगन्नाथराय पंडित, जयदेव, निवृत्तिनाथ, निपटनिरंजन, पुंडरीक, बसव, बोधले बावा, केशव गोस्वामी, उद्धव गोस्वामी, एकनाथ स्वामी, कल्याण गोस्वामी, तुकाराम, नामदेव, नरसिंह महेतो, हेमाचार्य, श्रीहर्ष, वीर विक्रम, शालीवाहन, भोज, डुंगड़ जोशी, जावड़ भावड़, इत्यादि १५१ महात्माओंके उपदेशप्रद मनहर चरित्र हैं। इसके सिवाय-संसारके हरएक धर्मके सिद्धान्त और भारतवर्षका त्रिकालीक दर्शन इस पुस्तकमें देकर इसकी उपयोगितामें अभिवृद्धि की है।

ये महात्मा—कौन थे, कैसे थे, कब हुए, कैसी शोधें व पराक्रम किये, धर्म सम्बन्धी कैसे विचार और चमत्कार बतलाकर लोगोंके मन अपनी ओर आकर्षित किये थे यह तथा धर्म, नीति, भक्ति, मुक्ति, विवेक, मर्यादा इत्यादि अनेक उपदेश लेने योग्य विषय इसमें दिये गये हैं। संसारमें समस्त मनुष्य धर्माचार्योंके बताये हुए धर्मका पालन करते हैं और उनके बचनोंके अनुसार संसार व्यवहार चलाते हैं। उन धर्माचार्योंके वृत्तान्तसे परिचित होना हरएक धर्मवालोंका प्रधान कर्तव्य है। मनुष्य इसके जान लेनेसे अपने तथा दूसरेके धर्मतत्वोंकी तुलना कर उसमेंसे सारासार ग्रहण कर सकता है। धर्मजिज्ञासुओंके लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। पृष्ठ ७०० सुनेरी अक्षरकी पक्की जिल्द प्रथमसे ग्राहक होने वालोंसे मूल्य रु. ३॥ पीछेसे मूल्य रु. ४-०-०